कबीर जीवन चरित्र





गंगाशरण शास्त्री

अभिमत

आदरणीय श्री गंगाशरण दास जी,

नमस्कार।

आप की लिखी पुस्तक 'कबीर जीवन चरित्र' थोड़ा ही पढ़ पाया। आपने सम्प्रदाय की मान्य पुस्तकों के और गुरुजनों के मुख से सुनी हुई बातों के आधार पर सहज, सुगम भाषा में बहुत सुंदर जीवनवृत्त लिखा है। आजकल लोग आकाशवाणी आदि पर विश्वास नहीं करते, परंतु फिर भी आप के द्वारा प्रस्तुत बातें पुरानी पोथियों और अनुश्रुतियों पर आधारित होने के कारण रोचक रूप में कबीर साहब का जीवनवृत्त प्रस्तुत करती हैं। खेद है कि लखनऊ से आवश्यक टेलीफोन संवाद मिलने के कारण मुझे इसी समय जाना पड़ रहा है। पूरी पुस्तक तो बाद में ही पढ़ सकूंगा। इस रोचक शैली में कबीर जीवनी लिखने के लिये हार्दिक साधुवाद।

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

5·2

कबीर जीवन चरित्र

आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री



कबीरवाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी

कबीर जीवन चरित्र

आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री

प्रथम संस्करण : १९७६ ई०

द्वितीय संस्करण : १९९१ ई०

सत्कबीराब्द ५९२ • सम्वत् २०४८ वि०

मूल्य

सजिल्द : पैंतालिस रुपये

अजिल्द : पैंतीस रुपये

प्रकाशक

कबीरवाणी प्रकाशन केन्द्र

सी २३/५, कबीरचौरा मठ, वाराणसी–२२१००१

दूरभाष : ६३४१९

मुद्रक

शिवम् प्रिण्टर्स

सी २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी, मलदहिया,

वाराणसी–२२१००२

विश्ववन्द्य सद्‌गुरु कबीरपथिकाचार्य

सम्मान्य अमृत साहब

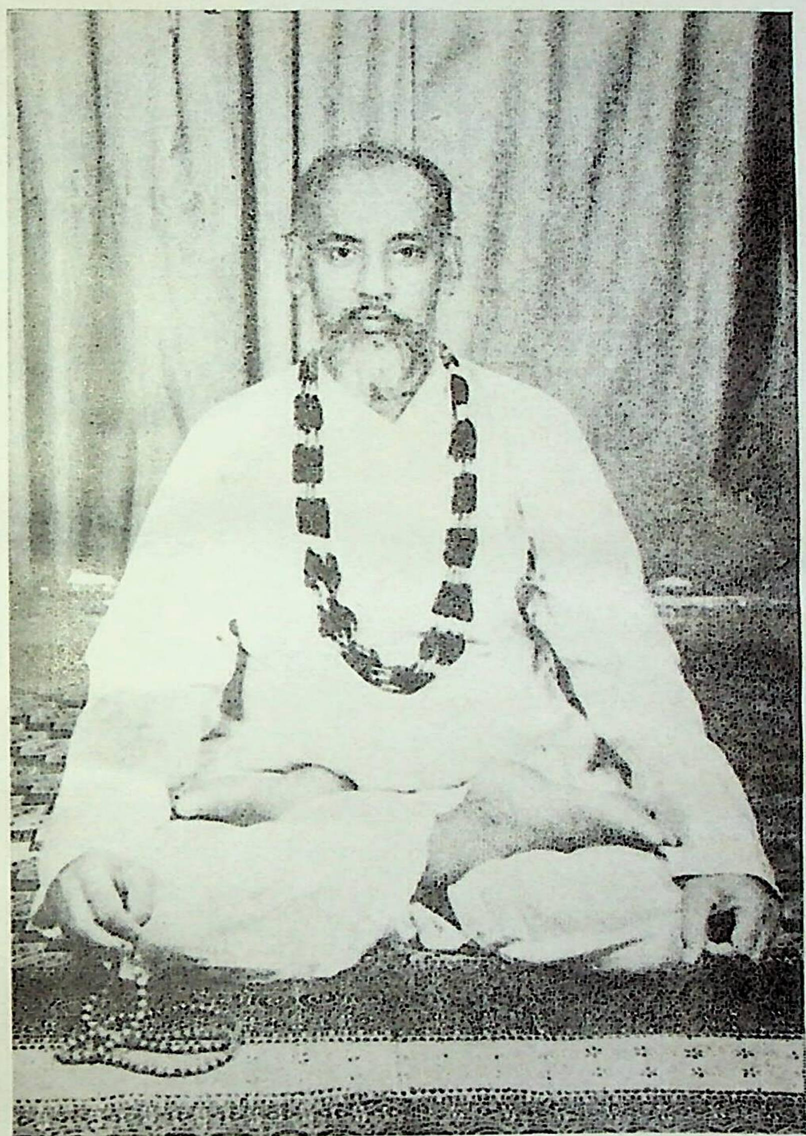
के

चरणों में

"कबीर जीवन चरित्र" को मैं ध्यानपूर्वक एक बार देख गया, पुस्तक खोजपूर्ण लिखी गई है। इसका अभाव बहुत दिनों तक खटकता रहा, मैंने कई बार इसको प्रकाशित करने की जिज्ञासा की, परन्तु अनेक व्यवधानों के कारण समय से प्रकाशित नहीं हो पायी। इस पुस्तक की माँग दिनानुदिन बढ़ती गई। अन्त में अन्य प्रकाशनों को रोक कर इस पुस्तक को प्रकाशित करना पड़ा। आशा है कि इस पुस्तक के द्वारा सद्‌गुरु कबीर को समझने में बड़ी मदद मिलेगी। विशेषकर जन-साधारण अधिकाधिक लाभान्वित होंगे एवं विद्वत् जन को एक नया मार्ग मिलेगा। इस आशा व विश्वास के साथ इसका प्रकाशन कराया गया है। पाठक वृन्द यदि कोई सुझाव देंगे तो अगले संस्करण में अंकित कर दिया जायेगा। लेखक महोदय को मेरी तरफ से आशीर्वाद है कि इस प्रकार के लेखों द्वारा जनता-जनार्दन की सेवा करते रहें। अधिक 'शुभ'।

आचार्य महन्त अमृतदास
कबीरचौरा मठ, वाराणसी

दिनांक : १० अगस्त १९७६ ई०



आचार्य महन्त श्री गंगाशरण शास्त्री

विषयसूची

प्रस्तावना

किसी के आचरण, व्यवहार एवं चाल-चलन तथा रहन-सहन को ही जीवन चरित्र कहते हैं। जीवनचरित्र जिसका जैसा होता है वैसा ही उसका चिन्तन मनन करने से अपने ऊपर प्रभाव (भी) पड़ता है। इसलिए जीवन चरित्र का बड़ा महत्त्व होता है, क्योंकि दूसरे के ही आचरण का अनुकरण करके हम भी अपने आचरण का निर्माण करते हैं और उसी के अनुरूप मनुष्य के हृदय पटल पर उसकी अमर छाप पड़ती है। जीवन चरित्र के समान मैं कोई अध्ययन नहीं देखता, जो जीवन की उन्नति, अवनति का कारण बने। इसलिए जीवन चरित्र का लिखना सार्थक होता है।

प्रायः संसार के अनेक महापुरुषों के जीवन चरित्र लिखे गये हैं, जिनमें अधिकांश रञ्जनात्मक हैं। उनमें उनके अनुयायियों ने उनका अत्यधिक महत्त्व बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है, जिसके कारण उक्त अनुयायियों के महापुरुषों का सही व्यवहार नहीं ज्ञात हो पाता है। अन्त में हम बाध्य होकर उन महा-पुरुषों के जीवन-चरित्र में अविश्वास करने लगते हैं। इस प्रसंग में मैं किसी महापुरुष का नाम नही लूंगा। लेकिन इतना मैं अवश्य कहूँगा कि केवल श्रीरामचन्द्र जी का जीवन-चरित्र जिसे वाल्मीकि ऋषि ने लिखा है, वह सत्य के बहुत नजदीक है। इसे छोड़कर, शेष महात्माओं के जीवन चरित्र सही नहीं प्रतीत होते, क्योंकि उन महापुरुषों के अनुयायियों ने उन्हें ईश्वर से भी आगे बढ़ा दिया है। इसी कारण उनकी सत्यता विलुप्त हो गयी है।

उक्त प्रकार से सद्गुरु कबीर स्वामी के जीवन-चरित्र को भी कुछ कबीर पंथियों ने लिखा है, जिसमें विद्वान् पुरुषों को यह विश्वास नहीं होता कि वह कबीर साहब का जीवन-चरित्र है। मुझे भी वैसा ही प्रतीत होता है। सद्गुरु कबीर के चार-पाँच जीवन-चरित्र के लेख को छोड़कर शेष रञ्जनात्मक ही हैं। श्री अनन्तदास जी, श्री हरिराम व्यास जी, श्री प्रियादास जी और रीवाँ नरेश श्री रघुराज सिंह को छोड़कर अन्य लेखकों में विश्वास नहीं होता कि उनमें कोई बात सत्य हो, जो कबीर साहब के जीवन-चरित्र के विषय में लिखे हुए हैं। इधर के कुछ लेखकों ने तो सद्गुरु के जीवन-चरित्र को इतना रञ्जनात्मक कर दिया है कि मुझसे कुछ कहते नहीं बनता। उनमें से सर्वाधिक श्री शंकरदास जी शिवपुर, वाराणसी, श्री तपसीदास जी लिमड़ी, सौराष्ट्र एवं सूरत स्नेही मतावलम्बी लवलीनदास उर्फ श्री ब्रह्मलीनदासजी दारागिया,

मुहल्ला सूरत आदि ने सद्‌गुरु की महिमा को जान-बूझकर घटाया है, जिनके कल्पना प्रसूत लेख देखने पर विद्वानों को यह ज्ञात हो जाएगा।

उपर्युक्त कारणों से बाध्य होकर मुझे सद्‌गुरु कबीर का जीवन-चरित्र लिखना पड़ा है। आज बीस वर्षों से मैं इस प्रयास में लगा रहा कि सही बातों को खोजकर सद्‌गुरु के जीवन-चरित्र को लिखा जाय। अस्तु, यह जीवन-चरित्र मेरी खोज का ही सुपरिणाम है, जिसको मैंने आप लोगों के समक्ष रखा है। मैं यह नहीं कह सकता कि इस कार्य में कहाँ तक सफल हुआ हूँ। इतना तो मैं अवश्य कहूँगा कि इसमें अश्लीलता नहीं है, जो अन्य लेखकों में है।

सद्‌गुरु कबीर का गुणानुवाद करने में मुझे शान्ति उपलब्ध हुई है, क्योंकि वे सत्पुरुष थे। उनके सदाचार को स्मरण करके मुझे ही नहीं प्रत्येक मनुष्य को शान्ति मिल सकती है। सद्‌गुरु ने मानव जाति का बहुत बड़ा उपकार किया है और मानव-जाति अनन्तकाल तक उनका चिर-ॠणी रहेगी। उनका स्मरण भारतीय इतिहास में अमिट है, जिसका स्मरण अहर्निश भारतीय प्रबुद्ध वर्ग करता है। साथ ही यह भी कहना गलत नहीं होगा कि मानव जाति बहुत कृतघ्न होती है और वह सत्पुरुषों के किए हुए कार्य को भूल जाती है। सत्पुरुषों के ज्ञान और ध्यान पर विचार न करके अपने जैसे व्यवहार में उन्हें भी बाँधने लगती है और जिनसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है तथा उनके जन्म कर्म पर विचार करने लगती है एवं सांसारिकता को लेकर उनके गुण-दोषों पर विवेचन करने लग जाती है। जैसे अमुक महापुरुष विवाहित था, वह अमुक जाति का था। अमुक-अमुक उसके लड़के थे, इत्यादि।

भला इन सब बातों से महापुरुषों का क्या प्रयोजन है? सत्य बात तो यह है कि लोग जिस प्रकोटे में अनुबंधित रहते हैं वहीं तक उनकी बुद्धि परि-गमन करती है, क्योंकि तद्‌वृत्त से बाहर जाने में उनकी मेधा शक्ति कुंठित हो जाती है। अतएव हिन्दी एवं अन्य भाषा के समालोचकों ने सद्‌गुरु कबीर को भी उपर्युक्त व्यवहारों की परिकल्पना में बाँधने का जी-तोड़ प्रयास किया है जो उनका सारा प्रयास बिलकुल असंगत है। सद्‌गुरु कबीर के समालोचकों के पास कोई ऐसी सामग्री नहीं है, जो उक्त विषयों की पुष्टि के लिए प्रामाणिक साधन बने। उनके पास तो केवल अनुमान ही प्रमाण है। प्रत्येक विद्वान् उक्त व्यवहार के प्रमाण में केवल सिक्खों के आदि ग्रन्थ का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, जिनका संकलन सिक्ख सम्प्रदाय के पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव ने किया था। विद्वानों के मतानुसार गुरु ग्रन्थ साहब का संकलन काल लगभग वि०

की सतरहवीं शताब्दी का चतुर्थ चरण है, जिसमें अनेक सन्तों की वाणियों का संग्रह है।

उक्त संग्रहकाल सद्‌गुरु कबीर से लगभग सवा सौ वर्ष पीछे कहा जाता है, क्योंकि सद्‌गुरु कबीर गुरु नानकदेव से पहले ही परमधाम को चले गये थे और इधर गुरुनानकदेव की परम्परा में गुरु अर्जुनदेव पाँचवें गुरु हुए हैं। इसलिए यदि आप एक गुरु का काल २५ वर्ष का मानें तो गुरु नानकदेव को छोड़कर पाँचवें गुरु तक १०० वर्ष का काल होता है। इस परिगणना के अनुसार सद्‌गुरु कबीर के १२५ वर्ष के पश्चात् आदि ग्रन्थ का संकलन हुआ है, जिसमें सद्‌गुरु कबीर साहब की भी आंशिक वाणियाँ संकलित हैं।

अब आइए एक-दूसरे ग्रंथ की ओर, जिसका नाम है—'कबीर ग्रन्थावली', जो आज आँख मूंदकर प्रमाण में लायी जा रही है तथा उक्त ग्रन्थावली का काल बहुत पुराना बताया जाता है। यह सद्‌गुरु कबीर के शिष्य बाबा मलूक-दास के द्वारा संग्रह की गई है। इसका संग्रहकाल वि० सं० १५६१ लिखा है। उक्त संग्रह के चौदह वर्ष पश्चात् गुरुदेव कबीर परम धाम को गए। क्योंकि संग्रह की तिथि ग्रंथ के अन्त में दी गई है, जो सही प्रतीत होती है। यद्यपि कुछ आलोचकों ने उक्त तिथि को अशुद्ध सिद्ध करने की कोशिश की है, क्योंकि आलोचकों का यह कार्य होता है कि सत्य को असत्य और असत्य को सत्य बतलाना। समालोचकों का कहना है कि उक्त ग्रंथ की पुष्पिका के अक्षर ग्रंथ की अन्य पंक्तियों के अक्षरों से बड़े हैं तथा दूसरे व्यक्ति ने अंकित किया है। इस विषय में मेरा कहना यह है कि केवल बड़े होने से ही पुष्पिका बाद की नहीं हो जाती है।

मेरे पास सैकड़ों हस्तलेख हैं। प्रायः सभी पर पुष्पिका के अक्षर बड़े लिखे गए हैं। इसका कारण यह है कि पुष्पिका को बड़ी दिखाना ग्रंथ की आयु की ओर संकेत है। इसी कारण उसकी प्रामाणिकता की ओर ध्यान जाता है। इसलिए पुष्पिका के बड़े अक्षरों का होना सार्थक है। यदि बाद में ही कोई लिखा हो तब भी विचार करना होगा कि क्यों पुष्पिका बाद में लिखी गई, क्या उक्त व्यक्ति को वि० सं० १५६१ का ही कोई प्रमाण मिला था, जो वह व्यक्ति गणना करके १५६१ लिख दिया, क्योंकि वह व्यक्ति कबीरपंथी नहीं रहा होगा, जो यह सिद्ध करना चाहता होगा कि कबीर ग्रंथावली कबीर साहब की सही वाणी है, वह जहाँ तक कोई तटस्थ व्यक्ति अवश्य रहा होगा, जो कहीं से सही तिथि प्राप्त करके उक्त तिथि लिखा होगा। यदि वह कबीरपंथी रहा होता तो मान लिया जाता कि साम्प्रदायिकता के मोह में पड़ कर लिख दिया

हो, पर ऐसा नहीं है। मैंने ग्रंथावली के पदों को ध्यानपूर्वक देखा है। उसके पद इतने प्रामाणिक लगते हैं कि उनमें शंका का स्थान नहीं रहता। उस समय के रूप ज्यों के त्यों पाये जाते हैं, भाषाविद् समझते होंगे। इतना जरूर है कि उक्त ग्रंथ की भाषा में राजस्थानी एवं पंजाबी का पुट अवश्य मिलाया गया है, हो सकता है कि उक्त ग्रंथ का संकलनकार्य सद्गुरु कबीर का कोई पंजाबी-राजस्थानी शिष्य ने किया हो, जो अपनी मातृभाषा से बाध्य होकर दोनों भाषाओं में संग्रह कर दिया हो, क्योंकि यह सुना जाता है कि जिस खेमचन्द के लिए श्री मलूकदास जी ने संकलन किया था वह खेमचन्द पश्चिमी पंजाब का रहने वाला था, जो अपनी सुविधा के लिए उक्त भाषाओं में संग्रह करा दिया हो। जो भी हो ग्रंथ बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुझे कहना पड़ेगा कि कबीर साहब का सही सिद्धान्त जानना हो तो कबीर बीजक, कबीर ग्रन्थावली एवं सत्य कबीर के अंग की साखी अवश्य पढ़ें। बिना तीनों को पढ़े कबीर साहब का सही सिद्धान्त नहीं निकल सकता है और कबीर साहब के जीवन के बारे में सूक्ष्म रूप से जानकारी हो जाती है। इन तीनों ग्रंथों के आधार पर साहब की जीवन कथा लिखी जा सकती है, जिनके आधार पर मैंने भी इस जीवन चरित्र का निर्माण किया है।

अब आप सज्जनों को यह बतलाना समीचीन है कि गुरुग्रंथ साहब में जो पद गुरु कबीर के नाम से संकलित हैं वे पद अन्य कबीर ग्रन्थों में हैं कि नहीं ! इस विषय में मैं यह कह सकता हूँ कि वे बहुत से पद कबीर साहब के अन्य ग्रन्थों में रूपान्तर लिए हुए विराजमान हैं। वे पद कबीर बीजक में एवं सत्य कबीर की साखी में या कबीर ग्रन्थावली में संगृहीत हैं। इसी प्रकार से कुछ पद्य शब्दावली में भी पाये जाते हैं और कुछ पद्य ऐसे भी हैं, जो उक्त संगृहीत ग्रन्थों में अनुपलब्ध हैं जिनकी संख्या न्यून है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो पद्य कबीर पंथ में प्रचलित हैं, वे ही सब पद्य गुरुग्रंथ साहब में संकलित हैं। जैसे बीजक का रमैनी प्रकरण तथा ज्ञान चौंतीसा प्रकरण कुछ अंतर लिए ज्यों का त्यों प्रायः प्राप्त हैं और बीजक के ही शब्द प्रकरण के पद्य भी गुरुग्रन्थ साहब में उपलब्ध हैं। इसी प्रकार से सत्य कबीर की साखी के दोहे एवं कबीर ग्रंथावली के कितने गेय पद्य भरे पड़े हैं।

अब आपको यह विचार करना है कि अधिक प्रामाणिक पद्य किस संग्रह में सुरक्षित हैं। अस्तु, यह कहना तो कठिन है कि अमुक संग्रह ज्यों का त्यों है, परंतु काल के आधार पर कुछ कहना भी समीचीन होगा। श्री गुरु कबीर ग्रंथावली का संग्रह काल आदि ग्रंथ के निर्माणकाल से १३९ वर्ष पहले का है।

इसी प्रकार से बीजक का निर्माण काल भक्तमाल के टीकाकार एवं कबीरपंथ के अनुसार गुरु ग्रन्थ साहब के संग्रह काल से १८० वर्ष के लगभग पहले का है, क्योंकि बीजक के पदों को उक्त ग्रन्थ के टीकाकार सद्गुरु कबीर की सोलह वर्ष की अवस्था में ही पहुँचने पर मुखरित बताया है और कबीर पंथी भी यही कहते हैं कि सद्गुरु कबीर बाल्यावस्था में ही बीजक के पदों को बोलते थे, क्योंकि बीजक के पद्य सभी बाद के संग्रहों में मिलते हैं। जैसे कबीर ग्रंथावली में कुछ अंतर लिए हुए रमैनी ज्यों की त्यों है। इसी प्रकार से 'शब्द प्रकरण' के लगभग ४० पद्य ज्यों के त्यों संगृहीत हैं। इसलिए बीजक की प्रामाणिकता सबसे पुरानी लगती है। कुछ नन कबीर पंथी पुराने विद्वान् एवं कुछ नये नन कबीर पंथी बीजक के बारे में संदेह उत्पन्न करते हैं और कहते हैं कि बीजक कबीर साहब का रचा हुआ ग्रंथ नहीं है। यह कबीर साहब के बाद में उनके अनुयायियों द्वारा बनाया गया है, इत्यादि प्रकार की परिकल्पना नन कबीर पंथियों द्वारा हुई है।

इसका कारण यह है कि नन कबीर पंथी जिस अविकसित धर्म में निष्ठा रखते हैं, बीजक उसके अन्धविश्वासों का पर्दाफास करता है और उनकी अनेक प्रकार की मान्यताओं की आलोचना करता है जिससे घबड़ाकर बीजक को अप्रामाणिक कहते हैं।

भाषा विज्ञान के द्वारा कुछ विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि कबीर साहब की सभी रचनाओं से बीजक की संरचना बहुत पुरानी है। बीजक ग्रंथ भोजपुरी भाषा का प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें किसी प्रकार का संमिश्रण नहीं हुआ है। इसकी अपेक्षा कबीर ग्रन्थावली आदि की भाषा में राजस्थानी एवं पञ्जाबी भाषाओं का सम्मिश्रण हो गया है, जिनके कारण उक्त ग्रन्थों में शंका हो सकती है। जो लोग भाषा का परिवर्तन किये होंगे वे लोग पदों में भी परिवर्तन किये होंगे, इसमें सन्देह नहीं। इधर बीजक ज्यों का त्यों सुरक्षित है। श्री नाभादास जी के कथनानुसार बीजक ही प्रामाणिक ग्रन्थ है। जिस क्रम से श्री नाभादास जी ने प्रकरण गिनाये हैं उसी प्रकार से बीजक में प्रकरण हैं भी। वे कहते हैं कि रमैनी, शब्दे, साखी ठीक प्रथम रमैनी प्रकरण है उसके बाद शब्द प्रकरण है और उसके बाद साखी प्रकरण है। इस प्रकार का क्रम न तो कबीर ग्रन्थावली में है और न ही गुरु ग्रन्थ साहब में आये हुए पदों में है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री नाभादास जी के कथनानुसार बीजक को छोड़कर अन्य कोई भी संग्रह नहीं है। मैं यह भी कह सकता हूँ कि श्री नाभादास जी के समय में बीजक को छोड़कर अन्य संगृहीत ग्रन्थ गर्भ

में रहे होंगे या तो वे प्रसिद्ध नहीं हुए होंगे। श्री नाभादास जी के कथनानुसार बीजक ही सटीक बैठता है, अन्य में उतनी मौलिकता नहीं दीखती। इसलिए बीजक सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ है। बीजक की प्रामाणिकता और बढ़ जाती है जब कुछ पहले के नन कबीर पंथियों ने विचार किया है। बहुत पहले किसी नन कबीर पंथी ने बीजक की एक टीका संस्कृत में की थी, जो भग्न रूप में यत्र-तत्र प्राप्त है। उसके बाद पादरी प्रेमचन्द एवं पादरी अहमदशाह आदि विद्वानों ने भी बीजक को प्रामाणिक मान कर टीकाएँ लिखी हैं। सभी बातों पर विचार करने पर बीजक बहुत ही प्रामाणिक ग्रंथ सिद्ध होता है। मैं पहले कह चुका हूँ कि कबीर पंथ में दो शाखाएँ हैं। एक प्राचीन कबीर पंथी दूसरे अर्वाचीन कबीर पंथी। प्राचीन कबीर पंथी वे हैं, जो धर्म सम्प्रदाय से अलग हैं। नवीन कबीर पंथी वे लोग हैं जो धर्म-सम्प्रदाय वाली शाखा को मानते हैं। जिनका प्रधान ग्रन्थ "अनुराग सागर" है। धर्मदासीय लोग कर्मकाण्डी होते हैं। उनकी शिक्षा बीजक एवं कबीर साहब से भिन्न है। वे लोग एक प्रकार के पौराणिक होते हैं। इसलिए उनके महन्तों की शिक्षा कबीर साहब जैसी नहीं होती। इधर प्राचीन कबीरपंथी जो भी कहते हैं, वे कबीर के कथनानुसार चलने की कोशिश भी करते हैं। अर्वाचीन कबीर पंथी महन्तों को देखकर पूरे कबीर पंथी महन्तों को गाली देना प्रलाप मात्र है, तथाकथित कबीर पंथियों को कह सकते हैं, अन्यथा आप की भूल है और अभी आप कबीर पंथ से पूर्णरूपेण अपरिचित हैं।

कुछ लोगों से यह भी कहते सुना जाता है कि कबीर साहब ने कोई सम्प्रदाय नहीं चलाया था, सम्प्रदाय उनके बाद से चला है। सम्प्रदाय किसे कहते हैं ? एक विचार में अनुबंधित का नाम सम्प्रदाय है। सद्गुरु कबीर ने संसार को एक नया परिष्कृत विचार दिया है, जो चिरंतन कटु सत्य है। उस अपने विचार का उन्होंने जीवन पर्यन्त प्रचार किया। जिन लोगों ने उसको माना वही कबीर साहब के अनुयायी बने। कबीर साहब ने स्वयं कहा है कि मेरा वही हो सकता है, जो मेरे कहे हुए मार्ग पर चले। उन्होंने सम्प्रदाय नहीं चलाया। आखिर सम्प्रदाय कौन सा हौवा है जिससे लोग घृणा करते हैं। साम्यवादी सम्प्रदाय है, सामन्तवादी सम्प्रदाय है, इस्लामी सम्प्रदाय है, ईसाई सम्प्रदाय है, नास्तिक सम्प्रदाय है, आस्तिक सम्प्रदाय है। अपने-अपने मत का सभी सम्प्रदायवादी हैं। बिना सम्प्रदाय का कोई भी व्यक्ति जी नहीं सकता है। इसलिए अपने किस्म का सद्गुरु कबीर ने भी सम्प्रदाय खड़ा किया, जिसके मानने वाले आज भी बहुत से लोग हैं। यह कहना अनुचित

नहीं होगा कि सद्गुरु कबीर सम्प्रदायवादी नहीं थे। दुनिया के किसी भी सम्प्रदाय के आचार्यों ने लोगों को जो मार्ग दिया, आज उनके मानने वाले पूर्णरूपेण उनकी शिक्षा पर नहीं हैं। इसका कारण यह है कि अपनी क्षमता के अनुसार ही मनुष्य किसी के विचार को ग्रहण करता है। क्या इस्लामी, बौद्धिस्ट, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि अपने प्रवर्तक के अनुसार हैं ? अगर नहीं हैं तो कबीरपंथी भी कबीर साहब के बताये हुए मार्ग का पूरा अनुसरण कैसे कर सकते हैं ? वे भी अपनी क्षमता के अनुसार ही गुरु आज्ञा का अनुसरण करते हैं। प्रायः देखा गया है कि सदैव उतार-चढ़ाव होता रहता है। इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि कबीरपंथी कबीर साहब के बताये हुए मार्ग पर नहीं चल रहे हैं। बुद्धिमान लोग उपर्युक्त प्रकार की कल्पना नहीं करते, केवल मध्यवर्गीय लोग ही इस प्रकार बेसिर-पैर की बातें करते रहते हैं, जिनका कोई खास महत्त्व नहीं है। इसी प्रकार से लोग पचासों किस्म की निरर्थक शंकाएँ करते रहते हैं जिससे किसी के प्रति आस्था हट जायँ, जो मानव के लिए उत्तम नही है।

इस प्रकार सत्य कबीर का साखी ग्रंथ भी बहुत पुराना है, जो वि० सं० की सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक पूर्ण संगृहीत हो गयी थी, क्योंकि कबीर ग्रंथावली में जितनीं साखियाँ हैं वे सब सत्य कबीर की साखी के दोहे हैं। उसमें एक भी दोहे नये नहीं है। उपर्युक्त विवेचना के अनुसार यह निश्चित हुआ कि गुरुग्रंथ साहब के संग्रह काल से उपर्युक्त संगृहीत ग्रंथ बहुत पहले हो चुके थे।

अब यह देखना है कि सर्वाधिक पद-परिवर्तन किस संग्रह में हुए हैं। यह सत्य कहा जा सकता है जि सर्वाधिक पद-परिवर्तन आदि ग्रंथ में हुए हैं। परिवर्त्तन का दोष[1] कंठस्थ रखने वाले व्यक्तियों का है क्योंकि यह सुना जाता है कि गुरु अर्जुनदेव जब देशाटन कर रहे थे, उस समय के संतों और भक्तों के मुख से सुनकर उन्होंने गुरुदेव कबीर के पदों को संकलित किया था और बाद में उन सुने हुए पदों को आदि ग्रंथ साहब में संगृहीत कर दिए।

आप लोगों को ध्यान देना होगा कि आज का शिक्षित व्यक्ति भी प्रायः कंठस्थ किए हुए पदों का शतशः शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता है। आये दिन काशी में यह चर्चा होती ही रहती है कि वेदमंत्रों का जितना शुद्ध उच्चारण दक्षिणी पंडित करते हैं उतनाशुद्ध उच्चारण उत्तर भारतीय विद्वान् नहीं कर

१. कंठस्थ करने वाले अपनी मातृभाषा के आधार पर कंठस्थ रखते थे। उनके अंदर देशगत भाषा का आना स्वाभाविक है।

पाते, तो भला, जो खँजड़ी पर बजा-बजाकर गाने वाले निरक्षर भट्टाचार्य थे एवं हैं, वे लोग कहाँ तक गुरु कबीर के पदों को शुद्ध रख सकते थे। जिन पदों को सैकड़ों वर्ष से गेय मंडली वाले गोरखपुरी योगी जाति वाले सारंगी बजा-बजाकर गाते थे और आज भी गा रहे हैं, जिनको शुद्ध-अशुद्ध का कोई विचार नहीं रहता।

अतः उक्त गाने वाले भिखमंगों के मुख से सुनकर जो पद्य संग्रह किए गए होंगे भला उन पद्यों की क्या दुर्दशा हुई होगी और कहाँ तक वे पद्य शुद्ध लिखे गए होंगे ? जिसके गाने वाले मगहर का अगहर, काशी का खाँशी और मतलब का मतवल कह देते हैं। उनके मुख से निकला हुआ पद भी लोग से लोई हुआ होगा और कमल से कमाली भी हुआ होगा। इसी प्रकार कमलिनी से कमाली भी हुआ होगा। जो बाद में आख्यायिका रूप ले लिया क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में अहिल्या प्रसंग ज्ञान विवेचनार्थ में हुआ है। बाद में रामायण आदि ग्रन्थों में आख्यायिका का रूप ले लिया है, उक्त ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं, इसमें रंचमात्र संदेह नहीं है। बहुत से पदों में हेर-फेर हुआ है। यह मानी हुई बात है कि जब संग्रह करने वाले के पास कोई दूसरा आधार नहीं रहता है, वह क्या करेगा ? जो सुनेगा उसी को सत्य मानकर संग्रह कर लेगा। उसके बाद के लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए उसी संग्रह को प्रामाणिक मानने लग जाते हैं, जिसमें अधिक संदिग्ध पद हों। सद्गुरु कबीर के पदों की सिक्ख सम्प्रदाय बहुत पवित्र मानता है, जो ठीक भी है और उसे मानना भी चाहिए।

परन्तु मुझे यह देखना है कि जो पद गुरुग्रंथ साहब में गुरुदेव कबीर के संगृहीत हैं वे सब पद उसी रूप में हैं, जिस रूप में गुरुदेव कबीर के मुख से निकले थे या उनका रूप विकृत हो गया है जिससे सिक्ख सम्प्रदाय का कोई लाभ हानि नहीं हैं। परन्तु सद्गुरु कबीर के व्यक्तित्व पर उसका क्या असर पड़ता है यही देखना है ? क्योंकि आज गुरुग्रन्थ साहब के पद सद्गुरु कबीर को अनिश्चित में डाल दिए हैं जो विवाद के विषय बन गये हैं। अतः इस विवाद के समाधान के लिए मुझे पदों की प्रामाणिकता पर ध्यान देना होगा तभी कुछ तथ्य सामने आएँगे। आज के विद्वान् बाद ने संग्रह को अधिक प्रामाणिक इसलिए मानते हैं कि उसकी भाषा अपभ्रंश अधिक है। इसलिए मुझे आदि ग्रन्थों में आए हुए गुरुदेव कबीर के पदों को कसौटी पर कसना पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि गुरु अर्जुनदेव ने यह कहीं भी नहीं लिखा है कि उक्त कबीर साहब के पदों को अमुक संग्रह से लिया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह सब मौखिक सुनकर लिखे गये हैं। इसकी पुष्टि मुझे उस समय और

हो गयी जब मैंने कुछ सिक्ख यात्रियों से पूछा कि गुरु अर्जुनदेव ने कबीर साहब के पदों को कहाँ से लिया था, तो उक्त यात्रियों ने कहा कि देशाटन काल में जब पंचम गुरु निकले थे, तो उसी समय संत-भक्तों के मुख से सुनकर एकत्रित किये थे। इस बात को मुझसे कबीरचौरा में आए दर्शनार्थी यात्रियों ने बताया।

अस्तु, वे भक्त कौन होंगे। वही जो खँजड़ी एवं सारंगी पर गाते थे। क्योंकि यदि कबीर पंथी कोई सद्गुरु कबीर का भक्त होता तो बीजक को क्यों नहीं सुनवाता या लिखवाता ? अतः भक्तों के मुख से सुनकर पंचम गुरु ने कबीर गुरु के पदों का संकलन किया था। यह सुनकर मेरी संदिग्धता और बढ़ गयी और तब मैं संगृहीत ग्रंथों की प्रामाणिकता के अन्वेषण में लग गया। इसके परिणामस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि बीजक सबसे प्रामाणिक संग्रह है। उसके बाद की सत्य कबीर की साखी संग्रह है तथा इसके बाद कबीर ग्रंथावली है। कबीर ग्रंथावली से पीछे को संग्रह श्री धर्मदास जी की शब्दावली है जिसमें से सद्गुरु कबीर के नाम को हटाकर साहब शब्द जोड़ दिया गया है। जैसे जहाँ पर यह था कि 'कहहि कबीर' तो इस स्थान पर "साहब कबीर कहैं समुझाई" कर दिया गया है। इतना ही नहीं उसमें बहुत से पद बाद में बनाकर कबीर साहब का नाम लगा दिये गये हैं इसलिए धर्मदास जी की संगृहीत कही जाने वाली शब्दावली पूर्णरूपेण अप्रमाणिक है, जिसका प्रमाण लेना सर्वथा अनुचित है।

समालोचकों को आदि ग्रंथ में सगृहीत गुरुदेव के पदों को एवं श्री धर्मदास जी के संगृहीत पदों को अन्य पूर्व के बीजक आदि संग्रह ग्रंथों से मिलान करके ही प्रमाण लेना चाहिए, अन्यथा बहुत बड़ा अनर्थ होगा एवं हो भी रहा है। गुरुदेव कबीर को समझने के लिए तथा उनके व्यक्तित्व को जानने के लिए पूर्व के संगृहीत ग्रंथ ही अधिक उपादेय होंगे। इसको यों कहिये कि आज बीजक एवं सत्य कबीर की साखी का वह रूप नहीं रह गया है, जो रूप आज से ४०० वर्ष पहले था। आज बीजक आदि के कलेवर परिवर्त्तित कर दिए गए हैं, जिससे संदेह का होना स्वाभाविक है। कलेवर परिवर्त्तित होने का कारण भाषा और कबीरपंथ का विकास ही है और दूसरा कारण उच्चारण की असमर्थता भी है। क्योंकि पुरानी भाषा के पदों के उच्चारण में अधिक परिश्रम करना पड़ता है जैसे मिला को मिल्या, घाला को घाल्या, चिन्हा को चिन्या आदि में कितना परिश्रम करना पड़ता है।

अतः जो कुछ भी हो, इस परिवर्तन से बहुत बड़ी हानि हुई है, क्योंकि उक्त ग्रंथों की प्राचीनता धूमिल हो गई है, जिसके कारण लोगों को भ्रम हो

गया है कि ये ग्रंथ अर्थात् बीजक एवं सत्य कबीर की साखी तथा धर्मदास की संगृहीत शब्दावली कितना अर्वाचीन है, इसे छिपाया नहीं जा सकता है। उक्त ग्रंथों का रूप ही बतलाता है कि ये ग्रंथ ३५० वर्ष से अधिक के नहीं हैं। अतएव इस प्राचीनता को समाप्त करने के अपराधी पंथ के वे महाशय लोग हैं, जो उक्त ग्रंथों को अपने मनोनुकूल संपादित करके उनके स्वरूप को विकृत बना दिए हैं। अभी वर्तमान में भी कुछ ऐसे सज्जन लेखक एवं सम्पादक हैं, जो राम-नाम के स्थान पर गुरुनाम एवं सत्यनाम रख रहे हैं और धर्म शब्द के स्थान पर धर्मदास आदि बदल रहे हैं। देखिए इनमें कितनी संकीर्ण भावना है, जो सीमातीत प्रतीत होती है।

अतएव उक्त संकीर्णता ही कबीर पंथ के अवरुद्ध तथा विनष्ट होने का कारण है। कुछ एक और कबीरपंथी हैं, जो बीजक को पैतृक भावना से देखते हैं और कहते हैं कि मेरा ही बीजक असली है, जो अभी कल तक वे बीजक का नाम भी नहीं सुनना चाहते थे। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मिथ्याभिमान ही इस कबीरपंथ को रसातल में ले गया। इसमें न तो परस्पर भ्रातृस्नेह है और न ही सबका सिद्धांत ही एक है। संसार के सभी पंथों से अधिक अनेकता इस कबीरपंथ में है। जरा सा आचार्य गद्दी से मतभेद हुआ कि झट उससे अलग होकर अपने को आचार्य घोषित कर दिए। कुछ कबीरपंथियों में पुजाने की भावना अधिक है। इस भावना से ही आज इस पंथ के पचीसों टुकड़े हो गए हैं। आज ये तथाकथित कबीरपंथी सद्गुरु कबीर की वाणियों को तितर-वितर कर दिए हैं। सद्गुरु ईश्वरवादी थे इसमें कोई संदेह नहीं है, परन्तु कबीर साहब के पंथ में एक जीववादी हैं, जो जीव की सत्ता से भिन्न सत्ता नहीं मानते। ये लोग अपने से भिन्न को कबीरपंथी नहीं मानते। इनकी चाल-चलन देखने में तो बड़ी अच्छी लगती है, परन्तु ये लोग बड़े ईर्ष्यालु होते हैं। ये लोग केवल अपने को ही कबीरपंथी मानते हैं। सद्गुरु कबीर ईश्वरवादी थे और ये लोग अनीश्वरवादी हैं। सद्गुरु ने पाँच तत्त्वों का उल्लेख किया है जब कि आधुनिक पारखी चार ही तत्त्व मानते हैं, जो चार्वाकों का अनुगमन मात्र ही है।

दूसरे कबीरपंथियों से ये लोग बड़ा भेद रखते हैं। इसी प्रकार से और भी बहुत सी शाखाएँ हैं, जो अनेक प्रकार की भिन्नता रखती हैं और अपने को अलग आचार्य बनने के लिए बीजक में उलट-फेर करती रहती हैं। अस्तु, इनसे कहीं अधिक शुद्ध पाठ गुरु ग्रंथ साहब में प्रतीत होता है, क्योंकि पंचम गुरु ने जिस प्रकार से गायकों के मुख से सुना था उसी प्रकार से उन पदों को

गुरु ग्रन्थ साहब में संगृहीत कर दिया। चाहे वे पद शुद्ध रहे हों या अशुद्ध रहे हों। उन पदों में उन्होंने उलट-फेर नहीं किए, ऐसा सिक्ख लोग कहते हैं। जो भी हो भाषा अपभ्रंश होने से आज के लेखकों की दृष्टि में प्रामाणिक बना हुआ है। अंतिम संकलन कबीर शब्दावली का है जिसके संग्रहकर्ता श्री धर्मदास जी साहब कहे जाते हैं। परन्तु उक्त शब्दावली का कलेवर इतना परिवर्तित कर दिया गया है कि उसमें यह पता ही नहीं चलता कि कौन पद गुरुदेव कबीर के हैं और कौन से पद बाद के लोगों के हैं ? क्योंकि सद्गुरु कबीर के पद छिपाए नहीं जा सकते हैं। वे पद अपने आप में निराले होते हैं और बाद के लोगों के पद विशेष शास्त्रीयता से ओत-प्रोत होते हैं। शब्दावली में उभयप्रकार के पद हैं। इसलिए संदिग्धता के कारण शब्दावली की प्रामाणिकता समाप्तप्राय है। इसलिए उक्त शब्दावली को प्रमाणस्वरूप मानने के लिये हम प्रस्तुत नहीं हैं। बीजक एवं सत्य कबीर की साखी में केवल पाठ का परिवर्तन हुआ है। पद एवं शब्द—वाक्य ज्यों के त्यों हैं। दोनों को प्रामाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं है। शब्दावली की ही भाँति गुरु ग्रन्थ साहब में आए हुए सद्गुरु के पदों को भी आँख मूंदकर प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसमें भी पद परिवर्तित रूप में संकलित हैं। इसकी भाषा पुरानी अवश्य है, परन्तु पद ज्यों के त्यों नहीं हैं। इसमें कुछ पद ऐसे हैं, जो बिल्कुल अयुक्त प्रतीत होते हैं। जैसे—

"पहले दर्शन मगहर पाए पुनि काशी बसि आई।"

मेरी बहुरिया का धनियाँ नाऊँ ले राखो रमजनिया नाऊँ।
करवत भलो न करवंत देही, काहे करवत दे मारो मोही।
हों बारि मुख फेर प्यारे।
तूँ लोई अँधरी बे पीर,
उपजा पूत कमाल
उनका रोटी हमका चावन
उनको खाट हमको चटाई

आदि प्रकार के पद अनावश्यक प्रतीत होते हैं। आगे और परिवर्तित पदों को देखिए—

"ए वारिक कैसे जोवे रघुराई" —गुरुग्रंथ साहब

यही पद कबीर ग्रन्थावली में—

'ये लड़का कैसे जीवे खुदाई'

इसी प्रकार से दो और पद हैं, जो परीक्षा के समय का कहे जाते हैं, जो गुरु ग्रन्थ में संगृहीत है—

"गंग गुसाइन गहिर गंभीर।
जंजीर बांधि करि खरे कबीर ॥"
मन न डिगै तन काहे को डराइ।
चरन कमल चित रह्यो समाइ॥
गंगा की लहरि मेरी टूटि जंजीर।
मृगछाला पर बैठे कबीर।
कहि कबीर कोऊ संग न साथ।
जल थल राखन है रघुनाथ॥"—गुरु ग्रन्थ साहब

यही पद कबीर ग्रन्थावली में निम्न प्रकार से है—

"मन न डिगै ताथैं तन न डराई।
केवल रांम रहे ल्यौ लाई॥
अनि अथाह जल गहर गंभीर।
बांधि जंजीर जलि बोरे हैं कबीर॥
जल की तरंग उठि कटिहैं जंजीर।
हरि सुमिरत तट बैठे हैं कबीर॥
कहै कबीर मेरे संग न साथ।
जल थल मैं राखैं जगनाथ॥—ग्रन्थावली में।
बाँधी भुजा भिल्ला करि डार्यो।
हस्ती कोपि मूंड माहि मार्यो॥
हस्ती भागि कै चीसा मारे।
या मूरति कै हौ बलि हारे॥
आहि मेरे ठाकुर तुम्हारा जोर।
काजि बकिबो हस्ती तोर॥"—गुरुग्रंथ साहब।
अहो मेरे गोविन्द तुम्हारा जोर।
काजी बकिबा हस्ती तोर॥

कबीर ग्रंथावली में ये पद गुरुग्रंथ वाले पद से बहुत भिन्न हैं। इस प्रकार से अनेक पदों में उक्त प्रकार से परिवर्तन हुआ है, जो एक दूसरे के क्रम से विरुद्ध हैं। इनमें परस्पर मेल नहीं है। इसलिए पहले के संग्रह एवं निर्मित ग्रंथों को ही प्रमाणभूत मानना समीचीन एवं अनिवार्य होगा। जो गुरु मुख से मुखरित पद हैं और वे बहुत लिखे जा चुके हैं। पहले का महत्त्व सर्वथा मान्य होता है। यदि पहले के विद्वान् छान-बीन कर लेख लिखे होते तो आज गुरुवर कबीर के स्वरूप में विकृति नहीं हुई होती। उनका सही स्वरूप सामने आ

गया होता, परन्तु ऐसा न करके पहले के लेखकों ने बड़ी भ्रांति की है, जिसको ठीक करने में बहुत समय लगेगा।

अस्तु, सद्‌गुरु कबीर के स्वरूप को बिगाड़ने का श्रेय सर्वप्रथम कुछ अंग्रेज विद्वानों को है, जिन्होंने मनमाने तौर पर लेखबद्ध करके संदिग्धता प्रगट कर दी है। उन्हीं विद्वानों के लेख आज के लेखकों के लिए प्रमाण बन गए हैं। वर्तमान एवं पहले के जितने भी हिन्दी समालोचक हैं वे सभी अंग्रेजों से प्रभावित हैं। अंग्रेजों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मुस्लिम लेखक हैं, जिन्होंने सद्‌गुरु कबीर के विषय में बहुत सी अनाप-सनाप बातें लिखी हैं। किसी ने यहाँ तक कल्पना की है कि कबीर नाम के ग्यारह व्यक्ति हुए हैं, तो किसी ने सद्‌गुरु को शेखतकी का शिष्य तक कह डाला है। उक्त लेखकों में मौलाना गुलाम सरवर और उनका ग्रन्थ 'खजीन अतुल असाफिया,' 'मोसिनफनी ग्रन्थ,' 'दबिस्ताने मजाहिब' एवं 'आइने अकबरी' आदि कितने ग्रन्थ हैं और उनके लेखक भी अनेक हैं, जो कुछ अन्तर लिए हुए सबका एक ही स्वरूप दिखाई देता है। इसी प्रकार अंग्रेजी के विद्वानों ने भी कुछ बातें लिखी हैं, जिनमें वेस्टकाट साहब को छोड़कर अन्य लेखकों ने कोई विशेष खोजपूर्ण लेख नहीं लिखा है।

केवल वेस्टकाट साहब ऐसे लेखक हैं जिन्होंने अपनी मान्यता के अनुसार अन्वेषण किया है। इनके अतिरिक्त 'की' साहब, डॉ० मोहन सिंह, मेकालिफ साहब, विल्सन साहब, फर्कुहर, इलियट, ग्रियर्सन, रायदत्त और भण्डारकर आदि विद्वानों ने अपनी बुद्धि के अनुरूप कुछ न कुछ तथ्य सामने रखे हैं। चाहे वे तथ्य हमारे अनुकूल हों या प्रतिकूल। परन्तु उक्त विद्वानों के लेख प्रशंसनीय अवश्य हैं, जो हमें जगा रहे हैं कि तुम भी कुछ अन्वेषण करो। इसी प्रकार हिन्दी भाषा के अनेक विद्वानों ने भी सद्‌गुरु कबीर पर अपनी विचार-धारा के अनुसार विस्तृत व्याख्या की है और अन्त में यह कहना भी पड़ेगा कि हिन्दी लेखकों के समान किसी अन्य भाषा के विद्वानों ने खोजपूर्ण लेख नहीं लिखे हैं। हिन्दी लेखकों को अन्वेषण अग्रणी कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि इनके लेख बहुत अच्छे हैं। उक्त लेखक विद्वानों में कुछ प्रमुख मनीषियों के नाम इस प्रकार हैं—

सर्वश्री पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ० रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० श्यामसुन्दरदास, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पं० केदारनाथ द्विवेदी, डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी और मिश्र बन्धु, आप लोग सद्‌गुरु कबीर विषयक लेखों के महान् लेखकों में से हैं। इसलिए इनके लेख पढ़ने योग्य हैं। उपर्युक्त लेखकों

के लेखों से कबीर पंथियों की दृष्टि खुलनी चाहिए। निरर्थक बड़े-बड़े मठों को लेकर भूमिभार बने हुए हैं, जो आजतक गुरुदेव कबीर की तरफ से उदास बैठे हुए हैं। उपर्युक्त लेखकों के अतिरिक्त हिन्दी के और भी सैंकड़ों लेखक हैं जिन्होंने कबीर साहित्य पर कुछ न कुछ विवेचन किए हैं। यहाँ पर उनका नाम और उनके लेख देने में प्रस्तावना का कलेवर बहुत बढ़ जाएगा। यहाँ दिग्दर्शन मात्र चर्चा करनी है। सम्भव हो सकेगा तो कुछ के विचार तथा नामों की चर्चा प्रसंगवशात् हो जायेगी।

सद्गुरु के ऊपर पंथ की दृष्टि से जो आक्षेप समझा जाता है, उन्हीं सब बातों पर विचार करना है कि उक्त विचारकों के विचार कहाँ तक सही हैं और हमारा मत क्या है? जिसको हम परंपरया मानते चले आ रहे हैं। हमारा वह मत कहाँ तक समीचीन है। किसी भी मत की पुष्टि के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है। प्रमाण दो प्रकार के होते हैं—अन्तः प्रमाण और बाह्य प्रमाण। ये दोनों प्रमाण हमारे मत का कहाँ तक साथ देते हैं, यह हमें देखना है।

अनेक प्रश्नों पर विचार

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से पाठक-वृन्द परिचित हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक तथा उच्चकोटि के समालोचक के रूप में वे लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास में बहुत से सन्त महात्माओं के बारे में विहंगावलोकन किया है—जीवन परिचय की झलक दिया है। उसी क्रम में उन्होंने सद्गुरु कबीर के विषय में भी कुछ चर्चा की है, जिसके अध्ययन से लगता है कि आचार्य शुक्ल जी सद्गुरु कबीर के जीवन दर्शन, कबीर पंथ, कबीर **साहित्य विषयक-ग्रंथ** तथा कबीर साहित्य विषयक वास्तविक विचारों से पूर्णतः अवगत नहीं हैं, क्योंकि जो भी उल्टी-सीधी-बातें उन्होंने लिखी हैं, वे सब किसी अभड़–अनभिज्ञ कबीर विषयक लेखों से, जो सर्वथा शून्य व्यक्ति से सुनी गयी कबीर पंथ विषयक बेसिर-पैर की बातों का परिणाम है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर मतानुयायी विज्ञ पुरुषों से यदि पूछ-ताछ कर तत्सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की होती, तो उनके कबीर विषयक लेख भ्रामक नहीं होते। आचार्य शुक्ल रूढ़िग्रस्तता के कारण उद्भट विद्वान होते हुए भी कुत्सित जाति-पाँति, संकुचित सीमा से परे परिलक्षित नहीं होते। सद्गुरु कबीर के प्रति उनके मानस मंदिर में निम्न प्रकार की भावना झलकती है। वैसे सूक्ष्मता से देखने से लगता है कि कबीर साहब के प्रति उनकी श्रद्धा एक

दूसरे रूप में परिलक्षित होती है, परन्तु उस पर पानी फिर जाता है जब वे धर्मदास जी को कबीर साहब का समसामयिक सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं[1]। धर्मदास जी अर्थात् धर्म-सम्प्रदाय के आचार्य, जिनका असली नाम जुड़ावनदास था, जो धर्म-सम्प्रदाय का अगुआ होने के कारण धर्मदास कहलाता था, कबीर साहब के बहुत पीछे हुआ था, जिसके विषय में अनेक विद्वानों ने चर्चा की है, जिनका उल्लेख मेरे धर्मदास प्रसंग में हुआ है। ऐसा लगता है, कि आचार्य शुक्ल ने पूरी तरह से खोज-बीन किये बिना ही निकर्षों से सुदृढ़ आधार के अभाव में सुनी-सुनायी अयुक्ति युक्त मतों के लेख निबद्ध किए हैं। आपत्तिजनक स्थलों का यथार्थ रूप पूर्वोक्त स्थान पर वर्णित है। अतः उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

किसी वस्तु की सिद्धि के लिए या आरोपण करने के लिए साक्ष्यों की जरूरत पड़ती है। बिना साक्षी-प्रमाण के कोई वस्तु सिद्ध नहीं की जा सकती, जैसे डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सद्गुरु कबीर को जुगी जाति का सिद्ध करने के लिए आकाश-पाताल एक कर डाला है, किन्तु सद्गुरु कबीर जुगी जाति सिद्ध होने से दूर ही रहे। जुगी जाति भ्रष्ट नाथ पंथियों के द्वारा उत्पन्न हुई है, जो नाथ पुनः गृहस्थ हो गये। आखिर उनकी पूर्व जाति भी नष्ट हो चुकी थी जिससे नाथ कहलाए। अब नाथ से उत्पन्न संतति क्या कही जाएगी? स्मरण रहे महात्मा गोरखनाथ को जोगी गोरखनाथ के नाम से भी पुकारा जाता है। उनके मतावलंबी होने के कारण नाथ लोग भी जोगी कहलाते हैं। अतः भ्रष्ट नाथों के द्वारा एक नयी जुगी जाति की उत्पत्ति हुई है। जैसे बिहार, उत्तर प्रदेश आदि प्रांतों में दसनामी संन्यासियों द्वारा गोसाईं या अतीथ जाति का उद्भव हुआ, जो गिरि, पुरी, भारती आदि नामों से देश में विख्यात हैं जिनके विषय में विद्वत्समाज खूब अच्छी तरह से परिचित है। इन्हीं भ्रष्ट जातियों में आचार्य द्विवेदी जी ने सद्गुरु कबीर को भी सिद्ध करने का जी तोड़ प्रयास किया है, जो बिल्कुल मनगढ़न्त, परिकल्पित, अनुमानाधारित विचार है। सद्गुरु कबीर ने स्वयं कोरी, जुलाहा शब्दों का प्रयोग किया है जिससे उनकी

१—धर्मदास कबीर के समकालीन नहीं सिद्ध किए जा सकते। अतः उनके उल्लेखों को महत्त्व देना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। उन्होंने मथुरा के जिन्दा फकीर की चर्चा की है, उसे कल्पना के आधार पर कबीर का अवतार मान लिया हैं।''

—क० बा० सू०, डॉ० पारसनाथ तिवारी, पृ० सं० २९।

जाति स्वयं स्पष्ट हो जाती है। जुगी जाति का नाम अपने प्रति उन्होंने कहीं भी नहीं लिया है। केवल उनके कुछ ऐसे पद हैं, जो नाथों के पदों से मिलते-जुलते हैं जिनके आधार पर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने उन्हें जुगी जाति सिद्ध करने की चेष्टा की है। सद्‌गुरु कबीर का सिद्धान्त क्या है ? सिद्धान्त के विषय में जो कुछ कहा जाय इसमें मुझे बोलने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि "मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना" के अनुसार कुछ न कुछ लोग निश्चित करते ही हैं। वैसे डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अन्य कबीर विषयक लेख उत्कृष्ट और महान् हैं।

अब कोरी जाति पर विचार करना है। संस्कृत में उक्त शब्द तंतुवाय या कुविंद के रूप में पाया जाता है, जिसका अर्थ होता है सूतकातने वाली या कपड़ा बुनने वाली जाति। तंतुवाय का विकृत रूप तंतुवा हो गया है जिसे बिहार में ताँतों, तंतवा, ताँती कहते हैं। उसी प्रकार से संयुक्त प्रांत में कुविंद से बिगड़कर कोरी के रूप में उद्‌धृत हुआ। इसी प्रकार से मेरठ आदि जिलों में जुलाहा भी कहा जाता है एवं इसी क्रम में पंजाब आदि प्रांतों में भी जुलाहा कहते हैं, जो अभी हिन्दू के रूप में मिलते हैं। ये सब नाम केवल कपड़ा बुनने के ही कारण पड़े हैं। यह जाति आर्य जाति की एक शाखा थी, जो कलाकार होती थी। इसके अनेक प्रमाण हैं, जो स्थानाभाव के कारण दिए नहीं जा सकते। इतिहासविज्ञों को सब ज्ञात है। कोरी जाति एक श्रेष्ठ जाति हैं। यह वैष्णव के रूप में सर्वत्र पायी जाती है। किसी समय में **शाक्यवंशी क्षत्रियों से** निकलकर विशेष कलाकार होने के कारण अपने को उपर्युक्त नामों से विभूषित करने लगी। कालांतर में उक्त टुकड़ी धर्म निरपेक्ष के रूप में भी सामने आयी। शायद इसी कारण से अनेक प्रलोभनों को दिखलाकर विशेष कलाकार होने के कारण उन्हें इस्लामियों ने अपने धर्म में परिणत कर लिया हो। भारत में सर्वाधिक कोरी जाति ही मुसलमानी धर्मों को ग्रहण किया है, जिसका उल्लेख मूल "जीवन-चरित्र" में भी हुआ है। इस्लाम का कोरियों को मुसलमान बनाने का कारण यह था कि भारत में यह एक कलाकार व्यावसायिक जाति तथा शक्तिशाली समाज था, जो किसी धर्म से विशेष संपर्क नहीं रखता था। हिंदू धर्म में में कुछ आडम्बरों के कारण अधिकांश तंतुवाय लोग इस्लाम में चले गए। फलतः हिंदू जाति एवं भारत की बहुत बड़ी क्षति हुई, जिसकी पूर्ति होती नहीं दीखती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सद्‌गुरु कबीर एक आर्य जाति में पालित हुए थे, जो कुछ पहले से इस्लाम धर्म को स्वीकार कर चुकी थी।

इसी प्रकार से कबीर के साथ न्याय के नाम पर मिश्रबन्धुओं ने अन्याय का काम किया है। नीरू-नीमा का औरस पुत्र बतलाने में आपका ही हाथ रहा

है। वैसे आपने सद्गुरु कबीर को नवरत्नों में लिखकर सामाजिक दृष्टि से महान काम किया है, किन्तु मूलतः मुसलमान सिद्ध करने के लिए आपका प्रयास बिलकुल असफल रहा है। यद्यपि पूर्व के कुछ लेखक रविदास जी आदि कई एक ऐसे हैं, जिन्होंने आपके कुल को मुसलमान लिखा, किन्तु इसका यह कारण नहीं हो सकता कि सद्गुरु कबीर मुसलमान थे। क्योंकि भगवान कृष्ण यादवों के यहाँ पालित-पोषित हुए थे, परन्तु वे यादव क्षत्रिय ही लिखे गए हैं। स्मरण रहे कि कबीर पंथ में पंथ का भार अधिक निहंग साधुओं पर ही है, जो केवल सद्गुरु कबीर की वाणियों का ही पठन-पाठन तथा आत्मचिन्तन करके जन्म-मरण की बेड़ियों से छुटकारा चाहते हैं। इन लोगों ने सद्गुरु कबीर का पूर्णरूपेण शतशः जीवन वृत्त लिखने का कोई प्रयत्न नहीं किया। प्रमुखतः ये लोग उनके चमत्कारों का ही उल्लेख कर पद के रूप में तथा उनकी वाणी वचनों का पाठ करते रहे हैं। रविदास जी एवं अनंतदास जी तथा कवि चण्ड दास आदि पूर्व के अन्य लेखकों का इसी प्रकार का कथन समझना चाहिए जैसे भगवान् श्रीकृष्ण के कुछ प्रेमी लेखकों ने भावविभोर होकर नन्द का नन्दन तक लिख डाला है। क्या सचमुच भगवान् कृष्ण नन्द गोप के नन्दन थे या देवकी के सुत थे। इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर को भी समझना चाहिये। वे न जाति के कोरी थे और न तो मुसलमान धर्म में दीक्षित ही थे, केवल कोरी के यहाँ पालित-पोषित होने के कारण ही उन्होंने अपने को जुलाहा आदि नामों से सम्बोधित किया है। वे तो स्वयंभू प्रकट पुरुष अनंत जन्म के जोगी थे। उनके विषयों में उपर्युक्त जाति, धर्म में बाँधने का प्रयत्न करना अदूरदर्शिता तथा अपूर्ण खोजों का फल है। इसी प्रकार डा० रामकुमार वर्मा ने भी कम कल्पना नहीं की है। आप श्री का सारा प्रयत्न सद्गुरु कबीर के दो स्त्रियों का होना सिद्ध करना रहा है, जो आपकी मनोमालिन्य युक्त बुद्धि एवं अपूर्ण खोजों का फल है। पहले ही लिखा जा चुका है कि आदि ग्रंथ में सद्गुरु कबीर के नाम से जो पद हैं, उनमें से बहुत से विकृत एवं अनावश्यक पद संगृहीत हैं, जिनके अर्थ ठीक से नहीं लगते। किसी भी वाक्य के तीन प्रकार के अर्थ लगाए जाते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक, परन्तु गुरु ग्रन्थ साहब में सद्गुरु कबीर के कुछ पदों का तीन अर्थों में से कोई भी अर्थ ठीक-ठीक नहीं लगता।

मैं डा० रामकुमार वर्मा से पूछना चाहता हूँ कि क्या सद्गुरु कबीर अपनी आत्मकथा लिखने बैठे थे? यदि ऐसा होता तो महात्मा गाँधी की भाँति उन्होंने भी अपनी आद्योपान्त जीवनी लिखी होती, किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता कि पुस्तक किसी और विषय की हो और देखा कुछ और जाय। यदि वेदों में कोई

किसी ऋषियों का जीवन चरित्र ढूंढ़ेगा, तो क्या उसमें ऋषियों का संपूर्ण जीवन चरित्र प्राप्त हो सकेगा ? इसी तरह कवीर वीजक में कवीर का जीवन चरित्र ढूंढ़ने वाले को क्या उपलब्ध होगा। कवीर के समक्ष जो तथ्य थे, उसका ही उल्लेख उन्होंने किया है। उन्होंने अपने को जुलाहा एवं काशी का रहने-वाला तथा मगहर का उल्लेख किया है। उनके जीवन से संवंधित अन्य बातों की जिक्र कहीं नहीं मिलती, किन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने अपनी कल्पना के आधार पर उन्हें पूरे पारिवारिक संबंध में अनुवंधित कर डाला है। यहाँ तक कि उन्होंने कवीर साहव के पास दो स्त्रियों का होना भी लिख डाला है। उन्होंने कमाल, निहाल नामक दो पुत्र एवं कमाली, निहाली नामक दो पुत्रियों का उल्लेख भी किया है। भला इन महाशय से मैं पूछना चाहता हूँ कि इन्होंने इतनी झूठी कल्पना क्यों कर डाली। मुझे तो यही लगता है कि आप श्री त्यागाश्रमी या गृहत्यागी साधुओं को नितान्त अनावश्यक समझते हैं। तभी तो एक वाल ब्रह्मचारी महान् सन्त को गृहस्वामी सिद्ध करने में आपने सारी शक्ति लगा डाली है। आपका यही प्रयत्न रहा है कि कवीर भी हमारे जैसे बाल-बच्चे वाले व्यक्ति थे। आप श्री के पास उपर्युक्त बातों को सिद्ध करने के लिए कोई ठोस प्रमाण नहीं है। केवल गुरु ग्रन्थ साहव में सद्गुरु कवीर के नाम पर अनावश्यक पदों को छोड़कर और कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत करने में आप सदा असमर्थ हैं जबकि हम गुरुग्रन्थ साहव के पूरे पदों को असंदिग्धता से नहीं देखते हैं। बहुत से पद ऐसे हैं जिनका दिग्दर्शन मैं पहले ही कर चुका हूँ और उन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

मेरी बहुरिया का धनिया नाऊ। ले राख्यो रामजनिया नाऊ॥
तूं लोई अँधरी बे पीर। इन मुड़ियन भजि शरण कवीर॥
पहली कुजाती कुरूप कुलक्षनी। अबकी सुजाती सुरूप सुलक्षनी॥
करवट भलो न करवंट देही। काहे करवट दे मारो मोही॥

साखी—

१—बूड़ा वंश कबोर का, उपजै पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छाड़िकै घर ले आया माल॥
२—नारी तो हमहू किया, पाया नहीं विचार।
जब जाना तब परिहरो, नारी बड़ी विकार॥
पिता हमारे बड़ े गोसाई जिन पितहिं वलि हम जाई।
बाप दिलासा हमरो कीन्हा॥

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर ही श्री वर्माजी ने सद्गुरु कबीर को पारिवारिक संबंध वाला बताया है। साखी २—कबीर साहब की न होकर उनके शिष्य श्रीरामदास जी की कही जाती है, क्योंकि पुरानी पाण्डुलिपियों में इस पद का दर्शन तक नहीं मिलता है। श्री रामदास जी पहले गृहाश्रमी थे और उन्होंने त्यागाश्रमी होने के पश्चात् कबीर साखी संग्रह करते समय उक्त पद बनाकर जोड़ दिया था, जो भूल से कबीर साहब का पद कहा जाने लगा है। उक्त पद सद्गुरु कबीर के मूल ग्रन्थ में होने के कारण अपने अर्थ की सिद्धि के लिए समालोचक समाज कबीर साहब के पारिवारिक जीवन के रूप में अर्थ निकालता है, जिसका अर्थ आध्यात्मिक भी हो सकता है।

वर्मा जी की एक कल्पना और है कि कबीर की एक स्त्री वेश्या थी, जिसका नाम धनियाँ था जिसे कबीर साहब रमजनियाँ कह कर पुकारते थे। पहली का नाम लोई था, जो कुरूप एवं बदचलना थी। वह सद्गुरु कबीर के कथनानुसार नहीं चलती थी, जिससे उन्होंने उसे त्याग कर दिया था, जिससे वे सदा असन्तुष्ट रहा करते थे। पाठकों को विचार करना है कि जो पंक्तियाँ ऊपर लिखी गयी हैं क्या वे सद्गुरु कबीर की हो सकती हैं ? उनमें से निम्नोक्त पंक्ति का विचार किया जा रहा है—

तू लोई अँधरी बेपीर। इन मुड़ियन भजि सरन कबीर॥

उपर्युक्त पद गुरुग्रंथ साहब में कबीर साहब के नाम से आया है। भला आप सज्जन विचारें कि लोई से कौन आदमी कह रहा है कि—

"इन मुड़ियन भजि सरन कबीर॥

उक्त बात को भला कबीर साहब लोई से कैसे कह सकते थे कि—ये साधु लोग मेरे शरण में हैं ?

उपर्युक्त पद से यही आशय निकल रहा है कि कोई दूसरा ही व्यक्ति कह रहा है कि—ये साधु लोग कबीर के शरण में हैं। क्योंकि संसार का कोई भी व्यक्ति नहीं कह सकता कि मैं किसी का जीवनदाता हूँ। जो अपने को स्वयं दासों का दास कहता है वह कभी यह कह सकता है कि मैं इन साधुओं का शरणदाता हूँ। सद्गुरु कबीर के बहुत से ऐसे पद हैं, जो प्रेमिका तथा प्रेमी के रूप में मिलते हैं, जैसे—

मैं बउरी डूबन डरी
रही किनारे बैठि,
अपने सैंया को बाँधू पाट,

माइ मोर मनुसा अति रे सुजान,
धान[1] कुटि-कुटि करत बिहान
सैंया बोलावे न जैहौं ससुरें
दुलहिनि गावहु मंगलाचार
हम घर आये राजा राम भरतार ॥

इस प्रकार के सद्गुरु के बहुत से ऐसे पद हैं जिनसे मात्र यही अर्थ निकल सकता है कि वे स्त्री थे। मैं डा० रामकुमार वर्मा से पूछता हूँ कि क्या सद्गुरु कबीर के इन पदों के अर्थ के अनुसार वे स्त्री थे या इनका कुछ और भी अर्थ है? यदि उक्त पदों का अर्थ आध्यात्मिक अर्थों में लेकर भक्त को पत्नी और भगवान को पति बनाना चाहते हैं, तो क्या गुरु ग्रन्थ साहब में आए पदों का अर्थ उपर्युक्त प्रकार के पदों के अर्थों की भाँति नहीं हो सकता है? यदि कबीर की अन्य वाणियों की ही भाँति गुरु ग्रन्थ के भी पदों का अर्थ वर्मा जी लेते हैं, तो इनकी दशा उसी हस्ती की भाँति होगी, जो विना जल के दलदल में फँस-कर अपनी इह लीला को समाप्त कर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सद्गुरु कबीर की वाणी का सही अर्थ न समझकर अपने सारे प्रयास को श्री वर्मा ने धूमिल बना दिया है। उपर्युक्त पदों के कारण इनका लेख पूर्णरूपेण अप्रामाणिक हो गया है। इनका लेख तो प्रामाणिक तभी हो सकता है जब वे कबीर साहब को स्त्री मानें, अन्यथा इनके लेख पर बड़ी हँसी आती है कि कबीर के अर्थ को न समझकर पूर्णरूपेण कपोल कल्पित, मनगढ़न्त लेख सद्गुरु के बारे में अंकन किया है। श्री वर्मा जी को मेरा यह सुझाव है कि श्री कबीर वाणी का पुनरावलोकन करें और तब उनकी जीवनी पर लेखनी उठाएँ। मैं वर्माजी की चतुर लेखनी से अवगत हो गया हूँ, परन्तु शिष्टता के नाते श्रुति कटु आक्षेप नहीं करना चाहता, अन्यथा उनके जैसे लेखकों की एक-एक पंक्तियों का उसी प्रकार से उत्तर दिया जाता जिस रूप में उनके लेख लिखे गये हैं कि पुनः भयंकर लेखों को, जो समाज के लिए अहितकर होता है, उसके लिए कलम नहीं उठाते।

श्री वर्मा जी सभ्य एवं परिश्रमी व्यक्ति हैं। पर अभी तक कबीर साहब के विषय में जहाँ तक मेरा मत है पूर्णरूपेण उनका खोज अधूरा है। वर्मा जी को चाहिए कि किसी वृद्ध कबीर पंथी से, जो कबीर साहब को वाणियों का मर्मज्ञ हो, उससे कुछ दिनों तक अर्थ समझने की कोशिश करें। इसके पश्चात् ही वे कबीर साहब की सेवा कर सकते हैं। केवल घृत एवं दुग्ध से स्नान करने

१. पाठान्तर—चंध।

से बुद्धि दूरदर्शी नहीं बनती। बुद्धि तो दूरदर्शी तब बनती है जबकि लौकिक परंपरा के अनुसार बड़े-वृद्धों का संग किया जाय। संसार के सभी मनीषी जानते हैं कि प्रत्येक सम्प्रदाय की कुछ अपनी-अपनी शब्दावलियाँ होती हैं, जिनको विना उनके मजहबियों से पढ़े अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उदाहरणार्थ अपर वृहस्पति कुमारिल भट्ट को भी जैनियों की शब्दावलियों को पढ़कर ही जैनियों से निपटना पड़ा था। इस प्रकार से ही डा० वर्मा को भी चाहिये कि कवीरपंथियों से भी कबीर के शब्दावलियों को समझें। उसके बाद ही कवीर पंथ से निपटने का यत्न करें (निपटने का तात्पर्य कवीर वाणी को समझने से है, शास्त्रार्थ से नहीं)।

मुझको यह कहने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है कि उपर्युक्त प्रकार के जितने भी पद कवीर साहव के नाम से हैं वे किसी अदूरदर्शी महापुरुष के पद हैं, जिनके रचने का तात्पर्य यही हो सकता है कि कवीर भी एक वाल-बच्चा वाला संसारी प्राणी था, जिसका अन्धानुकरण डा० रामकुमार वर्मा जैसे व्यक्ति ने भी किया है। मेरा किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं है, परन्तु यह निवेदन अवश्य है कि किसी महापुरुष का जीवनवृत्त लिखते समय पूरी जानकारी करनी चाहिए। कवीर साहव शादी सुदा हों या न हों इससे उनका कोई महत्त्व नहीं घटता है, किन्तु उनके विषय में अनर्गल बातें लिखना समुचित नहीं। इसी प्रकार से और भी हिन्दी के कई एक लेखक विद्वान हैं, जिन्होंने उपर्युक्त विषय के लेखों का अनुशरण डा० रामकुमार वर्मा से ही किया है। वे सबके सब वर्मा जी के ही पदचिह्नों पर चलने वाले हैं, जिनके नाम देने पर ग्रन्थ का आकार अत्यधिक स्थूल हो जाएगा। इसलिए सबका नाम न देकर कुछ ही विद्वानों का उल्लेख किया गया है। मुझे डा० पीताम्बर-दत्त वड़थ्वाल एवं अयोध्यासिंह उपाध्याय का भी नाम लेना पड़ा है। डा० वड़थ्वाल के कई एक आलोचकों ने उनकी आलोचना का उत्तर दिया है। अतः उनके सद्गुरु कवीर विषयक लेखों के बारे में मुझे कुछ कहना नहीं है। तद्रूप ही अयोध्यासिंह उपाध्याय की आलोचना का उत्तर पंथ के उद्भट विद्वान् श्री पण्डित विचारदास शास्त्री साहव ने दिया है जिसको पढ़कर उपाध्याय जी साहस विहीन होकर सद्गुरु कवीर पर उन्होंने फिर कोई लेखनी नहीं उठायी। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय का कोई अपना खास लेख नहीं है। वे केवल पादरी वेस्टकाट और अन्य अंग्रेज लेखक महोदयों के एवं आदि ग्रन्थ के भक्त मात्र हैं। अयोध्यासिंह ने कुछ ऐसी आख्यायिकाओं की कल्पना की है, जो पूर्ण रूपेण मनगढ़न्त मात्र हैं, जिनका उल्लेख कहीं अन्यत्र नहीं मिलता।

इसी प्रकार से जितने भी लेख पढ़ने को मिले, चाहे वे शोध के हों या स्वतन्त्र, पर सबके सब एक दूसरे के भक्त हैं। इनमें से कुछ एक स्वतन्त्र एवं श्रद्धा के पात्र भी हैं पर वे भी अपूर्ण खोजों के कारण संशय के शिकार बन गए हैं। श्रद्धा-पात्रों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, श्री केदारनाथ द्विवेदी, डा० सरनाम सिंह शर्मा, श्री पुरुषोत्तम लाल, एम० ए०, डा० श्यामसुन्दरदास, बी० ए०, श्री गोविन्द त्रिगुणायत, डा० रामरतन भटनागर, श्री माताप्रसाद गुप्त, श्री रामजी बाल सहायक, डा० जयदेव सिंह, आचार्य क्षिति मोहन सेन, डा० पारसनाथ तिवारी, श्री सावित्री शुक्ला, डा० माया अग्रवाल इत्यादि प्रकार के और भी अनेक लेखक विद्वान् हैं जिनका नाम स्थानाभाव के कारण नहीं दिया जा सका है। किन्तु उपर्युक्त श्रद्धा-पात्रों के लेख सबके सब हमें मान्य नहीं हैं। क्योंकि हमारी मान्यता कुछ और है। उपर्युक्त विद्वानों के बहुतांश लेख सद्गुरु कबीर की वाणी के विपरीत होने के कारण त्याज्य लिखना पड़ा है।

अतः लेखक-वृन्दों से यही निवेदन है कि सद्गुरु कबीर के विषय में जो भी लेख लिखे पूर्ण खोज करने के बाद एवं कबीरपंथ के लोगों से जानकारी प्राप्त करके ही लिखें ताकि भावी पीढ़ी महापुरुष के बारे में संदेह और अश्रद्धा न करे, क्योंकि संसार का कोई भी महापुरुष सर्वहिताय, सर्वसुखाय एवं सर्वोदय के लिए होता है। अतः निष्पक्ष होकर उनकी शिक्षा समाज के सामने प्रस्तुत करना मनीषियों का कर्त्तव्य होता है, जिससे जनता जनार्दन लाभान्वित हो। विद्वानों को एक बात का और ध्यान देना चाहिए कि "डा० रामकुमार वर्मा के लेख को अप्रामाणिक तथ्यहीन समझें।" क्योंकि ऐसे अश्लीलतापूर्ण लेख लिखकर जनसाधारण में अश्रद्धा उत्पन्न करना, एक महापुरुष के चरित्र को कलंकित करना है। डा० रामकुमार वर्मा जैसे व्यक्तियों का ही काम है कि भयंकर लेख लिखकर समाज एवं कबीर पंथ का बहुत बड़ा अहित किया है। इनके पूर्व के लेखक पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय भी इन्हीं की कोटि में आते हैं, जिनका नाम बार-बार लिया गया है। कबीर पंथ ही एक ऐसा पंथ है जिसके विरोध में अनेक प्रकार के लेख लिखे गये हैं। यदि किसी हिंसक सम्प्रदाय के महापुरुषों के उक्त प्रकार के लेखों द्वारा आक्षेप किया गया होता तो शायद इन लोगों को प्राणों से भी वंचित होना पड़ता। इसके अनेक उदाहरण हैं, जो नहीं दिए जा सकते हैं, किन्तु कबीर पंथ ही एक सहिष्णु पंथ है जो कबीर साहब के निम्नोक्त दोहे के अनुसार चलने का प्रयत्न करता है।

जो तोको काँटा बोये, ताहि तु बोओ फूल।
तोकों फूल को फूल है, वाको है त्रिशूल॥

जो तुमको गाली देवे, ताहि जवाब न दीजै।
गम अमृत तेरे पास घोरि क्यों न पीजै॥

आवत गाली एक है, उलटत होत अनेक।
कहैं कबीर न उल्टिए, रही एक की एक॥ —साखी।

सद्गुरु कबीर के उपदेशानुसार ही हम लोग किसी के ऊपर आक्षेप नहीं करना चाहते, अन्यथा अपने को चतुर खिलाड़ी बनने वाले डा० रामकुमार वर्मा जैसे लोग कबीर साहब के व्यक्तित्व को छिन्न-भिन्न करने का दुस्साहस एवं षड़यंत्र नहीं करते। आलोचना की शैली मधुर होनी चाहिए। मुझे यह पता नहीं चलता कि अयोध्या सिंह उपाध्याय एवं डा० रामकुमार वर्मा और उनके भक्तगण शादी (विवाह) पर ही लेख लिखने का क्यों इतना जोर देते हैं, क्या सद्गुरु कबीर की शादी (विवाह) लिखने से ही मुक्ति मिल जाएगी ? आलोचना के लिए सद्गुरु कबीर की वाणियों में अनेक विषय हैं। जैसे अद्वैतवाद, द्वैतवाद, भौतिकवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, जिनकी झलक सद्गुरु कबीर की वाणियों में यत्र-तत्र पाया जाता है। अस्तु, उपर्युक्त विषयों पर ही आलोचना करना या विवेचन करना सर्व श्रेयस्कर होता। इस विषय पर भी कुछ लोगों ने लिखा है, परन्तु कुछ कामातुर लोग कामान्धता के कारण चार स्त्रियाँ या दो स्त्रियाँ सद्गुरु कबीर को भी लिखकर अपनी ही कोटि में उन्हें बाँधने का जी तोड़ प्रयास किया है। यह बिल्कुल अनर्गल प्रमाद, विभ्रमित-बुद्धि-वासना-जाल के कारण ही इस प्रकार के दोष सद्गुरु कबीर पर लगाए गए हैं। जब सद्गुरु कबीर स्वयं कहते हैं कि—

"सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी ओढ़ कै मैली कीन्हीं।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों कि त्यों धरि दीन्हीं॥

इस पद का भाव यह है कि मानव शरीर रूपी चादर प्राप्त कर, सुर, नर, मुनि और औलिया, फकीर सभी ने काम-क्रोधरूपी दाग लगाकर मैली कर दी और मैंने उसी रूप में रख दिया जिस रूप में मिली थी। उसमें कोई विकृति नहीं आने दी। अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी दाग नहीं लगने दिया। इस दशा में शादी-विवाह वाला कहा जाय तो घट नहीं सकता, जो व्यक्ति अपने ही कह रहा है कि सांसारिक प्रपंचों से मैं सदैव दूर रहा तो आप उस व्यक्ति को कैसे दाग वाला कहते हैं। अतः जो भी हो उपर्युक्त दोष लगाने का भागी डा० रामकुमार वर्मा और उन्होंने जिन लोगों से सहायता ली है, वे ही लोग हो सकते हैं। कुछ लोगों की प्रवृत्ति यह देखी जाती है कि सद्गुरु की सही वाणियों को प्रामाणिक न मानकर अलूल-जूलल पदों को लेकर मनमाने

तौर पर अर्थ का अनर्थ किए हैं। जैसे, सद्गुरु द्वारा निर्मित एवं उनके प्रिय शिष्यों द्वारा संगृहीत ग्रंथ "बीजक" है, जो प्रामाणिक ग्रंथ है, जिनको न मानकर यत्र-तत्र की उनके नाम की वाणियों को सही मानकर बड़े-बड़े पोथे रच डाले गए हैं और जिनमें बहुत से विषय अनुपादेय हैं।

मैंने "बीजक" एवं उसके पाठों के ऊपर विचारपूर्वक अन्वेषण किया है, जिसमें मुझे चार पाठों का सही पता चला, किन्तु अन्वेषण गतिमान होने के कारण कुछ ऐसे 'बीजक' के हस्तलेख मिले हैं, जिनसे यह सिद्ध अर्थ निकलता है कि "बीजक" के पाठ का रूप एक ही था। महाराज बाँधवगढ़ नरेश श्री राम सिंह एवं काशी नरेश श्री वीरदेव सिंह सद्गुरु कबीर के पक्के अनुयायी थे, जिन्होंने अपने-अपने मतानुसार अर्थों की संगति बैठाने के लिए "बीजक" के दो प्रकार के पाठ भेद कर दिए हैं। महाराज वीरदेव सिंह ने ज्यों का त्यों पाठ रखा है।

"अन्तरजोति सब्द एक नारी" से "साखी आखी ज्ञान की" तक वही पुराना पाठ निश्चित किया गया, जो आज तक काशी कबीरचौरा, दानापुर, बुरहानपुर, कुछ अन्तर लिए हुए और कई अन्य स्थानों में प्राप्त है, जो समीचीन कहलाता है। उधर बाँधवगढ़ नरेश श्रीराम सिंह ने अपने अर्थों की संगति बैठाने के लिये "बीजक" की दूसरी रमैनी को ही प्रथम रमैनी नियुक्त कर साखी प्रकरण में सद्गुरु के नाम पर बहुत सी प्रचलित साखियों का भी समावेश कर दिया है। इस कारण उनके पाठ में साखियाँ अधिक पायी जाती हैं। स्मरण रहे कि महाराजा राम सिंह के पाठ में शब्दों की संख्या एक सौ पन्द्रह है। वे दो पद क्यों अधिक हैं, यह कहा नहीं जा सकता। क्योंकि दो प्रतियाँ सद्गुरु कबीर के दो महान् शिष्यों द्वारा हेर-फेर करके लिखी गयी हैं। उनकी समझ में क्या अर्थ की संगति बैठाने में आपत्तियाँ थीं, जिनके कारण वे दो पद अपने संग्रह में नहीं दिए। यह वही लोग जान सकते हैं। महाराजा वीरदेव सिंह बघेल का ही पाठ सही पाठ है, जो श्रुतिगोपाल साहब द्वारा संगृहीत किया जाता है, जिसका प्रचार महाराजा ने खूब किया था। वही पाठ आज मूल गादी द्वारा प्रसारित हो रहा है। कुछ लोगों का मत है कि उपर्युक्त शब्द बाद में जोड़े गए हैं एवं प्रक्षिप्त हैं। परन्तु यह भी सिद्ध करने के लिए उनके पास कोई प्रबल प्रमाण भी नहीं है कि उस दो पद प्रक्षिप्त हैं। केवल कथन मात्र से बातें नहीं सिद्ध होतीं। इसलिए परस्पर भेद करना उचित नहीं है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि महाराजा वीरदेव सिंह के नियुक्त पाठ का प्रचार काशी से लेकर बुरहानपुर तथा धर्मदासी संप्रदाय में एवं भगताही के दानापुर

शाखा में तथा विद्दूपुर शाखा में प्रचारित है। इसके अलावा विदेशी व अन्य सम्प्रदाय के कुछ लोगों ने आदिपाठ महाराजा वीरदेव सिंह का ही माना है। इससे उक्त पाठ अधिक प्रामाणिक जँचता है। किन्तु महाराजा राम सिंह का भी पाठ अप्रामाणिक नहीं है। किसी अज्ञातकारणवश उसका प्रचार कुछ ही स्थानों तक सीमित रहा है। ऐसा लगता है कि श्रीराम सिंह के पाठ को नया जानकर लोगों ने उपेक्षा की हो। इधर कुछ संतवृन्द उसका भी प्रचार-प्रसार जोर-शोर से करने में लगे हैं जो उचित ही है, क्योंकि सद्गुरु कबीर की वाणियों का प्रचार एवं प्रसार किसी न किसी रूप में होना नितान्त आवश्यक है। हम कबीरपंथियों का यही कर्त्तव्य है कि उक्त दोनों पाठों का जनता जनार्दन में तीव्र गति से प्रचार-प्रसार करें। यों तो मेरा अन्वेषण "बीजक" एवं सद्गुरु कबीर के अन्य ग्रंथों के बारे में बराबर जारी है। जैसे-जैसे तथ्य उपलब्ध होंगे उसे सज्जनों की सेवा में उपस्थित किया जाता रहेगा। क्योंकि सद्गुरु कबीर की वाणी एवं विशेषकर बीजक में मेरी अधिक रुचि है। अस्तु, जीवन पर्यन्त खोज करता रहूँगा। जो बात सामने आएगी उसे आपके समक्ष रखता रहूँगा।

श्री परशुराम चतुर्वेदी एवं डा० केदारनाथ द्विवेदी आदि जैसे विद्वानों ने कबीर पंथ में शाखा शब्द का प्रयोग किया है जो किसी अर्थ में समुचित भी है। किंतु काशी कबीरचौरा आदि मूलगादी सद्गुरु कबीर मंदिर को भी शाखा कहा है। अब विचार करना है कि शाखा किसी मूल से निकलती है या मूल को ही शाखा कहते हैं? क्योंकि उक्त दोनों विद्वानों ने मूलगादी का उल्लेख कहीं नहीं किया है। या तो उनके ध्यान में नहीं आया या किसी के द्वारा मूलगादी का परिचय न पाया होगा। यह संसार को ज्ञात है कि कबीरचौरा आदि मूलगादी के नाम से विख्यात है, कारण कि सद्गुरु कबीर का मूल स्थान काशी कबीरचौरा ही है, जो सरकारी कागज-पत्रों से भी जाहिर है। अस्तु, सद्गुरु कबीर का निवासस्थान होने के कारण काशी कबीरचौरा मूलगादी है। बाद में यहीं से सभी शाखाएँ उद्भूत हुई हैं एवं काशी कबीरचौरा के प्रति सभी पंथ के संतों की प्रबल आस्था है। छिपे या खुले रूप में इसे सभी लोग मूलगादी मानते हैं। किंतु आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ऐसे विद्वानों ने काशी कबीरचौरा को शाखा लिखकर अपने उत्कृष्ट लेख को धूमिल कर दिया है। यदि शाखा सब हैं तो मूल कौन है? क्योंकि मूल बिना शाखा कहीं नहीं रुक सकती है और न निकल ही सकती है—'नास्तिमूल कुतः शाखा'।

कहा भी गया है जब मूल ही नहीं है, तो शाखा कहाँ से होगी। मूल का

होना नितांत आवश्यक है। परशुराम चतुर्वेदी जैसे विद्वानों ने भी इस पर विचार नहीं किया, जो विचार का विषय है। विद्वानों को इस प्रकार का लेख लिखते समय खोज के साथ-साथ सरकारी कागज-पत्रों एवं सर्वे आदि बंदोवस्तों से भी खोज करनी चाहिए। कबीर पंथ में सबसे पुराना कौन मठ है और कबीर साहब किस मठ पर रहते थे, जिनसे निकलकर अन्य गादियाँ स्थापित हुईं। मैं केवल मूल और शाखा के संबंध में खोज करने की सलाह नहीं दे रहा हूँ वल्कि कबीर विषयक तथ्यों पर खोज करनी चाहिए और शाखा मूल की खोज तो अवश्य होनी चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि शाखाएँ बिना मूल की हों। इसका निराकरण सरकारी कागज-पत्रों द्वारा हो सकता है। जनश्रुति के आधार पर इतिहास को पूर्ण रूपेण सही नहीं माना जा सकता।

इसी प्रकार कुछ विद्वानों का मत है कि कबीर साहब बौद्धों की परंपरा में तथा नाथों से प्रभावित थे। इनके आधार हैं कुछ नाथों के पद और कबीर साहब के दो चार पद, जिसके आधार पर उक्त कल्पना की गई है। इसी प्रकार से कुछ विद्वानों ने सूफी मत से प्रभावित बतलाते हैं। कुछ लोग हैं जो स्रोतों से कबीर साहब को ज्ञान प्राप्त होना बतलाते हैं। बात भी ऐसी लगती है, परन्तु मैं उक्त मतों से सहमत नहीं हूँ। पहुँचने वाला स्थान एक ही है, जो भी वहाँ जायेगा वही दृश्य बतलायेगा जो एक दूसरे ने कहा है। आखिर दूसरी बात आयेगी कहाँ से। जैसे खगोल का किसी भी देश का विद्वान् वही कहेगा जो एक दूसरे देश का खगोल शास्त्री कहता है। कथन शैली भले ही दूसरी हो, परंतु तथ्य एक ही होगा। हम यही कहेंगे कि एक दूसरे का अनुभव एक दूसरे जैसा होता है। दोनों की पहुँच समान है किसी से कोई प्रभावित नहीं होता, एक विचार दूसरे के समकक्ष कहा जा सकता है। इसी प्रकार से सद्‌गुरु कबीर किसी से प्रभावित नहीं हैं। उनका स्वयं अनुभूत ज्ञान है। वे स्वयं अपने साधन के द्वारा सभी मार्गों को देख चुके थे। वे सहज योग एवं हठयोग या ज्ञान योग सब की प्राप्ति अपने गुरु श्री रामानंद के निर्दिष्ट संकेतों से प्राप्त कर चुके थे। वे किसी दूसरे के ऋणी नहीं थे। उनको किसी का ऋणी बनाना श्रेष्ठ नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने उपर्युक्त धर्माचार्यों की देख-भाल अच्छी तरह से किया है। मेरी प्रस्तावना का विषय तत्व-विवेचना नहीं है इसलिए मैं उधर न जाकर ऊपरी बात पर ही विचार कर रहा हूँ।

पंथ के उद्‌भट प्रसिद्ध विद्वान् श्री स्वामी हनुमानदास जी साहब षट् शास्त्री ने बीजक पर जो परिश्रम किया है वह किसी से छिपा नहीं है। बीजक को प्रामाणिक मान कर ही आपने कई टीकाएँ लिखी हैं। सर्वाधिक परिश्रम

श्री स्वामी हनुमान साहब ने बीजक पर किया है। बीजक पर आपने जो परिश्रम किया है, वह अभी तक किसी ने नहीं किया था। आप संत साहित्य एवं कबीर वाणी के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। इसलिए आपका कार्य सराहनीय है। मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता पं० राघवदास जी ने भी सर्वसाधारण के लिए महत्त्वपूर्ण टीका की है। इसी प्रकार से और कई लोग हैं जिनका नाम स्थानाभाव से नहीं दिया जाता है।

सद्गुरु कबीर की वाणी सबके लिए परम कल्याणकारी है, परन्तु कुछ घोर सम्प्रदायवादी सद्गुरु कबीर एवं उनकी वाणियों पर तथा उनके विषय में बे सिर पैर की बातें करते रहते हैं। जैसे अपने को आर्यसमाजी कहने वाला एक शर्मा नाम का व्यक्ति, जो अभड़ प्रतीत होता है, जिसको न तो पूर्ण वेद-शास्त्रों का ज्ञान है और न तो कबीर साहब की वाणियों की ही समुचित जानकारी है। यह विद्वानों को ज्ञात है कि अपने को पण्डित कहने वाले आर्यसमाजी शुकवत् जानकारी रखते हैं। वे लोग पढ़े कम होते हैं पर डींग बहुत हाँकते हैं। कुछ आर्यसमाजी हमें मिले थे जो कई विषयों के आचार्य सुने जाते थे, किन्तु बातचीत करने पर विदित हुआ कि मानो प्रथमा भी नहीं पास हुए हैं। इसी प्रकार का उक्त शर्मा भी दीखता है, जो गाली-गल्लम के अतिरिक्त गुरुकुल में मानो कुछ पढ़ा ही नहीं है एवं उनको अपनी हिन्दी देखनी चाहिए जिसने एक किताब लिखा है—"कबीर मत गर्व मर्दन", जिसमें उसने सद्गुरु कबीर को केवल गाली, गल्लम दिया है। उक्त पुस्तक में सद्गुरु कबीर को एक नास्तिक, अवैदिकादि सब कुछ कह डाला है। उस अपठित को कुछ भी मालूम होता, तो कबीर साहब को नास्तिक नहीं कहता। क्योंकि सद्गुरु कबीर ने स्वयं वेद, ईश्वर के सिद्धान्तों को माना है। जैसे—

वेद कितेब कहो किन झूठा झूठा जो न विचारे।
जस कर चन्दन लादो भारा परिमल वास न जान गँवारा।
अंधा सुदर्पन वेद पुराना दर्वी कहा महा रस जाना॥
निगम रिसाल चार फल लागे, इत्यादि।

उपर्युक्त पद बीजक में उल्लिखित हैं। इसी प्रकार ईश्वर विषयक पद भी हैं—

"एक अंड ॐकार ते, सब जग भया पसार।
ऊँकार आदि जो जाने लिख के मेटे ताहि सो माने।
ऊँकार कहै सब कोई जिन यह लख सो बिरला होई॥
पारब्रह्म अविगति अविनाशी कैसेहुँ के मन लागै॥

ये पद कबीर बीजक में द्रष्टव्य हैं। इस तरह से ईश्वर एवं वेद विषयक सहस्रों वाणियाँ सद्गुरु कबीर के ग्रंथ में पायी जाती हैं। किन्तु अकोविद शर्मा जी अपने को आर्यसमाजी कहने वाले कबीर साहित्य से अनवगत होने के कारण सद्गुरु कबीर को एवं कबीर पंथ को एक नास्तिक, अशिक्षित, अवैदिक, सिद्ध करने की अनर्गल, अलीक कुचेष्टा की है, जो शास्त्र और लोक दोनों से अनभिज्ञ दीखता है। इसके आदि गुरु आर्यसमाज के प्रवर्त्तक दयानंद सरस्वती ने भी सद्गुरु कबीर के विषय में बहुत सी बिना-सिर पैर की बातें लिखी हैं एवं अशिक्षित तथा नास्तिक दिखाने की कुचेष्टा की है। किन्तु दयानंद जी के द्वारा देश का कुछ उपकार भी हुआ है। इसीलिए हम उनके खिलाफ लेखनी नहीं उठाना चाहते। परन्तु दयानन्द सरस्वती वेदों का अर्थ कहाँ तक समझ पाये हैं विद्वानों से उक्त तथ्य अपठित नहीं है। परन्तु अभड़ शर्मा के कारण उनकी भी चर्चा करनी पड़ रही है।

यह सबको विदित है कि वाणी के महान् दोष के कारण और पूर्ण रूपेण अध्यात्म सत्य न होने से स्वामी दयानन्द जी की जो दुर्गति हुई है वह किसी को अविदित नहीं है। इसी प्रकार से दयानन्द के बहुत से अनुयायियों की भी गति हुई है। ये लोग केवल सबको गाली देना जानते हैं। इनके यहाँ सभ्य भाषा नहीं होती। यही कारण है कि आज का मानव समाज इनका त्याग करता जा रहा है। दूसरी ओर सद्गुरु कबीर जन-जन के मानसमंदिर में विराजमान होते जा रहे हैं। अभड़ शर्मा के पूर्ण लेखों को अयुक्त असंगत जानकर कुछ भी उत्तर नहीं दिया गया है, क्योंकि ऐसे लेखकों का उत्तर देना केवल गाली गल्लम होता है। इसलिए विद्वत्समाज में उसे त्याज्य माना गया है। पाठकों को स्मरण रहे कि तथाकथित वंशीय कबीर पंथ के नाम से एक सम्प्रदाय है जिसकी एक शाखा, बुरहानपुर, नागझिरी, मध्यप्रदेश में विराजमान है, जो कबीर साहब को नास्तिक एवं अवैदिक मानती है। जिनके साहित्य को विद्वान् लोग पढ़कर आक्षेप करते हैं कि कबीर साहब अवैदिक थे। कबीर साहब का क्या दोष है? इनमें तो धर्म सम्प्रदायवादी जीववादियों का दोष है। उनका साहित्य कबीर साहित्य से अलग है। सज्जनों को कबीर साहब के बारे में कबीर साहित्य को पढ़कर लिखना चाहिए न कि धर्मसम्प्रदायवादी जीववादी साहित्य को पढ़कर। उनके दोषों को कबीर साहब के ऊपर न मढ़ें। कारण की धर्मसम्प्रदाय में भी दो मत हैं। एक जीववादी दूसरा ईश्वरवादी। वे दोनों भी कबीर पंथी कहे जाते हैं। अस्तु, विद्वानों से निवेदन है कि उनके साहित्य का दोष कबीर साहब के साहित्य एवं कबीर साहब पर न मढ़ें।

सद्गुरु कबीर के काल के सम्बन्ध में कुछ विवाद चल पड़ा है। सर्वप्रथम विवाद खड़ा करने वाला धर्मदासियों का साहित्य हैं, जिसमें चार-पाँच किस्म की तिथियाँ मिलती हैं। इनके विपरीत काशी कबीरचौरा में एक ही तिथि का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है—

प्रादुर्भाव काल

चौदह सौ छप्पन में जेठी पुनम चन्द सुवारा।
श्री कबीर साहब का जनहित काशी में अवतारा॥

निर्वाण काल

पन्द्रह सौ पचहत्तर संबत् मगहर ज्ञान निधाना।
माघ[1] सुदि एकादशि तिथि को जग से अन्तर्धाना॥

यह पद बीजक में कबीर साहब के चित्र के नीचे ऊपर मुद्रित रहता है, जिसको कबीरचौरा मूलगादी वाले मानते हैं।[2] समीक्षक लोग इस पद को न खोजकर तथा इन पदों पर न विचार कर अनिश्चित तिथि वाले पदों को ही उद्धृत करते रहे हैं जिनसे भ्रम की वृद्धि हुई है। धर्मदासियों में यह परिपाटी रही है कि यत्किञ्चित् आपस में मतभेद हुआ कि उन्होंने अपनी सारी मान्यताएँ अलग कल्पना कर ली। उनके यहाँ अनेक तिथियों का होना भी उपर्युक्त कारण है, अन्यथा चार तिथियाँ नहीं होतीं। यद्यपि उपर्युक्त पद का अनुकरण करके उन लोगों ने भी दो पदों की रचना की है, जिनका प्रमाण हम भी लेते हैं। अन्य बहुत से विद्वानों ने भी उपर्युक्त कथन के अनुसार ही प्रकट एवं अन्तर्धान काल निश्चित किए हैं। आजकल के कुछ पंथीय लोग पुनः अनेकता का राग अलाप रहे हैं जिसके कारण कुछ विचार करना पड़ रहा है।

सर्वप्रथम स्वामी रामानन्द के काल पर विचार करना होगा। उनका काल निश्चित हो जाने पर कबीर साहब का भी काल निश्चित हो जाएगा। कुछ लोग स्वामी रामानन्द का जन्मकाल वि० सं० १३५६ मानते हैं, जिनके समर्थक अधिक हैं। कुछ थोड़े से विद्वान् वि० सं० १३२४ भी मानते हैं।

---

१. कहीं-कहीं पहले की छपी पुस्तकों में माघ का अगहन छप गया है, जो सही नहीं है।

२. चौदह सौ पचपन साल गए चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रकट भए॥

३. सम्वत् पन्द्रह सौ पचहत्तर किया मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादशी रलो पवन में पवन॥

उनका स्वर्गारोहण क्रमशः वि० सं० १४६७, १५०५, १५१५, १५१९ तथा १५२६ तक मानते हैं। यदि जन्म काल १३२४ वि० सं० माना जाय तो मृत्युकाल तक २०० वर्ष से अधिक आयु ठहरती है, जो किसी प्रकार से सत्य के पक्ष में नहीं है, क्योंकि इतनी बड़ी आयु का कलियुग में होना असम्भव माना गया है। इसी प्रकार से 'भविष्य पुराण', 'अगस्त्य संहिता' एवं 'भक्त-माल' इत्यादि के अवतरणों से वि० सं० १३५६ जन्मतिथि निश्चित की गयी है। मृत्युकाल वही १५१५ एवं १५१९ परवर्ती विद्वान् मानते हैं। परन्तु उक्त वि० सं० के अनुसार १६५ वर्ष की आयु ठहरती है, जो यह भी सत्य के परे है। कुछ लोग स्वामी रामानन्द जी को स्वामी विद्यारण्य एवं बुक्काराय के समकालीन बतलाते हैं और श्री ज्ञानेश्वर के पिता विट्ठलपन्त को स्वामी रामानन्द का शिष्य कहते हैं। इनके आधार हैं "प्रसंग पारिजातम्" में ज्ञानेश्वर के कुछ वचन। 'प्रसंग पारिजातम्' में तो गांधी जी की कथा होने से विल्कुल अप्रामाणिक है। इसी प्रकार से श्री ज्ञानेश्वर के वचनानुसार उनके पिता श्री विट्ठलपंत जी किसी दूसरे स्वामी रामानन्द के शिष्य रहे होंगे, जो इतिहास में नहीं आए हैं, क्योंकि श्री विट्ठलपंत को यह दिखाया गया है कि वे ज्ञानेश्वर के जन्म के पहले ही स्वामी रामानन्द के शिष्य हो गए थे और बहुत दिनों के वाद वे स्वामी रामानन्द के साथ अपने जन्मभूमि के आस-पास गए थे, जिनका आगमन सुनकर विट्ठलपंत की धर्मपत्नी स्वामी रामानन्द जी के दर्शन के लिए आयीं, जिनको दर्शनोपरान्त स्वामी रामानन्द जी ने पुत्र होने का आशीर्वाद दिया, जिस पर विट्ठलपंत की धर्मपत्नी ने चौंककर कहा—स्वामी जी मेरे पति तो आपके शिष्य हो गए हैं और उनका नाम चैतन्य आश्रम पड़ा है। भला ऐसी दशा में मुझे पुत्र कैसे होगा ? उक्त विट्ठलपंत की पत्नी की बात सुनकर स्वामी जी कुछ देर तक मौन रहे। पुनः चैतन्य आश्रम को बुलाये और कहा कि मैंने तुम्हारी पत्नी को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया है। तुम गृह आश्रम के अनुसार रहना और वहीं पर हरिनाम का चिन्तन करना। विट्ठल-पंत जी तथास्तु कहकर सपत्नी घर गए और सर्वप्रथम निवृतिनाथ का वि० सं० १३३० में जन्म हुआ। तत्पश्चात् वि० सं० १३३२ में ज्ञानेश्वर जी का जन्म हुआ। इसके अनुसार विट्ठलपंत की अवस्था लगभग ३५ वर्ष की रही होगी और स्वामी रामानन्द की अवस्था कम से कम ५० वर्ष की, तो अवश्य रही होगी। कथानकों के अनुसार उक्त अवस्था का निश्चय किया गया है। इस निश्चय के अनुसार स्वामी रामानन्द जी का जन्म सं० १२८२ ठहरता है, जो किसी प्रकार से सत्य नहीं है। दूसरी ओर स्वामी रामानन्द का जन्म

वि० सं० १३५६ माना गया है और ज्ञानेश्वर की मृत्यु वि० सं० १३५३ में मानी गयी है। इसके अनुसार अभी स्वामी रामानद को जन्म लेने को तीन वर्ष और शेष रहते हैं। इसलिए उक्त घटनाओं को मैं नहीं मानता, क्योंकि पूरे इतिहास पर विचार करने से ऐतिहासिक मेल नहीं खाता। मेरा अपना मत यह है कि सभी घटनाओं पर विचार करने से स्वामी जी का प्रकट काल वि० सं० १४वीं शताब्दी के अन्त एवं वि० सं० १५वीं शताब्दी के आदि में आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में किसी तिथि को हुआ होगा तथा उनका मृत्युकाल वि० सं० १५१९ से आगे नहीं जा सकता। अधिक खींच-तान किया जाय, तो वि० सं० १५२५ के आस-पास जा सकता है। किन्तु भविष्य-पुराण में स्वामी रामानंद जी को सिकन्दर लोदो के समसामयिक कहा गया है और कबीर को उनका शिष्य भी होना बहुचर्चित है, जिनमें अनेक साक्ष्य हैं, उधर ज्ञानेश्वर के वचन को मैं असत्य नहीं कहता हूँ।

उनके पिता के गुरु कोई दूसरे स्वामी रामानन्द रहे होंगे, जिसको प्रथम कहा गया है। स्मरण रहे कि भविष्य पुराण एवं अगस्त्य संहिता ये सब अकबर काल के बाद ही लिखे गये होंगे। जो बिना विचार किए हुए जनश्रुति के आधार पर लिखे गये हैं, जिनका प्रमाण सब अंशों में नहीं लिया जा सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वामी रामानन्द का जन्मकाल वि० सं० की १५ वीं शताब्दी की शुरुआत है, जो समीचीन प्रतीत होता है और मृत्युकाल वि० सं० १५१९ मान लेने पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

अब आइए सद्गुरु कबीर का प्रकट काल एवं निर्वाण काल पर विचार करें। कुछेक कबीरपंथी वि० सं० १३५६ कबीर साहब का जन्मकाल मानते है। इसी प्रकार से कुछ लोग वि० सं० १४४५ और १४४७ भी मानते हैं। मृत्युकाल १५०५ से आगे नहीं ले जाना चाहते। सम्प्रति कुछ कबीर-पंथियों का आधार नामदेव की वाणी में कबीर शब्द का आना और विट्ठलपंत का स्वामी रामानन्द का शिष्य होना आदि के कारण ही, कबीर साहब का वि० सं० १३५६ जन्मकाल मानते हैं। विट्ठलपंत और 'प्रसंग पारिजातम्' अप्रामाणिक हो चुके हैं। अब नामदेव की वाणी में 'कबीर' शब्द पर विचार करना है। कबीर शब्द बहुअर्थक शब्द है। कबीर शब्द अरबी में परमात्मा का बोधक है। हिन्दी में अर्थात् भारतीय भाषाओं में 'कबीर' शब्द गीत के अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसका उल्लेख नामदेव की वाणी में है। नीचे एक पद दिया दिया जाता है—

'चन्द्रभागा वाल वंट पर, 'कबीरा'[1] धूम मचाई।
साधु संत की हो गई गर्दी, भजन कुटाई खूब खाई॥

यह छन्द २७ मात्रा का होता है, १६ मात्रा पर यति लगती है जैसे—

"बोलो भाई कवीर सररर"

ये पद जोगीड़ा के रूप में विख्यात हैं। इसको कवीर जोगीड़ा भी कहते हैं। यह होली के अवसर पर गाया जाता है। कुछ विद्वानों ने इस पर विचार भी किया है। यहाँ केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। उपर्युक्त पद के अनुसार नामदेव की वाणी में व्यक्तिवाचक न होकर गीत के अर्थ में है, क्योंकि सद्‌गुरु कवीर से नामदेव जी लगभग पचास वर्ष पहले हो चुके हैं। इसलिए उनकी वाणी में व्यक्तिवाचक के रूप में कबीर साहब का नाम आना संभव नहीं है। वि० सं० १३५६ कवीर साहब का प्रकट काल मानना निराधार है, क्योंकि अभी तक नन कवीर पंथी किसी विद्वान् ने उल्लेख नहीं किया है।

---

१. कवीर का उनके माता-पिता का दिया हुआ क्या नाम था ? यह ज्ञात नहीं है। यद्यपि यह असंभव नहीं है कि वे मुसलमान कुल में उत्पन्न थे। इसलिए 'कवीर' उनके नाम का एक सर्वप्रमुख अंश रहा हो, किंतु जब तक कोई सवल स्पष्ट प्रमाण इस संबंध में न मिल जाय यह विचार कल्पना की कोटि का ही माना जाएगा। यह कवीर अरबी का शब्द है जिसका अर्थ श्रेष्ठ या बड़ा होता है। कवीर के कुछ अन्य प्रयोग हैं, जो इस प्रसंग में विचारणीय है। एक है 'कबीरा : कवि > कब्बि > काव्य-डा हल्के ढंग का काव्य। होली के अवसर पर जो "कवीर" गाया जाता है, वह मूलतः कदाचित् इसी अर्थ का बोधक है।

शब्द का एक अन्य प्रयोग पदित के "पदितनामा" में मिलता है। यह निम्नलिखित है—'जो कोई 'कावि कबीरी" करै तिसका सब लुटि जात है। उस्तै अमल रहता नाहीं फीका होइ जाता है। उसका अमल आँस मैं जाइ रहे हैं उसका दिल घाइल होई रहैं। चतुराई जारी करी जिसतै जवाब मुख बंद कर पलक तैं आप कूं निरास राखै तो तेरे अदिर रूसनाई होइगी" ये फरीद कौन थे यह निश्चित रूप से कहना कठिन है, अभी हम इतना ही कह सकते हैं कि ये कोई पुराने मुसलमान सन्त थे, जो बड़ी खड़ी बोली प्रदेश के थे, जैसा इनकी भाषा से स्पष्ट है। 'पदित' कदापि फा० 'पंद' उपदेश नसीहत है, इसलिए 'पदितनामा'-उपदेश संदेश हुआ। उद्‌धृत पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—

इसके विपरीत १३५६ वि० सं० स्वामी रामानन्द का काल लिखा गया है। जो वह भी सिद्ध नहीं हो सका है। केवल अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए कवीर साहब को वि० सं० १३५६ मानना है। वि० सं० १३५६ न होकर एक स्थान पर १२०५ वि० सं० लिखा गया है। जो स्वामी रामानन्द के काल से भी पहले है, क्योंकि अधिक से अधिक विद्वान् स्वामी रामानन्द का जन्मकाल वि० सं० १३२४ से पीछे कोई नहीं ले गया है। इसलिए वि० सं० १२०५ बिलकुल अनर्गल है। अनेक प्रकार के काल का होना संदेह को जन्म देता है और इसमें मुझे एक ही वात दीखती है लेखकों की अपनी-अपनी स्थिति को स्वतंत्र करने की चाल। आज भी कबीर साहब के नये-नये चित्र बनाये जा रहे हैं। यह सिद्ध करने के लिए कि कवीर साहब का प्रामाणिक चित्र हमारे ही पास है। वर्त्तमान के विचारों को देखने से यही लगता है कि कवीर-पंथियों में जब-जब विघटन हुआ होगा उसी काल में अपनी-अपनी मान्यता और अपना काल कल्पित कर

"जो (साधक) 'काव्य कबीरी' करने लगता है। उसका समस्त (अमल रस का उन्माद) लुट जाता है। उससे (इससे), (उसमें) अमल (हरि-रस का उन्माद) नहीं रह पाता है, उसके काव्य कबीरी में लग जाने पर) वह फीका पड़ जाता है और उसका अमल औरों (और विषयों) में जा रहता है। उसका हृदय (उस दिव्य अमल से अभिभूत रहने के स्थान पर 'काव्य कबीर' की संवेदनाओं से) घायल हुआ रहता है। यदि तू (इस काव्य कबीरी की) चतुराई (कला-कुशलता) को जलाकर, उसको जवाब देकर (उससे नाता तोड़कर) और उससे अपना मुख बन्दकर दुनिया (समाज) से अपने को निराश्रित रखे तो तेरे अन्दर रोशनी होगी"।

प्रकट है कि फरीद के इस उपदेश में जिस (काव्य और) 'कबीरी से कुछ साधक को दूर रहने का उपदेश किया गया है, उनके कर्त्ताओं को (कवि और) कबी+डा कहते रहे होंगे।

शब्द का एक तीसरा प्रयोग 'नामदेव की हिंदी पदावली' में मिलता है—नामदेव ने अपने एक पद में किंचित् क्षोभपूर्वक कहा है—

"चन्द्रभागा बाल बंट पर, 'कबीरा' धूम मचाई॥
साधु संत को हो गई गर्दी, भजन कुटाई खूब खाई॥"

ऐसा लगता है कि ये 'कवीर' उस युग के लावनीबाजो के ढंग के आशु कवि गायक थे और जन-समुदाय संतों की उपेक्षा कर उनकी ओर अधिक आकृष्ट हो जाता है

—डा० माताप्रसाद गुप्त की कबीर ग्रंथावली से उद्धृत।

लिए गए होंगे, जिसके कारण आज कबीर साहब का काल निर्धारण में भ्रम पैदा हो रहा है अतः भ्रम की कोई आवश्यकता नहीं है। कबीर साहब का काल वि०सं० १४५६ ज्येष्ठ पूर्णिमा प्रकटकाल है एवं १५७५ वि० सं० निर्वाण-काल, इसको अनेक विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है। कुछ लोगों का मत है कि वि० सं० १४५६ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को सोमवार दिन नहीं पड़ता। यह बात गलत साबित हो गयी है। ज्योतिष की गणना के अनुसार उस दिन पूरे दिन पूरी रात सूर्योदय तक सोमवार रहता है[1] जिनको विचार करना हो तो कर सकते हैं।

सम्प्रति कुछ विद्वानों ने पुनः इस पर विचार करके सिद्ध किया है कि उक्त पूर्णिमा को सोमवार पड़ता है। अतः काशी कबीरचौरा में उद्भव काल एवं पराभव काल के पद दिए जा चुके हैं, जो सही एवं प्रामाणिक हैं। वि० सं० १४५६ मान लेने पर सारी बाधाएं दूर हो जाती हैं। उन सभी घटनाओं से मेल खा जाता है जिनका उल्लेख अनन्तदास जी की लिखित कबीर परिचयी[2] एवं प्रियादास के पदों में हुआ है। स्वामी रामानन्दाचार्य का भी काल वही होगा जिस पर प्रथम विचार किया जा चुका है। उक्त समय को मान लेने पर कुछ घटनाओं को छोड़कर दो तिहाई घटनाएँ सामयिक हो जाती हैं।

कुछ लोगों ने ११ से १३ तक कबीर नाम के सन्तों की कल्पना की है। ऐसे लोग इस्लामी लेखकों के आधार पर मानते हैं जिसका कोई प्रबल प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है और यह ऐतिहासिक महत्त्व भी नहीं रखता। उक्त संख्या लिखने का तात्पर्य यह है कि सद्गुरु कबीर के महत्व को घटा दिया जाय, क्योंकि उनके समय के मुसलमान उन्हें काफर कहते थे। इसलिए मुसलमानों की उक्त कल्पना को हम स्वीकार नहीं करते। वैसे तो आज भी हजारों कबीर नाम के व्यक्ति हैं, परन्तु वे सन्त कबीर नहीं हैं। सन्त कबीर तो एक ही संत थे, जिनका नाम इतिहास के द्वारा जाना जाता है और उनका प्रादुर्भाव

---

१. डा० माताप्रसाद गुप्त ने एस. आर. पिल्ले की "इण्डियन क्रौनोलाजी" के आधार पर गणित (तिथि) गणना करते हुए स्पष्ट किया है कि वि० सं० १४५५ को ज्येष्ठ पूर्णिमा को चन्द्रवार ही पड़ता है। अतः उनका जन्म काल सं० १४५५ की ज्येष्ठ पूर्णिमा दिन को मानना चाहिए। कबीर साखी सार, पृ० सं० २, डा० माया अग्रवाल।

२. एक बात और ध्यान देने योग्य है कि कहीं कबीर परचई एवं कहीं अनंत परचई भी लिखा गया है वहाँ कबीर परचई से ही तात्पर्य समझना चाहिए।

काल वि० सं० १४५५-५६ तथा निर्वाण काल वि० सं० १५७५ है, जिस पर काफी विचार हो चुका है।

उपर्युक्त विचारों को भी उन्हीं के आधार पर लिखा गया है। डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने स्वामी रामानंद का जन्म काल १३८५ वि० सं० की ओर संकेत किया है। वे मेरे बहुत नजदीक हैं। घटनाओं को मिलाने के लिए मुझे १५ वर्ष और खींचना पड़ा है। १५ वीं शताब्दी का आदि स्वामी रामानन्द का जन्म मान लेने पर सारी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं।

इसके हिसाब से भी स्वामी रामानंद का प्रकट काल विक्रम सं० १५०० का आदि होता है। श्री अनन्तदास जी महाराज वि० सं० १६४९ तक विद्यमान थे, जिन्होंने वि० सं० १६४५ में कबीर परचई, पीपा परचई, रविदास परचई, सेन परचई आदि ग्रंथ लिखे हैं उस समय उनकी अवस्था कम से कम ४०–४५ वर्ष की अवश्य रही होगी। श्री अनन्तदास जी स्वामी रामानंद की शिष्य परम्परा में छठी पीढ़ी में हुए हैं। स्वामी रामानंद जी को छोड़कर पाँचों का औसत काल यदि २५ वर्ष का काल माना जाय, तो १२५ वर्ष होते हैं। परन्तु यह काल थोड़ा और आगे आयेगा, क्योंकि श्री अनन्तदास जी वि० स० १६४५ तक तो अवश्य रहे, वि० सं० १६४५ से पीछे ले जाइये तो स्वामी रामानन्द का निर्वाण काल ठीक वि० सं० १५१९ के आस-पास जाता है। इस हिसाब के द्वारा स्वामी जी का जन्म काल भी मिल जाता है। दो चार वर्ष का भले ही अन्तर हो जाय यह दूसरी बात है। इसके अनुसार जो मैंने अनुमान किया है कि स्वामी रामानन्द का प्रकट काल विक्रम सं० १५०० का आदि है, सो बिलकुल ठीक है। इस खोज के अनुसार स्वामी रामानन्द जी की आयु लगभग १२० वर्ष की होती है, जो सम्भव है।

१. स्वामी रामानन्दाचार्य
२. अनन्तानन्द (अष्टानन्द)
३. कृष्णदास पयहारी
४. अग्रदास जी
५. विनोदीदास जी
६. श्री आनन्तदास जी हैं, जिनके बारे में संदेह नहीं है।

स्वामी रामानन्द का काल मिल जाने से सद्गुरु कबीर का भी काल मिल जायगा। सद्गुरु कबीर ने स्वामी रामानन्द का दर्शन उनकी ६५ वर्ष की अवस्था में किया था। ६५ वर्ष के लोग आज भी हृष्ट-पुष्ट मिलते हैं। सद्गुरु कबीर का काल वि० सं० १४५५-५६ से वि० सं० १५७५ तक है, जो बिल्कुल

सही है। इसके विपरीत जन्म काल आगे-पीछे खींचने पर पूरी घटनाओं का तारतम्य नहीं बैठता है। इससे जनश्रुतियों एवं ऐतिहासिक लेखों का एकीकरण हो जाता है। उक्त निश्चय को सत्य की कसौटी पर कसकर ही लिखा गया है। जब तक कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता है इसके विरोध में तब तक यही मेरे लिए अभीष्ट है। यह मैं नहीं कह सकता कि खोज की इतिश्री हो गयी। खोज तो जारी रहेगी और नये-नये तथ्य सामने आते रहेंगे। विट्ठलपंत तो प्राकृत रामानन्द के शिष्य हो नहीं सकते। इसी प्रकार से "प्रसंग पारिजातम्" भी अप्रामाणिक ही ठहरता है। यद्यपि मूलगाथा में भी इसका कुछ अंश लिया है, परन्तु 'प्रसंग पारिजातम्' के बहुत अंश अत्यधिक अर्वाचीन हैं। जहाँ तक कि इसके अधिक अवतरण २५ वर्ष से आगे के नहीं हैं। गाथा भाग में पद-पद पर संदेह होता है। जैसे स्वामी विद्यारण्य मुनि एवं महाराजा बुक्काराय की कथा और उनके समसामयिक स्वामी रामानन्द की भेंट आदि लेख अयुक्त लगते हैं। क्योंकि स्वामी विद्यारण्य का जन्म काल वि० सं० १२४३ के आस-पास कहा जाता है और स्वामी रामानन्द का जन्म काल अधिक पीछे ले जाने पर वि० सं० १३२४ से पीछे नहीं जाता है। इसके अनुसार स्वामी रामानन्दाचार्य लगभग ८१ वर्ष पीछे जन्म लेते हैं, जो है भी नहीं। वि० सं० १३५६ मानने वालों के लिए तो और उपाधि खड़ी हो जाती है। इसलिए "प्रसंग पारिजातम्" का प्रमाण मानना समीचीन नहीं है। क्योंकि किसी भी घटना से मेल नहीं खाता। विद्वान् यह समझ सकते हैं कि उक्त ग्रन्थ में महात्मा गांधी की भी कथा लिखी गयी है और गाँधी जी को कबीर साहब का अवतार भी कहा यगा है। इन सब बातों पर विचार करने पर कोई अर्थ नहीं निकलता। इसलिए स्वामी रामानन्द का प्रकट काल वि० सं० १५०० सौ का आदि मानना तथा मृत्युकाल वि० सं० १५१९ मानना समीचीन होगा। इसी प्रकार से रामानन्द के शिष्य कबीर साहब का प्रकट काल वि० सं० १४५५ के अंत १४५६ की शुरुआत अर्थात् वि० सं० १४५५ की ज्येष्ठ पूर्णिमा के दूसरे पल में वि० सं० १४५६ शुरू हो जाता है, ठीक उस दिन सोमवार पड़ता है। वि० सं० १४५५ के पद को ध्यान[1] से पढ़ना चाहिए। उसमें यही संकेत किया गया है कि चौदह सौ पचपन पूर्णिमा के बाद अन्त हो जाता है। इसलिए वि० सं० १४५५ और १४५६ दोनों कहा जाता है। वि० सं० १४५५ एवं वि० सं० १४५६ की सन्धिकाल में कबीर साहब का आविर्भाव हुआ है

१. चौदह सौ पचपन साल गये चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रकट भए॥

और निर्वाण काल निर्विवाद वि० सं० १५७५ माघसुदी एकादशी को होता है।

स्मरण रहे कि पहले सम्वत् की शुरूआत् ज्येष्ठ पूर्णिमा अर्थात् वर्षाऋतु से होती थी। इसलिए वर्ष कहलाता था। बाद में सं० आधे चैत से चालू हुआ, जो आज तक कायम है। मेरी बात की पुष्टि पं० श्री दुखहरण साहब के द्वारा हो रही है। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। "सन्त शिरोमणि महात्मा कबीर" नामक पुस्तक में कबीर साहब का प्रकट काल वि० सं० १४५५–५६ माना है और निर्वाणकाल वि० सं० १५७५। कबीर पन्थ के प्रथमाचार्य पं० श्री श्रुतिगोपाल ही हुए हैं, इत्यादि भी आपने लिखे हैं। आपके लेख पढ़ने योग्य हैं। आप श्रीमान् रामस्वरूप साहब के शिष्य हैं, जिनको लोग परमहंस के नाम से जानते हैं। परमहंस साहब पहले फतुहा (पटना-बिहार) स्थान के महन्त थे, जो बाद में विरक्त बनकर परमहन्स वृति धारण कर लिए। आप का चरित्र बहुत उत्तम सुना जाता है।

अब सर्वप्रथम सद्गुरु कबीर नीरू-नीमा के औरस पुत्र या पौष्य पुत्र थे। सद्गुरु कबीर स्वामी रामानन्द के शिष्य थे या शेखतकी के या वे गृहत्यागी थे कि गृहाश्रमी। सिकन्दर लोदी के समसामयिक थे या नहीं, आदि प्रश्नों पर विचार करना है।

सद्गुरु कबीर-नीरू के औरस पुत्र थे, इस बात को किसी ने और कहीं नहीं लिखा है और न ही कोई इसका प्रमाण है। सबसे प्राचीन ग्रन्थ "अनन्त परचई" है एवं हरिराम व्यास के पद हैं जिनमें कहीं भी औरस पुत्र की चर्चा नहीं है। औरस पुत्र की परिकल्पना केवल आधुनिक लेखक करने लगे हैं। इस प्रकार से कुछ और लेखकगण हैं, जो कहते हैं कि सद्गुरु का जन्म मगहर में हुआ था, परन्तु यह भी कल्पना मात्र ही है। पहले के सभी विद्वानों ने उनकी जन्मभूमि काशी में ही लिखा है। उधर मगहर में भी जनश्रुतियों से यह पता चलता है कि सद्गुरु कबीर काशी से ही मगहर में आए थे। मगहर जन्मवादी विद्वान् केवल आदि ग्रन्थ की एक अर्द्धाली को प्रमाण देते हैं, जो निम्न प्रकार की है—

"पहले दर्शन मगहर पाए पुनि काशी बसि आई।

उपर्युक्त प्रकार से ही एक पद और है—

"पहले दर्शन काशी पाए अन्त में मगहर आया।
राम नाम के बेरा चढ़िया जनम मरण मिट गाया॥

बहुत काल तक काशी रहिया राजा राम भरोसा।
चरण कमल की है बलिहारी मगहर में परवेसा॥
हिन्दू रोवे तुर्का रोवे रोवे सब संसारा
हम न रोइब तुम न रोइबा करना सदा विचारा
एहु संसार आवे जावे, काल कर्म भर मारा
दास कबीर कहे सुन सन्तों भजन करो निरधारा

यदि यह पद कबीर साहब का है, तो उपर्युक्त पद कोई माने नहीं रखता, क्योंकि यह परम्परा से सुना जाता है। अस्तु उपर्युक्त एक अर्द्धाली से वर्त्तमान के कुछ पण्डित उनको मगहर का निवासी मानते हैं। पर इस पद को ध्यान से देखने पर यह अर्थ निकलता है कि ईश्वर का दर्शन प्रथम काशी में नहीं हुआ, मगहर में हुआ। उसके बाद पुनः मगहर से काशी चले आए। अस्तु पुनि का अर्थ ही कहता है कि दोबारा सद्गुरु काशी में आए, और क्योंकि पुनि पद से ही सद्गुरु कबीर को काशी में आने एवं रहने को सूचित करता है। इस अर्द्धाली का भाव यह है कि सद्गुरु कबीर अन्तर्धान होने के पहले ही मगहर गए थे और उसके पहले काशी में ही रहते थे अर्थात् काशी-मगहर का सम्बन्ध मृत्यु के पहले भी था। इसका कारण यह है कि काशी के आस-पास के जनपदों में न मालूम सद्गुरु ने कितनी बार भ्रमण किया होगा। दूसरी बात यह है कि गोरखपुर जिले में कबीर पन्थ का अत्यधिक प्रचार है। वहाँ अभी बहुत से लोग सद्गुरु को मानने वाले हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि गोरखपुर के नवाब अधिक परिचय के कारण ही सद्गुरु को दोबारा ले गया था। अतः मगहर जन्मभूमि मानना बालू की भीति की तरह है। इस प्रकार से कुछ लोग कहते हैं कि सद्गुरु शेखतकी के शिष्य थे, परन्तु यह बात भी अनर्गल है। क्योंकि इस विषय में आप ने स्वयं अपने को गुरु रामानन्द जी का शिष्य होना कहा है—

"कबीर रामानन्द को सतगुरु भयो सहाय।
जग में युक्ति अनूप है सो सब देइ बताय॥
सद्गुरु के प्रताप ते मिट गयो सब दुख द्वन्द्व।
कह कबीर दुविधा मिटी गुरु मिल्या रामानन्द॥

सत्य कबीर की साखी पृ० सं० २, दोहे–७.८ खेमराज श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई सं० २००९ में छपी। बाह्य प्रमाण भी द्रष्टव्य है।

भीतो बाणी बोल्या ऐहा रामानंद पैं दच्छा लेहा।
रामानन्द न देषै माँही कैसे दच्छा पाउँ सोई॥

राति बसौ गैला में जाई, सेवग सहैत वे निकसैं आई।
राति बसौ गैला में जाई राम कहा अरु मेल्या पाई॥

—सेवादास की वाणी अन्तर्गत अनन्तदास जी लिखित कबीर साहब की परचयी, पृ० सं० ६२६ (अमुद्रित ग्रंथ सं० १६४५ की लिखित।

श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो।
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानन्द रैदास धना सेन सुरसरि की धरहरि।
औरौ शिष्य प्रशिष्य एकते एक उजागर।
विश्व मंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर॥
बहुत काल बपुधारि कै प्रणत जनन को पार दियौ।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरण कियो॥

—श्री नाभादास जी स्वामी कृत भक्तमाल, पृ० सं० २८२

इस प्रकार से पचासों प्रमाण बाहर के लोगों के हैं। उन प्रमाणों को यदि दिया जाय, तो एक विशालकाय पोथी तैयार हो जायेगी। इसलिए उनका केवल दिग्दर्शन मात्र यहाँ कराया गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि सद्गुरु कबीर स्वामी रामानन्द जी के शिष्य नहीं थे। सद्गुरु उनके साथ बहुत दिन तक रहे, जो पंथांतर्गत प्रसिद्ध है। उक्त प्रकार से ही कुछ लेखकों ने सद्गुरु को विवाहित बतलाते हैं, जिसका कोई प्रमाण नहीं है और यह बात केवल कल्पना पर आधारित है। कुछ लोग लोई और रमजनियाँ नामक दो स्त्रियाँ एवं दो पुत्र, दो पुत्रियों का उल्लेख करते हैं, जो बिल्कुल अयुक्त है। क्योंकि सद्गुरु कबीर स्वयं अपने को अविवाहित कहते हैं और सदा एक माई का होना बतलाते हैं। वे एक पद में कहते हैं कि मेरे पास एक माता है तुम मौसी बनकर चलो।

"जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी।
आसि पासि तुम्ह फिरि फिरि बैसो, एक माउ एक मासी॥"

—कबीर ग्रंथावली, पृ० सं० १८१, पद संख्या २७० काशी नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित (संपादक श्यामसुन्दर दास, बी० ए०)।

पदों से यह ज्ञात होता है कि आपके केवल एक माता थीं तभी तो आप अप्सरा से कहते हैं कि 'एक माऊ दूजे मासी' होकर चलो यदि स्त्री होती तो उसका उल्लेख अवश्य होता। परन्तु स्त्री होने का आपने कहीं उल्लेख नहीं किया है। हाँ, लोई शब्द का प्रयोग आपने अवश्य किया है, परन्तु इस शब्द

का प्रयोग उन्होंने लोग के अर्थ में किया है न कि उमा-शिव संवाद की भाँति कोई लोई नाम की स्त्री थी, जिसको संबोधित करके कहा गया हो, ऐसा अर्थ लगाना गलत होगा, क्योंकि लोग के अर्थ में उक्त शब्द का सद्गुरु ने बार-बार प्रयोग किया है—

"कहहिं कबीर सुनो नर लोई। भुतवा के पुजले भुतवे होई॥"

—बीजक शब्द प्रकरण पृ० सं० २०८, पद सं० १०५, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, काल २०३१ वि० सं०।

'जो कछू बिचारहू पंडित लोई'

—कबीर ग्रंथावली पृ० सं० १००, पद सं० ३७, प्रकाशित काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

इस प्रकार इससे संबंधित बहुत से उद्धरण हैं, जिसको लिखने से पुस्तक का कलेवर बढ़ जाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि लोई शब्द लोग का वाचक है। लोई शब्द का लोग के अर्थ में प्रायः उस समय के हिन्दी कवियों ने प्रयोग किया है। यदि जिन सज्जन को देखने की इच्छा हो तो उसे सहर्ष देख सकते हैं। इसलिए सद्गुरु कबीर के न तो लोई नाम की कोई स्त्री थी और न ही कमाल नाम का कोई पुत्र ही हुआ है। यह सब रंजनामात्र है। वे बाल ब्रह्मचारी सन्त थे। वे स्वप्न में भी स्त्री का स्मरण किए हों, ऐसा नहीं लगता। उन्होंने सर्वत्र नारी भोग को हेय दृष्टि से खण्डन किया है—

"नारि नसावे तीनि गुण, जेहि नर पासे होय।
ज्ञान ध्यान अरु भक्ति में बैठि सकै न कोय॥" —साखी ग्रंथ

मूदे मदन काटि कर्म कशमल संतत चुअत अगारी। —बीजक शब्द।

इस प्रकार की कितनी वाणियाँ हैं, जो देखी जा सकती हैं। सद्गुरु के अन्वेषकों में सर्वाधिक श्री परशुराम चतुर्वेदी देखे जाते हैं, जिनके समान दूसरे लोग नहीं दीखते। परन्तु चतुर्वेदी जी का अधिक प्रयत्न सद्गुरु के काल निर्धारण में ही लगा दिखाई देता है। वे १५०५ से अधिक आगे कबीर साहब को देखना नहीं चाहते, जो समीचीन नहीं। यदि इनके अनुसार काल माना जाय तो जीवनवृत्त में बहुत उलट-पलट करना होगा। फल-स्वरूप सारी घटनाएँ और पुराने लेख कपोलकल्पित हो जाएँगे।

इसी प्रकार से कुछ लोगों का मत है कि सद्गुरु कबीर और सिकन्दर लोदी से मुलाकात नहीं हुई थी, पर यह उन महाशयों की महान् भूल है, क्योंकि अन्तर बाह्य के बहुत से प्रमाण हैं, जो कहते हैं कि सद्गुरु कबीर की सिकन्दर

लोदी ने कष्ट दिया था और बाद में उनका मत स्वीकार कर लिया था, जिसकी चर्चा कबीरचौरा की शब्दावली में हुआ उसके अनुरूप ही बाह्य प्रमाणों से भी

"शाह सिकन्दर जल में बोरे बहुरि अग्नि पर जारे।
मस्ता हाथी आनि झुकायो सिंह रूप दिखलाये॥"

सिद्ध होता है कि सिकन्दर लोदी से गुरुदेव कबीर की मुलाकात हुई थीं।

ऐक समय ऐसी ह्वै आई। विधि संजोग ने मेट्यो जाई॥
स्याह शिकन्दर काशी आया। काजी मुलां कै मन भाया॥
चले फिरादी बार न लाई। बांभन वनीयां मिलीया जाई॥
अरु कबीर की माता दौरी। समझै नहीं भई मति बौरी॥
सब मिलि आतुर जाइ पुकार्‌या। जांनक उनका मांनस मार्‌या॥
कबीर की रछया करैं भगवंतू। सो जस गावैं दास अनंतू॥
स्याह सिकन्दर तू जीवें मेटि हमारी पीर।
ऐसो काहू नां करी जैसी करी कबीर॥

—अनन्तदास जी परिचयी, सेवादास की वार्णी अंतर्गत, वि० सं० १६४५, उल्लिखित।

"देखिकै प्रभाव, फेरि उपज्यौ अभाव द्विज।
आयौ पादसाह सों सिकन्दर सुनाँव है॥
विमुख समूह संग माता हूँ मिलाई लई।
जाइकै पुकारे जू दुखायौ सब गाँव है॥
ल्यावौ रे पकर वाके देखों यौ मकर।
कैसो अकर मिटाओ गाढ़े जकरत नाव है॥
आनि ठाढ़ किये काजी कहत सलाम करौ।
जानै न सलाम जानै राम गाढ़े पाँव है॥"

—भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास जी कृत टीका से लिया गया है। पृ० सं० ४८७-८८, मुद्रण काल सन् १९६९, तेजकुमार बुक डिपो, उत्तराधिकारी नवल किशोर प्रेस बुक डिपो, लखनऊ भार्मा सुधा स्वाद तिलक सहित।

"कासि माहि सिकन्दर तमक्यो गल में डारि जंजीर का।
जिनको आनि मिले परमेसुर बन्धन काटि कबीर का॥

—वषना जी, सं० १९९३, पृ० सं० १४८।

अगिनि न जाले जल नहिं बूड़े झाड़ि झाड़ि पड़ैं जंजीर।
जन हरिदास गोविन्द भजै निरभय मतै कबीर॥

मारि मारि काजी करै कुंजर वन्दे पाव।
जन हरिदास कबीर कू लगै न तातो वात॥

—श्री हरिदास जी महाराज की वाणी, सन् १९६२ में प्रकाशित पृ० सं० ३८८।

'जड़े तौक बेड़ी गले में जंजीर लोदी सिकन्दर दई है जो पीड़ा'

कबीर साहब के छह चमत्कार

साहिब जुलहदी अलाह का स्वरूप। काशी नगर बिच आए अनूप॥
जड़े तौक बेड़ी गले में जंजीर। लोदी सिकन्दर दई है जो पीर॥
डार्या गंगा बीच दीना डबोय। रखनहार समरथ झड़े तौक तोहि॥
हाथी खूनी वेग लीन्हा बुलाय। मुस्क बाँधि डार्या हाथी के जु पाय॥
हाथी दरस सिंह दर्सन दलाय। कुरनिश करी देख बंका न बाल॥
पीलवान कुँवान दीना दीदार। हाथी उलट मोड़ लीना सहार॥
कहता सिकन्दर दूकावो जो फील। करो वेग तड़भड़ लगाओ न ढील॥
देख्या सिकन्दर दीवान जो सिंघ। आये चिदानन्द कला कोटि रंग॥
दुदकार गुंजै चले भाग फील। देख्या सिकन्दर दर्श ध्यान नील॥
चरण धोय पीये सिकन्दर शिताव। तुंहीं अर्श मक्का तुहीं है किताब॥

—ग्रन्थ साहिब, श्री गरीब साहब की वाणी, पृ० सं० ३७९, सं० व संशोधक श्री स्वामी चेतनदास जी महाराज, डॉ० स्वामी श्यामसुंदर दास शास्त्री, प्रकाशक श्री स्वामी धर्म सनेही जी महाराज परमहंस सं० २०२१, सन् १९६४ ई० इत्यादि उल्लेख बहुत हैं, जिसका संग्रह एक स्थान पर करना संभव नहीं है। पहले के सभी संत लोगों ने यही लिखा है कि सद्गुरु कबीर से सिकन्दर स्वयं आकर काशी में मिला था और इधर के भी बहुत से विद्वान् उक्त मत से सहमत हैं। इस मत को न मानने वाले बहुत कम लोग हैं।

अब विचार यह करना है कि श्री अनन्तदास जी कब हुए हैं। श्री अनन्त दास जी सं० विक्रम की सतरहवीं शताब्दी के आदि में हुए हैं। जो सद्गुरु कबीर के परलोक गमन के लगभग २५ वर्ष के बाद में जन्म लिए हैं, जो १६ वर्ष की अवस्था में पहुँचने पर बहुत बात सुन चुके होंगे। अर्थात् उक्त अवस्था तक सांसारिक बातों की जानकारी हो जाती है। २९ और १६ मिलाने पर ४५ वर्ष होता है। अस्तु, ४५ वर्ष पहले की बात जानने वाले लोग भी बहुत से रहे होंगे, जो सद्गुरु के समसामयिक रहे होंगे। जिन्होंने अपनी आँखों से सद्गुरु के ऊपर घटी घटनाओं को देखे होंगे। जिनके द्वारा सुनकर श्री अनन्तदास जी कथाओं का संकलन किए होंगे, जो आज तक विद्यमान है,

जिनको असत्य नहीं कहा जा सकता। इनसे भी पहले श्री हरिव्यास जी महाराज ने सद्गुरु कबीर के विषय में लिखा है, जो सद्गुरु के समकालीन कहे जाते हैं। उन्होंने भी सिकन्दर लोदी के साथ इनका संघर्ष लिखा है। आप ही बताइये कि समसामयिकों की बात नहीं मानी जाय और आप, जो आज ५०० वर्ष के बाद भी कल्पना कर रहे हैं कि सद्गुरु कबीर को सिकन्दर लोदी नहीं मिला था, तो यह आपकी भूल है। आपको शान्तचित्त होकर सोचना चाहिए, अन्यथा आपको भव भ्रांति हो जायगी। इसके फलस्वरूप आपका परिश्रम निष्फल हो जाएगा। सद्गुरु कबीर ने अपनी परीक्षा का स्वयं उल्लेख किया है।

मन न डिगै ताथैं तन न डराई। केवल राम रहे ल्यौ लाई॥
अति अथाह जल गहर गंभीर, बाँधि जंजीर जलि बोरे हैं कबीर।
जल की तरंग उठि कटि हैं जंजीर, हरि सुमिरन तट बैठे हैं कबीर॥
कहैं कबीर मेरे संग न साथ, जल थल मैं राखैं जगनाथ॥३४१

—कबीर ग्रंथावली, पदावली, पृ० सं० २०३।

गुरुदेव को अग्नि में डालने वाली कथा श्री गुरुग्रंथ साहब से लिया गया पद—

आपे पावक आपे पवना। जारै खसम तो राखै कवना॥
राम जपतु तनु जरिकिन जाइ। रामनाम चित रह्यो समाइ॥
काको जरे काहि होइ हानि। नटवर खेलैं सारिंगपानि॥
कहु कबीर अक्खर दुइ भाखी। होइगा खसम तो लेइगा राखी॥

—कबीर ग्रंथावली, परिशिष्ट पृ० सं० २६९।

अहो मेरे गोव्यंद तुम्हारा जोर, काजी बकिवा हस्ती तोर॥
बाँधि भुजा भलैं कारि डार्‌यो, हस्ती कोपि मूंड मैं मार्‌यो॥
भाग्यौ हस्ती चीसां मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी॥
महावत तोकूं मारौं साटी, इसहि मराऊं घालौं काटी॥
हस्ती न तोरै धरै धियांन, वाकै हिरदै बसै भगवान॥
कहा अपराध सन्त हो कीन्हा, बाँधि पोट कुंजर कूं दीन्हां॥
कुंजर पोट बहु बन्दन करै, अजहूँ न सूझै काजी अन्धरै॥
तीनि बेर पतियारा लीन्हां, मन कठोर अजहूं न पतीनां॥
कहै कबीर हमारै गोव्यंद। चौथे पद मैं जन का ज्यंद॥३६५॥

—कबीर ग्रंथावली, पदावली, पृ० सं० २१०।

जब सद्गुरु कबीर साहब अपने आप को स्वीकार रहे हैं, तो उनकी बात सही न मानकर कल्पनाशील व्यक्तियों की बात मानना कहाँ तक समीचीन होगा।

यद्यपि मैंने सन् संवत् सर्वत्र नहीं दिया है, परन्तु पूर्ण अन्वेषण के द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि सद्गुरु कबीर का प्राकट्य वि० सं० १४५५—५६ है। उनका परलोक गमन का काल वि० सं० १५७५ है और यही हम मानते भी हैं। संसार में एक तरह के लोग नहीं हैं। इसलिए अनेक मान्यताओं का होना स्वाभाविक है। कुछ लोग मगहर के कबीर मुस्लिम मंदिर को कहते हैं कि १५०७ में ही बन गया था। इसलिए सद्गुरु का परलोकगमन वि० सं० १५०५ में ही हो गया होगा। पर न तो कोई उस मंदिर पर वर्ष है और न तो कहीं कोई संवत् ही लिखा है केवल कुछ विद्वानों की कल्पना मात्र है, क्योंकि उक्त मान्यता में कोई प्रमाण नहीं है।

इसी प्रकार से कुछ लोग कहते हैं कि स्वामी रामानन्द से भी कबीर साहब की भेंट नहीं हुयी थी, जो ठीक नहीं है। क्योंकि सद्गुरु कबीर ने स्वयं अपने को स्वामी रामानन्द का शिष्य बताया है। इसलिए यही मान्य है। कुछ ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं कि सद्गुरु कबीर बेलहर पोखर आजमगढ़ के अन्तर्गत प्रकट हुए थे और उनकी समाधि भी रतनपुर आजमगढ़ जनपद में विद्यमान है तथा दूसरे कुछ लोग ऐसे हैं, जो उनकी समाधि जगन्नाथपुरी में मानते हैं। कुछ लोग उनकी मृत्यु काशी में ही मानते हैं, इत्यादि प्रकार के मत हैं। जो सब के सब कल्पना पर ही आधारित हैं, उक्त बातों में कोई प्रमाणिकता नहीं है और नहीं तो जनश्रुतियाँ ही उन बातों की साक्षी हैं जिनको सत्य मान लिया जाय। रतनपुर बेलहरा या जगन्नाथपुरी में तो उनकी समाधि हो ही नहीं सकती, क्योंकि इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार से काशी में मृत्यु होना और श्री सुभद्र झा के अनुसार मिथिला प्रदेश में उनका जन्म होना भी अप्रामाणिक हैं। अस्तु, अनेक प्रकार जी कल्पनाएँ लेखों के द्वारा हुई, जो प्रायः निर्मूल हैं। इसलिये उन सबों की चर्चा न करके अब मैं इस लेख को समाप्त कर रहा हूँ। अन्त में विज्ञ पाठकों से निवेदन है कि मुझे लिखने का अभ्यास न होने के कारण भाषा का दोष कहीं-कहीं अधिक रह गया है। इसलिए मैं आप लोगों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

इति अलम्

आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री

मंगलाचरण

जन्मप्रभृत्यखिलदोषनिराकरिष्णुः
सत्साधनाऽऽयतनसंस्थितदेवरूपः
श्रीभारताम्बुनिधिकौस्तुभरत्नमूर्तिः
भूयोविभाति धरणीवलये कबीरः ॥१॥

रामानन्दपदारविन्दयुगलीनिष्यन्दमानासव-
प्रोन्मत्तामलचित्तचारुचरितोल्लासप्रकाशाकरः ।
तत्त्वज्ञानसमुद्रमन्थनमहाव्यापारमन्थाचलः
श्रीमान् सद्गुरुराडयं विजयते मान्यः कबीराह्वयः ॥२॥

श्रीमद्भारतभूषणमणिस्त्रैलोक्यदीक्षामणिः
भक्तिज्ञानसरोरुहाम्बरमणिर्वैराग्यभूषामणिः ।
रामानन्दपदाब्जसेवकमणिःसाम्यैकरक्षामणिः
तत्त्वव्रातविकासकारणमणिः सोऽभूत् कबीरो मणिः ॥३॥

नित्यानन्दमयः सदासुखमयो वैराग्यदीक्षामयः
तत्त्वज्ञानमयस्तथा गुरुकृपापीयूषलेखामयः ।
गर्जद्वादिमहागजेन्द्रमृगराड्व्यापारलीलामयः
रराजीति समस्तलोककुहरे सोऽयं कबीराह्वयः ॥४॥

नानामार्गविभेदकाननमहाध्वान्ताध्वविध्वस्तधी
सन्मानुष्यकदम्बकोद्धरणकृल्लीलाविलासालयः ।
रागद्वेषमहाऽसुरेन्द्रविघटत्सम्पूर्णसत्यप्रभा-
धर्मोद्धारपरायणो विजयते श्रीमान् कबीरो महान् ॥५॥

श्रीमद्गुरूदितकृपाऽऽगततत्त्वसिन्धु-
सिद्धान्तरत्ननिचयाहरणव्रताढ्यः ।
संसारदुःखहतजीवनजीवसंघ-
सम्पालको जयति कोऽपिगुरुः कबीरः ॥६॥

उद्यत्तेजस्तपस्याविमलकमलिनोप्रेरकः पूर्णसूर्यः
श्रीरामानन्दपादम्बुरुहयुगलमोमुद्यमानद्विरेफः ।
पापौघध्वान्तविध्वंसनघनधिषणा प्रौढभाभासितश्रीः
रराजोति प्रकामं गुणगणनिकरैः कोऽप्यसौ श्रीकबीरः ॥७॥

भूयो बाभ्राज्यमानातिकठिनतमसत्कर्मकाण्डाऽख्यमार्ग-
भेदाटोपादिकृत्योदितबहुलतरायाससाध्यैकधर्मम् ।
योऽयं न्यक्कृत्य रेजे सुविपुलधिषणाप्राप्तसामर्थ्यसत्त्वात्
सोऽयं श्रीमान् कबीरो जगति विजयते स्वीयकार्यैर्महद्भिः ॥८॥

भेदाभेदविभेदबीजजननो वैराग्यमूलोदयो-
हिन्दूमुस्लिमकाण्डयुग्मलसितः साम्यैकशाखान्वितः ।
भूयस्त्यागतपोदलान्वितततनुर्ज्ञानाख्यपुष्पोन्नतो-
रराजीति कबीरकल्पविटपी सद्भिर्द्विजैः सेव्यताम् ॥९॥

भेदभेदन बीजाढ्ये साम्यवादमहाफले ।
कबीर कल्पवृक्षेऽस्मिन् मोमदीतु मनो मम ॥१०॥

मनुदेव भट्टाचार्य

कबीर जीवन चरित्र

सत्य कबीर

प्रथमालोक

कबीर जीवन चरित्र

प्रकट काल की भूमिका

संसार परमप्रभु की लीलास्थली है। इसमें अनेक विशेषताएँ हैं और यह अनेक प्रकार की विचित्रताओं से तथा अद्‌भुत चमत्कारों से परिपूर्ण है। जगत् वारिधि की भाँति विभिन्न रत्नों से भरा हुआ है। यह प्रचण्ड भगवान अंशुमाली के समान सतत विद्यमान रहता है। वास्तव में यह जगत् अनिर्वचनीय एवं महान् है। इसकी वास्तविकता तक पहुँचने में कितनी कठिनाई है, इसे कहा नहीं जा सकता। इस जगत् की गति-अगति के विषय में केवल परात्पर शक्ति ही जान सकती है। इसका कारण है कि इसमें अनेक उथल-पुथल होते रहते हैं जिसका कारण जानने में मनुष्य असमर्थ रहा है। कोई भी मनिषी आद्योपान्त कहने में समर्थ नहीं हुआ है कि यह जगत् क्यों हुआ है और जगत् के होने का कौन-सा मूल कारण है ? ये प्रश्न सहज बुद्धि के परे प्रतीत होते हैं। शीघ्रातिशीघ्र कह देने वाले, बिना सोचे समझे कहने वाले को छोड़िए, क्योंकि उन्हें जगत् के विषय में कुछ जानकारी नहीं हैं, केवल प्रलाप मात्र हो हैं। यह गतिशील तो देखने में लगता है, परन्तु स्थिर रखने की कोई भी उपाय दिखलाई नहीं पड़ता। आज तक गतिमान ही दीखता है।

समय-समय पर कुछ शक्तियाँ आती हैं और बहुत कुछ कह सुनकर विलीन हो जाती हैं, संसार जहाँ का तहाँ स्थिर रहता है। इस जगत् में बड़े से बड़े देव-दानव अवतीर्ण होते हैं और अपना-अपना कर्म करके प्रस्थान कर जाते हैं। इस जगत् को यत्किञ्चित भी स्थायी रूप देने में सफल नहीं हुए।

अतः मानव दानव की परिभाषा सहज बुद्धि से थोड़े में हो समझी जा सकती है। मैं अपने लिए मानव हूँ, दूसरा दानव है। यही देव-दानव की परिभाषा है, अन्यथा कौन दानव है, कौन मानव है। अपनी प्रति-कूलता ही दानव है यही अनुभूति परिलक्षित होती है। अनेक प्रकार से संसार की विषमताओं को दूर करने का सतत प्रयास होता चला आ

रहा है। प्रत्येक सत्य प्रयासी पुरुष कुछ समय के लिए अवश्य अल्प-चिर-शान्ति की ओर जगत् को मोड़ देता है, परन्तु उसके अभाव में जगत् पुनः अपनी धुरी पर अग्रसर होने लगता है। इस तरह के एक दो पुरुष नहीं हुए हैं। संसार में सहस्रों पुरुष इस तरह के हुए हैं जिनका गुणगान उनके अनुयायियों के द्वारा सुना जाता है। जगत् को शान्ति और व्यवस्था देने वाले उन्हीं असंख्य महापुरुषों में श्री गुरुदेव कबीर भी हुए हैं, जो संसार में अपने प्रकार के अकेले हुए हैं। अतः जिस काल में सद्‌गुरु कबीर का अवतरण हुआ था वह समय विषमताओं से पूर्ण था। सभी एक दूसरे को नष्ट करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। अपने से दूसरे की मान्यताओं को भूमिसात किया जा रहा था। उसकी मान्यता पूर्ण-रूपेण अशुद्ध है, बस लोगों का यही कहना परम कर्तव्य था। जन साधारण समझ नहीं पा रहा था कि दिन क्या है? रात्रि क्या है? कहने का तात्पर्य यह कि शुभाशुभ एवं सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन हो गया था। द्वन्द्ववाद ने विश्व को तमाच्छादित कर दिया था। लोग किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए थे। अज्ञानरूपी-रात्रि में किसी को कहीं पथ नहीं मिल रहा था। परस्परकरुणार्द्र नाद सुनाई पड़ रहा था। अपने पराए का ज्ञान नष्ट हो चुका था। संसार भूमिगर्त सदृश हो रहा था। अनाथ लोग नाथ-नाथ चिल्ला रहे थे। सनाथ सबल लोग अनाथों का गला घोंट रहे थे।

मानो भगवान् अंशुमाली के सुपुत्र मुख फैलाकर चारों ओर दौड़ रहे हों, एक रक्तवाही निमगा निमग्न हो रही थी। मनुष्य तमाच्छन्न निशिथनी में कुमारगामी हो रहा था। स्वत्राण की आशा-निराशा में परिणत हो चुकी थी। इसी बीच एकाएक शुभ निनाद सुनाई पड़ा—"जो जहाँ है वहीं पर रुक जाय। अब सूर्य का उदय हो गया है। सभी को सौम्य प्रकाश प्राप्त होगा। कबीररूपी सूर्य ने प्राची दिशा में पृथ्वी पर पदार्पण कर दिया है।" उक्त आकाशवाणी के सुनते ही जन-जन में नवजीवन का संचार हो आया। वि० सं० १४५६[1] का दिन मनुष्य के लिए प्रकाश का दिन था और उस दिन की रात्रि मनुष्य के लिए विश्राम की रात्रि थी जिस दिन गुरुदेव कबीर इस भूतल पर अवतीर्ण हुए। वह स्थान मनुष्य के लिए स्तुत्य स्थान है जिस स्थान को सत्पुरुष ने

---

१. चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठसुदी बरसायत को, पूरनमासी तिथि प्रगट भए॥

वि० सं० १४५६ में विशेष रूप से पवित्र किया था। जिसका नाम है लहरतारा सरोवर, जो भगवान शंकर की पुरी काशी के अंतर्गत विराजमान है। अतः उसी लहरतारा सरोवर में ज्येष्ठ पूर्णिमा की अर्द्धरात्रि में, सोमवार के दिन ढलते हुए रात्रि की बेला में पूर्ण-रूपेण सन्नाटा छाया था। भूत-गणों का नृत्य हो रहा था। उनके मध्य में भगवान् शंकर शृंगी टेर रहे थे। थोड़ी ही दूर पर सन्त अष्टानन्द स्वामी की कुटिया थी, जिसमें आसनारूढ़ होकर श्रीराम नाम का वे जप कर रहे थे। उसी समय अचानक लहरतारा के कमल-दलों पर एक अद्भुत देदीप्यमान ज्योति आकाश मण्डल से मेघमालाओं का भेदन करती हुई आई और नवजात शिशु के रूप में परिणत हो गई[1]। चारो ओर प्रकाश छा गया। सम्पूर्ण सरोवर में आभा छिटक गई। सरोवर की कमल कलियाँ खिल गई। जल-जन्तु केलि-क्रीड़ा करने लगे। पृथ्वी के सभी स्थानों पर पूर्ण शान्ति का आभास हो गया। लोगों के मन में राम नाम का उच्चारण सहज में ही होने लगा।

वि० सं० १४५६ में काशी के लहरतारा नामक सरोवर में सद्गुरु कबीर का अवतरण हुआ, जिनको काशी के नूर अली नामक कोरी ने लाकर पालन-पोषण किया था।

इसी परम-पवित्र अति प्राचीन काशीपुरी में ही नीरू तन्तुवाय का निवास स्थान एवं जन्मभूमि थी, जिसको आज नीरू टोला के नाम से जाना जाता है और कबीरचौरा प्रखण्ड कबीरमठ से सटा हुआ है। यह आज भी सुरक्षित भवन के नाम से विद्यमान है, जिसमें निःशुल्क अतिथियों को रखा जाता है। इसी में नीरू रहते थे। नीरू जाति के तन्तुवाय थे। वे कपड़ा बुनने का कार्य करते थे, जिसके द्वारा उनके परिवार का पालन-पोषण होता था। वे मध्य कोटि के व्यवसायी थे, न तो अधिक धनी ही थे और न अति अकिंचन ही। परिवार का काम भली-भाँति चल जाता था। अस्तु, अभी तक नीरु के माता-पिता के

---

१. चौदह सौ छप्पन जेठी पूनम चन्द्र सुवारा।
श्री कबीर साहब का जनहित काशी में अवतारा।—कबीर मठ की पुस्तकों से।

गगन मण्डल से उतरे, सद्गुरु पुरुष कबीर।
जलज माँहि पौढ़न किए, दो दीनन के पीर॥

—श्री गरीब साहब की वाणी से।

नामों का पता नहीं चल पाया है। अन्वेषण गतिमान है। पता चलने पर अगले संस्करण में दे दिया जायेगा, जो उचित होगा।

"कबीर परिचयी" आदि ग्रंथों के आधार पर नीरू के धर्म का तो पता लगता है कि किसी कारणवश वे मोहम्मदीय धर्म में प्रविष्ट हो चुके थे, जिनको पुनः गुरुदेव कबीर ने आर्य धर्म में संस्कृत कराया और उनका पूरा परिवार वैष्णव धर्मावलम्बी हो गया। एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि काशी में अन्य वर्णों की अपेक्षा अत्यधिक तन्तुवाय परिवार ने ही मोहम्मदीय धर्म को स्वीकार किया है। अतः नीरू के घर एवं ससुराल का पता लग जाने से इस पुस्तक में मैंने संगृहीत कर दिया। जितनी बातों का प्रामाणिक पता लगेगा उन्हीं बातों को मैं इस पुस्तक में संकलित करूँगा। सन् १९५३ से सन् १९७३ तक पूरी खोज करने के बाद ही जीवन-चरित्र पर लेखनी उठायी गयी है। अनेक जीवन-चरित्रों तथा अनेक पन्थ के वयोवृद्ध पुरुषों से छान-बीन, पूछ-ताछ एवं अन्वेषणों के बाद ही संकलन प्रारंभ किया गया है। अतिशयोक्तियों एवं रञ्जनात्मक लेखों का पूर्णरूपेण बहिष्कार किया गया है। अधिक प्रमाण मूल गादी के इक्कीसवें आचार्य श्री गुरुदेव रामविलास दास जी साहब के बताए गए पुस्तकों एवं जीवन-चरित्रों तथा उनके मुखारविन्द से निकले चरित्र-कथाओं को माना गया है। मैंने उनसे एक बार पूछा था कि गुरुदेव, जो कथाएँ आपके श्रीमुख से सुनी जाती हैं, वे कथाएँ अभी कहीं से मुद्रित नहीं हुई हैं? इस पर गुरुदेव ने कहा—वत्स! इस गादी पर मेरे से पूर्व होने वाले गुरुओं के मुख-कमलों से सुनी आ रही कथाएँ हैं, कोई नवीन ग्रंथिल कथा नहीं है।

एक बात गुरुदेव ने और कहा था कि कबीरचौरा के तृतीय आचार्य श्री ज्ञानदास जी साहब का लिखा हुआ "कबीर जीवन चरित्र" मैंने मगहर में देखा था, परन्तु दुर्भाग्यवश किसी तस्कर ने उस पुस्तक को चुरा लिया। उसमें कई ग्रंथों का संग्रह था, जो पुरानी देवनागरी लिपि में लिखा गया था। अतः उसमें लिखित जो कथाएँ मुझे स्मरण हैं, उन्हीं कथाओं को मैं आपलोगों को सुनाता हूँ। अस्तु, गुरुदेव के वचनों को प्रामाणिक मानकर निम्नोक्त कथाएँ लिखी जा रही हैं।

प्रकट काल

जीवन-चरित्र

सद्‌गुरु कबीर का दर्शन सर्वप्रथम श्रीमती नीमा देवी को लहरतारा सरोवर में हुआ था। जो नीरू मियाँ की धर्मपत्नी थी। नीरू मियाँ लगभग बीस वर्ष की अवस्था में पहुँच चुके थे, जब सद्‌गुरु कबीर से दर्शन हुआ था। श्रीमान् नीरू अपनी ससुराल नीमा का द्विरागमन कराने हेतु गए थे,[1] जो मड़ुआडीह ग्राम वाराणसी नगर के अन्तर्गत दक्षिण संभाग में पड़ता है। वह टोला जिसमें नीरू की ससुराल पड़ती थी, मड़ुआडीह ग्राम के दक्षिण में एक कोरियों का टोला था; जहाँ पर आज भी कोरी जाति के लोग मोहम्मदीय धर्मावलम्बी होकर रहते हैं। उसी ग्राम में मँगरू कोरी का घर था, जो नीमा देवी के पूज्य पिता थे। उनकी ही सुपुत्री नीमा के साथ नीरू का विवाह हुआ था जिनका द्विरागमन कराकर श्रीमान् नीरू लेकर आ रहे थे। उनके साथ उनके अनेक सम्बन्धी भी थे। यह ज्ञातव्य हो कि उसी मार्ग से नीरू आ रहे थे जिस मार्ग पर लहरतारा सरोवर पड़ता था, जो वृहत्काय लगभग अर्द्ध योजन की लम्बाई में फैला हुआ था। काशी के कुछ वृद्धों द्वारा सुना जाता है कि यह सरोवर कभी गंगाजी से निकला हुआ एक गंगाजी का स्रोतछाड़न था, जो बाद में गंगाजी से अलग हो गया। इसका कारण यह है कि गंगाजी ने अपनी धारा को और पूर्व दिशा की ओर मोड़ लिया। फलस्वरूप जो लहर गंगाजी से आती थी, वह उक्त सरोवर में आना बन्द हो गयी; परन्तु नाम इसका वही लहरतारा ही रह गया। तब से लेकर आज तक वही नाम समाज में प्रचलित चला आ रहा है।

श्रीमती नीमा को लिए हुए नीरू लहरतारा के पूर्वी तट से होकर जा रहे थे। जब पूर्वी तट से अर्द्ध उत्तरी संभाग में पहुँचे, तो वहाँ के

---

१. नीरू नाम जोलाहा, गवन लिए घर जाय।
तासु नारि बड़भागिनी, जल महँ बालक पाय॥
सुन्दर बालक देखि कै, लीन्हा कण्ठ लगाय।
विहँसत चलिहैं कामिनी, हँसि दीन्हौं मुसकाय॥ —शब्दावली

सघन वृक्षों की मनोरम छाया को देखकर शीविकियों से बोले कि इसी स्थान पर पालकी को रखकर थोड़ा विश्राम कर लो। इसके बाद कहारों ने शीविका वृक्षों की सघन छाया में रख दी, जहाँ पर एक मिट्टी का कटा-छटा सरोवर में घाट भी था, जो सोपानों से युक्त और परम रमणीय था। उस पर दूर-दूर और आस-पास के लोग स्नान आदि के लिए प्रतिदिन आया करते थे। उसी स्थान पर पालकी को रखवाकर नीरू विश्राम करने लगे एवं चारों तरफ दृष्टि घुमा-घुमा कर देखने लगे। अनेक प्रकार के पक्षियों का कलरव मन को मुग्ध करता रहा। वहीं पर अनेक रूप और जाति के जंगली पशु भी निकट के वृक्षों की सघन छाया में बिना बैर-भाव के बैठे आनन्द ले रहे थे।

ज्येष्ठ मास की अपराह्न वेला थी। आस-पास के तरुवरों के नीचे भूमि पर रहने वाले प्राणी भी ऊष्ण बात एवं भयानक वायु प्रकोप के भय से अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए थे, जिनको देखकर लगता था कि इन सबों को ब्रह्म-ज्ञान हो गया है, क्योंकि किसी को कोई छेड़ नहीं रहा था। उक्त दृश्य को देखकर नीरू आश्चर्य चकित हो रहे थे। अचानक नीरू की दृष्टि सरोवर की ओर गयी और देखते हैं कि कमल का वन सरोवर के जल को आच्छादित किए हुए है। प्रफुल्लित कमल पंखुरियाँ भगवान् सूर्य के प्रचण्ड तेज से मुरझा गयी हैं। जिन पर जल में रहने वाले पक्षी अपने असन हेतु भ्रमण कर रहे थे। जल कुक्कुटों के डूबने की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही थी, जिसको सुनकर नीरू के ध्यान में आया कि नीमा प्यासी तो नहीं है और उन्होंने पालकी के निकट जाकर पूछा कि तुम्हें प्यास तो नहीं लगी है ? यदि प्यास लगी हो तो चलो जल पी लो। नीमा ने पति की बात सुनकर कहा कि हाँ, मैं जल पीऊँगी। नीरू ने शीघ्र ही कहारों एवं सम्बन्धियों को दूर हटा दिया। तत्पश्चात् नीमा को ले जाकर जल के निकट छोड़ दिया और स्वयं तरुतर चले आए। उधर श्रीमती नीमा ने जल के समीप जाकर मुख-मार्जन करने के बाद इच्छा भर जल ग्रहण किया। इसके बाद नीमा की क्लान्ति दूर हुई और नील पट को हटाकर नीमा ने चारों ओर देखना आरम्भ किया। जंगली पशुओं एवं जलचरों को भी देखा, जो सभी अपने-अपने अनुकूल स्थानों पर आनन्द ले रहे हैं। उक्त दृश्य को देखकर नीमा का मन मुग्ध हो गया। नव आगन्तुक बाला का मन सरोवर की ओर आकर्षित होता जा रहा था। थोड़ी ही दूर पर सरोवर में कमल-

कुसुमों पर एक नवजात शिशु अपने कर-कमलों से कमल नालों को पकड़े हुए हाथ पैर फटकार रहा था, बार-बार पैरों को चला रहा था और शिशु के मस्तक पर नील नागराज अपने फणरूपी छत्र से छाया कर रहा था। बालक कमल-कलियों को देखकर किलकारी मार रहा था, मानो देवी नीमा को अपनी ओर बुला रहा हो। इस अद्‌भुत रहस्य-मय बालक को देखकर नीमा पहले तो भयभीत हुई, पुनः आश्चर्य चकित हो गयी तथा बालक की ओर घण्टों टकटकी लगाए रही। नीमा का चित्ररेखा के समान हिलना-डोलना बंद हो गया। सौम्य आकृति वाली नवागन्तुक बाला किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रही थी। इधर नीरू ने अधिक विलम्ब देखकर सरोवर की ओर चल दिया और नीमा को थोड़ी दूर पर सरोवर के तट पर ध्यानस्थ देखकर कारण पूछा—किस ओर मन गया है ? दो चार बार कहने के बाद नीमा सचेतावस्था में हुई और सशंकित होकर बोली—देखो यह कमल फूलों पर कैसा बालक है ? जो अल्लाह पाक के नूर की भाँति शोभायमान हो रहा है। क्या तुम्हें नहीं दिखाई पड़ रहा है ? नीरू ने कहा—कहाँ है ? नीमा ने आगे बढ़ कर कहा देखो वह है। अतः नीरू की दृष्टि सहसा उस बालक पर पड़ी जो लोकोत्तरीय था और संसार को विमोहित कर रहा था, जिसको देखकर नीरू आनन्द-विभोर हो गए और बोले कि यह इन्सान की औलाद नहीं है। यह तो लगता है फरिस्तों का पुत्र है। चलो छोड़ो, यहाँ रुको नहीं, नहीं तो फरिस्ते आकर हमलोगों को बद्‌दुआ दे देंगे।

नीमा ने कहा—नहीं, इसको घर ले चलो। यह बालक परवरदिगार की ओर से आया है। यह बालक मेरे मन को अपनी ओर लुभाए हुए है। नीरू ने कहा—यह मुझे कलंकित करेगा, लोग कहेंगे कि यह नीरू की अवैध सन्तान है। अतः इसको घर ले चलना मुझे अभीष्ट नहीं है। इसे यहीं छोड़ दो। चलो, इसको ले चलना ठीक नहीं है। अस्तु प्रथम मिलन के कारण देवी नीमा कुछ कह नहीं पा रही थी। क्या कहें, परवशता मनुष्य को सुख नहीं देती ! परन्तु बालक ने अपने सौंदर्य से नीमा को छल लिया था। वह उसको ले चलना ही अभीष्ट समझती थी। क्या कहें, मियाँ जी लोक भ्रांति में पड़े हुए थे। वे भी बालक की छटा देख कर आश्चर्य चकित हो रहे थे। संपूर्ण सरोवर उस शिशु की आभा से

आकाशवाणी के द्वारा कबीर साहब का परिचय

देदीप्यमान हो रहा था मानो त्रिलोकी उस ओर नतमस्तक हो रही हो।

उसके तेज के समक्ष अन्य तेज पुञ्जहीन लग रहे थे। पर नोरू उसे ले चलना अच्छा नहीं समझते थे। इधर नीमा देवी भगवान् हरि से मन ही मन प्रार्थना कर रही थीं कि पतिदेव की मति विमल हो जाय और इस नव-जात शिशु को घर ले चलने के लिए राजी हो जायँ। अस्तु, नैमुन्निशा की पुकार को उनकी अन्तरात्मा को सुननी पड़ी और आकाशवाणी के रूप में निनाद हुआ कि अरे नूर अली ! इस शिशु को ले जाओ। यह मेरी इच्छा से तुम्हें प्राप्त हुआ है। तुम संदेह मत करना। यह बालक तुम्हारे यश को बढ़ाएगा एवं तोनों लोकों में इसकी प्रसिद्धि होगी। इस बालक के रूप में स्वयं परात्पर शक्ति ही है, ऐसा समझो। अतः आकाश-वाणी की बात को सुनकर मियाँ नीरू करबद्ध प्रार्थना करने लगे और बोले—प्रभो ! यह बालक किसका है ? आकाशवाणी ने कहा—यह शिशु अयोनिज अनन्त जन्म का योगो पुरुष है। यह इच्छाचारी योगी है। अपनी योग माया से अनेक शरीरों का त्याग करके कायाकल्प करता रहता है और जीवन मुक्त पुरुष है। यह प्राणापाण की गति जानता है, यह कभी काल के अधीन नहीं होता, सदैव काया-कल्प करता रहता है। अनेक बार इसने संसार का उपकार किया है। गत रात्रि अचानक यहाँ पर आकर प्रकट हुआ है। यह बालक की शरीर में प्रवेश कर गया है। इस समय बालक की अल्प अवस्था के कारण संज्ञाशून्य जैसा प्रतीत हो रहा है, परन्तु इसकी संज्ञा विलुप्त नहीं हुई है। यह तुम्हारे घर जाना चाहता है। इसलिए अपनी धर्मपत्नो को आदेश दो कि सरोवर से बाहर ले आकर चले। यह मेरा अंश है। मैंने अपनी इच्छा से लोक हित के लिए स्वयं इसे भेजा है।

तुम इसको ले जाओ इतना कहकर आकाशवाणी मौन हो गई। तत्पश्चात् नीरू ने सरोवर में प्रवेश किया और सहसा बालक को लाकर नीमा को दे दिया। नैमुन्निशा उस बालक को लेकर प्रसन्नचित्त होकर शीविका में बैठ गई और नीरू के आदेशानुसार कहारों ने पालकी उठाई एवं घर की तरफ चल दिए। दो दण्ड में नीरू मियाँ के घर पर पहुँचकर कहारों ने मुख्य द्वार पर शीविका रख दी। शीविका रखते ही आस-पास की स्त्रियाँ एवं कुटुम्बियों के घर की स्त्रियाँ शीघ्राति-शीघ्र शीविका के पास आकर खड़ी हो गईं, जो पहले से ही नवागंतुक वधू के आने की प्रतीक्षा में रहीं कि नयी दुल्हन कब आवेगी। शीविका देखते ही भीड़ लग गई। लोगों की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा।

कुछ सम्बन्धियों की स्त्रियाँ नयी बहुरिया को शीविका से उतारने का उपक्रम करने लगीं। नेगियों ने शीविका पट उठाया और देखा तो दुल्हन की गोद में लोकोत्तरीय बालक है, जिसको देखकर उक्त स्त्रियाँ पीछे की ओर हट गईं और काना-फूसी करने लगीं। थोड़ी देर के लिए उत्साह में भंगता आ गई, परन्तु नूरअली के संकेतों पर संबंधियों की स्त्रियाँ बालक के सहित नीमा को पालकी से उतार कर अन्तःपुर में ले गईं। इधर क्षणमात्र में ही मुँहेमुँह बात विद्युत की भाँति समीप के निवासियों में फैल गई। तदनन्तर समीप के लोग एवं लुगाइयाँ नूरअली के द्वार पर एकत्र होने लगीं। बालक को देखने के लिए अपार भीड़ उमड़ आई। लोगों के मुख से यह निकल रहा था कि अभी यह मायके में थी, भला इसको लड़का कैसे और किसके द्वारा हो गया, इत्यादि। लोग शंकायुक्त काना-फूसी करते रहे और नीरू से जानने की जिज्ञासा भी करने लगे। नूर अली के संबंध का एक मजहर अली नाम का उनका चाचा था। उसने पूछा—नीरू! नीरू!! यह बालक तुम्हें कैसे उपलब्ध हुआ? मुझे सच-सच बताओ। नीरू ने उक्त वृद्ध मजहर अली के बार-बार पूछने पर संपूर्ण बातें कह सुनाईं। नीरू के वचनों को एकत्रित भीड़ ने ध्यानपूर्वक सुना और कुतूहल की बातें बार-बार पूछने वाले पूछते थे, जिसको अनेक बार विनम्र एवं शांत मन से बिना घबड़ाए नीरू कह रहे थे। तदनन्तर नूर अली मौन हो गए। उपर्युक्त विवरण को सुनकर बहुतेरों ने अविश्वास प्रकट किया और कुछ लोगों ने सच भी माना। जिसके मन में जो भावना थी वह कहता सुनता रहा, परन्तु एक बात सभी के मुख से निकल रही थी कि बालक जैसे भी मिला हो, पर यह साँवला-लुभावना मन को मोहित किए जा रहा है। बालक को देखकर किसी की इच्छा पूरी नहीं होती थी। लोग यह कहते हुए चले जा रहे थे कि यह बालक सुन्दरता में अद्वितीय है। इसलिए नीरू की बात सत्य हो भी सकती है कि यह बालक खुदा का भेजा हुआ है।

इधर नीरू के मन पर अनेक प्रकार की बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे अपने दैनिक कार्य में लगे रहे। साथ ही उन्होंने आए हुए अतिथियों का यथा उचित सेवा सत्कार किया। नेगी—योगियों को सामर्थ्य अनुसार नेग आदि से सम्मान किया और प्रेम पूर्वक सभी को विदा किया। एक बात खटकने लगी कि बालक क्या पीएगा, क्योंकि नीमा के पास दूध तो है नहीं। इसलिए दूध का प्रबंध करना चाहिए।

यह विचार कर आस-पास के लोगों से गाय का पता लगाने लगे। गाय मिल भी गई और उसका दूध बालक को पिलाने का उपक्रम होने लगा। परन्तु ज्यों ही देवी नीमा ने बालक के मुख के पास दूध का पात्र लगाया त्योंही बालक ने मुख बंद कर लिया। बार-बार दूध पिलाने का प्रयास होता रहा पर बालक दूध ग्रहण नहीं कर रहा था। अतः बालक के दूध न पीने से दम्पति चितायुक्त हो गये। परिवार के सदस्यगण, उस बालक के उपचार के लिए यत्र-तत्र दौड़ने लगे। वैद्य, हकीम, ओझा-सोखाओं की दुआ फकीरी होने लगी, परन्तु कोई भी उपाय कारगर सिद्ध नहीं हुआ। देखने वालों की भीड़ लगी रहती थी। बालक की सुन्दरता लोगों को आकर्षित करती रही। सभी प्रकार के प्रयत्न करने पर भी बालक ने दूध नहीं ग्रहण किया। यह बात चारों ओर क्षणदा की भाँति पूरे नगर में फैल गई।

बालक न तो सदुग्धा युवती का स्तन ही पकड़ रहा था और न तो गाय आदि का दूध ही पी रहा था। इस प्रकार लोगों के मन में संदेह हो गया कि बालक अब जीवित नहीं रहेगा। इस प्रकार की चर्चा भी संपूर्ण नगर में दौड़ गई। इधर दुआ-दया करने वाले साधु-फकीरों में एक अज्ञात संत आये, जिन्होंने नीरू को एक वनौषधि दी और कहा कि इसे ले जाकर बालक के मुख से स्पर्श करा दो। सन्त का आदेश पाते ही नीरू ने उक्त औषधि को ले जाकर बालक के मुख से स्पर्श कराया। स्पर्श कराते ही बालक सचेत हो गया, उसकी आँखें खुल गईं। पड़ोस की एक करमा नाम की सदुग्धा ब्राह्मणी आकर बालक को स्तन पान कराने लगी। बालक स्तन पान करने लगा। एक सेठ ने, जिससे नीरू का बड़ा प्रेम था, उसने एक दुग्धावती गाय भी दी और कहा कि अपने पोषित पुत्र को इसका दूध पिलाओ। नीरू ने इसे स्वीकार कर लिया। करमा ब्राह्मणी की कथा इस प्रकार है कि उसका तत्काल पैदा हुआ पुत्र तिरोहित हो गया था। इसी कारण उसके स्तन से दूध टपक रहा था और वह दया के वशीभूत होकर स्वेच्छया दूध पिलाने आया करती थी। वह बड़ी भगवद्भक्त थी, वह जब तक जीवित रही बालक उसी के साथ रहता था। बालक दूध पीने लगा। यह देखकर नीरू एवं नैमुन्निशा तथा परिवार के लोग सुखशान्ति से रहने लगे।

नामकरण

नीरू के मन में यह भाव जागृत हुआ कि अब बालक का नामकरण करना चाहिए। छह महीने का दिन व्यतीत हो गया, यह सोचकर कुछ

सम्बन्धियों को आमन्त्रित किया। नामकरण पर विचार होने लगा। उनके चाचा मजहर अली ने कहा कि पहले कुल पुरोहित को बुलाओ। वही जो नाम रखेंगे, वही नाम होगा। चाचा की आज्ञा पाकर नीरू ने पुरोहित को बुला लिया। नाम पर विचार करने के बाद कुल पुरोहित ने कहा कि बालक का नाम 'कबीर' पड़ रहा है। इस पर अन्य पुरोहित के सहयोगियों में नोंक-झोंक होने लगी और कहा कि 'कबीर' नाम अल्लाह परवरदिगार का है। यह नाम केवल सैयद घराने के लड़कों का रखा जाता है। यह साधारण लोगों के लड़कों का नाम नहीं हो सकता, परन्तु कुल पुरोहित ने सभी को डाँटा और कहा कि यह समृद्ध-शालियों की उपर्युक्त परिकल्पना है। इसलिए नीरू के पुत्र का नाम 'कबीर' ही रहेगा। अन्ततोगत्वा 'कबीर' नाम बालक का पड़ ही गया। कुल-पुरोहित को दान-सम्मान के साथ नीरू ने विदा किया और नामकरण के दिन से लोग बालक को 'कबीर' के नाम से उद्घोषित करने लगे। धीरे-धीरे बालक कबीर तीन वर्ष के हो गये। परिवार में एकमात्र लड़का होने के कारण कबीर हाथों के खिलौना बने रहे। लगभग दिन भर गोद में ही रहने लगे। खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी। परिवार मझोला था बड़े सुख से जीवन व्यतीत हो रहा था।

संस्कार विधि

इधर बालक 'कबीर' अब धीरे-धीरे पाँच वर्ष के हो चले। उनके शिश्नोच्छेदन संस्कार की भी बात चलने लगी। इसका कारण यह था कि मोहम्मदीय सम्प्रदाय में होने के कारण धर्म की बड़ी कट्टरता थी। इसीलिए पाँचवे वर्ष में शिश्नोच्छेदन संस्कार कर देना चाहिए, क्योंकि जब तक उक्त संस्कार नहीं होता तब तक उसको स्वधर्मी नहीं माना जाता। इसीलिए पुरोहित एवं सम्बन्धी लोग नीरू को सलाह देने लगे कि कबीर का उपर्युक्त संस्कार करा दीजिए।

नूरअली ने मजहर अली के साथ विचार-विमर्श करके पालित पुत्र का शिश्नोच्छेदन संस्कार का आयोजन निश्चित किया, क्योंकि यह संस्कार मोहम्मदीय धर्म में सर्वोत्कृष्ट संस्कार माना जाता है, जो बड़े ही धूम-धाम से मनाया जाता है। उसकी तिथि मियाँ नीरू ने सुनिश्चित करके अपने सगे सम्बन्धियों को आमंत्रित किया। निश्चित तिथि के एक दिन पहले ही अर्ध-रात्रि में मियाँ जी को स्वप्न में एक भद्र पुरुष का दर्शन हुआ, जो सन्त का स्वरूप धारण किए हुए था और उसने स्वप्न

में कहा कि "मियाँ तुम अपने पालित पुत्र का शिश्नोच्छेदन संस्कार मत कराना। यह बालक कबीर भागवत-वैष्णव होगा, जो संसार की मोह माया से दूर रहेगा। इसलिए उक्त संस्कार के चक्कर में तुम मत पड़ो, अन्यथा तुम्हारा अहित होगा।"

उक्त बातों को कहकर स्वप्न-पुरुष अदृश्य हो गया। यद्यपि मोहम्मदीय ज्योतिषियों ने नामकरण के समय में ही उपर्युक्त बातें फलित ज्योतिष के अनुसार कही थी कि शिश्नोच्छेदन संस्कार इसका नहीं हो पाएगा, ऐसा योग मिल रहा है। सभी बातों पर विचार करने के बाद मियाँ नीरू का मन विचलित हो गया और मजहर मियाँ से बोले कि कबीर का वर्ण संस्कार करना छोड़ दो। मैंने आज रात्रि में स्वप्न देखा है कि कोई कह रहा है कि कबीर का वर्ण संस्कार करना मना है। कहिए, क्या किया जाय? अब मेरा साहस नहीं हो रहा है। मजहर नीरू को बहुत मानता था। उसने कहा कि जो तुम्हारा विचार हो सो करो। मैं कुछ भी कहने में असमर्थ हूँ। अतः चाचा मजहर और स्वप्न-दर्शन की बातों से नीरू का मन दृढ़ हो गया कि अब उपर्युक्त संस्कार नहीं कराना चाहिए। उक्त विचार पर आरूढ़ होकर नूर अली ने मोहम्मदीय समाज को सूचित कर दिया कि मैं अपने पालित पुत्र कबीर का जातीय संस्कार अभी नहीं कराऊँगा, परन्तु धार्मिक कट्टरता के कारण निश्चित तिथि पर कुल पुरोहित सहित कुटुम्बीगण आकर मियाँ नीरू को डराने-धमकाने लगे और कहने लगे कि यदि तुम इस बालक कबीर का संस्कार नहीं कराते हो, तो तुझे जाति से अलग कर दिया जाएगा तथा तुम्हारे यहाँ विवाह आदि कार्य में कोई भी भाई-बन्धु शामिल नहीं होगा। इस प्रकार से सामाजिक बन्धनों की बातें कुटुम्बोजन एवं पुरोहितों ने सुनाई और बद्दुआ भी देने लगे, परन्तु नूर अली साहब ने किसी की एक भी न सुनी। वे अपने विचारों पर अडिग रहे। उधर अभ्यागत एवं अतिथि अपने-अपने स्थान के लिये प्रस्थान कर दिये। अब भी नूर अली साहब के विरुद्ध लोगों ने अनेक षड्यन्त्र रचना शुरू किया, पर नूर अली ने सभी का सामना किया। अन्ततोगत्वा विजय नूर अली साहब की हुई। कुछ दिन के लिए विरोधीगण शान्त हो गए, पुनः कुछ समय के बाद उन लोगों ने अपना कार्य पूर्ववत् आरंभ कर दिया। इस बार सुदूर देशों से धार्मिक नेता बुलाए गए तथा नूर अली के विरुद्ध पंचायत की गई। इसमें श्री नूर अली भी बुलाए गए। उन पर साम्प्रदायिक

नियम को तोड़ने के आरोप और विरुद्धाचरण के दोष भी लगाए गए, फलस्वरूप धार्मिक न्यायविदों ने दण्ड के रूप में इक्यावन मुद्रा देने के लिए कहा और प्रत्येक पंचों से अपराध के लिए क्षमा याचना भी करने का निर्णय दिया गया। तत्पश्चात् कबीर का शिश्नोच्छेदन संस्कार कराना अन्तिम क्षमा थी। यदि ऐसा नहीं किया गया तो परिणाम भयंकर होंगे। उक्त निर्णय नहीं मानने पर अवहेलना का कड़ा दण्ड दिया जाएगा। संभव है कि तुम्हें वाराणसी भी छोड़ना पड़े और तुम पर कोड़े भी बरसाये जायँ। अस्तु, नूरअली साहब की आत्मा के विरुद्ध होने पर भी समाज के समक्ष इस बार नूरअली को नतमस्तक होना पड़ा और उक्त समाज की उपस्थिति में ही शिश्नोच्छेदन कार्य का आयोजन किया गया बालक कबीर को नूरअली साहब के प्राङ्गण में लाने के लिए पुरोहितों का आदेश हुआ। बालक कबीर पकड़कर लाए गए। उक्त भीड़ को देख-कर कबीर मुस्कराने लगे और बोले—अब्बा! अब्बा! कौन-सा तमाशा होगा? नूरअली बालक कबीर की बात सुनकर गद्गद हो गए और बोले—बेटा! आज तुम्हारा जातीय संस्कार होगा। इतना ही कहकर पिता-पुत्र दोनों मौन हो गए। कबीर की आकृति देखकर कुछ लोगों के मन में विचित्रता उत्पन्न हुई और मन ही मन कहने लगे कि यह बालक खुदा का विशेष कृपा पात्र है, क्योंकि इसके लक्षण महापुरुषों एवं फ़रिस्तों के समान हैं। आगे चलकर यह बालक कबीर चमत्कारी (करामाती) पुरुष होगा। नीरू धन्य है, जिसने कबीर जैसा खूबसूरत औलाद पायी। अल्लाह की मेहरबानी से ही ऐसा औलाद इन्सान को प्राप्त होता है। उक्त बातें कहते हुए शिश्नोच्छेदन के अन्य कार्य संपादन करने के अनन्तर बालक कबीर को स्नान कराया गया तथा अच्छे वस्त्रों से अलंकृत करके एक सुनहले आसन पर आसीन किया गया। तत्पश्चात् मौलवियों ने इबादद के साथ कलमा आदि मन्त्र पढ़े और नाई को आदेश दिया कि अपना छुरा लेकर प्रस्तुत हो जाओ, नाई ने वैसा ही किया। इधर नीरू छुरे का नाम सुनते ही स्वप्न की बात स्मरण करके किसी कार्य के बहाने अन्यत्र चले गए। जैसे ही शिश्नोच्छेदन की बात सामने आई वैसे ही सहसा प्राङ्गण में एकत्रित भीड़ के बीच बालक कबीर के निकट सिंह की भयानक गर्जना हुई। इतने सबल स्वरों में प्रतिध्वनि हुई कि उपस्थित लोगों के नेत्र बन्द हो गए। कान से दूसरी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ना बन्द हो गया। एक दूसरे को पकड़कर सभी लोग

चिपक गए। बहुतों ने भय से मल-मूत्र तक कर दिया, कितनों को मूर्छा आ गयी। लोग इतना घबड़ा गए कि मृतवत् हो गए। उक्त स्थान पर सिंह बारम्बार दहाड़ रहा था। पहले से ही बलिदान के लिए गो-वत्सा के बंधन खुल गए। रस्सी के टूटते ही बाहर वत्सरी भाग चली। चारों तरफ हाहाकार मच गया। सभी लोग या खुदा या खुदा, पनाह दो, पनाह दो, ऐसा कहने लगे। अब हम लोग कबीर का जातीय संस्कार नहीं करेंगे। इस प्रकार सभी बार-बार प्रार्थना करने लगे, परन्तु सिंह की भयानक गर्जना शान्त नहीं हुई। लोगों को क्षणभर का समय युग के समान लग रहा था। कोई आश्रय न मिलने पर विचित्र दशा में लोग नीरू! नीरू!! चिल्लाने लगे और कहने लगे आइए हम लोगों का प्राण बचाइए। लोगों की चिल्लाहट सुनकर मियाँ नूर अली शीघ्रता से आए और देखा कि बालक कबीर के समीप नव कुंजर घोर गर्जना कर रहा है। सभी लोग अचेत होकर भयावह दशा में पड़े हुए हैं। सभी को हत-संज्ञा देखकर मियाँ नीरू भी घबड़ा गए। कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि यह क्या है? जब बालक कबीर की ओर उनकी दृष्टि गई तो देखा कि एक विशालकाय नरसिंहराज खड़ा है। जिसका अर्द्ध भाग मनुष्य का है और आधा भाग ऐसे रूप का है जिसको मियाँ जी ने कभी देखा तक नहीं था। वही नरसिंह बालक कबीर को अपनी जिह्वा से चाट रहा है। आँखें अरुणोदय सूर्य के समान दिखाई दे रही थीं। बड़े-बड़े दाँत मुख के दोनों ओर निकले हुए थे। मुखाकृति मानों प्रलय कालीन यमराज के समान भयदायक लग रही थी। इतना ही नहीं, मालूम पड़ता था कि त्रिलोक को क्षण मात्र में भक्षण कर जायगा। उक्त भयानक दृश्य को देखकर मियाँ नीरू भी भयभीत हो गए। मियाँ जी यह नहीं सोच पा रहे थे कि मैं स्वप्न में हूँ या जागृत अवस्था में हूँ। अस्तु, मियाँ जी हाथ जोड़कर आकाश की तरफ सिर उठाकर प्रार्थना करने लगे और कहने लगे कि—हे परवरदिगार! जहाँपनाह! मौला-मालिक! मददगार! मेहरबान! इन सभी के कुसूरों को माफ कर दीजिए। हे प्रभो! जातीय संस्कार कराने का मेरा इरादा नहीं था, लेकिन इन सभी के दबाव के वशीभूत होकर मैंने स्वीकार कर लिया था। हे अल्लाह ताला! तुम अन्दुरूनी की हालात से वाकिफ़ हो। मैं नादान भले ही तुझे नहीं जानता; तुम सबको जानते हो! हे प्रभो! इसमें मेरा कोई कुसूर नहीं है। नूर अली के इस प्रकार से गिड़गिड़ाने पर आवाज हुई—खामोस! खामोस! उक्त शब्द को सुनकर

मियाँ नूर अली की आँखें खुल गईं, देखते हैं तो न कहीं सिंह है और न ही कोई भय है। सभी को होश आ गया और वे लोग कहने लगे कि नीरू आपका पोष्य-पुत्र बड़ा करामाती है, जिसने इतना बड़ा भय हम लोगों के सम्मुख उपस्थित कर दिया था। अतः हम लोग तुम्हारे लड़के को कभी नहीं छेड़ेंगे। सभी को उपर्युक्त घटना का चिन्तन करते ह रोमांच हो जाता था और भय से वे मल-मूत्र कर देते थे। लोग इतने भयभीत हो गए थे कि जाते समय मियाँ नीरू से मिले तक नहीं। इतनी शीघ्रता से सिर पर पैर रख कर भागे कि कहीं पुनः सिंह न आ जाय। इसी प्रकार की बातें सोचते हुए लोग भागे जा रहे थे तब तक नीरू का पुरोहित एवं नाई ने एक आश्चर्ययुक्त बात कही। नाई ने कहा कि नीरू का लड़का मनुष्य नहीं वह तो "जिन" है, क्योंकि जब मैंने अस्तुरा उठाया तो उसके जिस्म में पाँच लिंग दिखाई दिये, तव तक कुल पुरोहित ने कहा कि हाँ, मुझे भी पाँच लिंगों के दर्शन हुए। दोनों अन्य लोगों से भी कहने लगे। जो सुनते थे वे सभी आश्चर्यचकित हो जाते थे। कुछ लोग कहते थे कि अब नीरू के गृह नहीं जाना चाहिए, क्योंकि उसका पोष्य-पुत्र बड़ा ही करामाती एवं 'जिन' है। जो कभी नीरू को भी खा जायेगा। अतः उपर्युक्त बातों की चर्चा महीनों तक चलती रही।

कबीर साहब का पारिवारिक व्यवसाय

मियाँ नीरू भी बालक कबीर से डरते रहे। उन पर किसी प्रकार का कोई दबाव नहीं देते थे, परन्तु बालक कबीर नित्य प्रति माता नीमा एवं पिता नीरू के साथ उसी प्रकार से स्नेह करते थे जैसे बालक अपने माता-पिता से वात्सल्य भाव से सम्पर्क रखता है। अस्तु, एक पारिवारिक जीवन की भाँति अपना जीवन व्यतीत करने लगे। अभेद रूप से प्रतिदिन लोक व्यवहार की बात करते रहे। प्रातःकाल माता-पिता, पितामह-पितामही आदि के चरण स्पर्श करते रहे और जातीय व्यवसाय भी अपने पिता के साथ सीखते थे। कपड़ा बुनना, सूत कातना, सूतों को माजना आदि कला को बालक कबीर ने अल्प काल में ही सीख लिया था। बालक कबीर अल्पभाषी और बिना बुलाए किसी से बोलते नहीं थे, बाल्यावस्था में ही मातृ-पितृ भक्ति में लीन रहा करते थे। पिता के साथ वस्त्र-विक्रय हेतु मण्डी में जाना, मण्डी से सूत आदि क्रय कर लाना उनका कार्य था। अस्तु, सभी व्यवहार में दक्ष हो गये थे। पवित्रता तो मानो बालक कबीर को जन्मजात सिद्धि थी। अभक्ष्य भोज्य पदार्थ एवं

जातीय आहार लेना जन्म से ही नहीं था। बालकों में वही खेल खेलते थे, जो मानव उपकारी एवं जो कार्य स्थानीय घर के लोग करते थे। जैसे—नमाज पढ़ना, कला पढ़ना तथा महलूद की कथा करना और कपड़ा बुनना, सूत कातना आदि क्रीड़ा क्षेत्रों में खेला करते थे। वे द्वार पर आए हुए दीन-दुखियों, भूखे-भिखमगों को बिना कुछ दिए लौटाते नहीं थे। अन्न, वस्त्र, बाँटना उनका दैनिक कार्य था। किसी-किसी खेल में तो वे मौलवियों की भाँति बैठकर 'कुरान' पढ़ाया करते थे। अतः जो भी कार्यरत लोगों को देखते थे, वही कार्य खेल आदि स्थानों पर खेला करते थे। आये दिन इस प्रकार का व्यवहार बाल्यावस्था में किया करते थे कि उनके व्यवहार से मियाँ नीरू बहुत प्रसन्न रहा करते थे। एक क्षण भी कबीर को अपनी आँख की ओट से ओझल होने नहीं देते थे। एक दिन नीमा ने कहा—बेटा, अब तुम सयाने हो गए हो, तुम्हें मकतव (मदरसा) में बैठना चाहिए। मियाँ नीरू पत्नी की बात सुनकर बोले, तुमने बहुत अच्छी बात कही। अगले दिन प्रातः कबीर को विद्यालय में ले गए और साम्प्रदायिक पण्डित की जिम्मेदारी पर लगाकर घर लौट आए। जैसे हो नीरू घर पर आए, वैसे ही बालक—कबीर पट्टी पन्ना लेकर आ गए। नीरू ने उन्हें देखा और कहा—बेटा, क्या तुम्हारी छुट्टी हो गई? कबीर ने कहा—नहीं, मैं पढ़ने नहीं जाऊँगा। इसी प्रकार से महीनों ऐसे ही मियाँ नीरू करते रहे। परन्तु लगता था कि कबीर के भाग्य में विद्या है ही नहीं। अन्त में मियाँ जी हार मानकर घर ही में कबीर को पढ़ाने लगे एवं उन पंडितों को भी बुलाकर घर पर ही शिक्षा दिलाना उत्तम समझा। थोड़े ही समय में बालक कबीर अपने व्यवहार एवं कुरान आदि का पाठ पढ़ने में समर्थ हो गए। बाद में पढ़ना छोड़कर घर का ही कार्य करना अच्छा समझ कर घर पर ही रहने लगे। उधर नीरू की इच्छा थी कि बेटा पंडित हो जाय। इसलिए उन्होंने पुनः बड़ी कोशिश की कि कबीर पढ़े, परन्तु कबीर को पढ़ाई से मतलब ही नहीं था। अन्ततोगत्वा मियाँ जी पराजित होकर उन्हें जातीय व्यवसाय को ही सिखाना अत्युत्तम समझा। कबीर इसमें पूर्णरूपेण दक्ष भी हो गए।

कबीर साहब वैराग्य स्थिति में एवं स्वामी रामानन्द से दीक्षा

संसार का व्यवहार पिता के साथ कुछ काल तक चलता रहा, जिससे मियाँ जी के मन में आशा बँध गई कि मेरा पोष्य-पुत्र मेरी

जिन्दगी का भली प्रकार से निर्वाह करेगा। परन्तु यह आशा कुछ दिन के बाद निराशा में परिणत होने लगी। जैसे-जैसे बालक कबीर बड़े होने लगे वैसे-वैसे ही संसार की मोह-माया से दिन-प्रतिदिन उदास होने लगे। इसी कारण गृहकार्य में अभिरुचि का अभाव होने लगा, कभी-कभी पिता के साथ मण्डी में वस्त्र बेचने जाते थे तो शून्य सा बैठे रह जाते थे। ऐसा लगता था कि कबीर का मन कहीं ऐसे स्थान पर लगा हुआ है जहाँ कोई अनुभव नहीं कर सकता था कि वे क्या सोच रहे हैं? पहले की भाँति क्रय-विक्रय के कार्य में पुत्र को न देखकर मियाँ नीरू मन ही मन चिन्तित रहने लगे और उधर कबीर की मनोवृत्ति दूसरी ओर अग्रसर होने लगी। कभी-कभी मौलवियों के घर जाकर बैठे रह जाते थे, तो कभी-कभी कुरान या जिस किसी धर्म की कहीं व्याख्या होती थी, वहीं पर बैठे रहते थे। तत्कालीन समाज में धार्मिक प्रचार बड़े तीव्र गति से चल रहा था, जिसमें मोहम्मदीय एवं नाथ-पंथियों का बोल-बाला था। उनके तर्क या उनके सिद्धियों के समक्ष लोग नतमस्तक हो रहे थे। दूसरी ओर निम्बार्क सम्प्रदाय एवं रामानन्दीय समाज का प्रचार तीव्र गति से हो रहा था। प्रचार का माध्यम कथा-कीर्तन विशेष रूप से था। इसी प्रकार से मोहम्मदीय सम्प्रदाय के लोग भी तीव्र गति के साथ हिन्दुओं पर अत्याचार एवं भय दिखलाकर अपने धर्म में उन्हें दीक्षित कर रहे थे। उतावले समुद्र की भाँति कभी इधर लोग झुकते थे तो कभी उधर। लोगों के मन में द्वंद्ववाद छा गया था। कुछ लोग निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि मूर्तिपूजा का समर्थन किया जाय या उसका विखंडन। कोई सिद्धि तथा चमत्कार को ही मुक्ति का द्वार बतलाता था। इसी प्रकार से अनेक मतमतान्तर चल पड़े थे। मोहम्मदियों के भय से लोग घबड़ाए हुए थे। उक्त सम्प्रदाय में किसी की भी श्रद्धा नहीं थी। केवल भय के कारण लोग उसमें जाते थे। इसका मुख्य कारण यह था कि न तो उसमें शुद्धाचार की भावना थी और न ही अहिंसा धर्म की। व्यभिचार पर भी कोई विरोध नहीं था। सत्य, संतोष, विवेक, क्षमा, धैर्य आदि दैवी गुणों का अभाव था। बात ही बात में मोहम्मदीय लोग आपस में झगड़ जाते थे। अपने से अलग धर्मावलम्बियों की हत्या कर देते थे। हिन्दुओं की बहू-बेटियों को सशक्त होने के कारण छीन लेते थे। इतिहास इसका साक्षी है और कहता है कि यह सम्प्रदाय कितना उद्दण्ड रहा है। ये सुन्दरी स्त्रियों के लिए अनेक बार लड़ाइयाँ लड़े हैं। उनके

धर्म को न मानने वाले लोग गाय को मातृवत् मानते थे और मोहम्मदीय लोग गाय को मार कर खा जाते थे। अतः जिस बात को हिन्दू लोग अधर्म कहा करते थे उसी बात को हिन्दू के धर्म को न मानने वाले लोग धर्म कहा करते थे। इसी प्रकार से एक दूसरे के पुण्य को पाप कहना श्रेष्ठ था। एक दूसरे की मान्यताओं से एक दूसरा बिलकुल विपरीत कार्य कर रहा था। फलस्वरूप आपस में मतैक्यता नहीं हो पा रही थी, जिसके कारण मोहम्मदियों को भारत में धार्मिक सफलता पूर्णरूपेण प्राप्त न हुई। अस्तु, काम-क्रीड़ा एवं हिंसा की वृद्धि हो जाने के कारण इस्लाम धर्म में लोगों का आना-जाना पूर्णरूपेण अवरुद्ध हो गया। इसी प्रकार से नाथ-पंथियों में भी लोगों का झुकाव कम हो गया। इसका कारण यह था कि नाथपंथी भी हिंसा के मार्ग को अपनाए हुए थे। मांस-मदिरा आदि में दोष नहीं मानते थे। सिद्धियों के बल पर समाज को उत्पीड़ित करते थे। इसीलिए समाज नाथों से घृणा करने लगा था। इधर इनके विपरीत निम्बार्क संकीर्त्तन समाज एवं रामानन्दीय समाज में जन समूह झुण्ड के झुण्ड आने लगा। यहाँ तक कि मोहम्मदीय भी रामावतों में आकर मिलने लगे। इसका कारण यह था कि इनके प्रचारक बड़े सौम्य और सुनियंत्रित रहा करते थे और श्रीराम की भक्ति का प्रचार बड़ी सरल रीति से कर रहे थे। उनका सिद्धान्त था कि किसी को मारो नहीं, किसी को भला-बुरा न कहो, किसी से घृणा न करो। सभी प्रभु की संतान हैं। इसलिए सभी पर दया की भावना रखो एवं न्याय के साथ इस असार संसार में निवास करो। तुम दुःख देने के लिए नहीं आए हो।

तुम मनुष्य हो तुम्हारा कर्त्तव्य होता है कि दूसरों की भलाई करो, किसी की निन्दा मत करो। किसी से डाह एवं बैरभाव नहीं रखना। परस्पर प्रेम से मिलो, किसी से भेद-भाव करना छोड़ दो। इस संसार में सभी का समानाधिकार होता है। इसलिए सभी को जीने दो। दूसरों के अधिकारों का अपहरण न करो। संसार के सभी प्राणी प्रभु के दया पात्र हैं। इसलिए तुम्हारा अधिकार नहीं है कि तुम किसी को कष्ट दो। जो वस्तु तुम्हारे पास अधिक है उसका सभी लोग मिलकर भोग करो, केवल अपने ही भोग करने में न रहो। सभी को अपनाओ, जाति-पाँति वर्णाश्रम से ऊपर उठो, छूआ-छूतरूपी पिशाच को भगा दो। स्वकर्त्तव्य परायण हो जाओ। एक दिन सभी को मरना निश्चित है।

जब तक जीवन रहे तब तक परमार्थ कर लो, जिसने तुमको भेजा है उसकी भक्ति कर लो। संसार असार है कोई किसी का नहीं है, केवल शुभ कर्म हो साथ जाएगा और सब कुछ यहीं पड़ा रहेगा। राम-राम, श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण का जाप कर लो, इत्यादि उद्घोष होते थे, लोग उक्त उद्घोष को सुनकर अपने को भूल जाते थे। सभी लोग चाव से उस ओर बढ़ने लगे। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत वैष्णव बन गया, उधर विपक्षियों का ह्रास दिन-प्रतिदिन होता गया। चतुर्दिक वैष्णवों की धाक जम गई। जहाँ भी सुनाई पड़ता वहाँ श्रीराम-श्रीराम का ही निनाद होता था। रामावतों के आश्रम पर इतनी भीड़ एकत्रित हो जाती थी कि कहना कठिन है। सभी लोग कहते थे कि मुझे शीघ्राति-शीघ्र श्रीराम का मन्त्र सुनाइए। सभी सम्प्रदाय के लोग रामावत हो रहे थे। अस्तु, श्रीरामभक्तों की एकाग्रचित्तता को देखकर कबीर का मन भी उधर ही खिचने लगा और गृहकार्य में अनासक्ति अधिक रूप से होने लगी। बालक कबीर प्रतिदिन सभी धार्मिक प्रचारों एवं संकीर्तनों में जाने लगे, जहाँ भी जाते थे वहाँ उस उपदेश को ध्यान पूर्वक सुनते थे, परन्तु अपना क्या कर्त्तव्य है यह निश्चय नहीं कर पा रहे थे। लगभग अवस्था १० वर्ष की हो चली थी, जिसमें पहुँचने पर बालक कबीर अधिक उद्विग्न रहा करते थे, उधर घर पर माता-पिता कबीर को इस्लाम धर्म की ओर ले जाना चाहते थे। विधर्मियों में जाने का उन्हें आन्तरिक कष्ट हो रहा था, पर मुख से कुछ कह नहीं सकते थे। इधर बालक कबीर द्विविधा में पड़े हुए थे, क्योंकि स्वजातीय लोग स्वधर्म की ओर आकृष्ट कर रहे थे। उधर बाहर गंगा-तट पर रामावतों की कथा को सुनते थे पर मन कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था, जहाँ बैठते थे वहाँ बैठे ही रह जाते थे। दो-चार दिन बिना भोजन किए रह भी जाते थे। ऐसी दशा में दिन-प्रतिदिन कबीर का शरीर क्षीण होने लगा।

इधर एकमात्र सन्तान होने के कारण मियाँ नीरू और नीमा पुत्र की दशा देखकर सदा दुःखी रहने लगे। दुआ फकीरी कराना, औषधि कराना दैनिक कार्य हो गया था। परन्तु बालक कबीर को किसी भी उपाय से लाभ नहीं हो रहा था। दिन भर कबीर की सेवा में लगे रहने के कारण घर का व्यवसाय कार्य भी मन्द पड़ गया, क्योंकि कबीर की उदासीनता से माता-पिता हतप्रभ हो गए थे। जो कबीर कपड़ा आदि बेचकर माता-पिता के कार्य में हाथ बँटाते थे वही कबीर

माता-पिता के कहीं चले जाने पर घर की सम्पत्ति को दीन दुःखियों को लुटा देते थे। इस प्रकार कबीर के व्यवहार से उनके माता-पिता प्रसन्न नहीं रहते थे। मियाँ नूर अली के घर मोहम्मदीय सन्त अधिक आते थे, क्योंकि बालक कबीर उन लोगों को अन्यत्र से बुला-बुला कर भोजन आदि देते थे। जिससे उक्त सन्त फकीर कबीर का बड़ा समादर करते थे और उनको "कबीर साह" कहते थे। फकीरों का कहना था कि यह बालक खुदाई बन्दा होगा, इसलिए यह "साहब" है क्योंकि इसके कार्य बड़े पुरुषों जैसे लगते हैं। यह गरीबों पर बड़ी दया रखता है। अस्तु, उक्त लोगों के द्वारा बाल्यकाल से ही बालक कबीर साहब कबीर के नाम से विख्यात हुए। कबीर साहब के व्यवहार से ऊबे हुए माता-पिता पुत्र-स्नेह के कारण कुछ कहने में असमर्थ हो रहे थे। कबीर साहब की दशा दिन-प्रतिदिन विशेष रूप से चिन्तनीय होने लगी। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो रहे थे। इसी क्रम में एक बार कबीर १० दिन तक बिना अन्न-जल के रह गए। अन्त में दसवें दिन अर्द्धरात्रि में बड़ी घबड़ाहट होने लगी। तीव्र वेदना के कारण मन विक्षुब्ध हो गया। ऐसा लगता था कि मानो प्राणपखेरू अब उड़ जाएँगे। माता-पिता निराश हो गए कि अब मेरा इकलौता पुत्र हमारे बीच नहीं रहेगा। इसी प्रकार से वाराणसी के समस्त लोग कबीर साहब की सोचनीय दशा देखकर घबड़ा गए। रोग के निदान का पता नहीं लग रहा था।सभी लोग यही कहा करते थे कितना सुन्दर, मनोहर एवं वृद्धवत् इस बालक का विचार अल्प आयु में ही प्राप्त हैं पर अब सब कुछ निरर्थक हो गया। यह बाल्यावस्था को पार कर गया। इसमें सभी गुण विराजमान हो गए, पर अब जीवित नहीं रहेगा। ऐसा कहते हुए लोग अपने-अपने घर चले गए। इधर अर्द्धरात्रि की बेला में कबीर घबड़ाहट के कारण लम्बे उच्छ्वांस ले रहे थे। दो चार पल के ही अतिथि रह गए थे। इसी बीच एक गम्भीर निनाद सुनाई पड़ा, जो आकाश की ओर से हो रहा था। उक्त निनाद ने कहा कि "कबीर ! कबीर ! चिन्ता न करो। सावधान हो जा ! अब तुम्हें प्रकाश मिलेगा। उठो सचेत हो जाओ। तुझे सत्य का मार्ग प्राप्त होगा।" अस्तु, उक्त वाणी को सुनते ही कबीर चौंककर उठे और सचेत हो गए। तत्पश्चात् बोले कि हे भाई ! तुम कौन हो ? कहाँ से बुला रहे हो ? मेरे समक्ष आओ। पुनः आकाशवाणी हुई की मैं अज्ञात शक्ति हूँ। मुझे तुम अभी नहीं देख सकते, जो मैं कहती हूँ उसको सुनो और करो। तुम माला-तिलक धारण करो, सन्देह का परित्याग

करो। वैष्णव धर्म को ग्रहण करो तथा स्वामी रामानन्द जी से राम-नाम का मन्त्र ले लो और मेरे अतिरिक्त किसी अन्य देवी-देवता का ध्यान नहीं करना तभी मेरा दर्शन पाओगे। कबीर साहब बोले—मैं जाति का कोरी हूँ, उस पर भी मेरे परिवार के लोग मोहम्मदीय धर्म को ग्रहण कर चुके हैं, उधर स्वामी रामानन्द जी महाराज मोहम्मदियों को म्लेच्छ जानकर दर्शन नहीं देते। भला मैं उनसे राम-नाम मंत्र कैसे पा सकता हूँ।

आकाशवाणी ने कहा तुम जाओ। पंचगंगा घाट पर वे रहते हैं, उनसे राम नाम की दीक्षा माँगो[1] यदि वे तुम्हें राममन्त्र नहीं देते हैं तो

---

१. अति ही गंभीर मति सरस कबीर हियो लियो
भक्ति भाव, जाति पाँति सब टारियै।
भई नभ वानी "देहतिलक रमानी करौ,
करो गुरु रामानन्द गरे माल धारियै"॥
"देखैं नहिं मुख मेरो मानिकै मलेछ मोको",
"जातन्हान गंगा कही मग तन डारियै।
रजनी के शेष में आवेश सों चलत आप,
परै, पग राम कहै मन्त्र सो विचारियै।
कीनी वही बात माला तिलक बनाय
गात मानि उतपात मात सोर कियो भारियै।
पहुँची पुकार रामानन्दजू के पास आनि
कही काऊ पूछे तुम नाम ले उचारियै।
"ल्यावौ जू पकरि वाको कब हम शिष्य कियो"?
ल्याये करि परदा में पूछी कहि डारियै।
राम नाम मन्त्र यही लिख्यो सब तन्त्रनि में,
खोलि पट मिले साँचौ मत उर धारियै।

श्री नाभादास जी भक्तमाल श्री प्रियादास जी की टीका, पृ० सं० ४८०-८१

विधनां वाणी बोल्या यूँ। वैष्णव बिनां न द्रस्न द्यूँ॥
जो तूं माला तिलक बणावै। तौर हमारा द्रस्न पावै॥
मुसलमान हमारी जाती, माला पावैं कैसी भाँती॥
भी तौ वाणी बोल्या, यहै रामानंद पै दक्ष्या लेहा॥
रामानंद न देखै मांहीं, कैसे दक्ष्या पाऊ सोई॥
रात बसो गैला में जाई, सेवक सहित वे निकसैं आई॥

मैं उनकी मति को विभ्रमित कर दूँगी। स्वामी रामानन्द ब्रह्ममुहूर्त में शिष्यों के सहित पंचगंगा-घाट पर नित्य स्नान करने जाते हैं। तुम जाकर घाट की सीढ़ियों पर लेट जाना और उधर से वे आवेंगे तो तुम्हारे ऊपर उनका पैर पड़ेगा; तब तुम चिल्लाना और तब वे तुमसे कहेंगे कि वत्स; राम ! राम ! कहो। तुम उसी को गुरुमन्त्र मानकर जप करना। तभी मैं तुझे चतुर्भुज रूप में दर्शन देती रहूँगी। इतना कहकर आकाशवाणी मौन हो गई। उधर कबीर साहब के जी में जी आ गया। बिना सोचे समझे प्रातः होते ही स्वामी रामानन्द के आश्रम पर कबीर गए और अपने निश्चय को आश्रम के द्वार पर प्रहरी शिष्यों से कह सुनाया। कबीर साहब की बात सुनकर द्वाररक्षक शिष्यों ने अन्तः पुर में जाकर स्वामी रामानन्द जी से ज्यों का त्यों कह सुनाया। द्वाररक्षक शिष्यों के द्वारा कबीर साहब का सन्देश सुनते ही स्वामी रामानन्द जी ने डाँटकर कहा कि उस म्लेच्छ को यहाँ से तुरन्त भगा दो, नहीं तो मैं तुझे ही शाप दे दूँगा। स्वामी जी के रोषयुक्त वचन को सुन करके भयभीत शिष्यों ने द्वार पर खड़े कबीर साहब को भगा दिया।

जब द्वाररक्षकों के द्वारा कबीर को यह पता चला कि स्वामी रामानंद जी मुझे अपना शिष्य बनाने में जातिबंधन का बहाना ले रहे हैं, तो इससे उनके मन में निराशा हुई, परंतु ग्यारह वर्षीय बालक कबीर को घाट वाली बात शीघ्र ही ध्यान में आ गई और रात्रि को ब्रह्म वेला की प्रतीक्षा में लग गए।

वि० सं० १४६६ की वह रात्रि बड़ी पुनीत रात्रि थी। जिस दिन यह ऐतिहासिक घटना घटी थी कि उक्त रात्रि के ब्राह्म मुहूर्त में ही बालक कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर एक छोटा सा रूप बनाकर लेट गए थे और उधर घाट के ऊपरी भाग से आश्रम से स्नान करने हेतु प्रतिदिन की भाँति स्वामी रामानंद जी शिष्यों के साथ गंगा जी की ओर उतर रहे थे। ज्यों ही पाँच सीढ़ी नीचे उतरे त्यों ही एक अज्ञात वस्तु पर खड़ाऊँ सहित उनका पाँव पड़ गया। पाँव पड़ते ही स्वामी जी

रात बसे गैला में जाई, राम कहा अरु भेंटिया पाई ॥
जनके हृदै बटराउ छावा, कबीर अपने घर उठि आवा ॥
माला लीनी तिलक बणाया, कबीर करै संतन का माया ॥
लोक यात्रा दरसन पावै, दास कबीर राम गुन गावै ॥

—अनंतदास कृत "कबीर परिचई"

चौंक गए और उधर चिल्लाने की आवाज हुई। अस्तु, चिल्लाना सुनकर स्वामी जी ने जाना कि यह किसी का लड़का है बोले—बेटा, राम! राम! राम! कहो और अपने कर-कमलों से उक्त अज्ञात लड़के का मस्तक सहलाने लगे। अज्ञात बालक स्वामी जी के स्पर्श एवं राम कहो के बाद शांत हो गया। तदनंतर पुनः बोले—ठीक हो जाओगे, अब रोना नहीं। इतना कहकर स्वामी जी अपने को संभालते हुए गंगा जी की ओर चल दिए और प्रतिदिन की भाँति स्नान ध्यान करके पुनः आश्रम पर चले आए। इधर बालक कबीर ने भी वहाँ से उठकर देह झाड़-पोंछकर अपने घर आकर माला-तिलक बनाया और वैष्णवी तिलक-मुद्रा-माला कंठी धारण कर सुमिरिनी लेकर जप करना शुरू कर दिया।

अतएव सबसे पहले कबीर के इस वैष्णवी स्वांग को उनकी माता कही जाने वाली श्रीमती नीमा देवी ने प्रातःकाल देखा और बड़े आश्चर्य में पड़ गई। तत्पश्चात् कबीर के समीप जाकर पुत्रस्नेह के कारण पूछने लगी बेटा कबीर, तुमने यह क्या किया है? अभी कल तक तुम किसी से बोलते नहीं थे और तुम्हारी औषधि आदि कराई जा रही थी। आज तुम स्वस्थ और प्रसन्नचित्त दिखाई दे रहे हो। दूसरी बात यह है कि तुमने एक नवीन स्वांग रच लिया है, जो अपने कुलधर्म के बिलकुल विपरीत है। यह स्वांग तो हिंदू मुड़ियों का है, जो प्रतिदिन तुम्हारे यहाँ आते हैं जिन्हें तुम भोजन कराते हो। क्या उन्हीं मुड़ियों में से किसी ने तुम्हें यह वेश प्रदान कर दिया है या तुमने स्वेच्छया इस वेश को धारण कर लिया है, कहो क्या बात है? आज दो पुस्तों से मेरे यहाँ कोई 'राम' नहीं कहता था पर आज तुम राम-राम कह रहे हो? इस प्रकार माता नीमा के बार-बार पूछने पर बालक कबीर ने कहा—माता जी, अब मेरा सारा प्रपंच, भौतिक क्लेश दूर हो गया और जिस वस्तु के लिये मैं अहर्निश लगा रहा, आज वह वस्तु मुझे उपलब्ध हो गई। अब मुझे किसी बाह्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं है और न शोक-संताप ही मुझको रह गया है। इस स्वाँग को मुझे स्वामी रामानंद जी ने दिया है। पुत्र की बात सुनकर माता नीमा शोक-संताप से युक्त हो गई और शोर मचाने लगी और कहने लगीं कि अरे! तू काफ़र हो गया। अपना दीन (धर्म) छोड़ दिया या अल्लाह! इसकी अकल कहाँ चली गई, इत्यादि। इस प्रकार के शोर को सुनकर आस-पास के लोग एकत्रित हो गए और देखते क्या हैं कि नीमा पागल की भाँति प्रलाप कर रही है। एकत्रित

लोगों ने कहा कि नीमा तुम्हें क्या हो गया है ? उधर घर के अन्दर से नूरअली साहब भी आँख मलते हुए दौड़े आ रहे हैं, उनके पीछे मजहर अली साहब भी आ रहे हैं। अस्तु लोगों के समझाने-बुझाने पर नीमा जी शान्त हुईं और कहने लगीं कि यह मेरा पुत्र हिन्दू-मजहब में चला गया। भला मेरे खानदान में कोई राम-नाम नहीं कहता था और न ही किसी ने ऐसा वेश ही बनाया था। मेरे खानदान के लोग ईद, बकरीद, रोजा, निमाज़ गुज़ारते थे एवं मक्का-मदीना हज्ज करने जाते थे। मेरे इस पुत्र ने कुल की रीति का त्याग करके देखो; कैसा वेश बनाया है ? नीमा की बातों को सुनकर लोगों ने कहा जाने दो, जैसे भी रहे रहने दो। अब यह तुम्हारे वश में नहीं रहेगा। ऐसा कहते हुए लोग अपने-अपने घर चले गए। इधर कबीर साहब के वेश की एवं रामानन्द के शिष्य हो जाने की बात वाराणसी के कोने-कोने में क्षणदा की भाँति फैल गई। कुछ लोग कहने लगे कि कबीर को कब और क्यों स्वामी रामानन्द जी ने शिष्य बनाया ? वह तो मुसलमान है, मुहम्मद हुसेन के वंश का है, जो कट्टर इस्लाम धर्म का पुजारी था। जो सदैव आर्यों का खिलाफत करता था। आज उसी के वंश का कबीर सुना जाता है जिसको स्वामी जी ने अपना शिष्य बना लिया है और उसी में कुछ लोग यह कहने लगे कि कबीर मुहम्मद हुसेन के वंश में पैदा नहीं हुआ है। वह तो लहरतारा में पड़ा मिला था, जिसको नीरू जुलाहा ने लाकर पालन-पोषण किया था। वह किसी हिन्दू की सन्तान है, इत्यादि। इस प्रकार की बातों को लोग कहते हुए एक दल बनाकर पंचगंगा घाट पर गए, जहाँ पर स्वामी रामानन्द जी का आश्रम था। दल में केवल ब्राह्मण और वणिक ही अधिक थे, जो सनातन धर्म में विशेष विश्वास रखते थे। अस्तु, उक्त दल के लोगों ने आश्रम पर पहुँचकर अपने आने की सूचना शिष्यों द्वारा स्वामी रामानन्द जी के पास भेज दी। सूचना प्राप्त होने पर स्वामी रामानन्द जी गुफ़ा से बाहर आए। सभी ने स्वामी जी को साष्टांग प्रणाम किया और स्वामी जी ने सभी के अभिवादन को स्वीकार किया एवं उक्त लोगों को बैठने के लिए कहा। अतः स्वामी जी की आज्ञानुसार सभी बैठ गए। तत्पश्चात् स्वामी जी ने कुशल क्षेम पूछा। सभी लोगों ने शुभ ही बतलाया। पुनः स्वामी जी ने पूछा कि आप लोग यहाँ किसलिए पधारे हैं ? आए हुए दल के मुखिया ने हाथ जोड़कर कहा कि हमने सुना है कि मुहम्मद हुसेन वंशीय नूर अली के लड़के कबीर अली को आपने अपना शिष्य बनाया है। यह समाचार

पूरे नगर में फैल गया है। कुछ लोगों ने जाकर कबीर अली से पूछा तो कबीर अली ने भी कहा कि मेरे गुरु स्वामी रामानन्द जी हैं। इसी बात को लेकर काशी के मुसलमानों की एक बहुत बड़ी सभा हुई, जिसमें कबीर की माता ने बहुत रोष व्यक्त किया और मुसलमानों ने कहा कि एक मुसलमान के घर पला हुआ लड़का काफ़र हो जाय यह कितना हानिकर है। उक्त सभा में बुलाकर कबीर को बहुत समझाया गया, परन्तु कबीर अली अपनी विचार धारा पर अडिग रहे। अतः दल के मुखिया से ब्राह्मण की बात सुनकर स्वामी रामानन्द जी ने कहा कि मैंने उस कबीर अली जुलाहे को कभी भी शिष्य नहीं बनाया है।

स्वामी जी ने कहा कि वह एक दिन आया था और कह रहा था कि मुझे राम-मंत्र मिलनी चाहिए। मैंने शिष्यों द्वारा कहला दिया कि मैं उसको राम-मंत्र नहीं दूँगा। यदि आप लोग उस जुलाहे के लड़के को पकड़ लाये तो मैं उससे पूछूँ कि कब तुम्हें मैंने राम-मन्त्र दिया है ? स्वामी जी को आज्ञा पाते ही लोग टिड्डी दल की भाँति, वायु जैसी द्रुत गति से जाकर कबीर साहब को पकड़ लाये एवं आश्रम के द्वार पर खड़ा करके, स्वामी जी को उनके आने की सूचना दे दी। स्वामी जी ने कबीर को बुलाया है। यह बात सुनकर वाराणसी के हजारों लोग कुतूहलवश आश्रम पर आ गये। इधर सूचना पाते ही स्वामी जी ने शिष्यों से कहा कि शीघ्र ही यवनिका-पट चारों ओर लगा दो। शिष्यों ने आगे-पीछे यवनिका-पट लगा दिया। इसके बाद स्वामी जी ने यवनिका के अन्दर से यवनिका के निकट कबीर साहब को बुलाया और पूछा—कहो ! डरो मत बेटा ! सत्य-सत्य कहो ! तुमको मैंने कब अपना शिष्य बनाया, झूठ मत बोलना ? स्वामी जी की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा कि स्वामी जी परसों ब्राह्म मुहूर्त में जब आप स्नान करने जा रहे थे, उसी समय मैं पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर लेटा हुआ था और आप ऊपर से आए। मेरी छाती पर आपका खड़ाऊँ सहित पाँव पड़ गया, तब मैं चिल्लाने लगा। उस पर आपने चौंककर कहा कि वत्स ! राम-राम कहो। इतना ही नहीं आपने मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा कि रोओ नहीं, अच्छा हो जाओगे। ऐसा कहकर आप स्नान करने चले गए। इधर मैं अपने घर चला गया। इस बात पर स्वामी जी मौन हो गए। अस्तु, स्वामी जी के चुप हो जाने पर बालक कबीर ने कहा—भला इतने आश्वासन के बाद भी आप कहते हैं कि मैंने तुमको अपना चेला

नहीं बनाया है। आप दूसरों को शिष्य बनाते हैं, तो केवल 'रामनाम' का ही मंत्र देते हैं या और कुछ देते हैं। आपने अपने कर-कमलों को मेरे सिर पर रखा और घाट पर सुप्तावस्था में खड़ाऊँ से ठोकर देकर जगाया है। इतना होने पर भी आप कहते हैं कि मैंने तुझको कब शिष्य बनाया। अब आप ही कहिए कि मैंने तुमको शिष्य नहीं बनाया। मैंने तो सुना है कि राम ही नाम सभी शास्त्रों का निचोड़ है। अतः कबीर की निर्भीकतापूर्वक उक्त बातें सुनकर स्वामी रामानन्द जी आश्चर्य चकित हो गए और सोचने लगे कि यह कोई बिलक्षण बालक है। क्या यह वही बालक तो नहीं है कि जिसको मैंने कभी सुना था कि लहरतारा सरोवर से मुहम्मद नूर अली ने लाया है। जिसके विषय में बड़ा विवाद हुआ था, जिसके नामकरण एवं जातीय संस्कार के समय बड़ा आश्चर्य सुना गया था, जिसको मेरे प्यारे शिष्य 'अष्टानन्द' ने कहा था कि एक तेज पुञ्ज ज्योति स्वरूप बालक लहरतारा सरोवर में आकाश-मण्डल से उतरा है, जिसको नीरू जुलाहा ले गया है। क्या वही बालक तुम कबीर हो ? जिसको महारानी लक्ष्मी ने अपने गर्भ से प्रकट किया और भगवान विष्णु जी के कथनानुसार लहरतारा में इसे छोड़ आयीं ? क्या जिसके विषय में कुछ योगीश्वरों ने मुझसे कहा था कि भगवान् नारायण का अंशावतार हो गया है ? क्या जिसको वेदव्यास ने भविष्य पुराण में लिखा है कि म्लेच्छों से आक्रान्त देव पुत्रों को त्राण देने के लिए स्वयं हरि कबीर के नाम से आयोनिज अवतार लेकर सनातन सत्य धर्म की रक्षा करेंगे, क्योंकि जिस प्रकार से तुमने राम-भक्ति अपनाई है उस प्रकार से केवल प्रह्लाद ने ही अपनाया था। ऐसी भक्ति वाले लोग इस युग में रह नहीं गए हैं। बार-बार कहने पर भी लोग श्रीराम भक्ति नहीं समझ पाते हैं। क्या तुम वही कबीर हो जो सत-युग में भगवान नारायण ने स्वयं प्रह्लाद बनकर भक्ति का मार्ग दिखलाया था और पुनः श्री शुकदेव ऋषि के रूप में अहैतुकी भक्ति मार्ग का दर्शन कराया था, जिसके बारे में महर्षि अगस्त ने अपनी संहिता में लिखा है कि महाभागवत विष्णु अंश प्रह्लाद ही कबीर रूप से तपोभ्रष्ट ब्राह्मण दम्पति म्लेच्छ योनि में जन्म लेंगे और उन्हीं के द्वारा श्री हरि कबीर बनकर पालित होंगे ? क्या तुम वही कबीर हो जो भगवान प्रह्लाद बने, पुनः वही प्रह्लाद शुकदेव जी हुए, वही शुकदेव जी तुम कबीर हो। ये सब बातें कहते हुए स्वामी जी मन ही मन श्री नारायण जी का स्मरण करने लगे। मुख कमल से राम ! राम ! मुखरित हो रहा

था और इधर कबीर साहब ने स्वामी जी की बातों को सुनकर कहा कि प्रभो ! इस विषय में मैं कुछ नहीं जानता, बस यही जानता हूँ कि मैं नीरू जुलाहा का पुत्र हूँ। अतः इतना कहते ही स्वामी रामानन्द जी ने यवनिका पट को हटाकर, भीड़ को चीरते हुए अपने को स्वयं सँभाल न सके और जाकर बालक-कबीर को गले से लगाकर पुनः छाती से लगा लिया और माथा सूंघने लगे। इतना ही नहीं बल्कि कबीर साहब का हाथ पकड़कर आश्रम में ले गए।

स्वामी जी एवं कबीर साहब के इस मिलन एवं वार्तालाप को समाज के एकत्रित व्यक्तियों ने देखा और सभी अवाक् रह गए। श्री स्वामी जी की रहस्यपूर्ण वार्त्ता को सुनकर लोग गुरु एवं शिष्य को साष्टांग प्रणाम करके, श्री राम-नाम का जप करते हुए अपने-अपने घर चले गए। इधर स्वामी जी मन में विचार करने लगे कि मानव रूप में आने पर नारायण की बुद्धि अपने स्वरूप से विचलित हो जाती है या मुझे छलने के लिए ऐसी बुद्धि को धारण कर लिए हैं। अतः अष्टानन्द आदि शिष्यों को स्वामी जी ने आदेश दिया कि गंगा जी से शीघ्र नए घड़े में जल लाओ और कबीर को स्नान कराओ, चन्दन घिसो, तुलसी का माला पिरोओ। अस्तु, गंगा जल आया, कबीर साहब को आम की छोटी चौकी पर बैठाकर स्नान कराया गया। तत्पश्चात् नया वस्त्र पहनाया गया। स्वामी रामानन्द जी ने कबीर को अपने आसन के समीप एक आसन पर बैठाकर दही अक्षत आदि से मार्जन किया, पुनः श्री राम नाम का उपदेश दिया। तुलसी की माला को गले में बाँधी, मस्तक पर तिलक लगाए और बालक कबीर से बोले कि वत्स ! मेरा चरण धोकर पी जाओ और अपने सभी गुरू भाइयों को जाकर साष्टांग प्रणाम करो, आज आश्रम में ही भोजन करना। श्री स्वामी जी सभी के समक्ष ये बात कह कर उठ गए एवं कबीर साहब की बाँह पकड़े हुए अपनी गुफा में ले गए। जिसमें कुछ घण्टों तक गुप्त बातें हुईं। क्या बातें हुईं यह आज तक किसी को पता नहीं लग सका है। अस्तु, थोड़ी देर के बाद दोनों गुरू और शिष्य गुफा से बाहर आए और सभी से बोले कि आज से कबीर का नाम कबीरदास रखा गया है, अभी इनको लँगोटी अँचला नहीं दिया गया है। अभी मैंने केवल मन्त्र राज राम-मन्त्र ही दिया है। सभी लोग आज से जान गए कि कबीर रामानन्द जी के शिष्य हो गए। कबीर को कबीरदास के नाम से लोग उद्घोषित करने लगे।

———

द्वितीयालोक

दीक्षा से नीमा एवं क़ाज़ी-मुल्लाओं द्वारा रोष

प्रातः होते ही कबीर साहब स्वामी जी से विदा लेकर अपने घर आए और माता-पिता का चरण स्पर्श करके नित्य के गृहकार्य में लग गए। नीरू जी सरल हृदय के थे। पुत्र के विषय में विशेष रूप से नहीं पड़े, परन्तु कबीर साहब को वैष्णव धर्म में दीक्षित जानकर माता नीमा को अत्यधिक क्षोभ हुआ। नीमा ने जब देखा कि कबीर ने माला-तिलक धारण कर लिया है, तो उसने जाकर बड़े काजियों और मौलवियों से कहा कि मेरे पुत्र कबीर को आप लोग समझा दीजिए। काजियों ने कहा कि तुम्हारे पुत्र को हम लोग नहीं समझा सकते। इसका कारण यह है कि वह बड़ा ही करामाती है। जातीय संस्कार के समय उसने जो करामात दिखाया था, हम लोगों को वह आज तक नहीं भूल रहा है। काजियों की बात सुनकर माता नीमा निराश होकर लौट आई। इधर कबीर साहब ने देखा कि वैष्णव धर्म में दीक्षित होने के कारण मेरे माता-पिता अति क्षुब्ध हैं। इसलिए मुझे गृह त्याग कर देना चाहिए। उक्त विचार पर आरूढ़ होकर रात्रि चार बजे के लगभग वे घर से निकल पड़े और काशी के पूर्वी संभाग में, जो आरण्य था, उसी में जाकर वृक्ष की सघन छाया में आसन जमाकर समाधिस्थ हो गए। इधर प्रातः होते ही नीरू और नीमा उठे तो प्रति-दिन की भाँति पुत्र कबीर को राम-नाम जपते न देखकर चारों ओर ढूंढ़ने लगे और आस-पास के घरों में जाकर बहुत ढूँढ़ा; पर कबीर साहब का कहीं पता नहीं चला। तत्पश्चात् घर पर लौटकर परस्पर दोनों लड़ने-झगड़ने लगे, एक दूसरे को दोषी बनाने का उपक्रम हो रहा था। नीरू ने कहा कि यदि तुम बेटे के पीछे नहीं पड़ती तो वह कहीं नहीं जाता। तुम्हारे कारण ही वह ऊबकर भाग गया है। मैं तो कहता था कि कोई बुरा कर्म नहीं करता है। रहीम न कहकर राम-राम ही कहने दो, परन्तु तुमने उसे काफ़िर बना दिया, इत्यादि बातें कहकर नीरू ने नीमा को घर से बाहर कर दिया और कहा कि लो अब मैं भी पुत्र शोक में जाकर प्राणोत्सर्ग कर देता हूँ। तुम्हारा मुख नहीं देखूँगा। इतना कहकर मियाँ नीरू घर से बाहर हो गए। अब तो नीमा को मानो हत्या का दोष सा लग गया। तुरन्त घर

से निकलकर नीमा ने संबंधियों से उक्त कथाएँ कह सुनाईं। मियाँ जी को समझाओ, ऐसी दया करो। नीमा के कहने पर दयालु लोग एवं भागीदारों ने दौड़ कर नीरू को पकड़ा। दोनों को समझा-बुझाकर कहा कि आप लोग चिन्ता न करें, हम लोग तुम्हारे पुत्र को खोज लाते हैं। चारों तरफ लोग दौड़े। साथ में नीमा नीरू दोनों गए। दो दिन के अन्वेषण के बाद कबीर साहब काशी के वन खण्ड में मिल गए। पुत्र को दो दिन के बाद देखकर नीमा-नीरू रोने लगे। उधर कबीर साहब एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठे थे। पश्चिम की ओर से माता-पिता एवं संबंधियों को आते देखकर कबीर साहब ने उठकर नीरू और नीमा का चरण स्पर्श किया। नेत्रों में आँसू भरकर अन्य संबंधियों को हाथ उठाकर अभिवादन किया। इसके बाद श्रीमती नीमा देवी ने कबीर का हाथ पकड़कर कहा—बेटा! घर चलो। कबीर साहब ने कहा कि अब मैं श्रीराम की शरण में आ गया हूँ। इसी कारण अब मैं घर नहीं चलूँगा। इस प्रकार कहते-सुनते दो-प्रहर हो गए। दो-दो दिन, तीनों को बिना भोजन किए व्यतीत हो गया था। अन्त में यह निश्चय हुआ कि तुम घर चलो, अब तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा। नीमा ने अल्लाह की शपथ खाई। हाथ में कुरान लेकर बोली कि तुम चलो, मैं कुछ नहीं कहूँगी। कबीर साहब ने कहा कि मैं तभी चलूंगा जबकि प्रतिदिन चूल्हा पोता जाय, चौका दिया जाय, आप लोग मांस खाना छोड़ दें। नित्य नये घड़े में पानी रखा जाय, मुर्गा-मुर्गी, बकरा-बकरी हटा दिए जायँ तथा आप दोनों वैष्णव-धर्म स्वीकार कर लें, तभी मैं घर पर चलूँगा, अन्यथा चलना संभव नहीं है। कुछ वार्ता के बाद, नीरू-नीमा ने पुत्र के मोहवश अपने धर्म का परित्याग कर वैष्णव धर्म ग्रहण करना सहर्ष स्वीकार किया। इसके बाद सभी लोग प्रसन्न मन से घर आकर सुखपूर्वक रहने लगे और पूर्व की भाँति गृहकार्य में संलग्न हो गए। यह जानकर कि कबीर साहब ने स्वामी रामानन्द जी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया है, प्रतिदिन संतों का जमघट होने लगा। यह स्वाभाविक है कि जहाँ सेवा सत्कार होता है वहाँ स्वामी एवं अर्थी लोग जमघट लगाते हैं। बालक, संत एवं कुत्ता हितैषी को अधिक पहचानते हैं। इसलिए संतों का आना अनुचित नहीं था। इधर घर की आय व्यय से कम थी, जिसके कारण संतों की भीड़ को सँभालना कठिन था। तीन-तीन करघे चलने के कारण किसी न किसी

प्रकार से व्यय की पूर्ति हो जाती थी। इधर कबीर साहब के मन में सद्भावना बढ़ने लगी। प्रतिदिन प्रातः सायं गुरू जी के दर्शनार्थ एवं सत्संग में जाया करते थे। गृहकार्य भी देखना पड़ता था। इस प्रकार कबीर साहब सभी कार्य को सावधानीपूर्वक करते रहे और घर पर भी सत्संग-कथा-कीर्त्तन करते थे। झुण्ड के झुण्ड लोग सत्संग में आने लगे जिसका संचालन स्वयं कबीर साहब किया करते थे। सभी सन्त-सत्संगी लोग एक दिन सत्संग में निमग्न थे। इसी बीच एक मौलवी आया और बोला कि नीरू तुम्हारे द्वार पर काफ़रों की खूब जमात जुटी है। इतना कहते ही वह गिर कर अचेत हो गया। कबीर साहब के साथियों ने जाकर साहब से कहा कि एक मौलवी यहाँ आकर अचेत होकर गिर गया है। बालक कबीर शीघ्र उठकर वहाँ गये। उसके कान में 'रा' शब्द सुनाया। वह उठकर सचेत हो गया और सन्तों के साथ कीर्त्तन करने लगा। बाद में उसने भी वैष्णव धर्म को स्वीकार कर लिया। उसकी वुद्धि सुधर गई। यह जानकर संत लोग कबीर साहब को 'सद्गुरु कबीर-साहब' कहने लगे।

सद्गुरु की सन्त सेवा से नीमा असन्तुष्ट

घर का अधिक व्यय कबीर साहब के हाथों से होने लगा। फलस्वरूप नीरू के अन्य भाइयों में खींचातानी होने लगी। भाई कहते थे कि आपका लड़का घर का सभी धन लुटा रहा है, हमलोग कमाते-कमाते परेशान हैं। इसलिए भाई हमलोगों को अपने से जुदा करो। अतः मियाँ नीरू ने अपने भाइयों को समझाया, परन्तु उनका छोटा भाई असगर नहीं माना और अलग हो ही गया। इसके बाद कुछ परिवार वाले पश्चिमी प्रान्तों में जाकर बस गए, जो आज भी अपने को कबीर वंशीय जुलाहा कहते हैं। पंजाब के होसियारपुर जनपद के ग्रामों तथा मेरठ के ग्रामों में, इसी प्रकार से उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तों में बसे हुए हैं, जो अपने को सद्गुरु कबीर साहब के वंश का कहते हैं। वे लोग अब भी आर्य वैष्णव धर्म को ही मानते हैं तथा अब भी उनके यहाँ मांस-मदिरा का सेवन नहीं होता है। वे सभी निर्गुण रामोपासक होते हैं। देखिए सद्गुरु कबीर साहब का अपने परिवार पर कितना प्रभाव था, जो आज तक अमिट है। यह पूर्ण प्रभाव का ही द्योतक है। अतः सद्गुरु कबीर साहब को सदैव ईश्वर चिन्तन में लगे रहने के कारण मोहम्मदीय जन समुदाय कबीर साहब कहता था, तो हिन्दू आर्य समूह

पहले से ही कबीरदास, महाराज कबीर, सद्गुरु कबीर। अतः कबीर का नाम अपनी-अपनी भाषा के अनुसार यवन एवं आर्य लोग उद्घोषित करते थे।

गुरु कबीर सन्तों एवं दीन-दुःखियों की सेवा के कारण अत्यधिक परिश्रम किया करते थे। प्रतिदिन कपड़ा बुनकर बाजार में ले जाकर बेचना, खाद्य आदि वस्तु ले आना, घर पर आए सन्तों की सेवा करना कबीर साहब का मुख्य कार्य था। कबीर एक दिन वस्त्र बेचने के लिए बाजार ले गए, ज्योंही गट्ठर को सिर से रखा त्योंही भगवान् विष्णु एक दरिद्र सन्त का रूप धारण करके आए। उनके तन के वस्त्रों में सैकड़ों ग्रन्थियाँ ग्रन्थित थीं, उदर आँत में चिपका हुआ था, ऐसा लगता था कि अन्न भगवान का दर्शन कभी नहीं हुआ है। उक्त दरिद्री भगवान ने करवद्ध होकर कहा--भगत जो, मेरी दशा देखो। साहब ने कहा क्या चाहिए ? दरिद्री ने कहा—भोजन, वस्त्र और दूसरा कुछ नहीं। मैं कई दिनों का भूखा हूँ, बहुतों से मैंने याचना की पर किसी ने मुझ पर ध्यान नहीं दिया। भक्त जी मैंने सुना है कि दीन-दुखियों पर आप बड़ी दया करते हैं। देखिए, मेरा तन उघार है। मैं जाड़े में जागकर रात्रि व्यतीत करता हूँ। इतना सुनते ही कबीर साहब आधा थान कपड़ा फाड़कर और बिक्रा का आधा पैसा दरिद्र भगवान को देने लगे। दरिद्र भगवान् ने कहा—भाई इतने से मेरा कार्य पूरा नहीं होगा। इस पर सद्गुरु कबीर ने पूरा थान एवं बचा हुआ द्रव्य उक्त दरिद्री को सहर्ष दे दिया। इसके पश्चात् वह अन्न की दुकान पर गए, जहाँ से प्रतिदिन चावल, गेहूँ आदि सामान क्रय करते थे। दुकान पर जाकर उन्होंने कहा कि भाई कल के लिए चावल और आटा उधार दे दो। सन्त और परिवार के लोग दिन भर भूखे बैठे होंगे। इतना सुनते ही बनिए ने कहा—मैं उधार नहीं देता हूँ। कल रुपया लेकर आना तो चावल आदि ले जाना। कबीर साहब ने देखा कि यह सामान नहीं देगा। इधर कबीर वहीं से गंगा तट पर चले गए और श्रीराम नाम का जप करने लगे। वहाँ उन्हें समाधि लग गई और वे अपने स्वरूप में लीन हो गए। उधर घर के लोगों को तीन दिन बिना भोजन किए हो गया। अन्न का कहीं से प्रबन्ध नहीं हो सका। भूख से सभी छटपटा रहे थे। तब श्री हरि ने देखा कि कबीर तो ध्यानस्थ हुए हैं। परिवार के लोग उनके आश्रम में पड़े हुए हैं। अब कुछ उपाय करना

चाहिए। मेरी परीक्षा में कबीर उत्तीर्ण हो गए हैं। यदि मैं नहीं जाता हूँ, तो अच्छा नहीं होगा। ऐसा सोचकर, एक सेठ के रूप में ग्यारह बैलों[1] पर आँटा, दाल, चावल, सूजी, घी, शक्कर आदि भोज्य सामग्री लादे हुए कबीर साहब के द्वार पर आकर उन्होंने उतार दिए। इसी बीच श्रीमती नीमा देवी घर से बाहर आयी। सेठ रूपी भगवान् ने कहा—ले लो माता यह सामान रखो। माता नीमा ने कहा कि यह सामान कहाँ से आ रहा है और किसका है? इसको किसने पठाया है? सेठरूपी हरि ने कहा कि यह सामग्री विश्वेश्वरगंज से कबीर ने, जो तुम्हारे पुत्र हैं, पठाया है। नीमा ने कहा कि मेरा पुत्र किसी का दिया हुआ नहीं लेता, चाहे कोई व्यक्ति लाखों रुपया लाकर उसके आगे रख दे। वह किसी का दिया हुआ धन छूता तक नहीं है। वह अपनी कमाई पर ही भरोसा रखता है। दूसरों की कमाई नहीं खाता और हम लोग उसी के कथनानुसार कार्य करते हैं।

अस्तु, मैं न तो इस सामान को स्पर्श करूँगी और न ही रखूँगी। यदि उसे किसी प्रकार यह विदित हो गया कि मैंने तुम्हारा सामान रख लिया है, तो वह गृह त्याग कर देगा। वैसे ही वह आज चार दिनों से लापता है। जरा-सी भी गलती को वह क्षमा नहीं करता। इसलिए आप यह सामान बैलों पर रखकर यहाँ से ले जाइए, नहीं तो अभी कोई राजपुरुष आवेगा और पूछेगा तो मैं क्या कहूँगी? मुझे इस सामान से भय लग रहा है। आप कृपा करके इसे ले जाइए नहीं तो मैं शोर मचाऊँगी और यह कहूँगी कि कोई चोरी का सामान यहाँ लाया है। नीमा की नकारात्मक बात को सुनकर श्री हरि ने कहा कि माता मेरी बात तो सुनो, तुम्हारे पुत्र कबीर के त्याग, तप एवं भक्ति का चारों ओर बहुत प्रचार हो गया है। गत दिवस सायं कबीर साहब पंचगंगा-घाट पर लोगों को रामनाम की महिमा सुना रहे थे।

महाराजा विष्णु नाथ अधिकारी कबीर की कीर्ति को सुनकर उनके दर्शन के लिए आए और उन्होंने तुम्हारे पुत्र कबीर को भेंट में द्रव्य चढ़ाया था, परन्तु कबीर ने राजकीय द्रव्य लेना अस्वीकार कर दिया।

---

१. दास कबीर घर बालद लाया, नामदेव की छान छवंद।
भक्त धना के खेत निपजायों, गज की टेर सुनंद॥

—मीराबाई की बानी से

राजा ने बहुत अनुनय-विनय किया और कहा कि महाराज ! संतों का भण्डारा कर देना। इस बात को कबीर ने स्वीकार करके घर के लिए यह सामग्री भेज दी है। मैं क्या करूँ ? वह भी तो अब आते ही होंगे। इतना विश्वास दिलाने पर माता को कुछ विश्वास हुआ। इसके बाद नीमा ने कहा कि इस सामान को मेरे घर में रख दीजिए। अस्तु, सामान रखकर भगवान् विष्णु अपने भेद को बताए बिना थोड़ी ही दूर पर गये और अंतरध्यान हो गये। नीमा ने सोचा कि वह सेठ कहाँ चला गया ? मैं जल पीने के लिए भी नहीं पूछ सकी। भला इतनी जल्दी वह किधर चला गया ? अतः मन में कुछ सन्देह होने लगा। नीमा ने तुरंत चार सम्बन्धियों को कबीर साहब को खोजने के लिए भेज दिया। ढूँढ़ते ढूँढ़ते कबीर साहब को उन लोगों ने राजघाट पर पाया और उनसे सेठ का सम्पूर्ण वृतांत कह सुनाया। उक्त वृतांत सुनकर कबीर साहब घर आए और माता से उन्होंने सारी बात को पूछा। सेठ की सभी रूप-रेखा को माता ने सत्य-सत्य कबीर से बतला दिया। माता नीमा की बातों से सद्गुरु कबीर साहब ने सभी बातों को मन ही समझ लिया और जान लिया कि यह काम श्री हरि का है, क्योंकि न तो मेरे पास कोई राजा आया था और न ही मैं कहीं कोई कथा ही करता रहा। अस्तु, यह सब श्री गोपाल जी की महती अनुकंपा है। लाओ, यह सब सामान सन्तों को खिला-पिला दें। ऐसा विचार कर गुरुजी के स्थान में जाकर निमन्त्रण दे आए और अन्य संतों को भी तुलसी दल भेजकर आमन्त्रित करके भण्डारा कराया। इस प्रकार सभी सामानों को उन्होंने खिला-पिला दिया। तीन दिनों तक यह भोज भण्डारा चलता रहा। सभी सन्त जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान को चले गए। उक्त भण्डारे की खबर पूरे वाराणसी नगर में विद्युत की भाँति फैल गई। लोग कहने लगे कि कबीर को कोई बड़ा सेठ लाखों का सामान दे गया है और कबीर सभी को बुलाकर लुटा रहा है। इस बात से ब्राह्मण एवं संन्यासियों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। ब्राह्मणों ने कहा कि कौन सा राजा था जिसने उस जुलाहे को इतना धन दिया और उसने सभी शूद्रों को बुलाकर खिला दिया। हमलोग अहर्निश भगवान् शिव की आराधना करते हैं, परंतु किसी राजा या सेठ ने इतना धन आज तक नहीं दिया। इस जुलाहे को इतना धन क्यों दिया ? इसका क्या कारण है ? सारी दुनियाँ हमलोगों की पूजा करती है। इसने ब्राह्मणों का घोर

अपमान किया है। इसको नगर से निकाल दो अथवा मार दो या दंड स्वरूप नाक-कान काट लो ?'[1] इत्यादि इस प्रकार की बातें करते हुए आश्रम पर सभी लोग आ गए। इधर सद्गुरु कबीर साहब की सेवा-भक्ति एवं दीन-दुखियों की सेवा का प्रचार-प्रसार काशी जनपद के समीप चार-छह जनपदों में फैल गया। अस्तु, अठारह वर्षीय सद्गुरु कबीर साहब इतने लोकप्रिय हो गए थे कि काशी एवं उसके आस-पास के लोगों का आकर्षण कबीर साहब की ओर बढ़ता गया। स्वभावतया

---

१. भगत बुलाइ महोची कीनौ। कछु न राष्यो सगरौ दीनौ॥
कौप्या बांभन अर सन्यासी। करन चल्या कबीर की हासी॥ १ ॥
राजा कोई दे गया द्रबु। दे घाल्यो सुद्रन कूं श्रबू॥
राजा प्रजा सबही मांने। बांभन कहा घाटि करि जांने॥ २ ॥
कछु न राषी बात हमारी। नग्र मांझ तैं देहु निकारी॥
ऐक कहै नाक धरि कांटौ। तातैं मिटै हमारी आंटौ॥ ३ ॥
ऐक कहैं हम तिनपरि मरिहैं। जौ कबीर कौ ऊपर करिहैं॥
अैसों रोस करत ही आऐ। हुते नग्र महि सब उठि ध्याए॥ ४ ॥
गुप्ती चक्र लीए सन्यासी। कोतिग देषन उमड़ी कासी॥
चहु दिस बाषर छेकी जाई। तब कबीर सनमुख भयौ आई॥ ५ ॥
आदर करि नीकां बैसारे। कैसैं मया करी पग धारे॥
बांभन कोय करे डरकारैं। नकरि नग्र महि नहि तरि मारैं॥ ६ ॥
कूंण चूक तैं मारी मोही। रांम-नांम चित राष्यौ पोई॥
कैसैं बाट तुम्हारी मारी। कै मैं तकी पराई नारी॥ ७ ॥
कै मैं घर काहू को फोर्‌यो। मांनस मार्‌यो कै धन चौर्‌यौ॥
भगति करी तैं हम न बुलाऐ। सुद्र लोक सब आंनि जिमाऐ॥ ८ ॥
अब तौ हमैं रसोई दैरे। नहि तर हम तुम लागी निहैरे॥
ठींगा ठीदे जबही देषी। कहु न कह्यौ कबीर बेमेकी॥ ९ ॥
अब तौ नाज नही घर मांहि। ले आंऊं तुम बैठो छांहीं॥
इतनी कहि कबीर टरि गयउ। कैसो कै मनि सांसौं भयउ॥ १० ॥
तब हरि कीनी कबीर की करा। आंनि द्रब गैब की धरा॥
सोई द्रब बनीऐ कूं दीनां। भाँति भाँति का सौदा कीनां॥ ११ ॥
मैंदा चावर षांड बहूता। सकल रसोई धृत संजुक्ता॥
जना चार मंजूर तहा घाल्या। सोई सौंज ले घर कुं घाल्या॥ १२ ॥
॥ अनंत परचई ॥ अमुद्रित सेवादास की वाणी अंतर्गत

काशी के पूज्यों में कबीर साहब के प्रति ईर्ष्या हो गई, क्योंकि काशी नगर के अत्यधिक लोगों का झुकाव सद्गुरु कबीर साहब की ओर हो गया था। परिणामस्वरूप ब्राह्मण एवं संन्यासियों में खलबली मच गई थी। इधर कबीर साहब से जो मौलवी रुष्ट हो गए थे, वे सभी ब्राह्मणों एवं संन्यासियों का साथ देने लगे। उक्त लोगों ने कहा कि देखो हम लोगों को न बुलाकर उन वैरागी शूद्रों को बुलाकर इसने खिलाया है, जो ब्राह्मणेतर हैं। इतना ही नहीं, स्वामी जी से इसने अवैदिक मंत्र ले लिया। भला उन शूद्रों को खिलाने से कौन-सा पुण्य कबीर को होगा ?

कबीर साहब की बढ़ती ख्याति से विपक्षियों नें ईर्ष्या

ब्राह्मणों को क्रोध आया कि कबीर ने नीचों की सेवा की है। इसलिए मुझ जैसे बड़ों का अपमान हुआ है, चलो सभी उसका घर घेर लें। द्वार पर पहुँचकर कबीर ! कबीर ! कहाँ हो ? घर से निकल कर बाहर आओ, लेकिन उस समय कबीर समाधि में लीन थे। देर तक पुकारने पर उनकी समाधि टूट गई और वहाँ से उठकर वे बाहर आए। सभी का अभिवादन करके, यथायोग्य उन्होंने सबको आसन दिया।

तत्पश्चात् कबीर साहब ने कहा कि कहिए कृपालु ! आप लोगों ने किसलिए मेरे ऊपर कृपा की है। आपका स्वागत है। इतना कहकर कबीर साहब भी बैठ गए। उक्त दशदलीय मण्डली के बाद अपार भीड़ पुनः दिखाई दी। भीड़ के आगे-आगे संन्यासियों का दल आ रहा था। उनके पीछे ब्राह्मणों का दल था, पुनः उनके पीछे वणिकों एवं मौलवियों का दल चला आ रहा था। संन्यासियों के हाथों में गुप्ती, चक्र, फरसा, धनुष-बाण आदि अस्त्र-शस्त्र थे। ब्राह्मण लोग तीन-तीन हाथ के डण्डे लिए हुए थे। इसी प्रकार वणिक एवं मौलवी लोग भी अपने-अपने अस्त्रों से लैस थे। किसी की आँखें फड़क रही थीं, कोई गाली बक रहा था, कोई कहता था कि अभी इसको नगर से निकाल दो, कोई कहता था कि यह हिन्दू एवं मुसलमानों की मर्यादा को नहीं स्वीकार कर रहा है। दान ब्राह्मणों का होता है, इसने धन पाया और नीचों को लुटा दिया।

इस प्रकार से प्रलाप करते हुए उक्त भीड़ ने मियाँ नीरू का घर चारों तरफ से घेर लिया। कहाँ है ? कबीर को बुलाओ, सभी लोग चिल्लाने लगे। यह उद्घोष सुनकर कबीर आसन से उठे और आगे बढ़कर बोले—आइए ! आप लोगों ने मुझपर किस लिए दया की है।

इस पर पहले के आए हुए दशों मुखिया ने कहा कि कबीर तुम नगर के बाहर चले जाओ, नहीं तो तुम प्राण से वंचित कर दिए जाओगे। इसलिए शीघ्र यहाँ से भाग जाओ, उक्त बात को सुनकर सद्गुरु कबीर साहब ने कहा कि आप लोग मुझसे ऐसा क्यों कह रहे है ? कौन सी भूल मुझसे हुई है ? मैं न तो किसी की चोरी करता हूँ, न तो किसी स्त्री पर कुदृष्टि ही रखता हूँ और न तो किसी की पिसुनता ही करता हूँ, न किसी दो व्यक्तियों में झगड़ा ही लगाता हूँ, किसी प्राणी को हत्या भी नहीं करता हूँ, न तो खड़ा होकर अन्न जल ही ग्रहण करता हूँ, जिस स्थान पर दो व्यक्ति वार्त्ता करते हैं वहाँ भी मैं नहीं जाता हूँ, हँसकर वार्त्ता भी नहीं करता हूँ, न प्रमाद ही करता हूँ, न किसी की निन्दा ही करता हूँ। मैं तो सदा श्री राम-नाम का जप करता हूँ। मेरी जानकारी में कोई मानव विरुद्ध आचरण हुआ है, यह मुझे पता भी नहीं है। किसी भी प्रकार की आचरण सम्बन्धी त्रुटियाँ हो, ऐसा मुझे ज्ञात नहीं है।

सद्गुरु कबीर साहब को बात को सुनकर ब्राह्मण एवं संन्यासियों ने कहा कि नहीं, नहीं ! तुमने हम लोगों का अनादर किया है, इसलिए नगर से बाहर चले जाओ। सद्गुरु कबीर साहब ने ब्राह्मण एवं संन्यासियों के कहने का अभिप्राय समझ लिया और पल भर के लिये उन्होंने नेत्रों को बन्द कर लिया तत्पश्चात् अर्द्ध-दृष्टि से उन्होंने जन-समूह की ओर अपनी दृष्टि घुमाई। अस्तु, दृष्टि घुमाते ही उपद्रवी समुदाय अचेत सा हो गया। सभी लोग शान्त हो गए। सभी के मुख से राम नाम की ध्वनि होने लगी। सभी लोग अपनी गलतियों को समझने लगे। जहाँ इतनी घोर उत्तेजना थी कि अभी ही कबीर साहब को निगल जाएँगें वहीं पर ऐसा लगा कि निष्पाप आत्माओं को भाँति भगवान् के पवित्र नामों के उच्चारण से मनुष्य के पाप-ताप सभी नष्ट हो गए। इसलिए यह कोई बड़ी बात नहीं थी जो प्रभु कबीर के दर्शन से सभी लोग निष्पाप हो गए। अतः उक्त समूह करबद्ध अपनी त्रुटियों के लिए उनसे क्षमा-याचना करने लगा। भगवान् कबीर ने कहा कि आप लोग घबड़ाइए नहीं, आप सब निष्पाप हैं। आप लोगों में कोई दोष नहीं है। यह सब मन का धर्म है। आप लोग विज्ञ पुरुष हैं। आप सब मेरे पूजनीय हैं और न कभी कोई गलती आप लोग करते हैं। ऐसे मुझे विश्वास है। अशुद्धियाँ तो केवल अविजित इन्द्रियों के कार्य हैं। यदि आप संन्यासी हैं, तो आपने सब कुछ त्यागकर संन्यास लिया है। परन्तु सभी बन्धनों

का मूल स्थान मान-अपमान को आप लोगों ने नहीं छोड़ा है। ईर्ष्या-द्वेष, राग-विराग, कलह कल्पना रूपी शृंखला में अभी आप लोग अनुबन्धित हैं। अहर्निश आप लोग काम-क्रोध रूपी अग्नि में झुलस रहे हैं। भला आप लोग दूसरों को तो अपने प्रवचन के द्वारा विमोहित कर लेते हैं और कहते हैं कि सारा जगत् ब्रह्म स्वरूप है। ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है, इत्यादि बातें कहकर अज्ञ जीवों को राम भक्ति से विरत कर देते हैं और अपने स्वयं उसके विरुद्ध आचरण करते हैं।

अतः आप लोग यह बताइए कि जब सारा जगत् ब्रह्म है, तो मैं क्या उस ब्रह्म से भिन्न हूँ? अर्थात् जब मैं उस सर्वस्वरूपी भूमा (ब्रह्म) से पृथक् नहीं हूँ तो आप उस प्रभु से मुझे अलग करके क्यों मेरे प्रति इतना रोष व्यक्त कर रहे हैं और मेरी हत्या भी करने के लिए आप लोग उद्यत हैं। कहिए क्या राग-द्वेष के समय ब्रह्म अनेक हो जाता है? अतः आपका कैसा ब्रह्मज्ञान है? क्षण मात्र थोड़ी सी बातों के लिए आप लोग सहस्रमुखी दावानल हो जाते हैं, किस प्रकार की अहिंसा पालन करने के लिए आप लोग कहते हैं। आप कहते हैं कि कायिक, वाचिक एवं मानसिक हिंसा तीनों से संन्यासियों को बचना चाहिए यह उत्तम पुरुष कहते हैं, परन्तु आप लोग जो अपने हाथों में यह गुप्ती-चक्र लिए हुए हैं यह किसके लिए रखे हुए हैं? कौन आपका शत्रु है? आप किससे भयभीत हैं? जब आप ब्रह्म से भिन्न नहीं होते हैं, तो आप में वर्णाश्रम कहाँ से आ गया। आप अपने वचनों के माध्यम से दूसरों को अधिक कष्ट देते हैं और कहते हैं कि मैं त्यागी हूँ, दूसरा संग्रही है। भला किस वस्तु का आपने त्याग किया है। षट्साधनों का तो आपने भली प्रकार से उल्लेख किया है, परन्तु उसमें से किसी भी एक साधन को आप ने अपने ऊपर लागू किया है? यदि ऐसा किया होता तो आपकी ऐसी क्रूर दुर्वृत्ति नहीं होती। आप लोगों ने तो बाह्य जगत् का त्याग दिखाने मात्र के लिए किया है, परन्तु जगत् के मूल कारणों का अपने अन्तर में संचय करके सुस्थान दिया है।

कबीर ने कहा कि हे स्वामियों? मन ही इस जगत् के होने का मूल कारण है और मन ही से सब कुछ होता है तथा मन ही के वश में आप लोग पड़े हुए हैं। अहर्निश आप लोग वेदान्त आदि सद्ग्रन्थों का अनुशीलन करते हैं। अहम् ब्रह्मास्मि का जाप करते हैं, केवल कथन मात्र ही है? जीवन में कुछ उतारा भी है? यदि उतारे हो तो आप

में राग-द्वेष आदि कलनाओं[1] का कारण नहीं होता। इसलिए आप लोग दिखाने मात्र के संन्यासी हैं। कनक-कामिनी के पीछे आप लोग पड़े हुए हैं। आपका स्वांग राजकुमारों को भी लज्जित कर रहा है। बिना सवारी के आपकी यात्रा नहीं होती। अहर्निश दूसरों की निन्दा करते हैं। यदि आप मन से संन्यासी होते तो उपर्युक्त दोषों का आप में अभाव होता।

संन्यासी देवताओं को इतना कहकर ब्राह्मण देवताओं को संबोधित करते हुए सद्गुरु कबीर ने कहा—कहिए जगद्गुरु! आपका नाम तो भूमिसुर है जिसके कारण आपको ब्रह्म का प्रतीक कहा जाता है। भला आप लोगों ने वेदों में क्या पढ़ा है? काम, क्रोध, लोभ, मोह और अविवेक। आप लोग नित्य गीता का पाठ करते हैं, क्या गीता गुणों के बजाय दुर्गुणों को ही सिखलाती है? इसी प्रकार उपनिषदों में लिखा है कि ब्राह्मण किसी से ईर्ष्या द्वेष नहीं करे। ज्ञान-विज्ञान में पूर्ण विज्ञ हो, सभी पर क्षमा की भावना रखें, किसी प्राणी पर रोष न करे, अपरिग्रही हो, संसार का कल्याण करे, सदैव तपश्चर्या में लगा रहे, क्रोध का परित्याग कर, असूया, पिशुनता से दूर रहे, दम्भ नहीं करे, सभी प्रकार के दोषों से मुक्त का नाम ब्राह्मण है, क्या आप की यही तपस्या है कि किसी निर्दोष व्यक्ति को जो श्रीहरि का भक्त हो, अपनी स्वार्थ पूर्ति न होने पर उसका नगर निष्कासन कोई न्याय है? अथवा उसको प्राण दण्ड ही न्याय है। क्या यही जगद्गुरुओं का काम है? क्या यही वेद शास्त्र में लिखा है?

गुरुदेव की उपर्युक्त बातों को सुनकर ब्राह्मण समाज ने अपना सिर नीचा कर लिया।

इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर ने मौलवियों को भी कहा कि मौलवी साहबानों अल्लाहताला, परवरदिगार ने क्या कुराने पाक में यही फरमाया है कि बेकुसूर इन्सानों का कत्लेआम करो। क्या पनाहगीजों के साथ बेरहमियत की जाय? खुदाई बन्दों पर जुल्मोंसितम का सोला ढहाया जाय? मुल्क में बेरहमी की जाय, कुफ्रका खेर भगदम किया जाय, नेकनामी की मदम्मत की जाय, दूसरों की असमत लूटी जाय, क्या रसुलेल्लाह ने यही सबक सिखाया है कि कुरान और अल्लाह के

---

१. दुःख समूहों का

नाम पर रूहेहैवानियों का गला काटा जाय, इत्यादि बातें जब गुरुदेव कबीर ने सुनाया तो सभी का मस्तक नीचा हो गया। सभी ने बारम्बार क्षमा याचना की। संन्यासी एवं ब्राह्मणों ने कबीर साहब को साष्टांग प्रणाम किया। मौलवियों ने घुटने टेके। सद्गुरु की बात सुनकर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सभी लोग उच्छ्वास लेने लगे। कबीर ने कहा कि आप लोग दुःखी न हों क्योंकि आप सब मेरे मित्र हैं। मैं आप लोगों के दर्शन से बहुत प्रसन्न हूँ। अतः साहब की बात सुनकर उक्त समाज करबद्ध कहने लगा कि हे प्रभो ! अब हम लोगों को आज्ञा दीजिए। आज से कभी भी किसी सन्त के साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं किया जाएगा। हम लोग वास्तव में नाम रूप के ब्राह्मण, संन्यासी तथा मौलवी हैं। क्षमा कीजिए, इत्यादि कहकर लोग उठने लगे। कबीर साहब ने कहा कि आप लोग मेरे आश्रम पर आये हैं, कुछ सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य है। बैठिए घर में तो कुछ नहीं है। मैं अभी मण्डी में जाता हूँ। आप लोगों का कुछ सेवा-सत्कार करूँगा तब जाइएगा। कबीर साहब की उक्त बात सुनकर सभी लोग हाथ जोड़कर खड़े हो गए। एक स्वर से सभी ने कहा कि नहीं, नहीं। हम सब आप से कुछ भी नहीं लेंगे। अब हम सब जा रहे हैं, हमने सुना था कि आप बड़े सिद्ध पुरुष हैं, इसलिए परीक्षा करनी थी। कबीर साहब ने कहा कि बिना कुछ सत्कार के आप लोगों को मैं नहीं जाने दूँगा। यदि आप लोगों में से कोई चला जायगा, तो मैं भी काशी को छोड़कर अन्यत्र चला जाऊँगा। इतनी बात सुनते ही सभी ने कहा कि जैसी आपकी आज्ञा हो, अतः सब लोग पुनः अपने-अपने आसन पर बैठ गए। इसके बाद सद्गुरु कबीर साहब उठे और गंगा जी के तट पर जाकर ध्यानस्थ हो गए।

सद्गुरु पर भगवत् कृपा

इधर श्री हरि ने पच्चीस बैलों पर सभी प्रकार की भोज्य सामग्री को लेकर सद्गुरु कबीर के रूप में आश्रम पर आकर आए हुए आगन्तुकों में उक्त सामग्री का वितरण प्रारम्भ कर दिया। सभी लोग बड़े प्रेम से कृत्रिम कबीर के हाथ से सामानों को ग्रहण करके आनन्द विभोर हो गए।

उधर श्री हरि एक ब्राह्मण का रूप बनाकर जहाँ सद्गुरु बैठे थे, वहाँ पहुँच कर कहने लगे कि यहाँ तुम क्यों बैठे हो ? जाओ कबीर के यहाँ जो जाता है उसको ढाई सेर से कम नहीं मिलता। तुम जाओ यहाँ

भूखे क्यों मरते हो ? कबीर के घर पर जाओ। साधु रूपधारी श्रीहरि की बात सुनकर, कबीर साहब ने मन ही मन परमेश्वर की महिमा का गान करते हुए, अपनी राम कुटी की ओर चल दिया। मार्ग में जो भी मिल रहा था वह यही कहता था कि आज तक ऐसा नहीं हुआ था इस नगर में जैसा दान-सम्मान कबीर ने किया। इसी से तो स्वामी रामानन्द जी ने इनको अपना शिष्य बनाया है। यह कबीर जुलाहा नहीं, यह कोई अवतारी पुरुष है। देखो, किस प्रकार की बातें करता है, जो शास्त्रों का सारभूत है। इस प्रकार से कहते हुए लोग अपने-अपने घर को चले गए। इधर साधुरूपी श्री हरि के कहने पर सद्‌गुरु कबीर साहब ने घर आकर माता-पिता को नमस्कार किया। माता से सम्पूर्ण समाचार जानकर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। नीमा ने पूछा कि बेटा कबीर यह सारा सामान कहाँ से लाते हो ? कोई राज्य कर्मचारी तुम्हें पकड़ न ले जाय। माता की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा कि माँ, जो अधिकारी सभी को पकड़ कर दण्डित करता है, वही पुरुष मुझे यह सब सामान देता है। तुम डरो नहीं। माता चुप हो गई और इधर सद्‌गुरु कबीर विचार करने लगे कि मेरे लिए जो इतना कर रहा है और बार-बार मेरी रक्षा कर रहा है, अब उसी के ऊपर अपने जीवन का सारा भार सौंप देना सर्वोत्कृष्ट होगा। कबीर ने अपने माता-पिता से कहा कि यह जो कुछ भी हो रहा है, तुम किसी से मत कहना और डरना भी नहीं। यह सब श्री हरि की कृपा का फल है, कबीर ने कहा कि आप लोग अब से भी पूर्ण रूप से श्री हरि की शरण ले लो।

अपने माता-पिता को उपर्युक्त उपदेश देकर कबीर चुप हो गए। अतः सद्‌गुरु कबीर साहब के चमत्कार को देखकर उनके अन्य सम्बन्धी भी स्वामी रामानन्द जी से वैष्णव धर्म का उपदेश सुनकर श्री हरि परायण हो गए और 'श्री' आदि धर्म का पालन करने लगे तथा पूरे मुहल्ले में प्रातः सायं रामनाम की ध्वनि सुनाई देने लगी। सभी भक्ति परायण हो गए। उक्त प्रखण्ड से भी दरिद्रता भाग गई तथा सभी लोग रोग, शोक, मोह और मत्सर से मुक्त हो गए एवं पूर्ण स्वस्थता को प्राप्त हुए। किसी में आलस्य और प्रमाद नहीं रह गया। बेईमानी, शैतानी भी दूर हो गई। प्रत्येक निवासी शुद्धाचरण का पालन करने लगा तथा माता-पिता एवं गुरु की सेवा में अनुरक्त हो गया। परस्पर की विद्वेषता एवं भेद-भाव, अकाल मृत्यु आदि का अभाव हो गया। सभी सुख से रहने लगे। यह सब

गुरुदेव कबीर को महती कृपा तथा तपश्चर्या का परिणाम था, जो सब के सब श्री हरि परायण हो गए। उधर माता नीमा कबीर साहब को प्रसन्न जानकर एक दिन एकान्त में जाकर पुत्र-स्नेह से कहने लगी कि बेटा एक बात कहती हूँ। उसको सुनो और मान लो। कबीर साहब ने सोचा कि माता नीमा का कोइ गम्भीर आशय है, जिसका पालन करने में कठिनाई होगी। अतः नीमा के आशय को समझकर कुछ देर मौन रहने के बाद उन्होंने कहा—माँ! अपने स्वामी के आज्ञानुसार तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य है। मुझसे वही बात कहना जिसे मैं कर सकूँ। पुत्र को बात को सुनकर नीमा संकुचित होती हुई बोली कि बेटा तुम्हारी अवस्था लगभग बीस वर्ष की हो रही है। मुझे कोइ दूसरी सन्तान भी नहीं है और तुम सयाने भी होते जा रहे हो। आगे की वंशावली भी चलनी चाहिए। इसलिए तुम अपना विवाह कर लो, क्योंकि अवस्था अधिक होने पर लोग सन्देह करने लगेंगे। इतना करकर नीमा कुछ दूर पर जाकर बैठ गई। अस्तु, जो बात नहीं कहनी चाहिए, वह बात भी लोग मोह के वशीभूत होकर कह डालते हैं।

माता की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा कि माँ! जब मैं सभी को अपनी माँ बहन समझता हूँ तो किसके साथ विवाह करूँ। विवाह करके क्या होगा? यही दुःख का मूल है।[1] अनेक युगों से यह क्रम चला आ रहा है। संसार बसाने की शृंखला अपनी धुरी पर गतिमान है, परन्तु आज तक इसकी पूर्ति नहीं हो सकी है। कितनी बार आपके और हमारे जन्म-कर्म हो चुके हैं और अनन्त वंश भी हो चुके हैं, जिन वंशों से कोई लाभ नहीं हुआ है। हे माता! मनुष्य को वंश से कोई लाभ नहीं हुआ है और न होगा। प्राणी पैदा होता है और मर जाता है। बस, पेट भर खाया-पिया, फिर यहाँ से चला गया। कुछ हाथ नहीं लगा, न लेकर कुछ आया था और न हो कुछ लेकर जाते देखा गया और भी इसमें अनेक दोष देखे जाते हैं। सबसे पहले तो स्त्री वाले को धन चाहिए। उस पर भी सुरूपता होनी चाहिए, क्योंकि निर्धन पुरुषों एवं

१. को काको पुरुष कवन काकी नारी।
अकथ कथा जम दृष्टि पसारी॥
को काको पुत्र कवन काको बापा।
को रे मरे को सहै संतापा॥ —बीजक शब्द प्रकरण

कुरूप पुरुषों को स्त्रियाँ कभी नहीं चाहतीं। बार-बार उस पुरुष का अपमान करती हैं और वह पुरुष उसका नौकर बना रहता है। उसके सामने ही अन्य पुरुषों से भी उन स्त्रियों का संबंध हो जाता है, जिसको देखकर अभाव ग्रस्त पुरुष अहर्निश जलता रहता है। कुछ भी सुकृत्य नहीं कर पाता। अन्त में जीवन दुःखमय हो जाता है और वे स्त्रियाँ अन्य पुरुष की बन जाती हैं।

इसी प्रकार से पुत्र आदि को समझो। विना स्वार्थ के पुत्र भी आज्ञा का पालन नहीं करता। अर्थाभाव में सब छोड़ देते हैं। वृद्धावस्था में शय्या पर पड़े-पड़े पुकारने पर पुत्र एवं स्त्री दूसरी तरफ मुँह फेर लेते हैं। ठीक से पानी तक पीने के लिए नहीं देते। प्रतिकूल दुर्वृत्ति एवं दुर्व्यवहार रखते हैं। इसलिए वंश आदि की तुम्हारी कल्पना और उसके द्वारा सुख आदि की इच्छा करना मिथ्या एवं मनुष्य की महान् भूल है। माँ, तुम्हें श्रीहरि का भजन करना चाहिए। संसार के चक्र में नहीं पड़ना चाहिए। मेरे पास तो वस्तुएँ हैं, वे सभी श्री हरि की दी हुई हैं और श्री हरि के वंश संत लोग हैं, जो कभी मृत्यु का नहीं प्राप्त होते। इसका कारण यह है कि परमेश्वर अविनाशी है। इसलिए उसके वंश भी अविनाशी होते हैं। जिसकी सेवा तुझे करनी चाहिए, जो परमावश्यक है। अस्तु, माता नीमा पुत्र की बात सुनकर निराश हो गई और पुनः कुछ कहने में असमर्थ हो गई। इसके बाद दोनों अपने दैनिक कार्य में संलग्न हो गए।

कबीर का परिव्राजक होना

इधर कबीर साहब दिन प्रतिदिन जगत् की मोह-माया से विरत होने लगे। कपड़ा बुनने के कार्य में उनका मन ही नहीं लगता था। करघा पर बैठते ही समाधि लग जाती थी। इधर का सूत उधर हो जाता था। कभी विना सूत के ही करघा चलता था, कभी बंद रहता था। इस प्रकार से सारे व्यवहार विपरीत होने लगे। वैराग्य इतना तीव्र हो गया था कि ताना-बाना सब छोड़ देना पड़ा और जीवन पथ का भार पूर्णरूपेण श्री हरि के चरणों में ही सौंप देना सर्वोत्कृष्ट होगा, ऐसा निश्चय कबीर साहब के जीवन के बीसवें वर्ष में हुआ।

वि० सं० १४७५ में ब्रह्मचर्याश्रम का परित्याग कर वैष्णव संन्यास ग्रहण करने हेतु कबीर घर से निकल पड़े और श्री रामानंद के आश्रम में पहुँचे तथा उपर्युक्त विचार को गुरू महाराज से उन्होंने व्यक्त किया।

श्री गुरुदेव ने कहा कि एवमस्तु। मैं तो तुम्हारी बाट बहुत दिनों से देख रहा था कि तुम कब आओगे ? मैं तो चाहता हूँ कि मेरे शेष कार्यों को तुम पूरा करो, क्योंकि तुम्हारा अवतरण इसी कारण हुआ है। आओ, मैं तुम्हें वैष्णव संन्यासी बना देता हूँ। अपना सारा रहस्य बता देता हूँ। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि संसार के प्राणियों का त्राण करो। सभी को अपनी वाणी द्वारा प्रगाढ़ तमाच्छादित कूप से बाहर निकाल कर ज्ञानरूपी प्रकाश में लाओ। संसार के मृत प्राणियों के ऊपर ज्ञानरूपी अमृत छिड़क दो, जिससे सब जीवित हो जाँय, जो संसार रूपी समुद्र में निमज्जित हो रहे हैं, जिनको कोई आश्रय नहीं मिल रहा है। जो अहर्निश यम की यातना सह रहे हैं एवं जो अज्ञानवश भौतिक जगत को ही सत्य मान रहे हैं तथा शुद्धाचार के विचार से विहीन हो गए हैं। कलह कल्पनारूपी सराखेट क्षण प्रतिक्षण अनेक जन्मों से बने हुए हैं। अपने पराये का ज्ञान विनष्ट हो चुका हैं। वेद बाह्य मान्यताओं की ओर उन्मुख है। हिंसा, दम्भ परायण वृत्ति वनती जा रही है। लोग स्वर्ग जाने के स्थान पर नरक की ओर अग्रसर हो गए हैं। स्वार्थियों का समूह बढ़ता जा रहा है। देखो, लोग स्वार्थ के वशीभूत होकर नीच से नीच कोई भी कर्म नहीं छोड़ रहे हैं। मोहम्मदियों का घोर अत्याचार अपनी चरम-सीमा का अतिक्रमण कर रहा है। रात-दिन मन्दिरों को ध्वस्त कर मस्जिदों का निर्माण करने में तल्लीन हैं। हिन्दुओं को तलवार के बल पर तुर्क बनाया जा रहा है। अबलाओं का शील उनके माता-पिता के सामने ही हरण किया जा रहा है। जो हिन्दू मोहम्मदीय धर्म ग्रहण नहीं करते, उनको तलवार के घाट उतारा जा रहा है। हिन्दुओं पर द्वादश कर लगे हुए हैं, जिनके भार से दिल दिमाग टूटता जा रहा है। हिन्दू पद्धति से पूजा नहीं करना, वेदाध्ययन नहीं करना, विवाह शादी में जहाँ मस्जिदें हों वहाँ बाजा नहीं बजाना, प्रत्येक व्यवसाय के आय का अस्सी प्रतिशत भाग म्लेच्छ सामन्तों को दे देना, म्लेच्छ नहीं बनने पर प्राणदान दे देना। सूत्र रखो या डोला देना, म्लेच्छों की मृत्यु के पहले शव संस्कार का स्थान खोदना, म्लेच्छ के पर्वों में अवश्य जाना, म्लेच्छों के समक्ष खड़ाऊँ, जूता नहीं पहनना, छाता नहीं लगाना, म्लेच्छ बिना कारण मारपीट, गाली गलौज दें तो हिन्दुओं को नहीं बोलना चाहिए। सप्ताह में एक दिन निःशुल्क सेवा करना, म्लेच्छों के सामने ऊँचे आशन पर नहीं बैठना, म्लेच्छ चाहे दो मास का हो या दस वर्ष का

हो, जहाँ पर दिखाई दे, उसका अभिवादन करना, इत्यादि प्रकार के दण्डों को कर स्वरूप में तुर्क लोग अपने धर्म के विपरीत लोगों से ले रहे हैं। इतना ही नहीं इस प्रकार के अत्याचार दिन प्रतिदिन करते जा रहे हैं, जो तुम भी देख-सुन रहे हो और इसी प्रकार से नाथ-पंथियों के सिद्धों का भी अत्याचार देख ही रहे हो।

वैष्णवों की मर्यादा को समूल-निर्मूल करने पर ये तुले हुए हैं। मैं अकेला क्या करूँ ? अतः तुम इस द्वन्द्ववादरूपी रात्रि को भगवान् भास्कर बनकर छिन्न-भिन्न कर दो। संसार का मार्गदर्शक बन जाओ, यही मेरे लिए गुरु-दक्षिणा है। इतना कह कर स्वामी जी ने शिष्यों को आदेश दिया कि चन्दन प्रभृति सामग्री लाओ। श्री अष्टानन्द जी से कहा कि कौपीन फाड़ो तथा ब्रह्म गाँती के लिए वस्त्र भी तैयार करो, दो अँचला भी होना चाहिए। अस्तु, आदेश पाते ही शिष्यों ने सारी सामग्री एकत्रित कर दी। इसके बाद स्वामी जी ने कहा कि वत्स कबीर ! स्नान करके आओ। गुरु की आज्ञा पाते ही कबीर साहब स्नान करके प्रस्तुत हो गए। इधर स्वामी जी ने वेद मन्त्रों से हवन आदि शुभ सात्विक कर्मों को करने के अनन्तर शंख आदि बाजों को बजवाया। तत्पश्चात् स्वामी रामानन्द जी ने कबीर साहब को कौपीन पहनाया और ब्रह्म गाँती भी बाँधा। इसके बाद उन्होंने मस्तक पर एवं अन्य अंगों में द्वादश तिलक लगाया। स्थानीय सन्तों ने मांगलिक गीतों का उच्चारण किया और शंख, भेरी, मृदंग, मजीरे प्रभृति बाजों को प्रतिध्वनित किया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो सम्पूर्ण नगर में मंगल गान हो रहा है। आश्रम के आस-पास के लोग उक्त उत्सव में सम्मिलित हुए और आनन्द मनाने लगे। इस प्रकार से कबीर साहब को पूर्ण विधि-विधान के साथ स्वामी रामानन्द जी ने वैष्णव संन्यास प्रदान किया। सभी लोग आनन्द-विभोर होकर नाचने-गाने लगे और सन्तों को भोजन कराया गया। इधर कबीर साहब के परिब्राजक बन जाने पर, पुनः स्वामी रामानन्द जी ने उन्हें यह आज्ञा दी कि यथायोग्य सन्तों को नमस्कार करो। कबीर साहब ने वैसा ही किया।

उधर नीरू-नीमा ने कबीर को परिब्राजक के आश्रम में समाविष्ट हो जाने की बात सुनकर रुदन करने लगे। कबीर साहब के परिब्राजक ग्रहण का समाचार सम्पूर्ण नगर में फैल गया, जिसे सुनकर कुछ प्रति-क्रियाएँ भी हुई। परिब्राजक बनने का अनुमोदन एवं समर्थन करने

वालों में निम्न वर्ग तथा मध्य वर्ग के लोग थे, जिन्होंने साधु बन जाने के कारण बड़ा आनन्द मनाया, परन्तु कुछ ब्राह्मण, शैव और कुछ शक्त समाज के लोगों ने सुनकर शोक भी व्यक्त किया। उपर्युक्त लोगों ने कहा कि कबीर का परिव्राजक होना सभी के लिए हितकर नहीं है, क्योंकि समाज कबीर के संन्यास लेने से दूषित हो जाएगा। ऐसा कहकर लोग शान्त हो गए। इसका मूल कारण यह था कि दो तिहाई जनता कबीर साहब के पक्ष में थी। इसलिए दोनों को विवश होकर पश्चाताप करना पड़ा। विरोध से कोई लाभ नहीं होगा। शान्ति का यही कारण था। उनके लिए केवल षड्यन्त्र करना ही मार्ग रह गया था। अस्तु, उधर से मुहम्मद नूर अली एवं नीमा दोनों साथ-साथ रुदन करते हुए स्वामी रामानन्द जी के आश्रम की ओर प्रस्थान किए और आपस में वे वार्त्तालाप भी कर रहे थे कि एक ही लड़का है, वह भी साधु हो गया है। अल्लाह पाक उसकी अकल ठीक कर दो! इस प्रकार की बातें करते हुए दम्पति बड़ी शीघ्रता से स्वामी जी के आश्रम की ओर अग्रसर हो रहे थे। उनके पीछे कुतूहल वश अपार भीड़ भी जा रही थी। थोड़े ही समय में भीड़ नूर अली के साथ पहुँच गई। नीरू और नीमा को रोते हुए सुनकर आश्रम के आस-पास के संत लोग क्षुब्ध हो गए और बोले देवी! तुम कौन हो? संतों के पूछने पर साथ के कुछ लोगों ने कहा कि ये दोनों, कबीर के माता-पिता हैं।

उक्त समाचार को जानकर संतों ने जाकर स्वामी जी से कह सुनाया। उक्त समाचार सुनकर स्वामी रामानन्द जी ने कबीर साहब को संबोधित करके कहा वत्स कबीर! देखो, तुम्हारे माता-पिता आश्रम पर आकर रो रहे हैं, जाओ उन दोनों को समझा दो। कबीर साहब ने कहा कि मैंने बहुत बार उन दोनों को समझाया, परन्तु मेरी बात वे नहीं मानते हैं। इसलिए आप ही चल कर समझा दीजिए। स्वामी जी ने कहा—एवमस्तु! चलो परदा लगाओ। कबीर स्वामी यद्यपि परदा के विरोधी थे, परन्तु लोक मर्यादा के कारण गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करना सर्वोत्तम है, ऐसा समझकर पीत पट की यवनिका उन्होंने लगा दी। जिसके भीतर से स्वामी जी ने कबीर साहब के माता एवं पिता को संबोधित करते हुए कहा कि तुम दोनों धन्य हो, तुम्हारे पूर्वज धन्य हैं, जिसके वंश में कबीर जैसा सुपुत्र पैदा हुआ है। तुम दोनों रोओ मत, घर पर जाओ। श्री हरि का चिन्तन करना और अपना रोजी-रोजगार

करना। चिन्ता नहीं करना। तुम्हारा लड़का अच्छे मार्ग का अनुसरण कर रहा है। इसलिए तुम दोनों को प्रसन्न रहना चाहिए। अस्तु, इस प्रकार स्वामी जी के समझाने पर भी दम्पति के मन में पूर्ण शान्ति नहीं आई। स्वामी जी के उपर्युक्त बातों के कहने के बाद नीरू एवं नीमा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि स्वामी जी ! कबीर साधु बन कर ही रहें, परन्तु जब तक हम लोग जीवित रहें तब तक कबीर हम लोगों से दूर न रहें। आपकी आज्ञा हमें स्वीकार है, परन्तु हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें। इतना कहकर दोनों दूर से ही स्वामी जी को साष्टांग प्रणाम करके घुटने टेक दिए और बोले कि कबीर प्रतिदिन आपकी सेवा में उपस्थित रहें तथा कथा-कीर्त्तन करें, सत्संग में उपस्थित रहें, परन्तु हम दोनों का परित्याग न करें। इतना कहकर दोनों मौन हो गए।

इसके बाद स्वामी जी ने कबीर साहब से कहा—वत्स ! जैसा ये लोग कह रहे हैं, वैसा ही करो। जाओ, घर पर एक कुटी बना लो। वहाँ पर भी जो संत आवें उनकी सेवा करना और इन अर्द्ध-वृद्धों की भी सेवा करना। इसी प्रकार से आश्रम के अन्य भद्र पुरुषों ने भी कबीर साहब को लक्ष्य करके कहा कि आप इन अर्द्ध-वृद्धों का साथ न छोड़िए। अतः स्वामी जी की बात एवं स्थानीय सन्तों की बात सुनकर कबीर साहब ने हाथ जोड़कर कहा कि गुरुदेव की आज्ञा मुझे मान्य है। जैसी आज्ञा होगी उसका मैं पालन करूँगा। परन्तु मेरी एक प्रार्थना है कि मेरे माता-पिता को राम-मंत्र दे दिया जाय। स्वामी रामानन्द जी ने कहा कि तुमने बहुत अच्छा कहा। ऐसा कह कर स्वामी जी ने कबीर के माता-पिता को राम-मंत्र दे दिया। इसके बाद आश्रम के अन्य सन्तों से उन्होंने कहा कि तुम लोग कबीर के माता-पिता को इनके घर तक पहुँचा दो। आज से कबीर के नाम के आगे 'स्वामी' एवं 'दास' पद रहेगा। सन्तों ने एवमस्तु कहकर स्वामी कबीर साहब के साथ पहुँचाने चल दिए। थोड़ी ही देर में वे सन्त स्वामी कबीरदास जी के घर आ गए। घर पर आकर स्वामी सद्गुरु कबीर ने सन्तों का बड़ा सत्कार किया एवं पुनः प्रेम के साथ आश्रम पर जाने के लिए विदा किया

इधर कबीर लोक को दिखाने के लिए अपने माता-पिता के साथ रहने लगे। वह दैनिक कार्य करने के बाद माता-पिता की सेवा करते, कथा-कीर्त्तन में सम्मिलित होने के लिए गुरुद्वारे में जाया करते थे। रात-दिन सन्तों की सेवा और परोपकार करना ही उनका दैनिक कार्य

था जिसके कारण कबीर स्वामी की ख्यातिचारों ओर जनसाधारण से उच्च वर्ग में भी फैल गई। परिणामस्वरूप बड़े-बड़े सेठ-साहुकार-धनाढ्य राजे-महराजे भी स्वामी कबीर के दर्शन के लिए आने लगे। इतनी भीड़ एकत्रित होने लगी कि कबीर साहब ऊबने लगे इस भीड़ से ध्यान-पूजा एवं सत्संग में बाधा पड़ने लगी, परन्तु गुरु की आज्ञा थी कि लोगों को सन्मार्ग पर चलने के लिए वैष्णवधर्म का प्रचार-प्रसार करना चाहिये। इसलिए आए हुए लोगों को वे सद्ज्ञान देते रहे। जो कबीर साहब की वाणी को एक बार सुन लेता था वह परम वैष्णव बन जाता था, यहाँ तक कि नाथ पंथी एवं शाक्त, शैव भी, सद्गुरु कबीर साहब के भजन, कीर्त्तन और उपदेश को सुनकर वैष्णवधर्म के झण्डे के नीचे आने लगे।

सद्गुरु कबीर के उपदेश के द्वारा अत्यधिक हानि नाथों एवं शाक्तों की होने लगी। नाथ और शाक्त के बड़े-बड़े सिद्ध एवं विद्वान् काशीपुरी में आने लगे। स्वामी रामानन्द जी से शास्त्रार्थ करने के लिए एक बार दशाश्वमेध घाट पर बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ, जिसमें उभय मोर्चे का निर्माण किया गया। उक्त सभा में दृढ़ निश्चय हुआ कि कबीर से न लड़कर कबीर के मूल स्वामी रामानन्द जी से ही लड़ा जाय, क्योंकि कबीर उन्हीं के बल पर अवलम्बित हैं। अतः उक्त विचार से संयुक्त होकर नाथ और शाक्त स्वामी जी के यहाँ गए। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, जिसमें तत्कालीन काशी के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान् योद्धाओं के महारथी भी उपस्थित हुए और तरह-तरह के युक्ति-प्रमाणों को देकर अपने पक्ष को प्रस्तुत करने लगे। नाथों और शाक्तों का कहना था कि वैष्णवधर्म अवैदिक है। इसलिए वेद विहित हिंसा आदि यज्ञों का विरोध करता है, जिसके बल पर दोनों टिके हुए थे, उसी की पुष्टि करते थे। इधर वैष्णवों का कहना था कि वैष्णवधर्म वैदिक है।

स्वामी रामानन्द का विरोधियों से शास्त्रार्थ

वेद में पूर्व पक्ष के विरुद्ध उत्तर पक्ष में अहिंसा का प्रतिपादन है। हिंसा युक्त जो वेद में वचन प्रतीत होते हैं, वे हिंसा के तात्पर्य में नहीं हैं, क्योंकि वेद में कहा गया है कि "सर्व भूतानि मा हिंसी" (यजुर्वेद) अर्थात् प्राणी मात्र की हिंसा नहीं करनी चाहिए। यही धर्म सर्वोत्तम है। दूसरी बात यह है कि वैष्णव यह तर्क देते थे कि जब हिंसा पाप नहीं है, तो पाप किसको कहते हैं? यदि विश्वासघात, अपवाद आदि को ही पाप कहा जाय, तो वह भी हिंसा के अन्तर्गत होने के कारण

पाप नहीं कहा जा सकता। इस परिस्थिति में आपको पाप कभी और कहीं है ही नहीं, तब आपका धर्म ही निरर्थक है। क्योंकि धर्म के विरोध में अधर्म का होना अनिवार्य है, परन्तु आपके यहाँ धर्म अधर्म कुछ भी नहीं है केवल वाक्य विलास है। अस्तु, उक्त तर्क के समक्ष नाथ एवं शाक्त मूक हो जाते थे। इसलिए वैष्णवों के तर्क से सर्वसाधारण से लेकर विज्ञ लोग भी सहमत हो जाते थे कि वैष्णव धर्म सत्य एवं वैदिक है। यद्यपि शाक्तों ने बड़े-बड़े तर्क दिए, परन्तु स्वामी रामानन्द जी के सामने टिक नहीं सके। नाथ कहते थे कि हिंसा व्यापक अर्थ में लेनी चाहिए, क्योंकि बिना हिंसा के कोई भी धर्म नहीं है और खाना-पीना इत्यादि हिंसा में ही आता है। यहाँ तक कि चलने, बैठने, सोने आदि कार्यों में भी हिंसा होती है। जिसको वैष्णव लोग अकारण सकारण कहकर शाक्तों का मुख बन्द कर देते थे। इस प्रकार से उभयपक्षीय विवाद बहुत समय तक चलता रहा, अन्ततोगत्वा नाथ एवं शाक्त गण, शास्त्रार्थ में पराजित हो गए। तब नाथों ने दूसरे मार्ग का अनुसरण किया। नाथों और शाक्तों में जितने तांत्रिक सिद्ध थे वे सब अपनी-अपनी सिद्धि का प्रदर्शन करने लगे।

वैष्णवों पर अत्याचार एवं कबीर द्वारा उसका शमन

इतना ही नहीं प्रत्येक राज्य में जा-जाकर जहाँ कहीं भी वैष्णव सन्त रहते थे, वहाँ-वहाँ भी अपनी मन्त्र विद्या से वैष्णवों के वैष्णवी वेश अर्थात् तिलक-मुद्रा-कंठी आदि को समाप्त कर देते थे और बाद में अपने को सबल बतलाकर कंठी-माला तोड़कर नाथ एवं शाक्त बना लेते थे। राम-नाम का परित्याग कराकर 'शिवोऽहम्', 'शक्तिरहम्' कहलवाते थे। इसके कारण वैष्णवों में आतंक मच गया था, क्योंकि वैष्णव सरल एवं सीधे रामभक्त होते थे। वे सिद्धि, माया जाल इत्यादि से दूर रहते थे। इसलिए नाथों एवं शाक्तों की यह चाल सफल होने लगी।

इधर वैष्णव के खेमे में चिन्ता का विषय बन गया। अस्तु, वैष्णव लोग भी तांत्रिकों से बचने के लिए माया का प्रयोग करने लगे, जिससे नाथ आदि मायावी भाग खड़े हुए। पुनः वैष्णव समाज राम-नाम का प्रचार करने लगा। उधर नाथों ने जब वैष्णवों से तन्त्र विद्या में भी पार नहीं हो पाये, तो पूरे देश के नाथों को उन लोगों ने बुलाया और उक्त विषय पर विचार-विमर्श होने लगा। अन्त में यह निश्चय हुआ कि रामानन्द जी को जब तक नहीं पराजित किया जाएगा तब तक

कार्य अधूरा ही रहेगा। इसलिए इसका उपाय करना चाहिए, क्योंकि साधारण सिद्धों के मान का रामानन्द नहीं हैं। उसके द्वादश शिष्य बड़े प्रतापी हैं, जिसमें कबीर, अनन्तानन्द, पीपा, रविदास आदि महान् सिद्ध हैं। इनको पराजित करने के लिए किसी अवतारी सिद्ध पुरुष की आवश्यकता है। इसलिए चलिए नाथों के किसी बड़े सिद्ध का अन्वेषण किया जाय। उक्त विचार-विमर्श के बाद नाथों का एक प्रमुख दल बना, जो उक्त कार्य में संलग्न हो गया और चारों ओर वन, पहाड़ों-गुफाओं में खोजना प्रारम्भ कर दिया। खोजते-खोजते छह महीने के बाद हिमालय के कैलाश, तिब्बत के उत्तर पार्श्व भाग में एक महासिद्ध का पता चला, जो महायोगी स्वामी गोरखनाथ के समकक्ष माना जाता था, क्योंकि वह योगी नाथपंथी था और बहुत बड़ा प्रभावशाली था, जिसके कारण जनसाधारण उक्त योगी को स्वामी गोरखनाथ कहा करता था। अतः उसी योगी के पास जाकर नाथों ने बहुत अनुनय विनय किया और नाथों के ह्रास के कारणों में स्वामी रामानन्द एवं उनके प्रधान शिष्य कबीर को बताया। अस्तु, नाथों की बात सुनकर उक्त योगी ने पहले तो आने से अस्वीकार कर दिया, परन्तु अत्यधिक प्रार्थना करने पर वहाँ से चल दिया और नाथों से कहा कि तुम लोग घबड़ाओ नहीं, मैं उस रामानन्द को समाज सहित नाथ बना दूँगा और पुनः हिमालय की गुफा में आ जाऊँगा। ऐसा कहकर उक्त योगीराज बाबा नाथों के दल के साथ श्री काशी जी में आकाश मार्ग से आ गया।

इधर वैष्णवों के गुप्तचरों ने आकर स्वामी रामानन्दजी से उक्त नाथ पंथी योगी के विषय में पूरी जानकारी दी, तत्पश्चात् स्वामी जी ने ध्यान से देखा कि अब वैष्णवों का अस्तित्व संकट में पड़ गया है, क्योंकि उक्त योगी हठयोग की सभी सिद्धियों में पारंगत था। स्वामी जी योगी महापुरुष अवश्य थे, परन्तु तन्त्ररूपी माया जाल से दूर रहते थे। इसलिए चिन्ता का विषय बन गया। योगी पुरुष के विषय में पूर्ण जानकारी के बाद अपने सभी शिष्यों को उन्होंने बुलाया। अस्तु, जहाँ जो थे वहाँ से शीघ्रतापूर्वक स्वामी जी के बुलाने पर आश्रम पर चले आए। उस समय प्रधान शिष्यों में स्वामी अष्टानन्द सद्गुरु कबीर एवं रविदास जी वाराणसी में थे। अतएव परस्पर विचार विमर्श होने लगा, क्या किया जाय? इसी बीच कबीर चबूतरे से प्रतिदिन की भाँति श्री

सद्गुरु कबीर सायं सूर्यास्त के बाद पहुँच गये और एकान्त कोने में जाकर चुप-चाप बैठ गए। कबीर को आए हुए देखकर स्वामी जी ने कहा—वत्स कबीर! कबीर क्या होगा? स्वामी जी की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा कि जो आपकी आज्ञा होगी, वही होगा। स्वामीजी ने कहा कि वह योगी महासिद्ध है, उसको कैसे पराजित किया जाए? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। इस पर सद्गुरु कबीर स्वामी जी ने कहा कि पहले उसे आश्रम पर तो आने दें, तब कुछ सोचा जाएगा। पहले ही से चिन्ता करना अच्छा नहीं है।

सद्गुरु कबीर का गोरखनामधारी योगी से शास्त्रार्थ

उधर गोरखनाथ नामधारी योगी प्रातः होते ही पंचगंगाघाट के पास स्वामी जी के आश्रम पर आ गया, जिसके साथ बहुत से नाथ एवं शाक्त भी थे। नाथ योगी ने आश्रम के द्वार के दाहिने भाग में अपना विशाल त्रिशूल भूमि पर गाड़ दिया और उसी पर अपना आसन जमा लिया। देखने में वह योगी विशालकाय, उसकी दीर्घअरुण आँखें बड़ी डरावनी लग रही थीं। उसे देखकर जन साधारण भयभीत हो गया और वहाँ से दूर भाग गया। अस्तु, उस योगी को त्रिशूल पर बैठे हुए देखकर वैष्णवों के मन में आतंक छा गया। लोग श्री राम, श्री राम जपने लगे और जाप करते हुए अन्तःपुर की गुहा में स्वामी जी से जाकर उन लोगों ने सारी बातें कह सुनाई। उधर उपर्युक्त योगी ने गम्भीर स्वरों में हुँकार मारते हुए गर्जना की। ऐसा लगता था कि भगवान् शंकर ने रुद्र रूप धारण कर लिया है और क्षण मात्र में ही सबको भस्म कर डालेंगे। पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए उस योगी ने पुनः ललकारते हुए कहा कि स्वामी रामानन्द चलो मुझसे शास्त्रार्थ करो, क्योंकि तुम नाथों एवं शाक्तों को संसार से विदा करने के लिए कटिबद्ध हो गए हो। यदि तुम यही चाहते हो तो आज तुझे एवं तुम्हारे शिष्यों को मैं भस्म कर दूँगा। इसलिए शीघ्र आओ और मुझसे शास्त्रार्थ करो। उक्त योगी की बात सुनकर ऐसा लगा कि काशी नगरी काँप रही है। सभी लोग भय से कम्पित हो काशी नगरी को छोड़कर भागने लगे। इधर वैष्णवों की तो वह दशा हो गई जैसे मृगराज निर्बल गायों को देखकर उस पर टूट पड़ता हो।

अतः उक्त वैष्णव समाज की दयनीय दशा को देखकर श्री स्वामी

रामानन्द जी चिन्तित हो उठे। स्वामी जी के मनोभाव को जान करके करबद्ध होकर कबीर साहब ने उनके चरणों पर मस्तक रख दिया और कहा कि गुरुदेव देवताओं के देव क्या बात है? क्यों आपको इतनी चिन्ता हुई है? कबीर साहब को अपने चरण कमलों पर गिरा देख कर स्वामी जी ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया और कहा वत्स! देखो वैष्णवों के ग्रह-रूप-योगी क्या कह रहा है? जाओ उससे वार्त्तालाप करो। गुरुदेव की आज्ञा पाकर कबीर स्वामी ने उनका चरण स्पर्श किया और श्री राम नाम का उच्चारण करते हुए आश्रम से चल दिये। अतएव जब कबीर साहब आश्रम के बाहर जाने लगे उसी समय आश्रम के सभी उपस्थित लोग उनके पीछे-पीछे चलने लगे। सभी लोग उस योगी के पास आ गए और योगी को वाम भाग में करते हुए उसके समक्ष खड़े हो गए। कबीर साहब के हाथ में एक कच्चे सूत का बंडल था। उस बंडल के सूत को पकड़ कर उन्होंने आकाश की ओर फेंक दिया। वह सूत इतनी दूर आकाश में चला गया कि मनुष्य की दृष्टि वहाँ नहीं पहुँच सकती थी। उसी सूत को पकड़ कर कबीर साहब लगभग सौ हाथ ऊर्ध्व में चढ़ गए और वह योगी, जो त्रिशूल पर बैठा था, उससे उन्होंने कहा कि गोरख! गोरख! आओ यहाँ पर शास्त्रार्थ करो, वहाँ दो हाथ के त्रिशूल पर क्या बैठे हो? यहाँ पर सत्संग करो। अस्तु, उक्त बात को सुनकर बाबा गोरखनाथ का सारा विकृत मस्तिष्क स्वस्थ हो गया, सिद्धियाँ भाग गईं। योगी त्रिशूल से गिरकर अचेत हो गया। उस योगी को हत-संज्ञा देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित हो गए और सभी लोग जय कबीर! जय कबीर! कहकर जय जयकार करने लगे। बार-बार कबीर साहब के बुलाने पर जब योगी नहीं जाग सका तब गुरुदेव कबीर भूमि पर उतर आए। ज्यों ही सद्गुरु कबीर भूमि पर उतरे त्यों ही योगी के साथ के सभी नाथ और शाक्त भयभीत होकर तेजी से भागने लगे। परन्तु गुरुदेव कबीर ने सभी को अपनी योग माया से आकर्षित कर लिया। कोई भाग नहीं सका। सभी लौट आए। सभी लोगों ने गुरुदेव के चरणों में माथा टेका। तत्पश्चात् गुरुदेव ने सभी को वैष्णवधर्म में स्वामी रामानन्द जी से दीक्षित करा दिया। पुनः गोरखनामधारी योगी के शरीर को स्पर्श किया। स्पर्श करते ही वह योगी सचेत हो गया। उससे गुरुदेव कबीर ने कहा कि महात्मन् चलिए कुछ भोजन आदि कीजिए। अस्तु, उक्त बात कहते हुए कबीर साहब को योगी ने अपने समक्ष खड़े हुए देखा तो उसको

ऐसा लगा कि अनन्त तेज से युक्त भगवान विष्णु ही सामने खड़े हुए हैं। विष्णु भगवान की तरह ही तीनों लोकों को अपने में निहित करने वाले देव हैं। शरीर की शोभा नीले आकाश की भाँति है। कबीर के इस सुन्दर रूप को देखकर उक्त योगी त्राहिमाम! त्राहिमाम! कहकर चरणों पर गिरकर स्तुति करने लगा और कहा—हे प्रभो! अब मुझको अपने शरण में ले लीजिए। अतः योगी की अनेक प्रकार की स्तुति को सुनकर गुरुदेव ने उससे कहा कि अब तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। चलो पूज्य गुरुदेव जी से ज्ञान ले लो। योगी ने कहा—प्रभो! अब आपही मेरे गुरू हैं, मेरा उद्धार कीजिए। इस प्रकार की योगी की विनती सुनकर कबीर ने कहा कि चलिए स्वामी जी का दर्शन तो कर लीजिए। अतः वह योगी कबीर साहब के साथ गया और उसने श्री रामानन्द जी से क्षमा माँगी। अपने सामने गिड़गिड़ाते हुए देखकर स्वामी जी ने उस योगी से कहा कि जब कबीर ने तुमको क्षमा प्रदान कर दी है, तो मैं भी तुझे क्षमा प्रदान कर दिया। जाओ जैसा कबीर कहें वैसा ही करना। तुमको कबीर ने ही पराजित किया है। इसलिए तुम कबीर को ही अपना गुरू मानना।

अस्तु, स्वामी रामानन्द जी ने कबीर साहब को आदेश दिया कि वत्स कबीर! इस महात्मा को उपदेश दे दो। कबीर साहब ने कहा कि जब तक गुरुदेव जीवित हैं तब तक मेरा अधिकार नहीं है कि मैं उपदेश करूँ, क्योंकि यह लोक विरुद्ध है। स्वामी जी ने कहा यह सब शिष्यों के लिए लागू नहीं है। यह केवल उन लोगों के लिए है, जिन्हें गुरुमत प्राप्त नहीं है और जिन्हें गुरुमत प्राप्त है उनके लिए यह नियम लागू नहीं है। अतः तुमने गुरुपद को प्राप्त कर लिया है और तुम गुरु के भी गुरु हो। उक्त प्रकार की बातें सुनकर कबीर साहब लज्जित हो गए और बोले जो आज्ञा हो, वह मुझे शिरोधार्य है। इतना कहकर उस योगी को लेकर कबीर साहब नीरूटीला पर आए और बोले कि तुम राम-नाम का जप करना, दूसरों को भी राम-नाम का जाप करने की सीख देना तथा आज से तुम्हारा नाम रामरक्षादास होगा। अब से तुम वैष्णव धर्म का प्रचार करना। कभी भी मान-अपमान का विचार मत करना। संत सदा निरीह होते हैं। सन्तों को मोह-माया नहीं सताती है। वे सबकी भलाई चाहते हैं। उनके अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी पिशाच कष्ट नहीं देता। सन्त सदा निर्मल हृदय के होते हैं। उनको हर्ष शोक नहीं सताता। स्तुति निन्दा में वे सदा सम रहते हैं। दूसरों को मान देते हैं,

आप बिना मान ही के रहते हैं। उनका मन प्रसन्न रहता है। वे राम-नाम में लवलीन होकर जपते हैं, अर्थात् किसी प्रकार का भौतिक क्लेश उन्हें स्पर्श नहीं करता, अतः हे रामरक्षादास इसी वृत्ति से रहना। इस प्रकार के उपदेशों को देकर उस महायोगी को उन्होंने विदा किया और उनके इस महान् कार्य के करने से वैष्णव समाज उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। सारे वैष्णव जगत् में आनन्द की लहर दौड़ गई और कबीर साहब की ख्याति चारों ओर फैल गई। लोग दर्शन के लिए आने लगे एवं स्वामी जी भी सद्गुरु कबीर से पहले से कहीं अधिक स्नेह करने लगे।

तृतीयालोक

एक दिन पंचगंगा घाट पर गुरु द्वारा में सभी सन्त बैठकर कुछ आध्यात्मिक चर्चा कर रहे थे, उधर सद्गुरु स्वामी रामानन्द जी गुफा में बैठकर मानसिक पूजा कर रहे थे। वे पूजा की सभी सामग्री एकत्रित कर चुके थे। नैवेद्य आदि सब चढ़ा चुके थे। चन्दन भी भगवान के मस्तक पर लगाकर मुकुट पहना दिये थे, परन्तु माला पहिराना शेष था। मुकुट के कारण माला गले में समा नहीं रही थी। स्वामी जी बड़े फेर में पड़े हुए थे। कुछ निश्चय न होने पर मन में घबड़ाहट हो गई। इसी बीच बाहर से सद्गुरु कबीर ने कहा—गुरुदेव ! माला की मुन्डी को खोलकर गले में बाँध दिया जाय। सद्गुरु कबीर की युक्ति भरी बात सुनकर स्वामी जी ने वैसा ही किया, परन्तु जो सन्त सद्गुरु भी पास में बैठे थे, उन्होंने कहा कि कबीर जी महाराज बिना प्रसंग के आप क्या बोल रहे हैं ? सद्गुरु ने कहा ऐसा ही एक प्रसंग आ गया था, जो आप लोग को ज्ञात हो जायेगा। तत्पश्चात् (मानसिक पूजनोपरान्त) सद्गुरु स्वामी रामानन्दजी गुफा से बाहर आये और उन्होंने कहा कि किस व्यक्ति ने माला की मुन्डी खोलकर पहनाने के लिए कहा था ? सभी सन्तों ने कहा—कबीर जी महाराज ने अकस्मात् हमलोगों के सामने उक्त बातें कही थीं। इतना सुनते ही स्वामी रामानन्द जी ने दौड़कर सद्गुरु कबीर को उठाकर छाती से लगा लिया और कहा वत्स ! तुम्हीं एक मात्र मेरे परमशिष्य हो। तुमने मेरे हृदय की बात जान ली। इसलिए आज से तुम्हारा नाम अन्तर्यामी भी होगा; क्योंकि तुमने मेरे अन्तर की बात जान ली है। स्वामी जी की बात सुनकर सद्गुरु कबीर गुरुदेव रामानन्द के चरणों में लेट गये और कहा कि प्रभो यह सब आप की महती अनुकम्पा का फल है। मैं तो आपका सेवक मात्र हूँ। आप मुझको इस प्रकार की बड़ाई न दें। स्वामी जी ने कहा—वत्स ! तुम मेरे परम पार्षद हो। तुम्हारी उत्पत्ति विष्णु के अंश से हुई है। इसलिए तुम जनता के मार्ग दर्शक बनोगे। इतना कहकर स्वामी जी पुनः अपनी गुफा में चले गये। इधर पूरी संत मंडली सद्गुरु के उपर्युक्त चमत्कार को देख आश्चर्य में पड़ गई और उनका जय जयकार करने लगी। इस चमत्कारिक घटना से काशी की सारी जनता बहुत प्रभावित हुई और कबीर साहब में अधिक विश्वास रखने लगी।

सद्‌गुरु कबीर को कुछ दिन के बाद पूजा का काम सौंपा गया। सद्‌गुरु कबीर ने सवेरे उठकर मंदिर को साफ सुथरा किया। प्रतिदिन की भाँति ठाकुर जी को स्नान कराने के लिए गंगा जी में ले गये और उठा कर उन्हें नदी में फेंक दिया और अपने नदी के किनारे बैठ गये। इधर आश्रम के संत लोग सद्‌गुरु की राह देख रहे थे कि कबीर जी अब ठाकुर जी को स्नान कराकर ले आ रहे होंगे, परंतु घंटों बीत गये और सद्‌गुरु कबीर नहीं लौटे। इधर वैरागियों के मन में शंका होने लगी कि कबीर जी महाराज आये नहीं। यह बात स्वामी रामानंद जी तक पहुँच गई। स्वामी रामानंद जी ने कहा—देखो कबीर क्या कर रहा है? स्वामी रामानंद की आज्ञा पाकर आश्रम के संतगण गंगा के किनारे दौड़े हुए गये और देखा कि कबीर साहब चुप-चाप एकांत में बैठे हुए हैं। संतों ने उनसे पूछा कि आप यहाँ क्यों बैठे हैं, आप तो भगवान को स्नान कराने यहाँ आये थे? क्या हुआ? चलिए गुरुदेव बुला रहे हैं। कबीर साहब ने कहा—अभी तो भगवान स्नान कर रहे हैं। जब वे स्नान करके निकलेंगे तभी तो चलेंगे। संतों ने कहा—भला भगवान अपने से कैसे स्नान करेंगे? विलंब होने के कारण एक-एक करके पच्चासों संत वहाँ पहुँच गये। पूछने पर उन्होंने सभी को वही उत्तर दिया, जो उन्होंने सबको दिया था। अंत में सभी निराश होकर आश्रम में चले गये। उन लोगों ने स्वामी रामानंद से सारी बातें कह सुनाईं। संतों की बात सुनकर स्वामी रामानंद जी को कुछ रहस्यमय बात मालूम हुई और उन्होंने स्वयं जाकर कबीर साहब से पूछा—वत्स पूजा में विलंब हो रहा है, क्यों नहीं जल्दी ले चलते हो? सद्‌गुरु ने कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, चलें अब भगवान स्नान करके आ रहे होंगे। स्वामी जी ने कहा साथ ही चलो पूजा में विलंब हो रहा है। गुरु आज्ञा पाते ही कबीर साहब उठे और उन्होंने कहा कि आप लोग निकलिए और चलिए गुरु महाराज खड़े हैं। इतना कहते ही भगवान विष्णु लक्ष्मी के साथ गंगा से निकलते हुए दिखाई दिये। अपार भीड़ थी, परंतु स्वामी रामानंद जी के अतिरिक्त किसी को दिखाई नहीं पड़ा। उक्त दर्शन करके स्वामी जी ने कबीर साहब से कहा—बेटा! तुम मेरे नाद पुत्र हो, तुम मुझे त्राण देने के लिए प्रकट हुए हो। इसलिए तुम्हारा यश तीनी लोकों में छा जायेगा और आज से तुम्हारा सामना करने वाला इस भूमंडल में कोई नहीं होगा। इतना कहकर गुरु-चेला ठाकुर जी को लेकर आश्रम पर आ गये और

पूर्व की भाँति पूजा-आरती होने लगी। इस प्रकार कवीर साहव के अनंत चमत्कार भरे पड़े हैं, जो मनुष्यों के लिए मुक्ति के मार्ग हैं और जिनका श्रवण-मनन करके मनुष्य भवसागर को पार कर सकता है। इधर स्वामी रामानंद जी कबीर साहब के उक्त चमत्कारों से प्रभावित हो गये। उन्होंने कबीर साहब से पार्थिव पूजा करने के लिए मना कर दिया और उस दिन से कबीर साहब केवल कथा कीर्तन में शामिल होते थे।

स्थानीय कार्य जो वे अपने मन से करते थे, वही कार्य होता था। स्थान के सभी संत उनसे प्रभावित होकर आध्यात्मिक बातें पूछते थे। अतः कबीर साहब की कृपा से प्रायः उपद्रवी शांत हो गये। लोग राम-नाम की ध्वनि निर्विघ्न होकर करने लगे।

गोरखनाथ से शास्त्रार्थ में सद्‌गुरु की विजय

भारतवर्ष में पुनः वैष्णवों का डंका बजने लगा। सारा कंटक दूर हो गया। जो लोग नाथों के प्रभाव में आकर वैष्णवधर्म त्यागकर चले गए थे। वे सब के सब वैष्णवधर्म को पुनः स्वीकार कर लिए। अतः पहले की भाँति सत्य धर्म का प्रचार अबाध गति से चलने लगा। इसी संदर्भ में चार-छह और महाशक्तियाँ इस सत्य धर्म में उद्‌भव हुई, जैसे श्री सेन जी, पीपा जी, गुरु रविदास जी, आदि को गुरुदेव कबीर ने स्वामी जी से कहकर शिष्य बनवा दिए। ये लोग सत्य धर्म का प्रचार करने लगे। इन सबके अतिरिक्त और भी स्वामी जी के अनेक शिष्य-प्रशिष्य थे, जो अपनी महिमा में ख्याति प्राप्त थे, परन्तु उनमें द्वादश शिष्य ऐसे थे जिनके द्वारा वैष्णवधर्म का अत्यधिक उपकार हुआ है। अतः भारत, नेपाल आदि देशों में वैष्णवधर्म का पूर्ण रूपेण प्रचार-प्रसार किया तथा हिन्दू जाति को ईस्लाम रूपी समुद्र में डूबने से बचा लिया एवं मोहम्मदीय प्रगाढ़ गढ़ तोड़ डाला। इतिहास इसका साक्षी है। वैष्णवधर्म यदि नहीं होता तो आज हिन्दू नाम न होकर कुछ और नाम होता। जहाँ-जहाँ मोहम्मदीय लोग हिन्दुओं को इस्लाम धर्म में दीक्षित करते थे वहाँ-वहाँ वैष्णव लोग पुनः हिन्दुओं को मुस्लिम संस्कार से आर्य संस्कार में करते थे। अतः यह क्रम सैकड़ों वर्ष तक चलता रहा। मोहम्मदियों ने एक समय वाराणसी, अयोध्या, मथुरा, कांची, अवन्तिका, जगन्नाथपुरी, आदि तीर्थ स्थानों में एक ऐसी 'आसुरी यंत्र' लगा दिए थे कि जो भी हिन्दू उस मार्ग से गमन करता था बिना बनाए मोहम्मदीय हो जाता था, जिस यंत्र को कबीर ने उन सभी स्थानों पर 'शतचक्री'

नामक यंत्र लगाकर नष्ट कर दिया और सभी बने हुए तुर्कों को पुनः हिन्दू धर्म में कर दिया, जो आज भी वे अपने को कहीं रामानंदीय गोत्र तो कही कबीर गोत्र के कहते हैं। जब ब्राह्मणों ने पुनः हिन्दू धर्म में लेना स्वीकार नहीं किया तब उक्त गोत्र बनाकर शुद्धि की गई। भारत के कोने-कोने में वैष्णवों ने जाकर पुनः हिन्दुत्व का जागरण किया और मोहम्मदियों के धर्म प्रचार के सभी स्थानों को छिन्न-भिन्न कर दिया। अस्तु, मोहम्मदियों के छिन्न-भिन्न होने का प्रबल कारण यह था कि उनके पास तर्क नहीं होते थे। वे केवल यही कहते थे कि ईश्वर एक है। उसके अतिरिक्त दूसरों की पूजा नहीं करनी चाहिए। ईश्वर का अवतार नहीं होता है। मूर्ति पूजा निरर्थक है, इत्यादि मोटे रूप का तर्क देते थे। वैष्णव ने उन तर्कों को यह कहकर उड़ा देते थे कि जब ईश्वर सर्व समर्थ हैं तो एक अनेक कहना पूर्ण रूपेण अशुद्ध है और यह कहना कि ईश्वर अवतार नहीं लेता है, यह प्रलाप मात्र हो है। वह सब कुछ कर सकता है, अवतार भी ले सकता है और नहीं भी ले सकता, उसकी इच्छा पर निर्भर है, उसके लिए कोई बन्धन नहीं है, क्योंकि वह सर्वोपरि है, सर्वविद है, सर्वज्ञ है तथा उसमें अज्ञान नहीं हैं। वह जिस प्रकार से लोक का हित होने को होता है उसी प्रकार का कार्य करता है, कभी-कभी माया से आवृत्त होकर रूप भी धारण करता है। इसी प्रकार मूर्ति-पूजा ध्यान के लिए, मन की पवित्रता के लिए, संस्कार सुधारने के लिए है। इसलिए मनुष्य-मात्र के यह उत्तम साधन है। योगी पुरुष इसके महत्त्व को जानते हैं।

अस्तु, वैष्णव यह भी कहते थे कि तुम लोग अर्द्ध मानव हो, क्योंकि तुम्हारे यहाँ केवल अनाचार ही धर्म है, दूसरों का गला काटना तुम्हारा मुख्य कर्त्तव्य है और उक्त आरोप मोहम्मदियों में पूर्ण रूप से घटता था। इसलिए जन साधारण, व विज्ञ लोग भी मुसलमानों से दूर रहते थे और उनमें विश्वास नहीं करते थे।

सद्गुरु द्वारा वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान

सभी लोग तुर्कों से घृणा करते थे, क्योंकि जो बातें यहाँ शुद्ध मानी जाती थी उसी को तुर्क लोग अशुद्ध कहते थे। मांस खाना बुरा नहीं मानते थे। मूत्र के छिटके से घृणा करते थे। वैष्णव लोग कहते थे कि कुत्सित वस्तु भीतर करते हो। सुवस्तु की अर्थात् गाय को काटकर खाते हो, यह तुम्हारा कैसा धर्म है ? तुम्हारे यहाँ शुद्धाचार आदि सद्विवेक

का पूर्णरूपेण अभाव है। इसलिए तुम घृणा के पात्र हो गए हो। अतएव इस प्रकार के उपदेशों को वैष्णव लोग सुनाते फिरते थे। झुण्ड के झुण्ड लोग वैष्णव मतावलम्बी बन रहे थे। इस प्रकार वैष्णव मण्डली स्वामी रामानन्द जी के नेतृत्व में देश के प्रत्येक भाग में भ्रमण करने लगी। तीव्र गति से धार्मिक प्रचार होने लगा। स्थान-स्थान पर अपने धर्म से विपरीत धर्म वालों से शास्त्रार्थ करना पड़ रहा था, उनको पराजित करते हुए प्रत्येक ग्राम, पहाड़ों में प्रवेश करके राम-भक्ति का प्रचार-प्रसार करने लगे। काशी से कश्मीर होते हुए नासिक आदि क्षेत्रों को पार करती हुई सन्त मण्डली रामेश्वर की ओर मुड़ती जा रही थी, लोग देशाटन करते हुए जा रहे थे।

इसी सन्दर्भ में काँचीपुरी पड़ी जहाँ पर कुछ वैष्णव भक्त थे और उस ग्राम में अधिक ब्राह्मण भी थे, जो पहले शैव थे। अतः स्वामी रामानन्द जी का आगमन सुनकर ग्राम के सभी लोग दर्शन के लिए निकल पड़े, कुछ लोग नहीं निकले। वे कहते थे कि स्वामी रामानन्द शूद्रों का नेता है, वहाँ नहीं जाना चाहिए। परन्तु बहुत से लोग नहीं माने और वहाँ चले आए और स्वामी जी को साष्टांग प्रणाम किए। स्वामी जी ने सभी को आशीर्वाद देने के बाद कुशल-मंगल पूछा। सभी ने कुशल ही बताया। स्वामी जी के दर्शन के बाद अन्य सन्तों का दर्शन करने के लिए प्रत्येक आसनों पर लोगों ने जाकर सन्तों का चरण स्पर्श किया। इसी क्रम में कुछ लोगों ने सद्गुरु कबीर एवं श्री गुरु रविदास जी को देखा तथा इसके साथ ही सेन जी, धना जी, पीपा जी आदि को देखकर शैव ब्राह्मणों ने स्वामी जी को घृणा की भावना से देखा और कहने लगे कि स्वामी रामानन्द ने भ्रष्ट जातियों को लेकर अपना संप्रदाय खड़ा किया है ऐसा कहकर सभी लोग स्वामी रामानन्द जी का बहिष्कार करने लगे और अपशब्द बोलते हुए ग्राम की ओर चल दिए। विशेष आक्षेप कबीर साहब को लेकर किया गया। अतः गुरु अपमान सद्गुरु कबीर को सहन नहीं हुआ। ब्राह्मणों का अभिमान धराशायी करने के लिए तीन दिनों तक प्रत्येक ब्राह्मण के घर में भोजन के समय उन्होंने दिखाई दिया। जब ब्राह्मण भोजन के लिए बैठते थे ठीक उसी समय भण्डार गृह में वे प्रकट हो जाते थे। लगातार यही घटना तीन दिनों तक घटती रही। अस्तु, इस घटना से ब्राह्मण लोग इतना भयभीत हो गए कि जिसकी सीमा नहीं है।

जहाँ कहीं ब्राह्मण जाते थे वहाँ सद्गुरु कबीर साहब को वे देखते थे। यहाँ तक कि पूजा आदि स्थानों में सर्वत्र कबीर ही कबीर दिखलाई पड़ते थे। आँख मूँदने पर भी कबीर ही कबीर दिखाई देते थे। इस प्रकार गाँव में बहुत बड़ा उपद्रव होने लगा। आँधी, तूफान, अग्नि काण्ड जैसी घटनाएँ घटने लगीं। ।कतनी स्त्रियाँ पागल हो गईं। बच्चे चारपाई से उठकर भागने लगे। गाय-भैंसों ने दूध देना बन्द कर दिया, इत्यादि उपद्रव होने लगे जिसके कारण अन्त में ग्राम के ब्राह्मण घवड़ाकर गुरुदेव कबीर के समीप गए और हाथ जोड़कर उनके पैरों पर गिरकर अनुनय-विनय करने लगे। इस प्रकार ब्राह्मणों को दयनीय दशा देखकर सद्गुरु कबीर साहब ने कहा कि तुम लोगों ने मेरे गुरुजी की निन्दा की है। इसलिए जब तक गुरुदेव प्रसन्न नहीं होते तब तक तुम लोगों की भलाई नहीं है। यह जो कुछ हो रहा है गुरुदेव के कोप का ही फल है। इसलिए तुमलोग, गुरुदेव के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगो, जब वे क्षमा कर देंगे तो तुम लोगों का कल्याण होगा।

अस्तु, ब्राह्मणों ने कबीर साहब की बात मान ली और स्वामी रामानन्द जी के पास भयभीत मन से गए। उधर स्वामी जी ने अपनी ओर आते देखकर ब्राह्मणों को डाँटकर कहा कि वहीं खड़े हो जाओ। तुम लोगों ने मेरे प्रिय शिष्य का अपमान किया है केवल वर्णाश्रम के नाम पर। तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारे में क्या विशेषता है? मेरा शिष्य कोरी है, जुलाहा है, उसमें क्या कमी है? बोलो! जाति शरीर का नाम है कि जीव का? जाति किसका नाम है; संस्कार का नाम है कि हाड़, मांस, नाड़ी, त्वचा, रस, रक्त का जाति नाम है? बताओ क्या जाति को ईश्वर ने बनाया है कि तुमने? इस जाति से क्या लाभ है। इससे तो केवल अहंकार हो होता है। तुम्हारे पूर्वजों ने किसी को ऊँच किसी को नीच कहकर समाज का विघटन कर दिया है। आपस में भाई-भाई जाति पाँति के नाम पर कट-मर रहे हैं। वह जाति-पाँति, जो स्थाई भी नहीं है। जाति तो बदलती रहती है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, म्लेच्छ धर्म को ग्रहण कर लिए हैं, वे अब मोहम्मदीय कहे जाते हैं। उनको तुम क्यों नहीं ब्राह्मण कहते हो? क्यों मुसलमान-तुर्क कहकर उनका बहिष्कार करते हो? जैसे वे अब हिन्दू नहीं रहे। उसी प्रकार से मेरा शिष्य कबीर अब जुलाहा कोरी नहीं रहा। अब वह वैष्णव शुद्ध आर्य हो गया। जब तुम संस्कार से ही ब्राह्मण या दूसरी जाति मानते हो, तो मैंने कबीर एवं

रविदास आदि का संस्कार करके वैष्णव बना लिया है। इसलिए ये चतुर्थ वर्ण से उठकर पंचम वर्ण वैष्णव में आ गए। अतएव वैष्णव के कारण सभी के गुरु होने योग्य हो गए हैं, अब ये सुसंस्कृत हो गए हैं। इनकी पुरानी जाति मानना महाभूल है। संस्कार ही जाति-पाँति है। मैं तो उसी को शूद्र मानता हूँ, जो वेदाचरण नहीं करता, संस्कारहीन है, सदा मनमाना व्यवहार करता है। इस प्रकार की जाति-पाँति सब विकार है। इसमें कोई विशेषता नहीं है।

सभी लोग एक ईश्वर की ही सन्तान हैं। सभी को सब कुछ करने का अधिकार है। सभी लोग मानव हैं। मानव में कोई भेद नहीं होता है। जाति-पाँति सब तुम्हारी कल्पना-मात्र है। सभी की सृष्टि एक समान ही है। गाय, भैंस, घोड़े, गदहे, ऊँट, बैलों की जाति होती है, परन्तु मनुष्य में कोई जाति-पाँति नहीं है। पुरुष कहीं का होता है, स्त्री कहीं की होती है, फिर दोनों के संयोग से सन्तान की उत्पत्ति होती है। उसमें चीन, रूस, जापान, अमेरिका, अरब, ब्रिटेन, अफ्रीका, भारत कहीं की भी स्त्री-पुरुष हैं, दोनों के संयोग से सन्तान की उत्पत्ति होती है। गाय-गदहा कहीं का हो, उससे सम्बन्ध करनेपर मनुष्य के सन्तान की उत्पत्ति नहीं देखी गई है। इसलिए मनुष्य में जाति-पाँति नहीं होती है। मनुष्य में जाति-पाँति मानना नरक का घर है। इसलिए तुमलोग मिथ्याभिमान में पड़कर अपना सर्वस्व नाश करने पर तुले हुए हो। अतः जब तक तुम लोग इस अभिमान का त्याग नहीं करते हो, तब तक तुम लोगों का कल्याण होना कठिन-सा लगता है। इस प्रकार स्वामी जी की भयदायक बातों को सुनकर ब्राह्मणों ने कहा कि जो आज्ञा आपकी होगी हम सब मानने के लिए प्रस्तुत हैं। स्वामी जी ने कहा—उपस्थित उपद्रव तभी शान्त होगा, जब तक तुम बस्ती के सभी ब्राह्मणों को लेकर मेरे शिष्य कबीर एवं रविदास के चरणों पर गिरकर क्षमा नहीं माँग लेते हो। अस्तु ब्राह्मणों ने वैसा ही किया। सद्गुरु कबीर साहब ने कहा कि ग्राम के सभी ब्राह्मण भगवद्भक्त वैष्णव बन जाओ, यही तुम लोगों के द्राह का प्रायश्चित्त है। अतः गुरुदेव कबीर की बातों को ब्राह्मणों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और सभी ने भागवतधर्म को मान लिया। परन्तु उसी ग्राम की एक तान्त्रिक सिद्धा ब्राह्मणी, जो पहले से ही कबीर साहब की निन्दा में लगी रही। जब ग्राम के सभी ब्राह्मणों ने वैष्णवधर्म ग्रहण कर लिया, इसपर उक्त सिद्धा ब्राह्मणी को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और क्रोध के वशीभूत होकर उसने सद्गुरु कबीर साहब को अप-

शब्द कहना आरम्भ कर दिया। उसके इस व्यवहार पर ग्राम के सभी लोगों ने उस सिद्धा की निन्दा की और उसी समय ऐसी एक घटना घटी जिसको सभी ने देखा कि उक्त सिद्धा गाली देती हुई कबीर साहब की ओर जा रही थी, मानो काली नागिनी किसी को डँसने जा रही हो तथा लोगों के देखते ही देखते मार्ग में ही पृथ्वी फटी और उसमें वह सिद्धा धँस गई, फिर पृथ्वी समतल भी हो गई।

अस्तु, इस दृश्य को देखकर सभी एकत्रित लोग भयभीत हो गए और लोग कहने लगे कि यह कुकृत्य का फल है। ऐसा कहते हुए लोग गाँव छोड़कर भागने लगे। भागते हुए लोगों को कबीर साहब ने रोक कर समझाया और कहा कि अब ऐसा नहीं होगा। आप लोग इसी ग्राम में रहिए। श्रीराम-नाम का जप कीजिए। गुरु कबीर की यह बात सुन कर सभी लोग लौट आए और शान्तिपूर्वक वहाँ रहने लगे। इधर सन्त लोग भी विदा लेकर, सन्त मण्डली को गुरु आज्ञा से आगे बढ़ने के लिए आदेश दिया कि आप सभी धर्म के प्रचार के लिए देश-देशान्तरों में पदार्पण करें। गुरुजी की आज्ञा पाकर सन्त मण्डली धर्म प्रचार करती हुई देश के चारों ओर कोने-कोने में वैष्णवधर्म का प्रचार करने लगी। इस प्रकार से अनेक बार घूम-घूम कर देश एवं समीप के राष्ट्रों में शुद्ध धर्म का प्रचार किया गया। फलस्वरूप अन्य धर्मों का ह्रास होने लगा और धीरे-धीरे उन क्षेत्रों में वैष्णवों का आधिपत्य हो गया।

यह क्रम बहुत वर्षों तक स्वामी रामानन्द जी ने अपने शिष्य को लेकर चलाते रहें। अन्त में विशेष वृद्धावस्था के उपस्थित होने पर वे सन्त मण्डली को लेकर, पुनः काशी के पंचगंगाघाट पर श्रीरामनाम की ध्वनि करते हुए आ गए और पुनः श्रीहरि की ध्वनि से वाराणसी नगरी को गुञ्जायमान करने लगे और अब किसी से भी वैष्णवों का टक्कर नहीं रह गया। इस प्रकार वैष्णवधर्म निष्कंटक हो गया। संसार के सभी लोग उक्त धर्म का जय-जयकार करने लगे और वैष्णव लोगों का भी जीवन अमन-चैन से व्यतीत होने लगा।

अब नियमित रूप से सत्संग चलने लगा। सत्संगियों का प्रतिदिन आना अबाध गति से धारावत् था। सेठ-साहूकारों की ओर से भोज-भण्डारा चल रहा था, सभी लोग राम-राम कहते थे। स्वामी रामानन्द जी सहित द्वादश शिष्यों का मधुकरी से काम चलता था। उक्त लोग धनिकों के भोज में सम्मिलित नहीं होते थे। इस प्रकार से व्यवहार

चलने लगा। इसी बीच में एक दिन स्वामी जी ने अपने सभी शिष्यों को बुलाकर कहा कि "अब मेरा कार्य-काल पूरा हो गया है। अब मैं परमधाम को जाऊँगा। तुम लोग मेरे चलाए हुए मार्ग को कायम रखना। अधिक भार अष्टानन्द और कबीर तुम दोनों पर है। तुम दोनों अपने अन्य गुरुभाइयों को साथ में रखना। मेरे उभय मार्ग का प्रचार करना और जो मैं अभी करना चाहता था, और वह जो नहीं हुआ है, उसे तुम द्वादश शिष्य मिलकर पूरा करना"। इतना कहकर स्वामी जी मौन हो गए।

रामानन्द जी का परलोक गमन

अतः स्वामी जी की बात को सुनकर सभी शिष्य विलाप करने लगे, केवल कबीर साहब ने अपने मन को सुस्थिर रखा और उन्होंने सभी गुरुभाइयों को समझाया। सभी लोग कबीर साहब के समझाने पर शान्त हो गये। ऊधर स्वामी जी ने अपनी गुफा में कबीर को बुलाया। एक घण्टे तक कुछ गूढ़ बातें हुईं। इसके बाद कबीर साहब गुफा के बाहर आये और सभी से बोले कि राम-नाम की ध्वनि कीजिए। सभी राम-नाम जपने लगे। उधर स्वामी जी समाधि में लीन हो गए। सभी के देखते ही देखते एक दिव्य विमान आया जिस पर स्वामी जी बैठकर क्षणमात्र में आकाश की ओर प्रस्थान कर दिए। कुछ दूर तक तो विमान दिखाई दिया जिस पर शंख, ढोल, मृदंग आदि बाजे-बजते जा रहे थे। अन्त में वह विमान अन्तर्धान हो गया।

इधर शोकाकुल शिष्यगण एवं काशी के सभी नागरिक लोग एकत्रित होकर राम-नाम की ध्वनि करने लगे तथा शंख आदि मार्तमिक बाजे बजाकर लोग संकीर्त्तन करने लगे। पार्थिव शरीर पर आकाश से देवताओं ने पुष्प की वर्षा की और नगाड़े बजाए। शिष्यों ने पार्थिव शरीर को वैष्णव संन्यास विधि के अनुसार एक चन्दन की चौकी पर बैठाकर चन्दन आदि का लेप किया, पुनः छिद्रयुक्त एक मञ्जूषा बनवाया गया, जिसमें स्वामी जी के शव को पद्मासन से बैठाया गया। तत्पश्चात् सभी प्रबुद्ध समाज वेद का मन्त्रोच्चारण एवं हवन करते हुए श्री महारानी गंगा की ओर चलने लगे। आश्रम पर एकत्रित भीड़, जो लाखों की संख्या में विद्यमान थी, वह भी शव यात्रा में, शव के पीछे-पीछे चल रही थी। बड़े-बड़े सेठ, साहूकार राजे-महाराजे भी आये हुए थे।

स्वामी जी के स्वर्गारोहण का समाचार चारों तरफ भेज दिया गया। अन्तिम दर्शन के लिए शव को कई दिनों तक सुरक्षित रख दिया गया था एवं जब सभी प्रमुख लोग आ गए तब शव उठाया गया। सभी ने शव यात्रा में लाखों रुपए लुटाये। इस प्रकार दान-सम्मान के साथ शव-यात्री गंगा तट पर पहुँचे। शव को स्नान कराया गया। कई नौकाएँ मँगाई गई। बहुत से लोग नौकाओं पर सवार होकर शव वाली नौका के साथ अपनी-अपनी नौकाएँ वहाँ ले गए, जहाँ पर कबीर साहब आदि शिष्यगण शव के मञ्जूषे को उठाकर श्रीराम नाम बोलते हुए मध्य धार में ले जाकर विर्सजित कर रहे थे। उस समय का दृश्य ऐसा लगता था कि मानों पूरी काशी में घण्टा, शंख, मजीरे और भेरी आदि बाजे राम-नाम की ध्वनि के साथ बज रहे हों। उक्त बाजों की ध्वनि ने पृथ्वी-आकाश को एक कर दिया था, दूसरा कोई शब्द सुनाई नहीं दे रहा था। हरे राम ! हरे राम ! मानो सारी सृष्टि जप कर रही हो। सभी लोग गुरुदेव के शोक में मग्न थे। शव विसर्जन के बाद नौकाओं से उतरकर लोगों ने अपना-अपना छौर-कर्म कराया। स्नान आदि करने के बाद पिण्डदान दिया गया, जलाञ्जुलि दी गई। इसके बाद भूखे भिखारियों को अन्न, वस्त्र, मुद्रा आदि वितरित किए गये।

तत्पश्चात् सभी लोग पुनः आश्रम पर आकर स्थान के कार्य को करने लगे। स्थान का कार्य सद्गुरु कबीर पर एवं उनके बड़े गुरु भाई श्री अष्टानन्द के ऊपर आ पड़ा। दोनों की मंत्रणा से स्थान का कार्य सन्त लोग कर रहे थे। अस्तु, स्वामी रामानन्द जी के स्वर्गारोहण के सत्रहवें दिन उनका भण्डारा हुआ, जिसमें सभी वेष के सन्त उपस्थित हुए। उक्त भण्डारा महीना चलता रहा। लोग खाते-खाते ऊब गए। साधु-सन्तों के अतिरिक्त दरिद्र लोगों को अधिक खिलाया गया। सभी लोग कबीर साहब से प्रार्थना करने लगे कि महाराज हमें अब आज्ञा दीजिए। अतः सन्तों के बार-बार प्रार्थना करने पर सभी की विदाई कर दी गई। सभी लोग अपने-अपने आश्रम पर चले गए। यह काल वि० सं० १५१९ का माना जाता है, जो समीचीन है।

———

चतुर्थ आलोक

संतमंडली के पुनर्नेता का चयन

स्थान का कार्य पूर्व रीति से चलने लगा। धर्म का प्रचार सभी शिष्य स्वामी जी के कथनानुसार करने लगे। एक दिन सद्‌गुरु कबीर स्वामी ने वैष्णवों की एक विशाल सभा बुलाई, जिसमें यह निश्चय करना था कि संतमंडली का नेतृत्व कौन करेगा? एकत्रित सभा ने कहा कि कबीर साहब करेंगे, जिसका विरोध स्वयं कबीर साहब ने किया। सभी ने गुरु-देव जी से इस विरोध के कारणों को जानने की इच्छा प्रकट की। गुरुदेव कबीर ने कहा कि मेरे पूज्य बड़े गुरु भाई श्री स्वामी अनन्तनन्द जी इसके लिए उपयुक्त हैं। इस पर सभी ने करतल ध्वनि के साथ अनुमोदन किया। अस्तु, स्वामी अष्टानन्द जी को आश्रम का कार्य भार समर्पित कर दिया गया। स्वामी अष्टानन्द जी आश्रम की देख भाल एवं सन्तों का आदर-सत्कार करने लगे।

इधर सद्‌गुरु कबीर साहब वैराग्ययुक्त होकर अपनी मातृभूमि वाली कुटिया पर ही रहने लगे और राम-नामरूपी अमृत की घूँट लोगों को पिलाने लगे। धर्म प्रचार की दो श्रेणियाँ बनाई गई। एक पौराणिक और दूसरी दार्शनिक। इन दोनों माध्यमों से धर्म प्रचार होने लगा। पौराणिक पद्धति से स्वामी अष्टानन्द प्रचार करने लगे और दार्शनिक पद्धति से स्वामी सद्‌गुरु कबीर साहब। इस प्रकार अवाध गति से धर्म प्रचार होने लगा। जन वर्ग सद्‌गुरु कबीर साहब की ओर अधिक आकृष्ट होने लगा। यहाँ तक कि श्री रविदास आदि कबीर साहब के गुरु भाई लोग भी कबीर साहब को स्वामी रामानन्द के समान मानने लगे। रविदास जी कहते हैं कि—

तब रविदास विचारी बाता।
गुरु समान कबीर बड़ भ्राता॥

—रविदास परचई

यद्यपि अष्टानन्द स्वामी बहुत बड़े विद्वान् महात्मा थे, परंतु प्रचार एवं प्रभाव की दृष्टि से सद्‌गुरु कबीर साहब उनसे बहुत आगे थे। इसलिए जनता का झुकाव कबीर साहब की ओर होना स्वाभाविक था।

सद्गुरु के विविध प्रसंग

गुरुदेव की कुटिया में हरि-कीर्तन बहुत जोरों से चलने लगा अधिक से अधिक लोग संकीर्त्तन में समाविष्ट होने लगे। संकीर्त्तन के कारण आस-पास के लोगों को सुनने की जिज्ञासा हो गई। बड़े प्रेम से सब सुनते थे। पास ही में एक वेश्या का घर था, जो बड़ी नामी गायिका थी। उसके यहाँ कुछ संगीत प्रेमी आया करते थे। एक दिन उक्त वेश्या के कुछ प्रेमी संकीर्त्तन सुनने के लिए कबीर साहब की कुटिया में चले गए। फलस्वरूप वेश्या क्षुब्ध हो गई। उसने अपने एक सुमंत नामक पण्डे से कबीर साहब की कुटिया जलवा दी। कुटिया जल जाने के बाद सभी संकीर्त्तन प्रेमी धूप में ही संकीर्त्तन करने लगे। उधर वेश्या के घर में भी अपने आप ही अग्नि लग गई। उसका पक्का घर पूर्णरूपेण जलकर भस्म हो गया। वह वेश्या अपने किए हुए को ध्यान में रखकर सद्गुरु कबीर के यहाँ रोती हुई आई और बोली कि महाराज ! मेरा सारा सामान एवं मकान जल गया। अब मैं कहाँ रहूँ ? सद्गुरु कबीर ने हँसते हुए कहा कि मैं क्या करूँ ? पहले तो तुम्हारे यार ने मेरी झोपड़ी जला दी। उसके बाद मेरे यार श्रीराम जी ने तुम्हारी कोठी जला दी। तुमने ही पहले यह उपक्रम शुरू किया है। गुरुदेव की बात सुनकर वेश्या लज्जित होकर अपने घर में चली गई। इधर गुरुदेव ने अपने शिष्यों से कहा कि वेश्या का मकान जल गया है, ऐसा कीजिए कि उसके रहने के लिए कुछ छाया हो जाय।

सत्संगियों ने कुछ मुद्रा जुटाकर उसके मकान को बनवा दिया। अब वह राम भक्त हो गई। गले में तुलसी की माला धारण कर वेश्या-वृत्ति का परित्याग करके वह भी सन्त सेवा में लीन हो गई। इसी प्रकार से सद्गुरु कबीर के पार्श्व भाग में एक कसाई रहता था,[1] जो प्रतिदिन पशुओं का गला काटता था। सद्गुरु कबीर के प्रभाव से उसका भी बाजार नरम पड़ गया। वह भी एक दिन साहब को जान से मारने के लिए उद्यत होकर रात्रि में आया जहाँ गुरुदेव सो रहे थे। उसने अपना तीक्ष्ण अस्त्र ज्यों ही गुरुदेव कबीर के गला पर प्रहार करना चाहा, त्योंही एक काले सर्प ने उसे डँस लिया। वह गिर कर अचेत हो गया। उसके गिरने की प्रतिध्वनि हुई जिसको सुनकर गुरुदेव कबीर

१. कबीर तेरी झोपड़ी गलकट्टों के पास।
जो जैसा करेगा सो भरेगा तूं क्यों होत उदास ?॥

उठ गए। बाहर आकर देखा तो वह हाथ में कटार लिए पड़ा है। यह देखकर गुरुदेव ने अन्य संतों को जगाया। संत उसे देखकर कुछ समझ नहीं पाए और कबीर साहब से पूछे कि यह क्या हुआ है? साहब ने कहा कि यह मुझे मारने आया था, परन्तु क्या कारण है कि यहीं पर गिरते ही अचेत हो गया। उन्होंने सन्तों से कहा कि इसको जोर से राम-नाम की ध्वनि सुनाओ! यह अपने आप जग जाएगा। अस्तु, वैसा ही हुआ। श्रीराम-नाम के प्रभाव से कसाई जीवित हो गया और वह भी श्रीराम-नाम का जप करने लगा। उसी दिन से उसका कुत्सित व्यवहार छूट गया। वह श्री राम-नाम का अनन्य भक्त हो गया और सन्त मण्डली में समाविष्ट हो गया।

उपर्युक्त दोनों कथाओं से काशी की जनता अत्यधिक प्रभावित हो गई। झुंड के झुंड लोग सत्संग में आने लगे। प्रातः से सायं तक दूर-दूर से अधिकाधिक संख्या में लोग सत्संग में आने लगे। इस प्रकार लोगों की भीड़ देखकर नगर के धार्मिक व्यवसायियों में पुनः ईर्ष्या की भावना जागृत हो गई। आगंतुक दर्शनार्थियों के मुख से यही सुना जाता था कि चलो पंडों के जाल में नहीं पड़ना चाहिए। कबीर-चबूतरा चलो कबीर महाराज जी का दर्शन कर आवें। उनका उपदेश सत्य होता है। वे मनुष्यों को सत्य की ओर ले जाने के लिए अवतरित हुए हैं। इसलिए वे सत्य कबीर हैं। उनका दर्शन भय-तापों को नष्ट करने वाला है। इस प्रकार से सत्य-कबीर! सत्यकबीर! जपते हुए लोग आश्रम पर आ रहे थे। अहर्निश कथा कीर्त्तन होता रहा। लोगों ने अपने बैठने के लिए ५०० हाथ की एक वेदिका बना दी। उसके दक्षिण भाग में एक सिंहासन जैसा पाँच हाथ का चबूतरा उसी बड़ी वेदी पर बना, जो पाँच सौ हाथ लम्बा और चौड़ा था, उसमें चारों ओर पुष्प लगे हुए थे। जिस पर गुरुदेव कबीर बैठकर सत्य-मार्ग का दर्शन कराते थे। पहले यह नरहरपुरा में पड़ता था। अतः उसी वेदी का नाम आगे चलकर कबीर चबूतरा से कबीरचौरा हो गया, जो आज तक उसी के नाम से चला आ रहा है। उक्त सत्संग में तत्कालीन महाराजाधिराज श्रीमान् काशी नरेश वीरदेव सिंह बघेल भी आया करते थे। अस्तु, इनके अतिरिक्त आस-पास के अन्य राजे भी आया करते थे। अष्टमी एवं पूर्णिमा के दिन अत्यधिक भीड़ होती थी जिसको सँभाल पाना कठिन होता था। कुछ दिन के बाद सत्संग में ऐसे स्वार्थी लोग भी आने लगे, जो कहते थे कि 'महाराज' मुझे कोई सन्तान नहीं हैं, मैं रोगी हूँ,

निर्धन हूँ। ऐसे लोग के आने से और उनकी माँग को सुनकर गुरुदेव कबीर खिन्न रहने लगे। दूसरी बात यह थी कुछ राजे महाराजे भी प्रतिदिन आने लगे, जो गुरुदेव का मान सम्मान अधिक करते थे; जिसके कारण भी गुरु कबीर उदास रहा करते थे। वे कहते थे कि यह सब हरि भक्ति में बाधक है। इससे भगवान भक्तों से दूर हो जाते हैं, क्योंकि भक्त अपने मान सम्मान में भूल जाता है। यह सब सोचकर गुरुदेव कबीर उक्त समाज से दूर रहने की बात सोचने लगे।

एक दिन सद्गुरु कबीर ने श्री रविदास जी को अपने समीप बुलाया और उक्त सभी बातों पर विचार-विमर्श किया। अंत में दोनों एक निश्चय पर पहुँच गए और गुरुदेव कबीर ने कहा कि देखो, मैं एक युक्ति करूँगा जिससे भीड़-भाड़ से हम सब बचे रहेंगे, अतः रविदास जी से कबीर साहब ने कहा कि तुम चलो[1]।

---

१. फैल गयी यह ख्याति देश में, सिद्ध पुरुष हैं भक्त कबीर।
नर नारी लाखों ने आकर, घेरी उनकी वन्य कुटीर॥
कोई कहता, मंत्र 'फूंककर मेरा रोग दूर कर दो'।
बाँझ पुत्र के लिये बिलखती, कहती 'संत ! गोद भर दो'॥
कोई कहता 'इन आँखों से, दैव-शक्ति कुछ दिखलाओ'।
'जग मे जग निर्माता की, सत्ता प्रमाण कर समझाओ'॥
कातर हो कबीर कर जोड़े, रोकर कहने लगे प्रभो !
बड़ी दया की थी पैदा कर, नीच यवन घर मुझे विभो॥
सोचा था तव अतुल कृपा से, पास न आवेगा कोई।
सबकी आँख ओट बस, वास करेंगे तुम हम दिल दोई॥
पर मायावी ! माया रचकर, समझा मुझको ठगते हो।
दुनियाँ के लोगों को यहाँ, बुलाकर तुम क्या भगते हो ?
× × ×
कहने लगे, क्रोध भारी से, भर नगरी के ब्राह्मण सब।
'पूरे चारों चरण हुए कलियुग के, पाप छा गया अब॥
चरण-धूलि के लिए जुलाहे, की सारी दुनिया मरती।
अब प्रतिकार नहीं होगा तो, डूब जाएगी सब धरती॥
कर सबने षड्यंत्र एक कुलटा स्त्री को तैयार किया।
रुपयों से राजीकर उसको गुपचुप सब सिखलाय दिया॥

सद्गुरु का भीड़-भाड़ से बचने का उपाय

रविदास जी ने कहा कि मैं कहाँ चलूँ ? कबीर साहब ने कहा कि राजा वीरदेव सिंह की सभा में चलो, मैं भी आता हूँ। अस्तु, आज्ञा पाते ही श्री रविदास जी सन्त मण्डली के साथ राज भवन की ओर

कपड़े बुन कबीर लाए हैं उन्हें बेचने बीच बजार।
पल्ला पकड़ अचानक कुलटा रोने लगी पुकार पुकार॥
बोली, 'पाजी निठुर छली! अब तक मैंने रक्खा गोपन।
सरला अबला को छलना क्या यही तुम्हारा साधूपन?॥
साधू बन के बैठ गये बन बिना दोष तुम मुझको त्याग।
भूखी नंगी फिरी, बदन सब काला गड़ा पेट की आग।'
बोले कपट-कोपकर, ब्राह्मण, पास खड़े थे, 'दुष्ट कबीर॥
भण्ड तपस्वी! धर्म नाम से, धर्म डुबोया बना फकीर॥
सुख से बैठ सरल लोगों की आँखों झोंक रहा तू धूल।
अबला दीना दानों खातिर दर दर फिरती उठती हूल॥'
कबीर बोले, दोषी हूँ मैं, मेरे साथ चलो घर पर।
क्यों घर में अनाज रहते भूखों मरती, फिरती दर दर॥
दुष्टा को घर लाकर उसका विनयपूर्ण सत्कार किया।
बोले संत, दीन की कुटिया हरि ने तुझको भेज दिया॥
रोकर बोल उठी वह, मन में उपजा भय लज्जा परिताप।
'मैंने पाप किया लालचवश, होगा मरण साधु के शाप॥'
कहने लगे कबीर, जननि! मत डर कुछ दोष नहीं तेरा।
तू निन्दा-अपमानरूप मस्तक-भूषण लाई मेरा।,'
दूर किया मन का विकार सब, देकर उसे ज्ञान का दान॥
मधुर कण्ठ में भरा मनोहर उसके राम-नाम-गुणगान।
कबिरा कपटी ढोंगी साधू, फैली यह चर्चा सब में।
मस्तक अवनत कर वे बोले, 'हूँ सचमुच नीचा सबमें॥
पाऊँ अगर किनारा, रक्खूँ कुछ भी तरणी-गर्व नहीं।
मेरे ऊपर अगर रहो तुम, सबके नीचे रहूँ सही॥'

× × ×

राजा ने मन-ही-मन संत-वचन सुनने का चाव किया।
दूत बुलाने आया, पर कबीर ने अस्वीकार किया॥

चल दिए। आप इधर अपने आप एक बड़े बोतल में गंगा जल भरकर हाथ में ले लिया और एक भक्त वेश्या के दाँयें कंधे पर अपना वाम हस्त रखे हुए बोतल के जल को मुख में लगाये हुए बीच बाजार से होकर चलने लगे। ऐसा जान पड़ता था कि सद्गुरु कबीर दुराचारी हो गए हों, गणिका के कंधे पर हाथ रखे हुए मुख में बोतल लगाए हुए इधर से उधर गिर रहे थे। उन्मत्त की भाँति कहते थे कि सामने से हट जाओ, मुझे जाने दो। इस प्रकार यह दृश्य देखकर लोग आश्चर्य चकित हो रहे थे। लोग कहने लगे कि जो अहर्निश ध्यान में डूबा रहता था जिसके यहाँ बड़े-बड़े लोग दर्शन के लिए आया करते थे, जो बड़ी-बड़ी बातें समाज को सुनाता था, जिसकी चारों ओर ख्याति फैली हुई थी, जिसको लोग अवतारी पुरुष कहते थे, जो प्राणियों के दुःख निवारण का उपदेश देता था, आज वह कितना पतित हो गया, जो शराब पीते हुए वेश्या को साथ में लिए हुए बीच बाजार में घूम रहा है। धन्य है श्रीहरि

बोले, 'अपनी हीन दशा में, सबसे दूर पड़ा रहता।
राजसभा शोभित हो मुझ से, ऐसा भला कौन कहता!'
कहा दूत ने, 'नहीं चलोगे तो राजा होंगे नाराज—
हम पर, उनकी इच्छा है दर्शन की, यह सुनकर महाराज!'
सभा बीच राजा थे बैठे, यथायोग्य सब मंत्रीगण।
पहुँचे साथ लिए रमणी को भक्त सभा में उस ही क्षण॥
कुछ हँसे, किसी की भौंहे तनी, कइयों ने मस्तक झुका लिए।
राजा ने सोचा, निलज्ज है फिरता वेश्या साथ लिए॥
नरपति का इंगित पाकर प्रहरी ने उनको दिया निकाल।
रमणी साथ लिए विनम्र हो, चले कुटी कबीर तत्काल॥
ब्राह्मण खड़े हुए थे पथ में कौतुक से हँसते थे तब।
तीखे ताने सुना-सुनाकर चिढ़ा रहे थे सब के सब॥
रमणी यह सब देख रो पड़ी! चरणों में सिर टेक दिया।
बोली, 'पाप पंक से मेरा क्यों तुमने उद्धार किया?
क्यों इस अधमा को घर रखकर तुम सहते इतना अपमान?
कबीर बोले, 'जननी! तू तो है मेरे मालिक का दान!'

कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, कल्याण—पृ० सं० ३१७, संतवाणी अंक
(बंगला से भावानुवाद)।

की माया जिसने रंक से राजा बनाया, पुन: राजा से रंक कर दिया, देखिए यह कैसी विडम्वना है।[1] उक्त स्वांग को हरिजन (संत) लोग देखकर बहुत दु:खी हुए और उनके मन में निराशा का संचार हो गया। सब लोग हाय ! हाय ! करने लगे।

यह क्या हो गया ? उक्त बात कहते हुए हरिजन (संत) लोग श्री रविदास जी के पास दौड़ते हुए गए। श्री रविदास जी कुछ दूर चले गए थे। भक्तों ने श्री रविदास जी से पूछा कि कबीर महाराज को क्या हो गया है ? हम लोग भ्रम में पड़ गये हैं। लोगों को आकुल देखकर श्री रविदास जी ने कहा कि चलो एकांत में बता दूँगा। सभी रविदास जी के साथ एकांत में गए जहाँ पर उन्होंने कहा कि आप लोग भ्रम में न पड़ें। भगवान् कबीर जो कुछ करते हैं उसे देखते रहें। किसी प्रकार की शंका न करें। वे दीनानाथ हैं। वे अविनाशी तत्व हैं। उनका विनाश नहीं होता है, केवल यह नाटक दिखावा मात्र है। आप लोग जायँ राम श्री राम जपें। श्री रविदास जी की बातों से भक्तों के मन में सन्तोष हुआ और बोले कि चलो यह दृश्य देखना अच्छा नहीं है।[2]

ऐसा समझकर श्री हरि कहते हुए सभी भक्त-गण अपने-अपने घर चले गए। उधर विष्णुधर्म के विरोधी कट्टर शाक्त एवं शैव थे, जो सदैव

---

१. दिन दिन भीर होत अध्ध काई। सुमरन करत चित चलि जाई॥
तब कबीर दाक बुधि बिचारी। लोक बड़ाई धरूँ उतारी॥
प्राति समैं गन्यका कै गयऊ। लीनी संग अचम्भौ भयऊ॥
गरै बांह गनिका कै घाली। गनिका मिलि कबीर संग चाली॥
भरिकरई चरनौदिक लीनौ। मद कै धोषै करि करि पीनौ॥
जाय बाजार मांहि नीसरचौ। मांनूं ग्यांन सबै बीसरचौ॥
हासी करैं नग्र कौ लौगू। हरिजन कै मन उपज्यौ सोगू॥
बांभन वनीयां वहौत विगोवैं। हरिजन देषि देषि मुह गोवैं॥
भगति कीयो चाहै सब कोई। नीच जाति तैं कैसैं होई॥
दिन दस भगति कबीरैं कीनी। अब देषौ गनिका संग लीनी॥

२. सन्तों को दुखी जान कर सद्गुरु कबीर मन ही मन सोचने लगे कि ऐसी युक्ति विचारूँ कि सन्तों की प्रतिष्ठा बनी रहे। आप अपने कार्य में लग गए। उधर सन्त लोग कबीर साहब की लीला जानकर सन्तुष्ट हो गये और अपने स्थान की ओर श्री राम-नाम का गुणानुवाद करते हुए पीछे लौट आए।

से छिद्रान्वेषण में लगे हुए थे और मौके की तलाश में थे कि कब अवसर मिले कि कबीर को रसातल पहुँचा दें। अतः कबीर स्वामी की उपर्युक्त दशा को देखकर सभी ने विद्युत की भाँति पूरे नगर में उसको प्रसारित कर दिया। जिसे सुनकर सभी विरोधी इकट्ठे हो गए तथा सद्गुरु कबीर के पीछे शोर करते हुए चलने लगे। अपशब्दों का भरमार करने लगे। लोग कह रहे थे कि देखो यह महाज्ञानी और सिद्ध बनता था। आज इसे यह क्या हो गया ? हम लोग पहले से ही कहते थे कि यह ढोंगी है, बवाली है। भला नीच जाति में कभी ज्ञान-भक्ति का संचार हो सकता है ? देखो यह थोड़े ही में पागल हो गया। अपनी मान मर्यादा के समक्ष हम लोगों को तुच्छ समझता था, हमारे धर्म की निन्दा करता था। आज इसकी सच्चाई का पता चल गया, इत्यादि बातें कहते हुए ब्राह्मणों एवं शैवों ने बहुत आनन्द मनाया और पीछे-पीछे चलने के साथ अर्रररा भाई देखो कबीर को, इत्यादि अश्लील गाने गाते हुए सब जा रहे थे। इन ब्राह्मणों, वणिकों, मौलवियों की सभी बातों को सुनते हुए भी अनसुनी करते हुए गुरुदेव कबीर भी आगे-आगे चले जा रहे थे। हाथ में बोतल और साथ में वेश्या थी, जिसके कारण तमाशगीरों को अपार हर्ष हो रहा था। चलते-चलते राज द्वार पर कबीर साहब पहुँच गए। उधर राजा के यहाँ साहब कबीर के पहले ही विद्रोही समाज के नेताओं ने जाकर उक्त समाचार सुनाकर, सभा के बाहर चले आए थे। इधर अन्य दिनों की भाँति द्वारपाल ने आज स्वागत नहीं किया, परन्तु भगवान् कबीर ने द्वारपाल से कहा कि मेरे आने की सूचना राजा को दे दो। द्वारपाल गया, राजा को नमस्कार करते हुए गुरुदेव के आने की सूचना दी। राजा ने आदेश दिया कि गुरुदेव जी को बुला लाओ।

---

१. संत देखि डरे, सुख भयौई असन्तनि के,
तब तौ विचार मन माँझ और आयो है।
बैठी नृप सभा जहाँ गये पै न मान कियौ,
कियौ एक चीज उठि जल ढरकायो है॥
राजा जिय सोच परयो, करयो कहा ? कह्यो तब,
"जगन्नाथ पण्डा पाँव जरत बचायो है।"
सुनि अचरज भरे नृप ने पठाये नर ल्याये सुधि कही,
"आज साँच ही सुनायो है"।
—"भक्तमाल", प्रियादास की टीका, पृ० सं० ४८६।

द्वारपाल के कथनानुसार कबीर साहब वेश्या को लिए हुए राज सभा में पहुँच गए। कबीर साहब को उपर्युक्त वेश में तथा गणिका के साथ में लिए हुए देखकर सभासदों से राजा ने कहा कि देखो कबीर को क्या हो गया ? आज तो ये विचित्र वेश-भूषा में दिखाई दे रहे हैं। ऐसा कहते हुए राजा चुप हो गया। कबीर को नमस्कार, दण्डवत् राजा ने नहीं किया। राजा ने कहा बैठो। अस्तु, राजा के आदेश को पाकर कबीर साहब थोड़ी दूर पर एक वेदी थी उसी पर जाकर बैठ गये। उधर बहुत से सभासद, जो कबीर साहब के अंतरंग भक्त थे, वे भ्रम में नहीं पड़े। वे लोग जान गए कि इसमें कुछ कारण है, क्योंकि गुरु कबीर को माया नहीं स्पर्श कर सकती। वे कभो ठगे नहीं जा सकते हैं। ऐसा समझकर सभी लोगों ने मन ही मन सद्गुरु कबीर को प्रणाम किए, दूसरी ओर जो कोरे राजनीतिज्ञ थे, उन्होंने राजा वीरसिंह बघेल का समर्थन किया। राजा यद्यपि कबीर साहब का शिष्य होने वाला था, परंतु आज उसकी श्रद्धा समाप्त हो गयी और बोला कि कह दो कबीर चले जायँ। राजाज्ञा पाते ही एक राजपुरुष ने उठकर कबीर साहब से कहा कि महाराज को आज्ञा है कि आप यहाँ से इच्छित स्थान पर चले जायँ। कबीर साहब ने कहा कि बहुत अच्छा है, सभी को जाना है। इतना कहते हुए उठकर वहाँ से कबीर साहब चल दिये। चलते समय हाथ में जो बोतल लिए हुए थे उस बोतल के बचे हुए पानी को अपने पैरों पर लगभग पचीस पला तक गिराते रहे। उधर राजा भी कबीर साहब को ओर देख रहा था। अस्तु, राजा सभासदों की ओर संकेत करते हुए बोला कि बोतल में अधिक से अधिक एक पाव मद्य रहा होगा, परन्तु अभी तक कबीर अपने पैरों पर जल गिरा रहे हैं वह जल पचीसों हाथ में फैल गया।

जगन्नाथपुरी में रामहर्ष पाण्डेय का प्रसंग

इस रहस्यमय घटना को देख राजा सहित सभी लोग आश्चर्य चकित हो गए। राजा वीरदेव सिंह बघेल शीघ्र ही सिंहासन से कूद पड़ा और सभासदों को लेकर कबीर साहब के निकट चला गया एवं बोला कि बाबा यह क्या कर रहे हो ? राजा की बात सुनकर श्री रविदास जी ने बोले राजन् ! अभी-अभी श्री जगन्नाथपुरी में एक पण्डा भोजन बना रहा था। पात्र फूट जाने के कारण सारा गरम जल उसके पैरों एवं अन्य अंगों पर पड़ गया, जिससे वह जल रहा था। उसी को कबीर साहब

बुझा रहे हैं। अग्नि ने उसकी झोपड़ी को भी पकड़ लिया है। वह जोर से चिल्लाने लगा, उसके सारे सामान जल रहे थे। इतना कह कर श्री रविदास जी चुप हो गये। इसके बाद सद्‌गुरु कबीर ने स्वयं उक्त घटना के बारे में राजा से कहना प्रारंभ किया। कबीर साहब ने कहा कि राजन्! उसकी पुकार को सुनकर मैंने अपने पैरों पर जल गिराना शुरू कर दिया, जब तक वह अग्नि पूर्ण रूप से शान्त नहीं हुई, तब तक मैं जल गिराता रहा, अन्ततोगत्वा उसकी झोपड़ी आदि बच गयीं।

उक्त आश्चर्ययुक्त बात को सुनकर राजा ने कहा कि स्वामी जी आप तो यहाँ हैं और अग्नि वहाँ लगी थी। इस बात पर कबीर साहब ने कहा कि राजन्! मैं यही से वहाँ तक सब देखता और सुनता रहा हूँ तथा दूसरे रूप से वहाँ कार्य भी करता रहा हूँ। राजा साहब कबीर की बात सुनकर मौन हो गए। इधर कबीर साहब गणिका को विदा कर श्री रविदास जी तथा संत मंडली को साथ में लेकर मातृभूमि वाली कुटिया पर आ गये। उधर विरोधी लोग खूब मनमोदक निगल रहे थे और कहते थे चलो अब हम लोगों का बाजार पुनः गरम हुआ। कबीर अब गया, इत्यादि बातें कहकर धार्मिक व्यावसायिक आनंद मनाने लगे।

उधर राजा वीरदेव सिंह ने अपने मंत्रियों से मंत्रणा करके गुरुदेव कबीर की परीक्षा के लिए दो अनुचरों को साड़िनियों पर आरूढ़ कराकर भेजा, जिस समय कबीर साहब ने यह कहा था कि अमुक पण्डा जल रहा था, वह समय एवं मुहूर्त्त लिखकर अनुचरों को दे दिया और कहा कि तुम लोग ठीक-ठीक पूछ-ताछ करना नहीं तो दूसरा धावक जाएगा। अनुचर राजा की आज्ञा पालन करने की प्रतिज्ञा करके साड़िनियों पर आरूढ़ होकर जगन्नाथपुरी के लिए रवाना हो गए।

चलते-चलते कुछ दिनों में जगन्नाथपुरी में पहुँच गये तथा उस जले हुए पण्डे का घर पूछते-पूछते उसके यहाँ जाकर सारी बातों की जानकारी प्राप्त की। जो पत्र राजा ने दिया था अनुचरों ने उसको पढ़कर उसे सुनाया। पत्र सुनने के बाद पण्डा ने कहा—हाँ, मैं जल रहा था। भोजन बनाते समय पात्र फूट जाने के कारण मेरे पैरों पर गरम पानी पड़ गया, वस्त्र को अग्नि ने पकड़ लिया। मेरी उक्त दशा देखकर कबीर जी महाराज जल लेकर दौड़ पड़े और लगी हुई अग्नि को उन्होंने बुझा दी!

इस प्रकार रामहर्ष पाण्डेय की उक्त बातों को सुनकर राजपुरुषों

ने पूछा कि कौन कबीर, कहाँ के रहनेवाले हैं ? पाण्डेय ने कहा कि वही कबीर, जो काशी में निवास करते हैं, जिनको सभी लोग भगवान का दास कहते हैं, वही कबीर, जिनको नूर अली जुलाहा लहरतारा में पाया था, जो स्वामी रामानंद के शिष्य हैं। वही कबीर यहाँ पर श्री जगन्नाथ जी का दर्शन करने आए थे, जो सदा प्रेमपूर्वक श्रीहरि का गुणानुवाद करते हैं, वही कबीर मुझे जलते हुए देखकर दौड़ पड़े थे और लगी हुई अग्नि को शान्त कर दिया। इसके बाद काशी पुरी में यहाँ से चले गए। उनके इस कौतुक से इस पुरी के सभी लोग बहुत प्रभावित हैं। वे दया के सागर एवं भक्तों के संरक्षक सन्त हैं।

अतः राजदूतों ने जब रामहर्ष पाण्डेय के मुख से इन सारी घटनाओं की जानकारी कर ली, तो अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गए और बोले कि उस समय श्री कबीर साहब राजसभा में विराजमान थे, तो यहाँ कैसे आ गए ? दूतों ने मन ही मन कबीर साहब को नमस्कार करके जगन्नाथ जी का दर्शन किया। इसके बाद उन्होंने काशी नगरी के लिए प्रस्थान कर दिया। दस दिनों में वे काशी जी पहुँच गए। उन लोगों ने यहाँ आकर राजा को नमस्कार करने के बाद सम्पूर्ण विवरण को ज्यों का त्यों सुना दिया। उक्त अनुचरों की बातों को सुनकर राजा भयभीत हो गया एवं तुरन्त सभासदों को बुला करके दूतों की बातों को कह सुनाया। सभासदों ने कहा कि महाराज ! कबीर साहब से क्षमा माँगी जाय। राजा ने कहा कि मैं भी यही सोच रहा हूँ। ऐसा कहते हुए राजा अन्तःपुर में गए और राजलक्ष्मी मुख्य रानी से बात करते हुए कहा कि जिन बातों को कबीर ने कहा था उन्हीं बातों को दूतों ने पुष्टि की है। अब क्या करना चाहिए ? महारानी ने कहा कि महाराज ! चलकर कबीर साहब से क्षमा माँगनी चाहिए। इसके बाद राजा ने प्रधान मन्त्री से विचार-विमर्श किया और बहुत भयभीत होकर कहा कि अब मेरा राज्य नहीं बचेगा, क्योंकि मैंने सन्त पुरुष का अपमान किया है। इसलिए सन्त के शाप से मैं भस्म हो जाऊँगा। किस प्रकार से उनसे क्षमा माँगू। धन-धान्य से तो वे दूर ही रहते हैं।

इस प्रकार कहता हुआ राजा चिन्तामग्न हो गया। मुख्य रानी एवं प्रधान मन्त्री ने राजा को बहुत ढाढ़स बँधाया और कबीर साहब के पास चलने के लिए राजा से कहा। राजा ने राजसी वस्त्र आदि उतार

कर अपने गले में एक कुल्हाड़ी बाँधी[1] एवं दो बोझ तृण बाँधकर एक बोझ अपने सिर पर और दूसरा बोझ रानी के सिर पर उठाकर विना पदत्राण के प्रस्थान किया और कहा कि यदि महाराज कबीर मेरे अपराध को क्षमा नहीं करेंगे तो इसी कुल्हाड़ी से मैं अपने और रानी के सिर का छेदन कर डालूँगा और तुम लोग इन दोनों शवों को एक स्थान पर रखकर इसी तृण से फूँक देना, इसके बाद पूरा न जलाकर भूमि पर रख देना। दाह संस्कार मत करना, जिससे मैं सन्त के अपराध से मुक्त हो जाऊँगा। ऐसा कहकर रानी के साथ महाराज वीरदेव सिंह बघेल काशी नगरी के बीच बाजार से होकर चलने लगे। राजा को उक्त दशा में जाते हुए देखकर काशी की जनता आश्चर्य में पड़ गई। राजा के पीछे-पीछे उनके मन्त्रीगण भी नंगे पाँव, सिर उघारे हुए, नीचे सिर करके चल रहे थे। काशी की जनता घबड़ा गई। किसी में पूछने का साहस नहीं था। इस प्रकार कुछ ही घण्टों में महाराजा कबीर साहब के आश्रम पर पहुँच आये।

राजा को दण्डित रूप में अपनी ओर आते देखकर कबीर स्वामी अपने आसन से उठकर दौड़ पड़े और बोले राजन्! आपने यह क्या किया है? राजा ने कहा भगवन्! मैंने अपराध को क्षमा कराने के लिए ऐसा किया है। इस पर कबीर साहब ने कहा कि राजन्! आपके सभी अपराध क्षमा हो गए। इस स्वाँग को शीघ्र ही आप उतार दीजिए। मुझे आपसे कोई कष्ट नहीं हुआ है। इस प्रकार कबीर साहब को प्रसन्न जानकर राजा ने गले की कुल्हाड़ी एवं सिर का बोझा उतार कर फेंक दिया और कबीर स्वामी के चरणों पर गिरकर बहुत अनुनय-विनय किया। उनकी

---

१. कही राजा रानी सो "जु बात वद साँची भई,
आँच लागी हिये अब कहो कहा कीजियै?"
"चले ही वनत" चले, सीसतृण बोझ भारी,
गरे सो कुल्हारी बाँधि, तिया संग भीजियै
निकसे बाजार ह्वै कै, डारिदई लोकलाज,
"कियौ मैं अकाज छिन छिन तन छीजियै॥"
दूरते कबीर देखि, ह्वै गये अधीर महा,
आये उठि आगे कह्यौ, डारि मति रीझियै।
—"भक्तमाल" प्रियादास की टीका, पृ० सं० ४८७।

आँखों से अश्रु-धारा प्रवाहित हो रही थी। राजा ने कहा कि हे प्रभो ! मुझे शरण दो ! मुझे शरण दो ऐसा कहकर पुनः चरणों पर लेट गए। इस प्रकार राजा को शरणागत जानकर गुरुदेव कबीर ने समझा-बुझाकर उन्हें शान्त कर दिया। उक्त प्रसंग को देखकर काशी की जनता आश्चर्य-चकित हो गई। कुछ लोग राजा को कबीर साहब के वशीभूत जानकर खुशियाँ मनाने लगे। जो हरिजन थे प्रसन्न हुए और जो शाक्त थे वे सभी शोकाकुल हो गए एवं वहाँ से भाग गए। इधर राजा ने हाथ जोड़कर कहा प्रभो ! मुझे वैष्णव बना दीजिए, क्योंकि आपके दर्शन से अब मेरे पाप-ताप शान्त हो गए। जननायक की विनय से परिपूर्ण प्रार्थना को सुनकर गुरुदेव कबीर ने कहा कि राजन् ! आप राममन्त्र के अधिकारी हो गए हैं। आइए आपको मैं वैष्णव धर्म में दीक्षित कर देता हूँ। ऐसा कहकर शुभ सामग्री मँगाकर कबीर साहब ने राजा को राममन्त्र प्रदान कर दिया। इसके बाद राजा ने हाथ जोड़कर कहा कि भगवन् ! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं किस कार्य को करूँ ? कबीर साहब ने कहा कि हे राजन् ! दीन दुःखियों की सेवा करो। तुम्हारे पास जो कुछ हो वह सब प्रजा का समझो और अपना कोष प्रजा की उन्नति के लिए लगा दो। देश-हित में जो कुछ करना है उसे करो। म्लेच्छ से पीड़ित जनता की रक्षा करो। सदैव सत् पुरुषों का साथ दो। अन्न-जल एवं वस्त्रादि से विद्वान्, साधु पुरुषों को सम्मानित करो। प्रताड़ित समाज का उद्धार करो। राष्ट्र की समुन्नति में जीवन अर्पण कर दो, क्योंकि समृद्धिशाली राष्ट्र ही जनता का भरण-पोषण कर सकता है। इसलिए जनहित का कार्य निरन्तर करना आप का धर्म है।

गुरुदेव कबीर की उपर्युक्त बातों को सुनकर राजा वीरदेव सिंह ने कहा, प्रभो ! आप की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। यह तो आपने देश एवं समाज की सेवा करने के लिए कहा, परन्तु आपकी कौन सी सेवा मैं करूँ, जिससे मेरी आत्मा प्रफुल्लित हो ? गुरुदेव कबीर ने कहा कि हे राजन् ! मेरी आज्ञा मानना ही मेरी सेवा है। राजा ने कहा हे प्रभो ! कुछ और आप कहें। कबीर स्वामी ने कहा कि आलस्य, प्रमाद एव दुर्व्यसनों का परित्याग सदैव करना और अपने कर्मचारियों एवं कायस्थों पर ध्यान रखना कि कहीं प्रजा जनों का शोषण तो नहीं कर रहे हैं, क्योंकि राजकर्मचारी राजा के नाम पर प्रजा को सदा उत्पीड़ित करते रहते हैं। प्रत्येक कार्य को सोच समझकर करना सर्वश्रेष्ठ है। वैष्णवधर्म

का यही अर्थ है कि कभी किसी के साथ अन्याय नहीं करना तथा विना कमाई का धन नहीं खाना और पराये धन का स्पर्श नहीं करना, क्योंकि पराया धन सर्वनाश कर देता है। इस पर मैं आप से अपने ऊपर बीती हुई एक घटना का वर्णन करता हूँ।

पराया धन के लोभ से सर्वनाश

एक बार मैं और मेरे पालन करने वाली मेरी माता नैमुन्निशा दोनों देशाटन करने के लिए निकले, हम दोनों काशी से बीस कोस पश्चिम गए। मार्ग में माया ने मेरी परीक्षा के लिए एक स्वर्ण का थैला सामने रख दिया, जिसको मेरी माता ने ग्रहण कर लिया। मैंने माता से कहकर उस स्वर्ण से भरे थैले को वहीं रखवा दिया। मैंने माता से कहा कि इस थैले को स्पर्श न करो, यह पराया धन है। इसे दो मुख वाली तलवार के समान जानो। अतः मेरे कहने पर माता ने उस थैले को वहीं रख दिया। कुछ दूर जाकर हम दोनों रुक गए। इतने में ही उधर चार राज-कर्मचारी आते हुए दिखाई पड़े। उन लोगों ने स्वर्ण वाली थैली को उठाकर चल दिये। उन्हीं लोगों के पीछे मैं और मेरी माता भी चल रही थीं। कुछ दूर पर एक हाट पड़ी जहाँ पर एक बनिये ने धर्मशाला बनवायी थी। उसी धर्मशाले में उक्त चारों राजपुरुष और मैं एवं मेरी माता भी रात व्यतीत करने के लिए रह गए। इतने में ही चारों राज-पुरुषों ने आपस में विचार किया कि इसमें से दो व्यक्ति जाओ आटा-चावल ले आओ। अस्तु, उनमें से दो तो चले गए। सभी सामानों को क्रय करके वे उधर से ला रहे थे कि इधर इन दोनों ने राय किया कि थैला में बहुत धन है, परन्तु इसमें चार भाग लगेंगे। एक ने कहा कि कोई उपाय करो कि इसमें दो ही भाग लगे। दूसरे ने कहा कि एक उपाय है, वह यह है कि थोड़ी सी अच्छी मिठाई ले लो और उसमें विष मिला दो और यह कहकर कि यह आप लोगों का हिस्सा है, हम दोनों ने अपना हिस्सा खा लिया है। इस प्रकार वे दोनों मिठाई खा जाएँगे और उनके प्राण निकल जाएँगे। इसके बाद हम दोनों आधा-आधा धन बाँट लेंगे। ऐसा निश्चय करके दोनों ने मिठाई लाई और उनके आने पर उसमें विष मिला कर एक स्थान पर रख दी। उन दोनों से उपर्युक्त बातें कहकर वे दोनों लेट गए। कुछ ही देर में उन्हें नींद आ गई। उधर जो दोनों थैली रखे हुए थे वे भी आपस में विचार करने लगे कि इस थैली का धन चार भागों में बँट जाएगा। ऐसा कोई मार्ग अपनाया जाय कि हम दो

ही इसके भागीदार बनें। एक ने कहा कि इसका सहज उपाय यह है कि दोनों साथी सो गए हैं चलो पहले तलवार से उन दोनों का गला काटकर आपस में थैली के धन को बाँट लें, दूसरे ने कहा कि बहुत अच्छा। इसके पहले जो खोवा की मिठाई रखी हुई है उसे खा लें तब दोनों को मारकर यहाँ से चला जाय। अस्तु, दोनों ने विषयुक्त मिठाई खाकर दोनों सोये हुए अपने साथियों का गला काटकर अलग कर दिया। तब तक इन दोनों को विष का असर चढ़ने लगा। आपस में दोनों ने कहा कि थोड़ा सोकर यहाँ से चलें। इस प्रकार विष के प्रभाव से ये दोनों भी मर गए।

प्रातः होते ही धर्मशाला के कर्मचारी उठकर धर्मशाला का निरीक्षण करने लगे और एक कमरे में चार मनुष्यों को मृत पाए। उसमें दो तो मुख से गाज मुखरित किए हुए थे और दो का गला कटा हुआ था। उक्त दृश्य देखकर लोग इकट्ठे हो गए। इसका प्रचार-प्रसार चारों तरफ शीघ्रता से हो गया। इतने में धर्मशाला के स्वामी आये और अपने अनुचरों को आदेश दिया कि जाकर राजा को इसकी सूचना दे दो। अस्तु, अनुचरों ने जाकर इसकी सूचना राजा को दे दी। राजपुरुषों ने तुरन्त लोगों को हटाकर जाँच-पड़ताल की। अन्त में धर्मशाला अधिपति को बन्दी बनाकर राजा की सभा में चारों शवों को स्वर्ण के थैले के साथ उपस्थित किया गया, जिसको भूपति ने देखा और मन्त्रियों के साथ विचार विमर्श किया। इसके बाद धर्मशाला के स्वामी को दोषी बताया गया और कहा गया कि स्वर्ण के थैले को लेने के लिए ही इस वणिक् ने चारों अनुचरों को मार डाला है। इसलिए इसको शूली पर चढ़ा दिया जाय और स्वर्ण थैले को राज्य कोष में सुरक्षित रख दिया जाय। राजाज्ञा पाते ही ज्यों का त्यों सब कार्य हो गया। शवों का दाह-संस्कार कर दिया गया।

इसी सन्दर्भ में एक दूसरे भूस्वामी ने राजा को पत्र भेजा कि जो स्वर्ण थैला तुझे प्राप्त हुआ है, वह मेरी सोमा के अन्तर्गत पड़ता है। इसलिए उसको मुझे वापस करो। जिस राजा ने स्वर्ण थैला प्राप्त किया था उसने पत्र को पढ़कर लिखा कि मैं इस थैले को ऐसे नहीं दूँगा, जब तक तुम आकर युद्ध करके मुझे परास्त नहीं कर देते हो। अन्ततोगत्वा उस राजा ने चढ़ाई की और परस्पर दोनों राजे लड़कर मर गए। थैला किसी के हाथ नहीं लगा, जहाँ का तहाँ पड़ा रहा। राजन्! यह दृश्य मैं और मेरी माता देखती रहीं। उक्त लीला को देखकर माता के ज्ञान

पटल खुल गए। आत्मज्ञानी बनकर देखो। इसी प्रकार से तुम भी भगवान् का नाम लेते हुए सन्तों की सेवा बन्दगी करना इस प्रकार से कबीर साहब ने राजा को समझा बुझाकर विदा करके अपने भजन-भाव में तल्लीन हो गए। उधर शाक्त एवं शैवों ने देखा कि इससे कबीर की महिमा और बढ़ गई। राजा भी कबीर का शिष्य हो गया और उनके सामने नतमस्तक होकर घुटने टेक दिया।

भक्त समनन की कथा

एक दिन सद्गुरु कबीर कुछ सन्तों के साथ काशी के आस-पास के क्षेत्रों में भ्रमण कर रहे थे। काशी से ६-७ मील पश्चिम में गंगापुर नामक एक ग्राम है, जहाँ पर एक समनन नामक ब्राह्मण रहता था। जिसकी पत्नी का नाम सुनेको देवी था, जिसके गर्भ से शिव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बड़ा ही भगवत् भक्त था। यों तो उसके माता पिता भी परम वैष्णव थे। उन्होंने सन्तों को सेवा में सारा धन-जन समाप्त कर दिया था। अतः सद्गुरु कबीर भ्रमण करते हुए पं० समनन के द्वार पर सन्तों के साथ पहुँचे, जिनको देखकर पं० समनन बड़े वेग से दौड़ पड़े और साहब के चरणों में लिपट गये। साहब ने उनको उठाकर गले से लगाया और कुशल क्षेम पूछा। समनन ने कहा प्रभो! आप सन्तों की परमानुकम्पा से हम लोग सदैव आनन्द मंगल से रहते हैं। हमारे घर किसी भी प्रकार की विघ्नबाधा नहीं है। हम लोग अहर्निश भगवत् चिन्तन में ही जीवन व्यतीत करते हैं। सद्गुरु ने कहा हे पण्डितराज! आप धन्य हैं। आपका परिवार, माता-पिता सभी धन्य हैं जिनको प्रभु की अनपायनी भक्ति प्राप्त हुई है। मैं भी आपका नाम सुनकर ही दर्शन के लिए आया हूँ। साहब की बात सुन कर पं० समनन के नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। वे बोले, प्रभो! मैं तो कुछ जानता नहीं, केवल आप गुरुजनों के बताए हुए मार्ग का अनुसरण करता हूँ। इतना कहकर पं० समनन ने सन्तों को आसन-बासन लगाकर बैठाया और थाली लेकर सभी सन्तों के चरणों को धोया। उक्त धोए हुए जल को लेकर उन्होंने सपरिवार पान किया। बचे हुए जल को घर-आँगन में छिड़क दिया। इस कृत्य को देखकर संत लोग बड़े प्रभावित हुए। समनन का दूसरा नाम समदर्शी भी था। वे किसी से रागद्वेष नहीं करते थे। सभी से ऐसे मिलते थे मानों सब उनके अपने ही हों। इधर संत लोग श्रीरामधुनि में लग गए और उधर पं० समदर्शी महाराज ने अपनी पत्नी से कहा कि कबीर जी

सन्तों के साथ आज मेरे द्वार पर पधारे हुए हैं। कुछ भोजन का इन्तजाम करो। समनन की बात सुनकर सुनेको ने कहा—तुम तो जहाँ तहाँ जाकर खा लेते हो, आज तीन दिन से मैं और शिव भूखे पड़े हुए हैं। घर में कोई अन्न नहीं है! तुम तो दिन-रात राम-चर्चा में पड़े रहते हो। मैं कहाँ से अन्न लाऊँ? पत्नी की बात सुनकर पं० समनन के मन में बहुत क्षोभ हुआ। अब वे सन्तों के सामने कैसे जायँ? घर के एक कोने में समनन बैठे हैं और दूसरे कोने में उनकी पत्नी बैठी है। एक दूसरे से कोई बोल नहीं रहा है। दोनों के वस्त्र इतने फट गये थे कि प्रत्येक अंग के दर्शन हो रहे थे। इसलिए माता सुनेकी देवी घर से बाहर नहीं निकलती थीं। कुछ देर के बाद १६ वर्षीय पुत्र शिव कहीं से आ गया और माँ से कहा कि मुझे बहुत भूख लगी हुई है। कुछ देर मौन के बाद सुनेको देवी ने कहा, पुत्र! आज तीन दिन से हम सब भूखे हैं। उधर द्वार पर सन्त आये हुए हैं। भला बताओ क्या किया जाय? सन्तों का नाम सुनते ही शिव के मन में अपार श्रद्धा उमड़ आई। उसने माँ से कहा पिता जी कहाँ हैं? माता ने कहा देखते नहीं हो कोने में बैठे हुए हैं। माता के कथनानुसार शिव की दृष्टि पिता की ओर गई। शिव दौड़कर पिता की गोद में बैठ गया और बोला पिता जी सन्त आये हुए हैं, उनकी सेवा करनी चाहिए। आप यहाँ क्यों बैठे हुए हैं? पिता ने कहा—पुत्र, मेरी बुद्धि काम नहीं करती है। तुम्हारी माता कहती है कि घर में कुछ नहीं है। पिता की बात सुनकर शिव बोला—पिता जी चलिए घर से बाहर निकलें, कुछ उपाय किया जाय। पिता-पुत्र बाजार में गए। जिस दुकान पर जाते थे वही दुकानदार कहता था—अरे महाराज! अभी तो पचास रु० बाकी है। भला बिना उसके अदा हुए मैं कैसे दे सकता हूँ? आप तो प्रतिदिन साधुओं के नाम पर आटा, चावल, दाल ले जाते हैं। यदि हम लोग मुफ्त में दें, तो हमारे भी बाल-बच्चे हैं। आपके ही बाल-बच्चों की भाँति मेरे भी बाल-बच्चे बिना अन्न के भूखे मर जाएँगे। वणिकों की बात सुनकर पिता-पुत्र निराश हो गये और एकान्त में जाकर कुछ विचार-विमर्श करने लगे। शिव ने कहा, पिता जी यदि सन्त द्वार से भूखे चले जाएँगे तो गृहस्थ धर्म नष्ट हो जाएगा और धर्म के नष्ट होने पर हम सभी नष्ट हो जाएँगे। इसलिए जिस किसी प्रकार से हो सन्तों की सेवा करनी चाहिए। पुत्र की बात सुनकर समनन ने कहा—तुम्हीं बताओ क्या उपाय किया जाय?

शिव ने कहा—इस समय हम लोग आपतधर्म में पड़े हुए हैं। इसलिए किसी भी प्रकार से अन्न प्राप्त करने में दोष नहीं होगा। पिता ने कहा—चलो जो तुम कहोगे वही मानूँगा, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि धर्मयुक्त है। वहाँ से दोनों पिता-पुत्र उठे। खिड़की के रास्ते से एक वणिक् के घर में प्रवेश किए। उक्त घर का वणिक् भोजन आदि करके सो गया था। घर में घुसकर दोनों चावल दाल की तलाश करने लगे। एक कोठरी में एक बोरे में चावल तथा दूसरे बोरे में दाल मिल गयी। समनन ने कहा—पुत्र! तीन संत हैं और तीन हम लोग भी हैं। इसलिए छे खोराक से अधिक नहीं लेना चाहिए। शिव ने कहा—पिताजी मेरी भी यही राय है। अत: छे खोराक भर दाल-चावल बाँध लिए और बाहर जाने की तैयारी हो ही रही थी, तब तक अंधकार में एक घड़े (घैला) के ठोकर से समनन गिर पड़े। घड़ा (घैला) फूट गया, जिसकी आवाज सुनकर गृहस्वामी जाग उठा। उसने पास में सोये हुए परिवार वालों को जगाया और चोर! चोर! शोर करना शुरूकर दिया। इधर अंधकार के कारण शीघ्रता में रास्ता न मिलने से दोनों बाहर न निकल सके। शिव बोला—पिता जी जल्दी से बाहर निकल चलें। दीवाल के सहारे समनन खिड़की की तलाश में लग गए तथा खिड़की मिल गयी। इसी मार्ग से समनन बाहर निकल आया, परन्तु शिव को घर वालों ने दौड़कर पकड़ लिया। पकड़ जाने पर शिव बोला—पिता जी, मैं तो पकड़ा गया। आप चावल-दाल ले जाकर संतों को भोजन बनवाकर खिलाइए। पुत्र को पकड़ा जानकर समनन अपने न पकड़ जायँ, यह सोचकर भाग चला। घर जाकर चावल, दाल स्त्री को दे दिया और कहा कि भोजन बनाओ और संतों को खिलाओ, रात्रि ज्यादा हो गई है। चावल दाल आया जानकर सुनेकी देवी बड़ी प्रसन्न हुई और भोजन बनाने में तल्लीन हो गई। उधर गृहस्वामी ने शिव को पकड़कर एक खंभे में बाँध दिया और राजपुरुषों के हवाले करने को सोच ही रहा था कि उसके घर वालों ने शिव की बड़ी पिटाई की और कहा कि रात्रि भर इसे यहीं रहने दो, प्रातः होते ही इसे राजपुरुषों के हवाले कर दिया जाएगा।

इधर सुनेकी देवी ने भोजन तैयार कर दिया और समनन से कहा कि संतों को बुलाओ और भोजन कराओ। समनन घर से निकला और कबीर साहब के आगे जाकर दण्डवत् किया। उसने कहा प्रभो! भोजन तैयार हो गया है। कबीर साहब ने कहा—बहुत अच्छा। तीनों संत

घर में जाकर भोजन करने के लिए आसन पर बैठ गए। भोजन की थाली सबके सामने रखी गयी। कबीर साहब ने कहा—हम सभी एक साथ भोजन करेंगे। समनन ने कहा—प्रभो! पहले आप सब भोजन कर लें बाद में हम सब भोजन कर लेंगे। परन्तु कबीर साहब ने कहा कि नहीं, सब साथ ही भोजन करेंगे। समनन ने कहा बहुत अच्छा। पाँच थालियों में भोजन लगाया गया, जिसको देखकर सद्गुरु ने कहा—थाली तो पाँच ही हैं। एक और होनी चाहिए। तुम्हारा पुत्र शिव कहाँ है? कबीर साहब की बात सुनकर समनन ने सिर नीचा कर लिया। वह कुछ कह नहीं पा रहा था, परन्तु साहब के बार-बार पूछने पर "समनन ने कहा—प्रभो! शिव बाहर गया है। वह सबेरे आएगा। आपलोग भोजन कर लें। साहब ने कहा—नहीं, बिना शिव के हमलोग भोजन नहीं करेंगे। साहब की दृढ़ विचारधारा को जानकर समनन ने सद्गुरु से सारी कथा कह सुनायी। इन बातों को सुनकर संतों को रोमांच हो आया। इतने में आकाशवाणी हुई कि "समनन तुम धन्य हो! तुम्हारा यश तीनों लोक में फैल जाएगा।" उक्त आकाशवाणी को सुनकर संतों ने कहा—समनन शिव को बुलाओ। संतों के कहने पर समनन ने शिव-शिव की आवाज लगायी। उधर वणिक् सपरिवार पुनः सो गया। उसके घर के फाटक अपने-आप खुल गये और शिव का बंधन भी खुल गया। शिव घर से बाहर निकला और पलक मारते अपने घर पर आ गया। वह संतों की पंक्ति में बैठकर भोजन भी करने लगा। तत्पश्चात् सब राम-नाम की जयकार करने लगे। अधिक भक्ति-भाव से संत लोग बहुत खुशी हुए। कबीर साहब ने कहा कि देखो ऐसे भक्त होते हैं, जो प्राण की बाजी लगाकर संतों की सेवा करते हैं।

इतना कहकर सद्गुरु कबीर पुनः आश्रम पर चले आए और कथा कीर्तन में लग गये। उधर विरोधी लोग कबीर साहब के विरुद्ध षड्यंत्र में लगे रहे। वे लोग वैसे विपक्षी की खोज में लगे रहे कि जो कबीर साहब को परास्त कर सके। इधर कबीर साहब की ख्याति दिनानुदिन चौगुनी बढ़ने लगी, जिससे विपक्षी लोग और बौखला उठे।

सद्गुरु की सिकन्दर लोदी द्वारा परीक्षा

कबीर साहब के बढ़ते हुए मान-मर्यादा को देखते हुए विपक्षियों ने आपस में विचार-विमर्श किया और उनके अन्दर यह निश्चित धारणा बन गई कि अब कबीर हम लोगों का अनादर करेगा।

इस आशंकायुक्त धारणा से निबटने के लिये एक सभा आयोजन करने का निश्चय किया और उन लोगों ने सारे नगर में इसके लिये ढिढोरा पिटवा दिया कि सभी लोग आज सायं दशाश्वमेध घाट पर इकट्ठे हो जायँ। अतः सभी लोग निश्चित समय के अनुसार दशाश्वमेध घाट पर एकत्रित हो गए। विचार-विमर्श होने लगा। सभी लोगों ने कहा कि कबीर बड़ा मायावी है। अतः इसकी शिकायत सम्राट सिकन्दर लोदी से की जानी चाहिए। इस प्रकार उक्त समाज के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों ने दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिये एवं एक पक्षांत में राज दरबार में पहुँच कर अपनी दर्द भरी कहानियों को राजा सिकन्दर से कह सुनाया। सम्प्रदाय के नेताओं का कहना था कि कबीर नामक एक जुलाहा काशी में है, जो स्वामी रामानन्द जी का शिष्य हुआ है और प्रतिदिन हिंदू मुसलमानों की निन्दा करता है। कुरान एवं वेदों को भी निन्दा करता है। परस्पर दोनों जातियों को आपस में विद्रोह करने के लिए प्रेरित करता रहता है। यह राज्य के लिए बहुत बड़ा शत्रु है। कुछ मूर्खों को इकट्ठा करके अपनी नयी बातें सुनाता है। हे जहाँपनाह! वह आपकी सल्तनत बरकरार नहीं रहने देगा, वह एक नयी सल्तनत कायम करना चाहता है। नूर अली नामक जुलाहे ने उसे कहीं से लाया था, जो बड़ा काफ़र निकला हुआ है। वह बहुत बड़ा जालिम है। उसके घर के लोग भी उससे घबड़ाए हुए हैं। वह बहुत बड़ा करामाती है। बड़े-बड़े राजे महाराजे एवं जनसाधारण भी उसके शिष्य हो गए हैं। यहाँ तक कि राजा वीरदेवसिंह बघेल ने भी उसके शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया है। तभी से इसकी ख्याति और बढ़ गई है। उसने अपनी करामात के बल पर देश की दो तिहाई जनता को अपने वश में कर लिया है। मुसलमान होते हुए भी कुरान की बातों पर नहीं चलता है। हिन्दू मुड़ियों के रूप में रहता है।

इस प्रकार यदि आप उसकी गति-विधियों पर ध्यान नहीं देंगे, तो वह आप के राज्य को नष्ट कर देगा। अस्तु, सिकन्दर लोदी ने उपर्युक्त बातें ब्राह्मण एवं काजी मौलवियों से सुनीं और लम्बी साँस लेते हुए कहा कि चलो कल ही मैं काशी के लिए प्रस्थान करता हूँ। विक्रम संवत् की १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सिकन्दर लोदी काशी में आया था। इस बात को इतिहास वेत्ता भी स्वीकार करते किसी का मत है कि सिकन्दर ईसा की १८वीं शताब्दी में आया था जो भी कबीर साहब के

काल में उसके काशी आने का उल्लेख प्राप्त होता है। अतः राजा ने सिपहसालार को हुक्म दिया कि तुम जंगबाजों को तैयार कर दो। कल मुझे काशी के लिए रवाना होना है। हुक्म पाते ही सारे सिपाही तैयार हो गए और प्रातः काल सैन्य-दल चल पड़ा। उधर सिकन्दर लोदी ने जुगुप्सकों को ले लिया, जो काशी से गए थे। रात-दिन चलकर वह २० दिनों में काशी पुरी पहुँच गया। काशी में पहुँचने पर सिकन्दर लोदी की आगवानी पहले कबीर के विरोधियों ने की। विरोधियों ने अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए सद्गुरु कबीर का माता को फोड़कर अपने तरफ मिला लिया था। विरोधियों ने नीमा से कहा कि चलो बादशाह, कबीर को डाँट-फटकार कर सुमार्ग पर ला देगा तब कबीर तुम्हारे कहने में सहज ही में आ जाएगा। ब्राह्मणों और मौलवियों की बात को नीमा ने मान ली। उनके समर्थन में कुछ शैव वणिक् भी थे। जो साथ में निन्दा के लिए उपस्थित थे।

मौलवियों ने सर्वप्रथम श्रीमती नीमा का परिचय बादशाह को दिया और कहा कि जहाँपनाह! यह वृद्धा उस कबीर की माता है। इसी से पूछा जाय कि वह कितना कुफ्र मचाए हुए है। सिकन्दर ने उक्त लोगों की बातों को ध्यानपूर्वक सुना और नीमा से सारी बातें पूछा। इसी प्रकार से एक-एक करके सभी लोगों से उसने पूछना आरम्भ कर दिया। सभी लोगों ने नीमा की बातों का समर्थन किया। श्रीमती नीमा ने भी ब्राह्मणों, वणिकों, और मौलवियों की बातों का समर्थन किया और जोर-जोर से सोर मचाती हुई बोली कि हे जहाँपनाह! हम लोग भूखे मर रहे हैं. वह दिन भर राम-राम रट लगाता है। घर का अन्न भी हिन्दू मुड़ियों को लुटा देता है। अतः वहाँ पर जितने लोग उपस्थित थे, सभी का कहना था कि कबीर सारे नगर के लोगों को दुःख देता है। वह एक नए मार्ग का अनुसरण करने को कहता है।

इस प्रकार उक्त लोगों की बातों को सुनकर बादशाह सिकन्दर लोदी ने अपने अनुचरों को तुरन्त आदेश दिया कि शीघ्राति शीघ्र कबीर को मेरे पास बुला लाओ। मैं उससे पूछूँगा कि क्या बात है? वह क्या करना चाहता है? राजा की आज्ञा पाते ही चार अनुचर तेजी से कबीर को बुलाने चल पड़े, जो एक घण्टे से भी कम समय में कबीर साहब के आश्रम पर पहुँच गए।

राजा सिकन्दर राजघाट के समीप किला पर रुका था, जहाँ से उसके अनुचर आए थे। अनुचरों ने आश्रम के अन्य अपरिचित संतों से पूछा कि कबीर कौन हैं? जो ब्राह्मण अनुचरों के साथ कबीर का परिचय देने के लिए गया था वह बोल उठा कि देखो वह सामने के चबूतरे पर कबीर बैठा है। इस प्रकार वहाँ पहुँचकर अनुचरों ने सद्गुरु कबीर से कहा कि चलिए आपको बादशाह सिकन्दर बुलाया है। दूतों की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा कौन सिकन्दर? वह मुझे किस लिए बुला रहा है? वह मुझे कैसे जानता है? किसने मेरा परिचय उससे कराया है, क्या बात है? दूतों ने कहा कि बाबा आपकी माता, नगर के ब्राह्मण, काजी और बनियों ने आपकी शिकायत सिकन्दर लोदी से की है। कहते हैं कि कबीर हिन्दुओं के देवता और तुर्कों के देवता तथा दोनों मतों की निन्दा करता है। हम लोग उसके कारण नगर को छोड़कर अन्यत्र चले जाने के लिए प्रस्तुत हैं। जब तक वह काशी में रहेगा, तब तक हम लोग सुख से नहीं रह सकते। इतना कहकर सभी लोग सिकन्दर के पैरों पर गिर पड़े। लोगों की इन बातों को सुनकर बादशाह आप पर बहुत क्रोधित हुए हैं और उन्होंने आपको बुलाया है। अतः आप चलिए। दूतों की बात सुनकर कबीर साहब मन ही मन सब बात समझ गए एवं कुछ देर तक मौन रहे। इसके बाद आश्रम के अन्य सन्तों से कबीर साहब ने कहा कि आप लोग मेरे विषय में चिन्ता नहीं करना। जो होना होगा वह होगा। यह सब रघुनाथ जी की कृपा है। उनकी मुझे और कुछ सेवा करनी पड़ेगी। ऐसी ही हरि की इच्छा है। इतना कहकर कबीर साहब दूतों के साथ चल दिए। कबीर के आने में विलंब देखकर बादशाह ने पुनः दो अनुचरों को भेजा और कहा कि जैसे भी हो कबीर को पकड़ लाओ। अब उसे मैं किसी भी प्रकार से नहीं छोड़ूँगा। विनय करने पर भी मैं उसको प्राणदण्ड दे दूँगा। इस प्रकार अत्यन्त आतुरता से पुनः जो दो दूतों को उसने भेजा, उनसे कबीर साहब की भेंट मार्ग में ही हो गई। उन सब दूतों ने कबीर साहब को ले जाकर सिकन्दर लोदी के सामने खड़ा कर दिए।

सद्गुरु कबीर साहब का शरीर इतना सुंदर था कि बादशाह सिकन्दर देखते ही मुग्ध हो गया। उनकी शोभा साँवले रंग की थी वह कामदेव को भी लज्जित कर रही थी। उनके समक्ष सूर्य की आभा भी धूमिल पड़ गई। इस प्रकार को शोभा देखकर बादशाह भयभीत हो गया। दण्ड देने के

अतिरिक्त कुछ सोचने लगा। कबीर साहब के मस्तक पर तिलक, गले में तुलसी की माला शोभायमान हो रही थी।[1] सिर पर मोरपंख युक्त पगड़ी सुशोभित हो रही थी। आँखें कमल के समान प्रफुल्लित थीं। अतः कबीर साहब के इस सौन्दर्य को देखकर बादशाह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। इस प्रकार कुछ करने में असमर्थ बादशाह ने अपने गुरु शेख तकी को बुलाकर बड़ी देर तक विचार-विमर्श करने के बाद एक काज़ी को हुक्म दिया कि कबीर से पूछो कि वह क्या करना चाहता है ? उक्त काज़ी ने कबीर साहब से कहा—ओ मस्तान ! बादशाह को सलाम करो। तुझे बख्श देगा। काजी शेख की बात सुनकर मीठे स्वर में सद्गुरु कबीर ने कहा कि देखो भाई, मैं सलाम केवल राम का करता हूँ। अन्य किसी को सलाम करना मुझे आता ही नहीं। कबीर साहब की बात सुनकर काजी शेख ने कहा कि ओ दीवाने ! जहाँपनाँह को तसलीम कर, अन्यथा तुम्हारा अहित होगा। काजी शेख की इस प्रकार की बात सुनकर उसको समझाते हुए कबीर ने कहा कि मैं दीवाना नहीं हूँ। दीवाने तुम हो, जो असंगत बातें कर रहे हो। बादशाहों का बादशाह खुदा, अल्लाहताला जहाँपनाहों का जहाँपनाह रहम करने वाला परवर दिगार मालिक मौला है। मैं केवल उसी को सलाम एवं तसलीम करता हूँ।

अन्य कृत्रिम जहाँपनाहों को मैं तसलीम नहीं करता। इस प्रकार सद्गुरु कबीर एवं काजी की बातों को सुनकर सिकन्दर ने पूछा कि क्या बात है ? कैसा जवाब-सवाल हो रहा है ? काजो ने कहा कि यह बहुत मगरूर है। लोगों को गुमराह करने वाला है, जो आपको न्याय समझ में आये, कबीर के साथ वैसा ही कीजिए। सिकन्दर ने कहा कि कबीर ! तुमने सन्मार्ग को छोड़कर कुमार्ग का अनुसरण किया है। इसलिए तुझे दोजख होगा। मैं उसमें तुम्हें जाते हुए खुद-ब-खुद देखूँगा। अगर तुम अपनी खैरियत चाहते हो, तो इस्लाम को तसलीम कर लो। तुझे मैं बख्श दूँगा, अन्यथा तुम्हारा कुशल नहीं है। इतना कहकर बादशाह लोदी चुप हो गया। कबीर साहब के जवाब की प्रतीक्षा में लग गया। सिकन्दर लोदी की उक्त बात सुनकर सद्गुरु कबीर ने उत्तर देना आरंभ कर दिया।

ओ अपने मन के राजा, संसार को भयभीत करने वाले, मैं कभी भी कुमार्ग का अनुसरण नहीं करता। मैं कभी झूठ नहीं बोलता, न तो मैं

---

१. देह सांवरी मनमथ लाजैं तापर माला-तिलक विराजै। —'अनन्त परचई'

किसी की चुगली ही करता हूँ और न किसी को धोखा ही देता हूँ। मैं तो सदैव राम-नाम का जप करता हूँ। इसके विपरीत तुम, तुम्हारे गुरु और तुम्हारे सभासद सब के सब कुमार्गगामी हैं। तुम दूसरों को सदैव भयभीत करके अन्याय से कोष भरते हो। निर्बलों का गला काटते हो। मंदिर तोड़वाकर मस्जिद बनवाते हो। दूसरों की स्त्रियों का अपहरण करते हो। इसलिए तुम सभी नरकगामी होंगे। मेरे देखने में तुम सभी मृतक के समान दिखलाई पड़ रहे हो। तुम्हारे काजी, ब्राह्मण एवं बनिये सब के सब अनभिज्ञ हैं, जो सत्य को असत्य और असत्य को सत्य मानते हैं। सदैव तुम्हारे पास चापलूसी करते रहते हैं। ये सभी लोग दोजखी हैं, क्योंकि दोजख के काम करते हैं। इसके विपरीत मैं तो श्रीरामजी की भक्ति करता हूँ। गुरु की कृपा से मुझे श्रीराम का ही भरोसा रहता है। इसलिए मैं किसी से भयभीत नहीं होता और न ही किसी को कुछ समझता ही हूँ। चाहे वह राजा हो या रंक। धनी-निर्धनी कोई भी हो, मुझे उससे कोई स्वार्थ नहीं है। सबकी रक्षा श्रीराम जी ही करते हैं, इनके आश्रित जो रहता है उसका कोई कुछ नहीं कर सकता, न तो उसको कोई मार सकता है और न कोई उसे जला ही सकता है। इसलिए मुझे तुमसे जरा सी भी डर नहीं है। जो चाहो सो करो, तुम्हारे सामने मैं उपस्थित हूँ। सद्गुरु की बातों को सुनकर सिकन्दर लोदी ने काजी शेख से पुनः कहा कि एक बार इसको और समझाओ। यह किसके बल पर इतना निर्भीक है। बादशाह की आज्ञा पाकर काजी शेखतकी ने कुरानेपाक को उठाया और कबीर साहब को समझाने लगा। इसके बाद ब्राह्मण लोग भी शेखतकी के पक्ष में साक्षी देने लगे। काजी ने कबीर से कहा कि माला और तिलक दूर कर दो, नहीं तो तुम्हें मैदान में खड़ा करके चारों तरफ से पत्थर की मार पड़ेगी। तुम मुसलमान होकर काफरपना न करो। मैं तुझे बार-बार समझाता हूँ।

काजी की उक्त बातों को सुनकर सद्गुरु कबीर स्वामी ने कहा कि तुम्हीं मेरी सभी बातों को सुनो और समझो एवं उस पर आचरण करो। यदि नहीं करते हो तो तुम्हीं लोग काफर हो, तुम्हीं लोग मरोगे और तुम्हीं लोगों को नरक होगा। हे काजी शेख! तुम्हीं बताओ यह तुम्हारा कुरान कैसा है? जो गाय के गले को कटवाता है और बकरी, मुर्गी मारने की आज्ञा देता है। क्या तुम्हारा खुदा हिंसा से ही प्रसन्न रहता

है ? क्या उसकी सृष्टि में मांस जैसी कोई दूसरी वस्तु बनाने की क्षमता नहीं थी या मांस का कोई भाग उस तुम्हारे स्वामी को भी उपलब्ध होता है ? क्या वह भी स्वादा-स्वाद का रस लेता है जिसने तुझे बलि प्रदान करने का आदेश दिया है ? इन प्रश्नों का उत्तर देकर तब मेरी अशुद्धियों पर ध्यान देना। सर्वप्रथम तुम अपनी त्रुटियों का सुधार करो, अन्यथा तुम हिंसा करने वाले आत्मघाती सिद्ध होगे, जिसके कारण प्रभु यमराज के अनुचर तुम्हारे शिष्य शाखाओं सहित तुम्हारे छाती की हड्डी को तोड़ डालेंगे एवं तुम्हारे मस्तक को विदीर्ण कर देंगे। तुम और तुम्हारे राजा-प्रजासहित, गुरु—शिष्य सभी लोग नरकगामी होंगे। वह प्रभु न्याय करता है। कभी भी तुम जैसे अन्यायप्रियों को क्षमा नहीं कर सकता। इसके विपरीत जो उस प्रभु का ध्यान पूजन करता है, वह मनुष्य सदा आनन्द मग्न होते हुए विघ्नों के समूह से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरण करता है।

इस प्रकार श्री कबीर स्वामी की बातों को सुनकर शेख तकी निरुत्तर हो गया और उस स्थान पर चित्रवत् खड़ा ही रह गया। कबीर को उक्त प्रकार से बातें करते हुए देखकर सिकन्दर लोदी का सिंहासन कम्पायमान होने लगा और वह घबड़ाकर क्रोध के वशीभूत होकर काँपने लगा। गुरु कबीर की बातों को सुनकर बादशाह सिकन्दर उसी प्रकार से प्रज्वलित हो गया जिस प्रकार से घृत डालने पर अग्नि। जैसे सोये हुए सिंह को जगा देने पर वह जगाने वाले पर ही टूट पड़ता है, उसी प्रकार से सद्गुरु कबीर स्वामी को डाँटते हुए सिकन्दर लोदी बोला। अरे मूर्ख ! तुझे संसार में किसी का भय नहीं हैं। मेरे भय से विश्व काँपता है। क्या तुम नहीं जानते हो कि मैंने जिस बाहुबल से पृथ्वी को रौंद डाला है वही बाहुबल अभी भी मेरे साथ हैं ? ये मेरे हाथ अभी ही तुझे नरकगामी बनाते हैं। घबड़ाओ नहीं; मैं देखता हूँ कि तुझे कौन बचाता है ?

सिकन्दर लोदी ने इतना कहकर अनुचरों को आज्ञा दी कि इस कबीर को पकड़कर इसके हाथ-पैर को साँकल से बाँधकर दरिआ गंगा में डुबो दो और ऊपर से निगाह रखना कि तैरकर भाग न जाय। आदेश पाते ही अनुचरों ने सद्गुरु कबीर को शीघ्रता से पकड़ लिया और एक बड़े साँकल से कबीर के पूरे अंग को बाँध दिया। तत्पश्चात् सिकन्दर लोदी काजी शेखतकी से बोला—आप जल्लादों के साथ

जाइए। शेखतकी ने कहा बहुत अच्छा। इसके बाद चतुर्दिक सैनिकों का घेरा पड़ गया। तोप आदि अस्त्र चारों तरफ लगा दिए गये। सैनिकों को सतर्क कर दिया गया कि कबीर किसी भी प्रकार से छुड़ाकर भागने न पावे।

इस प्रकार कबीर साहब सेनाओं, ब्राह्मणों, शाक्तों और वणिकों से घिर गए। बादशाह स्वयं इस कार्य को सतर्कता से निरीक्षण करने लगा और कहा कि इस गट्ठर को उठाओ और ले चलो।' राजाज्ञा पाते ही गट्ठर उठाया गया तथा सभी लोग गंगाजी की ओर लेकर चल दिए। एक नौका पर उस गट्ठर को ले जाकर रख दिया गया और नाविक को आदेश दिया गया कि इसे मध्य धार में ले चलो। आज्ञा पाते ही नाविक नौका को मध्य धार में ले गया जहाँ पर जल्लादों ने गट्ठर को उठाकर गंगा जी में छोड़ दिया। ज्यों ही वह गट्ठर गंगा जी में विसर्जित किया गया त्यों ही विरोधी लोग करतल ध्वनि करते हुए नाचने-गाने लगे। इस प्रकार उनके आनंद की सीमा न रह गई। उधर क्षणमात्र में ही सद्गुरु कबीर का बंधन टूट गया और एक मृगछाला पर बैठकर प्रसन्न मुख से राम-राम कहते हुए गंगा जी के तट पर दिखाई दिए। इस स्थिति में कबीर साहब को देखकर दर्शक विरोधी लोग शोकाकुल हो गए और जाकर सम्राट सिकन्दर से बोले कि जहाँपनाह। कबीर बड़ा चमत्कारी है, देखो गंगा जी में न डूबकर तट पर खड़ा है। यदि अब आप उसको छोड़ देंगे तो और जुल्म करेगा। इस प्रकार सिकन्दर लोदी देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसने पुनः अनुचरों को आज्ञा दी कि कबीर को पकड़ लो। पहली बार तो वह बच गया, परन्तु इस बार वह

---

१ क. गंग गुसाइल गहिर गंभीर, जंजीर बांधि करि खरे कबीर।
मन न डिगै तन काहे को डराई, चरण कमल चित्त रह्यो समाई।

गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर।
कहि कबीर कोऊ संग न साथ, जल थल राखन हैं रघुनाथ।
—"कबीर ग्रंथावली"

ख. काशी माँहि सिकन्दर तमक्यो, गले बाँधि जंजीर का।
तिनको आनि मिलो परमेश्वर, बंधन काटि कबीर का॥
—श्री वषना जी की वाणी (दादूदयाल मतावलम्बी)

नहीं बच पायेगा। पहले ही की भाँति राजाज्ञा पाते ही अनुचरों ने सद्गुरु कबीर स्वामी को पकड़ लिया और सिकन्दर के सामने कबीर साहब को ले जाकर खड़ा कर दिया। अपने सामने कबीर साहब को खड़ा देखकर बादशाह बोला कि तुम बड़े करामती हो, यह मैं जान गया। तुम जल से बच गए, परन्तु इस बार तुम नहीं बच सकोगे और उसने अनुचरों को आदेश दिया कि कबीर के हाथ-पैर पहले ही की तरह बाँध दो। जल्लादों ने वैसा ही किया।

इसके बाद फूस की एक झोपड़ी में बँधी हुई पोटरी को रखवा दिया और जल्लादों से कहा कि इसमें अग्नि लगा दो। जल्लादों ने उस झोपड़ी में अग्नि लगा दी। पर्णकुटी जलने लगी। कौतुक देखने वाले विरोधियों ने पुनः नाचना-गाना आरंभ कर दिया। अब इस बार कबीर नहीं बचेगा, इत्यादि बातें कह ही रहे थे कि पर्णकुटी जलकर भस्म हो गई। उसमें जो बड़े-बड़े मोटे-मोटे काष्ठ डाले गए थे, वे सब जलकर राख हो गए। परंतु कबीर साहब ज्यों के त्यों उसी अग्नि के मध्य में बैठे राम-राम कहते हुए दिखाई दिए। शरीर की कांति इतनी देदीप्यमान हो रही थी कि मानो स्वर्ण की बनी हुई प्रतिमा रखी गई हो। हाथ में सुमिरनी, मुख से राम श्री राम कहते हुए सिकन्दर लोदी के समक्ष कबीर साहब खड़े हो गए[1]। उसी समय आकाशवाणी हुई कि कबीर धन्य हो। कबीर धन्य हो ! जय हो ! जय हो ! आप जैसा इस संसार में कोई नहीं है। आप इस संसार की आत्मा हैं। आपका कभी नाश नहीं होगा। आप अजन्मा, अविनाशी, परातत्व हैं इत्यादि कहकर अज्ञात भूतों ने फूलों की वर्षा की। यह देखकर ब्राह्मण एवं तुर्क समाज घबड़ा गया तथा ब्राह्मण समाज कहने लगा कि जुलाहा बहुत नाटक-चाटक जानता है। इसलिए बचता जा रहा है। इस प्रकार अग्नि परीक्षा में सद्गुरु कबीर को उत्तीर्ण जानकर बहुत से विपक्षी वहाँ से भयभीत होकर भाग गए। भीड़ के अधिकांश लोग यह कहते हुए भागे चले जा रहे थे कि अब सिकन्दर लोदी सहित

---

१. आपे पावक आपे पवना। जारै खसम तो राखै कवना ॥
राम जपत तन जरकीन जाय। चरण-कमल चित रह्यो समाय ॥
काको जरै काहे हो हानी। नटवर खेलै सारंगपानी ॥
कहँ कबीर अखर दो भाख। होगा खसम तो लेगा राख ॥
—"गुरु ग्रंथ साहब"

कबीर सबको भस्म कर देगा। उसके चारो ओर एक चक्रधारी पुरुष घूम रहा है। वह कबीर की रक्षा कर रहा है। वह कालाग्नि के समान दिखाई दे रहा है। मानो ब्राह्मणों एवं काजियों के सहित सिकन्दर का नाश कर देगा, इत्यादि कहते हुये लोग उक्त स्थान से भागे चले जा रहे थे।

इधर अनेक अपशकुन होने लगे। सिकंदर के स्थान के ऊपर गिद्ध, बाज बैठने लगे। नगर के बाहर शृगाल जोर-जोर से चिल्लाने लगे। आँधी चलने लगी, आकाश लाल हो गया। रक्त की वर्षा होने लगी। दिन में ही उल्कापात होने लगा। दिशाएँ घूमने लगीं। पृथ्वी काँपने लगी, आकाश में जोरों का शब्द होने लगा, प्रलयकालीन दृश्य दृष्टिगोचर होने लगा। उपर्युक्त घटनाओं को देखकर सिकन्दर लोदी भयभीत हो गया। वह अब कबीर साहब को छोड़ देना चाहता था, परन्तु उसका गुरु शेखतकी बड़ा ही ईर्ष्यालु एवं दुष्ट प्रकृति का था। काजी और ब्राह्मण लोग अपने हठ पर दृढ़ रहे। उन सबों ने बादशाह से कहा कि राजन् ! कबीर बड़ा मायावी है, इससे आप न डरें, यह कुछ नहीं कर सकता। केवल यही-आकाश-पाताल बाँधते रहता है। इसे मारने के लिए पुनः कोई कठोर उपाय सोचिए। यह जल और अग्नि शामक विद्या जानता है इसलिए इस बार यह बच गया। अतः शीघ्र ही कोई तीसरा उपाय कीजिए। शेखतकी ने कहा कि कबीर को भूमिगत कर दो, तब बादशाह ने जल्लादों को हुक्म दिया कि पचास हाथ का एक गड्ढा खोदो और उसी में कबीर को फेंककर ऊपर से मिट्टी के द्वारा समतल कर दो। जल्लादों ने वैसा ही किया, परन्तु यह उपाय भी विफल रहा। क्षणमात्र में कबीर साहब देखते ही देखते सिकन्दर के समक्ष प्रकट हो गए। सिकन्दर एवं उपस्थित भीड़ यह देखकर आश्चर्य चकित हो गई। सिकन्दर पुनः छोड़ने का विचार करने लगा, परन्तु ब्राह्मण एवं शेखतकी ने एक बार मारने के लिए और उपाय करने की प्रार्थना की। इस बार यदि कबीर बच जाएगा तो छोड़ देना।

ऐसा निश्चय करके सिकन्दर ने अपने गुरु शेखतकी से पूछा कि गुरुदेव अब अन्तिम उपाय कौन सा है, जो किया जाय। जिससे कुफ्र का अन्त हो (जाय)? सिकन्दर की बात सुनकर शेखतकी ने कहा कि इस बार यह अवश्य मारा जाएगा, इसमें संदेह नहीं है। जो मतवाला हाथी बँधा हुआ है, उसको मँगाकर कबीर के हाथ-पैर को बाँधकर उस पर

हाथी को दौड़ा दिया जाय, जिससे कबीर का अन्त हो जाय। शेखतकी की बात को सुनकर बादशाह ने तुरन्त अनुचरों को आदेश दिया कि शीघ्र जाओ और सबसे अलग बँधा हुआ जो पागल हाथी है, उसको ले आओ। आदेश पाते ही अनुचरों ने जाकर उस अनुशासनहीन अकेले रहने वाले हाथी के महावत से कहा कि जल्द से इसे तैयार करो और इसे जहाँपनाह के समीप ले चलो। वह हाथी ऐसा था कि उसके द्वारा अनेक हत्याएँ कराई गई थीं। वह इसी कार्य में लाया जाता था। उसको खूनी एवं हत्यारा के नाम से पुकारा जाता था। वह इतना मत-वाला था कि अपनी ही छाया को दूसरा हाथी जानकर आक्रमण करता था। युद्ध के क्षेत्र में साँकल घुमाकर अनेक शत्रुओं को यमलोक भेज देता था। उसके वड़े-वड़े दाँत थे, जो सोने से मढ़े हुए थे। जिसके पैर में सदा कँटीले पैकड़ लगे रहते थे। उसी हाथी को सजाकर चार पीलवानों ने बादशाह के समीप लाकर खड़ा कर दिया। इसके बाद बादशाह ने जल्लादों से कहा कि कबीर को लाओ। सिकन्दर ने कहा इस पोटरी (कबीर) को हाथी के सामने रख दो। गट्ठर रख दिया गया। इसके बाद काजी शेखतकी ने महावत से कहा कि हाथी को अंकुश से मारकर कबीर के ऊपर दौड़ा दो। इतना सुनते ही महावत ने अपने बल्लम को हाथी के मस्तक पर मारा। बल्लम के प्रहार से हाथी मूर्छित हो गया, अतः वह आगे की ओर न बढ़कर विपरीत दिशा की ओर भाग चला। उसके भागने से पीछे खड़े हुए वहुत से लोग रौंदा गए। इस पर काजी ने कहा कि रे महावत ! क्या तुमने कबीर से रिश्वत ली है ? तुम हाथी को पीछे भगा रहे हो ? क्या तुम्हें अपने प्राणों का मोह नहीं है ? मैं आज तुम्हें भित्ति में खड़ा कराके काँटा ठुकवा दूँगा। महावत ने कहा कि हुजूर पीर साहब ! यह आगे नहीं जा रहा है। इस बात पर काजी ने पुनः महावत से कहा कि बल्लम मारो, लेकिन इस बार भी हाथी पीछे की ओर भागा और मल-मूत्र करने लगा एवं जैसे हाथी रोते हैं, उसी प्रकार से हाथी रोने लगा।

ऐसा देखकर सभी हैरत में पड़ गये। बादशाह ने स्वयं महावत से पूछा—क्या कारण है हाथी इस प्रकार से चिल्ला रहा है ? महावत ने कहा—हुजूर जहाँपनाँह ! कबीर के निकट एक ऐसा जानवर खड़ा है जिसके शरीर का ऊपरी भाग सिंह का है और नीचे मनुष्य का। हाथी उसी को देखकर आगे नहीं बढ़ रहा है। मैं क्या करूँ ? महावत के कहने पर

बादशाह सिकन्दर ने उधर देखा तो उसको भी विकराल स्वरूप वाला नरसिंह दिखाई दिया[1]। उधर महावत ने हाथी को कबीर साहब से दूर हटा लिया। इस चमत्कार ने सभी को भयभीत कर दिया। सिकन्दर की ओर सिंह इस प्रकार देख रहा था कि मानो सारे संसार को नष्ट कर

---

१. (क) सिंघ रूप केसो डरपावै, तातैं हस्ती निकटि न आवै ।।
पीलवान कूँ दरसण दीनूँ, मोरि गयंद परो तहाँ कीनूँ ।।
पीछै स्याह सिकंदर दीठा, कबीर आगैं सिंघ बईठा ।।
पीलवान हाथी करि न्यारा, भई करामात अबकी बारा ।।
साँचा राम कबीर तुम्हारा, अब कै राखौ जीव हमारा ।।
काजी मुल्ला मरम न जांनैं, सिरजनहार तुम्हारी मानैं ।।
—"कबीर परचई" (सेवादास की वाणी अंतर्गत अमुद्रित ग्रंथ) ।

(ख) बाँधि कै जंजीर गंगा नीर माँझ बोरि दिये,
जिए तीर ठाढ़े, कहैं, "जंत्र-मंत्र आवहीं" ।
लकरीन माँझ डारि अगिनि प्रजारि दई,
नई मानो भई देह, कंचन लजावहीं ।।
विफल उपाय भये, तऊ नहीं आय नये,
तब मतवारो हाथी, आनि कै झुकावहीं ।
आवत न ढिग औ चिघारि हारि भाजि जाय,
आप आगे सिंह रूप बैठे सोभा भगावही ।।
—भक्तमाल : प्रियादास जी की टीका, पृ० सं० ४८८ ।

(ग) अहो मेरे गोव्यंद तुम्हारा जोर, काजी बकिवा हस्ती तोर ।
बाँधि भुजा भलैं करि डार्‌यौ, हस्ती कोपी मुड़ मैं मार्‌यौ ।।
भाग्यौ हस्ती चीसा मारी, वामूरति कि मैं बलिहारी ।
महावत तोकूँ मारौं साटी, इसहि मराऊँ घालौ काँटी ।।
हस्ती न तोरैं धरैं धियाँन, बाके हिरदै बसै भगवान ।
कहा अपराध सन्त हौं कीन्हाँ, बाँधि पोट कुंजर कूँ दीन्हा ।।
कुंजर पोट बहु बंदन करै, अजहूँ न सूझै काजी अँधरै ।
तीन वेर पतियारा लीन्हा, मन कठोर अजहूँ न पतीना ।।
कहैं कबीर हमारे गोव्यंद, चौथे पद में जन का ज्यंद ।
—कबीर ग्रंथावली

देगा, इतने में ही सिकन्दर का ताज सिर से गिर पड़ा और बड़े-बड़े ओले बिना वर्षा के ही गिरने लगे। पृथ्वी जहाँ-तहाँ फटने लगी। बहुत से विपक्षीगण भूमि में समावर्त्त हो गए।

उक्त घटना को देखकर बादशाह सिकन्दर सिंहासन से कूद पड़ा और सद्गुरु कबीर की ओर तेजी से दौड़ा और जाकर अपने कर कमलों से गुरुदेव के शरीर से बन्धनों को खोल दिया एवं उनके चरणों पर गिरकर पाहिनाथ! पाहिनाथ! कहते हुए गिड़गिड़ाने लगा और कहा कि आपका राम सत्य है। वह आपके साथ है, जो सदैव आपकी रक्षा करता है। आप मेरे प्राणों को इस बार बचा दीजिए। काजी मुल्ला आपके मर्म को नहीं जान पाए, क्योंकि ईश्वर आपके वश में है। इसलिए हे साह जी! मैं आपका कुछ कर नहीं पाया। मैंने जो कुछ आपके साथ किया है उसमें मेरा दोष नहीं। मैंने ब्राह्मणों एवं काजियों के कहने पर आपके साथ उक्त वर्त्ताव किया है। इसलिए मेरे अपराध को क्षमा कर दीजिए। जो आप की आज्ञा हो मैं उसे करूँ। कहिए तो इन सभी को जीते ही जलवा दूँ या शूली पर चढ़वा दूँ। कहिए तो सब राज-धन आपके श्री चरणों पर चढ़ा दूँ। इस प्रकार सिकन्दर लोदी की दीनता से परिपूर्ण बातों को सुनकर सद्गुरु कबीर साहब ने कहा कि डरो नहीं तुम्हारी रक्षा श्री हरि करेंगे। उन्हीं के शरण में जाओ। तुम चेत गए नहीं, तो इस बार श्री हरि तुम्हारा अवश्य सर्वनाश कर देते। देखो, संत के साथ जो दुर्व्यवहार करता है उसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। साहब के इस वक्तव्य को सुनकर बादशाह का हृदय भय से काँपने लगा और बोला हे प्रभो! मुझे बचा लीजिए। दिशाएँ घूम रही हैं। मेरा शरीर जल रहा है। मन अशान्त हो गया है। मैं अपना सारा तन-मन-धन आप के चरणों में अर्पण कर देता हूँ। अब मैं बादशाही त्याग कर आपका शिष्य बन कर फकीरी करूँगा, अब आप मुझे अपने से पृथक् न करें। इस प्रकार कबीर साहब ने देखा कि सिकन्दर बहुत डर गया है। सिकन्दर की उक्त बातों को सुनकर कबीर साहब ने कहा कि तुम डरो नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। जो तुमने मेरे प्रति किया, उससे मुझे तुमसे प्रतिशोध नहीं करना है। मैं सब में श्रीराम को ही देखता हूँ। तुम भयभीत न हो। जो भगवान् के आश्रित रहते हैं, उनका देखभाल वे सदा करते हैं। जो भगवान् के भक्तों को दुःख देते हैं, वे उसका अवश्य ही सर्वनाश कर देते हैं—

जहाँ जहाँ कष्ट तहँ तू हरि तूठा। काजी बामन हो गए झूठा ॥
अपने घर अइवो कबीरू। गुरु प्रसादे अमर शरीरू ॥
—"अनंत परिचई"

सद्गुरु कबीर ने कहा कि हे बादशाह ! तुम जाओ, न्याय से शासन करो। तुम्हें फकीर बनने की कोई आवश्यकता नहीं है। राज्य के कार्य को छोड़ने से कोई फकीर नहीं होता। फकीर तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर के त्याग से होता है, अन्यथा सब व्यर्थ है। तुम जाओ धर्मानुसार आचरण करो। किसी अन्य धर्म को निन्दा मत करना, सबका समादर करो। इस प्रकार सद्गुरु कबीर ने बादशाह को उपदेश देकर कहा कि जाओ। अब मैं अपने घर जाता हूँ।

पंचमालोक

कबीर साहब की अमृतमय वाणी को सुनकर सिकन्दर ने हाथ जोड़कर कबीर स्वामी को प्रणाम किया। इसके बाद अपने अभीष्ट स्थान की ओर चला गया।

सिकन्दर एवं विपक्षियों की पराजय

वापस जाते समय बादशाह सिकन्दर ने कहा कि हे प्रभो! मेरी एक प्रार्थना यह है कि एक बार मेरे निवास स्थान पर आप आइए। इस बात पर कबीर साहब ने कहा कि अच्छा, चलो समय मिलने पर आऊँगा। एक बात मेरी यह ध्यान में रखना कि कभी किसी के साथ अन्याय मत करना। इतना कहकर कबीर साहब अपने आश्रम पर चले आए। इस प्रकार कबीर साहब के विजयी होने पर सभी संत एवं वैष्णव समुदाय को आनन्द की सीमा न रही। सभी लोग नाचने-गाने लगे एवं कबीर साहब के गले से गला मिलाया। इसके बाद कबीर साहब ने हँसते हुए कहा—

"चरण-शरण दे रघुबीरू"।

बादशाह जब कसनी दीनी। मेरे मन शंका नहिं कीनी॥
जिनके भक्ति के बल होई। ताकू मार सके नहिं कोई॥
कोटि पाप हरि भक्ति नसावें। भक्तन पीछे हरि चलि आवें॥

—कबीर परिचई

इस प्रकार की बातें संतों में होने लगी और अमन चैन से सब रहने लगे। उधर विपक्षी लोगों ने देखा कि कबीर साहब विजयी हो गए, तो भयभीत होकर यत्र-तत्र भाग गए, क्योंकि बादशाह सिकन्दर ने जाते समय डिमडिमी पिटवा दिया था कि यदि कोई कबीर साहब साहब को परेशान करेगा, तो उसको बिना साक्षी के प्राणदण्ड दे दिया जाएगा। बादशाह ने कहा कि काजी, ब्राह्मण सब झूठे हैं, कबीर साहब सच्चे महात्मा एवं फकीर हैं। उनमें कोई विकार नहीं है। अस्तु, जो भी हो अब आप लोग शान्त रहिएगा, अन्यथा कुशल नहीं होगा और देशाटन करते हुए बादशाह पुनः दिल्ली चला गया। परन्तु उसका पीर शेख तकी बादशाह के साथ नहीं गया। इसका कारण यह था कि

अपनी असफलता पर शेखतकी को बादशाह बहुत फटकारते हुए कहा था कि आप जैसे को राजगुरु नहीं होना चाहिए, क्योंकि आप और ये ब्राह्मणगण कोरे स्वार्थी हैं। अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर ही, तुम लोगों ने मेरे राज-पाट, धन-जन, सब नष्ट करने के लिए ही कबीर साहब की शिकायत मेरे यहाँ की, तुम लोगों के ही कारण मुझे यहाँ आना पड़ा। अस्तु, कबीर साहब बड़े दयालु हैं। दयालु प्रवृत्ति होने के कारण ही मेरे समस्त अपराधों को उन्होंने क्षमा कर दिया।

इस प्रकार की बातें बादशाह सिकन्दर ने कबीर साहब के चले जाने पर कही थीं, जिसके कारण शेखतकी लज्जित हुआ था। वह बादशाह के साथ नहीं गया। काशी में ही कबीर साहब के यहाँ आकर रहने लगा। उधर विपक्षीगण पूर्णरूपेण शान्त हो गए। अब किसी में सिर उठाने का साहस नहीं रह गया था, क्योंकि सिकन्दर लोदी जब पराजित हो गया तो और लोगों की क्या बात रह गई। अतः चारों ओर सद्गुरु कबीर की धाक जम गई। संपूर्ण भारत एवं आस-पास के देशों में शोर हो गया कि कबीर साहब के आगे सिकन्दर लोदी नत मस्तक हो गया। सभी लोग आपस में यह कहने लगे कि कबीर मनुष्य नहीं हैं। वह अवतारी पुरुष हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने जैसे रावण को परास्त किया था उसी प्रकार अपने तेज से महात्मा कबीर ने सिकन्दर बादशाह को पराजित कर दिया, इत्यादि बातें सारे संसार में चर्चित होने लगीं। इसी कारण तत्कालीन धर्म प्रचारकों ने कबीर साहब से[1] प्रभावित होकर उन्हें ईश्वर की संज्ञा तक दे डाली।

---

१. जाकै ईद बकरीद नित गउरे बध करै मानिये सेष सहीद पीरां।
बापि वैसी करी पूत ऐसी धरी नाव नवखंड परसिध कबीरा॥
जो कलिमांझ कबीर न होते।
तौले वेद अरु कलिजुग मिलकरि भगति रसातलि देते॥
अगम निगम की कहि कहि पाँउ फला भाभोत लगाया।
राजस तामस स्वावक कथि कथि इनही जगत भुलाया॥
सागुन कथि कथि मिला पनाया काया रोग बढ़ाया।
निरगुन नीक पियौ नहीं गुरुमुप तातै हाटै जीव निराया॥
बहता स्रोता दोऊ भूले दुनियाँ सबै भुलाई।
कलि विद्धकी छाया बैंठा क्यूं न कलपना जाई॥ →

सर्वप्रथम श्री पीपा जी, रविदास जी, गुरु नानक एवं दादू दयाल आदि संतों ने कबीर साहब की महिमा का गान किये। लेखकों ने अपने लेखों

→ अंध लुटकिया गही जु अंध परत कूप थित थोरै।
अबरन बरन दोऊ से अंजन आपि सबन की कोरै।।
लसे पतित कहा कहि रहेते ये कौन प्रतीत मन धरते।
नांनां वानी दोव सुनि स्रवन बहौ मारग अणसरते।।
त्रिगुण रहत भगति भगवंत कीतिरि विरला कोई पावै।
दया होइ जोई कृपानिधान की तो नाम कबीरा गावै।।
हरि हरि भगति भगत कवलीन त्रिविधि रहत थित मोहै।
पाषंड रूप भेष सब कंकर ग्यान सुपले सोहै।।
भगति प्रताप राण्य वेकारन निज जन-जन आप पठाया।
नाम कबीर साम साम पर करिया तहाँ पीपै कछु पाया।।

—पीपा वचन

जाकै ईद बकरीदि कुल गउरे वधि करहि,
मानियहि सेद सहीद पीरा।।
बापि वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहुरे,
लोक परसिधा कबीरा।।

—रैदास वाणी

"कबीर जुलाहानजादकि अज मोवह्हिदान मशहूर हिन्द अस्त।
मर्दुम बारामानन गुफ़तन्द दरीशहर जुलाहान जादेस्त।।"

—मिर्जा मोहसिन फानी : 'दबिस्ताने मजाहिब'

नाम छीवा कबीरु जुलाहा पूरे गुरते गति पाई। (पृ० ५६)
हरि के नाम कबीर उजागर जनम जनम के काटे कागर। (पृ० २६४)
नामदेव कबीर त्रिलोचन (विलोभनु) सधन्न रैनु तरै।
कहि रबिदास सुनहु से सुनहु हरि जी उते सभै सरै।।

—गुरुग्रथ साहब, पृ० ५९८।

कबीर दादू घने पहिर बक्तर बने। नामदेव सारिखे बहुत कूदे।।
सैन सदना वली भक्त पीपा बड़ो। राम की ओर कूं चले सूधे।।

—चरणदास

ऐसा सतगुरु हम मिला सुरत सिंधु के तीर।
सब संतन सिरताज है सतगुरु अदल कबीर।।

—गरीबदास →

द्वारा सद्गुरु कबीर को रहस्यमय वना दिया। अस्तु, सिकन्दर के पराजित हो जाने पर कवोर साहव के अनुगामियों की ढेर लग गई। इन अनुगामियों में बड़े-बड़े पण्डित एवं बुद्धिजीवी लोग भो समाविष्ट हो गए। सर्वश्री श्रुतिगोपालदास जी साहव श्री पद्मनाभदास जी, श्री ज्ञानी जी, पंडित श्री हरदयाल जी, श्री तत्वाजीवा दोनों भाई श्री भगवानदास जी साहब और श्री जागूदास जी साहव आदि पूर्व के धुरंधर पण्डित थे, जो सभी सद्गुरु कवीर के शिष्य हो गए। जन साधारण का तो कुछ कहना ही नहीं था, झुण्ड के झुण्ड कबीर के अनुयायी हो गये।

सद्गुरु का संत मण्डली के साथ देशाटन एवं झूसी में कमाल का प्रसंग

अपमानित एवं त्यक्त शेखतकी, जो बादशाह का गुरु था, वह आकर कवीर साहव से मिला और उनसे अपने किए हुए की क्षमा याचना करने लगा। शेख की विनय-भावना को देखकर गुरुवर कवीर ने कहा– आप के सभी अपराध को ईश्वर क्षमा कर देगा। आप मेरी ओर से निर्भय रहिए। आप गुण सम्पन्न सज्जन मेरे स्वभाव को निर्मल वना

→ हमारा सतगुरु बिरलै जानै।
सुई के नारे सुमेर चलावै सो यह रूप बखानै॥
कीधौ जानै दास कबीरा कि हरिनाकस पूता।
की तौ नामदेव और नानक की गोरख अवुधता॥
—मलूकदास

जस कबीर जस गोरख जस नानक जस व्यास।
तास कलीमल जग हरन को प्रगटे मलूकदास॥
—दुखहरनदास, 'कूपावती'—एक अप्रकाशित ग्रंथ से।

ध्रुव प्रहलाद विभीषण धीरा। पांडव पांचव धरे शरीरा॥
हनुमान, अंगद और आनी। यही विधि प्रीति करै सब जानी॥
रामानन्द कबीर गुसाईं। नानक नाम जान एक साईं॥
—शिवनारायण साहब

एक से एक समान भए, भगत यही संसार।
गुरु अन्यास सुनायहू, जो मोहि भक्ति पियास॥
—गुरुन्यास–एक अप्रकाशित रचना से।

रहे हैं। आप धन्य है। आप ही के कारण इस संसार में मेरी ख्याति बढ़ रही हैं। आइए आपका स्वागत है। श्री शेखतकी बहुत समय तक गुरुदेव के सत्संग में निवास करने के बाद मन ही मन दिल्ली को स्मरण करने लगे। कबीर साहब उनके मन की बात जान गए कि अब शेख साहब यहाँ से जाना चाहते हैं। एक दिन कबीर साहब ने कहा कि शेख जी चलिए कुछ दिन देशाटन किया जाय, क्योंकि मेरे गुरु जी की आज्ञा है कि मेरे चलाये हुए अभियान को जीवन पर्यन्त चालू रखना और अज्ञ जीवों को सुमार्ग पर लाते रहना। यह गुरु आज्ञा मेरे लिए मान्य है और शिष्य का कर्त्तव्य होता है कि गुरु की आज्ञाओं का पालन करें। इसलिए मुझे सद्गुरु के संदेश को संसार को सुनाना है, ऐसा कह कर श्री श्रुतिगोपाल साहब को एवं श्री पद्मनाभदास जी आदि शिष्यों को उन्होंने आदेश दिया कि सन्त मण्डली को बुला लाओ, मुझे कुछ समय के लिए देशाटन करना है। अतः श्री श्रुतिगोपाल जी साहब ने गुरु जी की आज्ञा को शिरोधार्य करके संतों को आदेश दिया और संत मण्डली धर्म प्रचार के लिए निकल पड़ी। श्री काशी जी से यात्रा आरंभ हुई।

सर्वप्रथम संत मण्डली भ्रमण करती हुई जौनपुर[1] पहुँची जहाँ पर मोहम्मदियों के धर्म प्रचार का एक बहुत बड़ा अड्डा था तथा जो अपनी मान्यताओं के लिए सुप्रसिद्ध थे। संत मण्डली वहाँ के मोहम्मदीय धार्मिक नेताओं से मिली। पहले तो इस्लामियों ने कुछ धार्मिक विवाद खड़ा किये, परन्तु वे विवाद सूर्य के सामने दीपक की भाँति निरर्थक सिद्ध हुए। सभी लोगों ने कबीर साहब से हार मान लिए। अन्त में कबीर साहब ने उन सबों को बहुत समझाया और कुकर्मों से दूर रहने के लिए कहा।

इसी प्रकार से दुःखी मानव जाति को सत्य के मार्ग का दर्शन कराते हुए सद्गुरु झूसी पहुँचे। जहाँ पर इक्कीस गुरुओं की समाधि थी।[1] उस समाधि के सामने इस्लाम के बड़े-बड़े नेता एवं शासकगण आकर माथा टेकते थे और उक्त समाधियों के दर्शन से महापुण्य मानते थे। वहाँ पर

---

१. ऊजं सुनी जौनपुर थाना। झूसी सुनी पिरन को नामा।
एकइस पीर लिखे तेहि ठामा। खतमा पढ़ै पैगम्बर नामा।।
सुनत बोल मोहि रहा नहिं जाई। देखि मुकरबा रहा भुलाई।।
—कबीर बीजक "रमैनी" पद ४८।

कबीर साहब पहुँचकर बोले—कहिये महाशय गण ! आप लोग तो मूर्तिपूजक नहीं हैं। यह क्या कर रहे हैं ?

क्या ये समाधियाँ कभी कुछ बोलती हैं ? यदि बोलती हैं तो आज भी इन्हें बोलाइये। यदि नहीं बोलाते हैं, तो आपकी सभी मान्यताएँ पूर्णरूपेण भ्रांतियुक्त हैं। क्योंकि जैसे हिन्दू मूर्तिवादी हैं वैसे आप लोग भी कब्रवादी हैं। दोनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है, केवल नाममात्र अलग है। इसलिए दोनों धर्म भ्रामक दशा में हैं। अस्तु, इस प्रकार से कई दिनों तक सत्संग वार्त्ता चलती रही। आस-पास के लोग भी संकीर्त्तन में तथा सत्संग में समाविष्ट होते थे। सत्संगियों ने कबीर साहब से आग्रह करके उन्हें महीनों रोके रखा।

एकदिन गुरुदेव कबीर, मुहम्मद शेखतकी साहब तथा अन्य शिष्यगणों के साथ गंगा तट पर विचरण कर रहे थे। इसी संदर्भ में पश्चिम दिशा की ओर से गंगा जी में एक मृतक बहते हुए आ रहा था, जिसे लोग देख रहे थे। मृतक को देखकर कबीर साहब ने शेखतकी की परीक्षा लेने के ध्येय से कहा—शेख साहब। जो वह शव बहते हुए आ रहा है, मृतक है या जीवित। इस बात पर शेख साहब मौन रहे। इसका कारण यह था कि शेख साहब केवल करामाती एवं धार्मिक नेता थे। उनके पास दैवी शक्ति का अभाव था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि सद्गुरु कबीर पर उन्होंने अपनी करामात बावन बार प्रयोग किये, लेकिन एक बार भी गुरुदेव कबीर को वश में नहीं कर सके। शेख साहब कोरे तांत्रिक थे, इसी कारण ब्रह्मज्ञानियों को अपने वशीभूत करने में असफल सिद्ध हुए। सभी लोगों को यह बात ध्यान रखना चाहिए कि सिकन्दर ने केवल तीन ही बार कबीर साहब की परीक्षा ली थी। शेखतकी की परीक्षा तंत्र की थी, जो पंथ में बावन "कसनी" के नाम से विख्यात है, जिसे लोग भूलकर कह देते हैं कि सिकन्दर लोदी ने कबीर साहब की बावन बार परीक्षा ली थी, यह कहना केवल भ्रममात्र है। सद्गुरु कबीर एवं शेखतकी में केवल तंत्र-मंत्र की लड़ाई हुई थी, जिसमें शेखतकी पराजित हो गया। मुख्य लड़ाई दिल्ली एवं काशी से हुई थी। शेखतकी सद्गुरु को ख्याति सुनकर जल उठा था। इसलिए दिल्ली से ही उसने अपनी माया का बावन बार प्रयोग किया था। इधर कबीर साहब काशी में ही रह कर शेख की सारी माया को नष्ट कर दिए। जब शेख कबीर साहब पर अपनी माया का प्रयोग करने

उपलब्ध हुआ। जो भी कहता था वह यही कहता था कि राम रहीम एक हैं। वह पानी पत्थर से परे है। वही सबकी आत्मा है। प्रतिदिन उसी का चिन्तन मनन करना चाहिए, क्योंकि आत्मा से भिन्न कोई दूसरा तत्व नहीं हैं। आत्मा ही अनेक रूपों में उद्‌भासित होता है। उसी का नाम राम, रहीम, करीम, केशव हैं। इस प्रकार की व्याख्या सद्‌गुरु की दिल्ली में चल रही थी जिसे सुनने के लिए जनसाधारण के अतिरिक्त बादशाह सिकन्दर भी आता था। साहब के उपदेशों से बादशाह अपने पहले के विचारों को त्याग कर विशेष समय आत्म-चिन्तन में ही लगाता था। शासन सत्ता मंत्रियों को सौपकर संतवत् जीवन व्यतीत करने लगा। सद्‌गुरु कबीर का यह भी उपदेश था कि परिश्रम से जीवन व्यतीत करो। चोरी, पर स्त्री गमन, अपवाद एवं पराये की पिशुनता आदि न करो। किसी को सताना नहीं चाहिए। मद्य, मांस का सेवन न करो। परदोष-दर्शन से दूर रहो। अधिक धन हो तो दीन दुखियों में बाँट दो। श्रेष्ठ बुद्धि हो तो परोपकार करो। शरीर से निरोग हो, तो भगवान् का भजन करो। किसी के साथ विरोध की भावना मत रखो। प्रत्येक प्राणियों से आत्मवत् भाव रखो। संसार में जल कमलवत् रहना चाहिए। दीन-दुःखियों, माता-पिता एवं गुरुजनों की सेवा करना, उनका समादर करना, उनकी आज्ञा का पालन करना मानव मात्र के लिए उत्तम कार्य हैं। किसी को कष्ट न देना, प्रातः सायं संध्योपासना करना, आए हुए अतिथियों को खिलाकर तब स्वयं खाना, किसी से घृणा नहीं करना और मौन धारण करना, बिना बुलाए नहीं बोलना, जाति पाँति का अभिमान नहीं करना, किसी भी धर्म को ऊँच-नीच नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सभी धर्म श्रेष्ठ होते हैं। सभी का लक्ष्य एक है। सभी धर्मों में मुक्ति होती है। जगत के सभी प्राणी भगवान ही के अंश हैं। मनुष्य की एक ही जाति है, वह है मानव जाति। इसलिए मानववादी बनो। सत्संग का त्याग कभी नहीं करना। गुरु के बताये हुए मार्ग से साधना करना, ठग-वंचकों से सावधान रहना, नहीं तो कर्म-धर्म सब नष्ट हो जायेगा। प्रतिशोध की भावना नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि वैर से वैर का अन्त नहीं होता है। वैर का अन्त केवल प्रेम से ही होता है। इसलिए मनुष्यों की सेवा करो, यही तुम्हारा धर्म है। प्राणिमात्र के शुभचिन्तक बनो, अंधविश्वास का त्याग करो। नित्य नये मार्ग का अन्वेषण करो। अपने मन को स्वच्छ रखो।

अतः कर्म की पवित्रता के लिए शुद्धाचरण का अनुशरण करो। किसी को सुखी देखकर ईर्ष्या मत करो तथा दुःखी मनुष्यों को देखकर हँसो नहीं। किसी से अधिक स्नेह नहीं करना। किसी को दुर्वचन नहीं कहना। इन्द्रियों को समेटकर गो-स्वामी बनो। अश्लील शब्दों का प्रयोग न करो। आलस्य, प्रमाद, विमोह, मत्सर आदि दुर्गुणों का परित्याग करो। मन को कुत्सित विषयों से दूर रखो। सबसे अधिक राम नाम का स्मरण करो। परलोक का साधन करो। यहाँ तुम्हें रहना नहीं है। केवल भोग-विलास में ही जीवन को न व्यतीत करो। इस प्रकार कबीर साहब ने सभी को उपदेश देकर और ध्यान विधि बतलाकर अपने स्वरूप में तल्लीन हो गए। इसी प्रकार से कथा-कीर्तन कहते हुए दिल्ली में कई सप्ताह बीत गए। तत्कालीन दिल्ली कबीरमय हो गई थी। सभी लोग कबीर साहब के अमृतमय उपदेशों से तृप्त हो गए एवं जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो गए। सभी लोग यह कहा करते थे कि सद्गुरु कबीर धन्य हैं! सद्गुरु कबीर धन्य हैं! इत्यादि प्रकार से प्रशंसा होती रही।

इधर कबीर स्वामी ने संत मण्डली से कहा कि दिल्ली में बहुत दिन व्यतीत हो गए, अब यहाँ से आगे के लिए प्रस्थान करना चाहिए। कबीर स्वामी की इस बात को सुनकर संत-मण्डली ने कहा कि जैसी आप की आज्ञा होगी वैसा ही हम-लोग करेंगे। कबीर साहब ने कहा कि बादशाह को सूचना भेज दो कि अब यहाँ से संत-मण्डली आगे के लिए प्रस्थान कर रही है। शेखतकी ने अपने मुरीदों से सूचना भेज दी। सूचना पाते ही बादशाह आया और कबीर साहब के सामने माथा टेककर बोला—साह जी! अभी मेरी कुटिया में आपने पदार्पण नहीं किया। अतः मेरी कुटिया में आप चलकर उसे भी पवित्र करने की कृपा करें। बादशाह की इस विनयपूर्ण बात को सुनकर कबीर साहब ने कहा कि मैं राजद्वार पर नहीं जाता हूँ। इसलिए मुझे बाध्य न करो। सिकन्दर ने कहा कि प्रभो! मुझे इतना निकृष्ट न समझिए। अतः बादशाह के बारम्बार विनय करने पर कबीर साहब ने कहा अच्छा चलो, यहाँ से विदा लेकर संत मंडली के साथ आऊँगा। सद्गुरु के आश्वासन को पाकर बादशाह चला गया और अपनी कुटिया पर पहुँचकर उसे साफ एवं सुरम्य बनाकर कबीर साहब के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

इधर गुरुदेव कबीर ने शेखतकी से कहा कि महात्मन् ! अब मुझे आज्ञा दो यहाँ से अन्य स्थानों पर भी चलना है। साहब कबीर की बात सुनकर शेख साहब बोले साहजी ! अभी तो आप मेरे यहाँ एक ही रात रहे, यह तो धर्मशाला है जहाँ पर आपने महोनों निवास किया। कबीर साहब ने कहा कि नहीं यह सब आप ही का है। यह धर्मशाला भी आप ही ने तो बनवाया है। इस प्रकार की बात-चीत हो ही रही थी कि शेख साहब की पत्नी भी आ गई और कबीर साहब के चरणों पर मस्तक रखकर रोने लगी। साहब ने पूछा यह कौन है ? शेखतकी ने कहा कि यह आप की सेविका है। कबीर साहब शेख के इस वक्तव्य को समझ गए कि यह इनकी धर्मपत्नी है। कबीर साहब ने कहा कि देवी उठो। इतना आर्त्तनाद क्यों कर रही हो ? उसने कहा प्रभो ! मेरी एक ही पुत्री है, जो मरणासन्न है। उसको वैद्य हकीम ने जवाब दे दिया है कि वह अब बचेगी नहीं, इसलिए अब हम लोग निःसन्तान हो रहे हैं। आप से मैं भीख माँगती हूँ कि मेरी गोद खाली न हो। कबीर साहब ने कहा कि शान्त रहो वह मरी नहीं है और न मरेगी ही। उठो जाओ एक पात्र लाओ। वह गई और पात्र को लेकर आई, जिसमें कबीर साहब ने अपने कमंडल से जल दिया और कहा कि श्री राम कहकर उसके मुख में ले जाकर के डाल दो।

अस्तु, जैसा सद्‌गुरु ने कहा वैसा ही किया गया। इसके बाद लड़की जीवित हो गई और जो उसके कब्र के लिए गड्ढा खोदा गया था उसे समतल कर दिया गया। बालिका स्वस्थ होने पर आयी और कबीर साहब के चरणों पर गिर पड़ी और बोली—हे प्रभो ! मुझे आप ही ने जिलाया है और मुझे अपने शरण में ले लो। साहब ने कहा ठीक है चलो तुम भी राम नाम जपना, परन्तु अभी कुछ समय तक रहकर माता-पिता की सेवा करो। जब मैं घूमकर काशी आऊँगा तो तुम चली आना। यही सम्मति उसके माता की भी हो गई। उस लड़की का नाम उस दिन से कमाली पड़ा, क्योंकि कमंडल से जल का सिंचन हुआ था। इसलिए उक्त नाम उपयुक्त ही था। उपस्थित भीड़, जो कबीर साहब के जाने का समाचार सुनकर एकत्रित हुई थी, इस चमत्कार को देखकर आश्चर्यचकित हो गयी। लोगों ने कहा महाराज कबीर ने कमाल कर दिए। आप धन्य हैं ! धन्य हैं ! इत्यादि उद्‌घोष होने लगा। अतः लोगों ने आपस में विचार-विमर्श किया कि चलो हम लोग भी अपना-अपना

दुःख उनसे सुनावें। कबीर साहव दयालु हैं, सुन लेंगे। नेत्र हीन, कर्णहीन, कुष्ठ रोग से पीड़ित, नंगे भिखारी बहुत से लोग आए और सद्गुरु कबीर से अपना-अपना दुःख सुनाकर रोने लगे। सद्गुरु कबीर ने कहा कि आप सब रोवो नहीं, सभी लोग ध्यान से एक बार श्री राम कहो। तुम सभी कष्ट हीन हो जाओगे। साहब के कहने पर सबों ने वैसा ही किया। एक बार श्रीराम कहने से ही सबों का दुःख दारिद्र दूर हो गया। सभी लोग आनंद के सागर में मग्न हो गए। इस चमत्कार को देखकर लोग बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि कबीर साक्षात् परमेश्वर के ही अवतार हैं, जो मनुष्य के रूप में हम लोगों को दर्शन देने आए हैं। विना ईश्वर के इतनी शक्ति मनुष्य में नहीं हो सकती कि हजारों रोगियों को क्षण मात्र में निरोग कर दे। इस प्रकार कबीर साहब की प्रशंसा चारो तरफ होने लगी। लोग जय कबीर ! कबीर ! कहकर नाचने गाने लगे। उक्त चमत्कार से दिल्ली के नागरिक और आस-पास के लोग बहुत प्रभावित हुए और बादशाह सिकन्दर भी उक्त चमत्कार को सुनकर दौड़ते हुए आया और हाथ जोड़कर कबीर साहब से प्रार्थना करने लगा कि हे परवरदिगार ! यह कार्य आपही के योग्य था, जो इस प्रकार आपने दुःखियों को त्राण दिया है।

अतः आप अपने वचन को पूरा करने के लिए मेरे घर को चलकर पवित्र कर दें। सद्गुरु कबीर ने कहा कि राजन् मैंने राज द्वार पर नहीं जाने की प्रतिज्ञा की है। इसलिए मेरी प्रतिज्ञा भंग न करो। मैंने केवल दीन-दुखियों के यहाँ जाने का व्रत लिया है इसलिए मैं गरीबों के यहाँ जाकर रहता हूँ और उन्हीं के अन्न को खाता हूँ। तुम्हारा अपमान न हो, इसलिए मैंने तुमसे चलने के लिए कहा था। यह दिल्ली तो तुम्हारी ही है। इस समय तुम भारत के शासक हो। इसलिए मैं जहाँ जाता हूँ वह तुम्हारा ही घर है। बादशाह ने कहा प्रभो ! आपके लिए मैंने बहुत से सामानों को संकल्प किया है। वह क्या होगा ? कबीर साहब ने कहा कि उस सामान को दीन दुःखियों में बाँट दो। उतना कहकर कबीर स्वामी ने दिल्ली से प्रस्थान कर दिया। चलते समय दिल्ली के समस्त नागरिक कबीर साहब को पहुँचाने के लिए नगर के बाहर तक गए एवं अपनी सीमा के उस पार तक पहुँचाकर लौट आए।

उधर सद्गुरु कबीर गाँव-गाँव के प्रत्येक घर में जाकर उपदेश देते, लोगों के कष्टों को दूर करते हुए पंजाब की सीमा में प्रवेश किए। साहब

को पंजाब के लोग अपनी सीमा में आया जानकर ईश्वर एवं गुरु के समान स्वागत किए। प्रत्येक गाँव के लोगों एवं प्रत्येक जनपद के निवासियोंने अपने-अपने स्थानों पर ले जाकर प्रेमपूर्वक उनकी सेवा की। बहुत से संत महात्माओं से सत्संग की बातें होती रहीं। अन्त में श्री नानक साहब भी आए।

सद्गुरु का पंजाब परिभ्रमण

सद्गुरु कबीर का आगमन सुनकर श्री नानक देव ने उनका स्वागत किया और इसके बाद अपनी कुटिया में ले गये और कबीर साहब का बहुत दिनों तक आदर-सत्कार किया। इसके बाद कबीर साहब से श्री गुरुनानक देव ने सत्संग वार्ता की। यह भी सुना जाता है कि गुरु नानक देव को कुछ युक्ति भी सद्गुरु कबीर साहब ने बतलाई थी। जिसके विषय में एक साथ कही जाती है, जो इस प्रकार है—

"तिल घोटत तारो लगी दिल दरिया के तीर।
नानक की संशय मिटी सद्गुरु मिले कबीर॥"

इससे यह सिद्ध होता हैं कि दोनों महापुरुषों का सत्संग हुआ था, ऐसा मेरे गुरु सत्यलोकीय आचार्य महन्त रामबिलास साहब ने मुझे बताया था, जो पहुंचे हुए संत एवं महात्मा थे, जिनकी महती कृपा से यह कथा मुझे ज्ञात हुई है। गुरुदेव ने मुझे बतालाया था कि गुरु नानक देव कबीर साहब से प्रभावित थे। अतः गुरुनानक एवं कबीर साहब में कोई मतभेद नहीं था। दोनों के मार्ग एक ही थे। इसलिए पंजाब में सद्गुरु कबीर को कोई परेशानी नहीं उठानी पड़ी। वहाँ को जनता ने कबीर साहब के उपदेशों को गुरुजी के समान ही ग्रहण किया। आज तक गुरु के रूप में सद्गुरु कबीर को स्वीकार करती है और सैकड़ों रुपया व्यय करके काशी आकर कबीर चौरा स्थान का दर्शन करती है, जो गुरुवत् श्रद्धा का प्रतीक है। अत: वे लोग बहुत काल तक कबीर साहब का उपदेश सुनते रहे एवं अपने-अपने घरों में जाकर सेवा-पूजन किए। सद्गुरु कबीर ने भी पंजाब के निवासियों को शिष्यवत् स्वीकार किया।

इस प्रकार पंजाब के लोगों को उपदेश देने के बाद सद्गुरु कबीर कश्मीर प्रदेश और हिमालय प्रदेश की गहन गुफाओं में रहने वाले संतों से मिले और उन्हे उपदेश दिया। हिमालय की कंदराओं में जहाँ पर सौ-सौ वर्ष के योगी एवं तपस्वी निवास करते थे, जो तपस्या में लगे

हुए थे, जिनकी अभी कुण्डलिनी भी जागृत नहीं हो पाई थी, जो हिमालय की कंदराओं में रहकर संयम-नियम में लगे हुए थे, कुछ लोग शरीर को सुखा रहे थे, कुछ लोग खेचरी मुद्रा में ही लगे हुए थे, कुछ लोग वेद-पाठ से ही मुक्ति मानते थे, कुछ लोग हठ-योग का आश्रय लिए हुए थे, इत्यादि प्रकार से उपर्युक्त क्रिया-कलापों में हिमालय के योगी पड़े रहे। कबीर साहब ने हिमालय के सभी योगियों की इस प्रकार की दशा को देखकर कहा—

जो खोजो सो उहवाँ नाहीं।
सो तो आहि अमरपद माहीं॥—बीजक।

उक्त पद को सुनकर सभी लोग चिन्ता में पड़ गए। अतः कबीर साहब सबको चिन्तित देखकर सभी के हृदय स्थल में प्रगट हुए और सभी के अन्तस्थ अज्ञान को भगाकर सूर्यरूपी ज्ञान का उदय कर दिया। सद्‌गुरु कबीर ने कहा कि आप तपस्वियों एवं योगियों को सहज योग सीखना चाहिए। उक्त महात्माओं ने कहा कि हे प्रभो ! सहज योग हम लोगों को सिखला दीजिए। इस प्रकार सद्‌गुरु कबीर ने सबकी इच्छा एवं सभी के निर्मल मन को पहचानकर सहज योग बतलाना आरंभ कर दिया। कबीर साहब ने उन सिद्ध योगियों से कहा कि आँख कान को न मूँदकर मन पर आरूढ़ हो जाओ और मन को श्वास के साथ लगा दो। कुछ देर के बाद मन अपने आप बाह्य विषयों से खिंच जाएगा और अन्तरंग हो जाएगा। उसके बाद स्वरूप में मन की गति हो जाएगी एवं वासना मिट जायेगी। तत्पश्चात् जन्म-मरण का भेदन हो जाएगा और परम शान्ति स्वरूप में युग-युगान्तर परम आनन्द का अनुभव करता रहेगा। "बोलो सद्‌गुरु श्रीराम"। इस पर सभी ने राम नाम का उद्‌घोष किया और सभी को स्वरूप का ज्ञान हुआ। सभी लोग जय कबीर ! जय कबीर ! सत्य कबीर ! जपने लगे।

सद्‌गुरु का विदेशों में धर्म प्रचार एवं बलख, मक्का का प्रसंग

गुरुदेव कबीर सभी से बिदा लेकर कश्मीर प्रदेश से काबुल होते हुए बलख शहर गए। वहाँ का बादशाह सुल्तान इब्राहिम ने बहुत से साधु फकीरों को बन्दी बनाकर कारागार में बंद कर दिया था और उन साधु सन्तों से आटा की चक्की चलवाता था। अतः बलख शहर में सद्‌गुरु

कबीर के आगमन से शोर मच' गया कि हिन्दुस्तान से एक मस्तान आया है जो अपने मुरीदों को साथ में लिए हुए है। जिसके मस्तक पर मोर पंख से युक्त पाग बँधी हुई है। उसकी आँखें कमल दल के समान हैं। लम्बे कद का फकीर है, जिसकी आधी आँखें बन्द हैं, जो आम की फाक के समान है। अस्तु, कबीर साहब के पहुँचते ही बलख में एक दूसरे के माध्यम से सुल्तान तक खबर पहुँच गई कि हिन्दुतान से एक मस्तान अपने मुरीदों के साथ आया है, जो नगर में घूम रहा है। सुल्तान ने आदेश दिया कि इसको भी अन्य फकीरों की भाँति बंदीगृह में बंद कर दो। और चक्की चलाने के कार्य में लगा दो। अस्तु, वैसा ही किया गया। जेल में जाते ही कबीर स्वामी ने सभी चक्की चलाने वाले संतों से कहा कि आप लोग चक्की चलाना बंद कर दें और "राम-राम" कहें। सभी संतों ने साहब की बात मान ली और वे "राम-राम" कहने लगे। तत्पश्चात् सभी चक्कियाँ स्वतः चलने लगीं। इधर सारा अन्न समाप्त हो गया, उधर चक्कियों का चलना बंद नहीं हुआ। कारागार के अधिकारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। कारागार के अध्यक्ष ने जाकर बलखाधिपति इब्राहिम सुल्तान से कहा कि हे मालिक जहाँपनाह ! भारत से जो एक मस्तान आया है, जिसे आपने कारागार में बन्दी बना रखा है, उसने सभी फकीरों को हुक्म दिया कि तुम लोग अल्लाहताला परवरदिगार कहो और चक्की चलाना छोड़ दो। सभी मस्तानों ने वैसा ही किया। सारी चक्कियाँ अपने आप चलने लगीं और नगर का सारा अनाज समाप्त हो गया तथा अनेक प्रकार के उपद्रव नगर में आरंभ हो गए हैं। इधर जो शाही दरबार के कर्मचारी थे वे सभी अन्ध हो गये, राज प्रासाद पर गिद्ध बैठ रहे हैं और कारागार का द्वार स्वतः ही ध्वस्त हो गया। उधर यह सुनने में आया है कि राजकुमार एवं राजकुमारी पागल हो गए हैं। देखिए ये इमारतें काँप रही हैं।

---

१. देश विदेश हौं फिरौं, गाँव-गाँव की खोरि।
ऐसा जियरा ना मिला, लेऊ फटक पछोरि ॥ —बीजक, साखी।

हौं घर जारा आपना, लिया लुकाठा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ ॥
—सत् कबीर की साखी।

इस प्रकार सुनते ही राजा इब्राहिम सिंहासन[1] से कूद पड़ा और जाकर उस भारतीय मस्तान का परिचय पूछा। प्रहरियों ने संकेत करके कबीर साहब का परिचय दिया। परिचय पाते ही बादशाह कबीर साहब के पैरों पर गिर पड़ा। गुरुदेव कबीर ने हँसते हुए कहा कि राजन् ! उठो 'राम' कहो। साहब को प्रसन्न जानकर सुल्तान उठा, जिसे कबीर साहब ने अपनी छाती से लगा लिया। राजा इब्राहिम ने कहा कि प्रभो ! मेरे अपराध को क्षमा करो। जो मैं चाहता था वह आज आपके दर्शन से पूरा हुआ। आपकी जो आज्ञा होगी वह मैं स्वीकार करूँगा। राजा इब्राहिम की विनययुक्त प्रार्थना सुनकर कबीर साहब ने कहा—राजन् ! तुम मेरा हंस है। तुझे सत्य का दर्शन होगा। तुम्हारा हृदय निर्मल है और तुम निष्पाप हो। इसलिए तुम ज्ञान के अधिकारी हो। जाकर सभी सन्तों को बंधनमुक्त कर दो। तदनन्तर बादशाह ने वैसा ही किया। सभी बंदी संत मुक्त हो गए। सभी सन्तों ने सद्गुरु कबीर के चरणों पर माथा टेका। संतों ने कहा कि आप 'बंदीछोड़' हैं, जो यहाँ आकर हम सभी को बन्धन से मुक्त कर दिये। अतः उसी दिन से आप का नाम "बंदीछोड़" संत समाज में प्रचलित हुआ। सभी लोग आज भी सद्गुरु को बंदीछोड़' सत्य कबीर कहते हैं।

बंदी मुक्त सन्तों को इब्राहिम ने सम्मान सहित विदा किया और सभी से क्षमा याचना की। सभी लोगों ने प्रसन्न मन से कहा कि राजन् ! आपकी कृपा से ही सद्गुरु कबीर का दर्शन हुआ, इसलिए आपके अपराध

---

१. सद्गुरु कबीर ने दिल्ली में सिकन्दर लोदी के दरबार में जाने से इन्कार कर दिया और सिकन्दर से कहा कि मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं राज्य दरबार में नहीं जाऊँगा। परन्तु इसके विरुद्ध बलख साह एवं राजा राम सिंह तथा वीरदेव सिंह आदि के दरबार में गये और उनको शिष्य भी बनाया। इससे कबीर साहब के विचार में विरोध मालूम पड़ता है। इसका उत्तर यह है कि राजा राम सिंह एवं वीरदेव सिंह आदि सम्राट नहीं थे। उक्त राजे सम्राट के अधीन रहते थे। कुछ भाग के ही भूपति थे। कबीर साहब की प्रतिज्ञा केवल सम्राट कहाने वालों के यहाँ नहीं जाने की थी। उक्त राजे प्रजा के समान नहीं थे, क्योंकि वे सम्राटों को कर दिया करते थे। इसलिए नाम मात्र के राजे थे। इसलिये कबीर साहब उनके यहाँ जाते थे और अपना शिष्य बनाते थे।

को हम लोग क्षमा कर देते हैं। इतना कहकर सभी संत जहाँ-जहाँ के निवासी थे वहाँ-वहाँ प्रस्थान कर गए।

इधर राजा इब्राहिम सद्गुरु कबीर को अपने अन्तः पुर के उद्यान में पदार्पण कराया जहाँ पर सद्गुरु की अनेक प्रकार से सेवा सत्कार किया, जिससे प्रसन्न होकर सद्गुरु कबीर ने बादशाह के मस्तक पर अपना कर कमल रखा। अस्तु, कर कमल रखते ही बादशाह अचेत हो गया, लेकिन पुनः क्षणमात्र में सचेत होकर वह आगम-निगम की बातें कहने लगा। इस प्रकार राजा के हृदय का अन्धकार नष्ट हो गया और सातवीं भूमिका में जाकर आरूढ़ हो गया।

उधर राज-पाट सभी जहाँ के तहाँ छूट गए। संसार से विरक्त होकर सद्गुरु के साथ राजा चल दिया।[1] इधर सद्गुरु ने देखा कि यह कार्य अच्छा नहीं हो रहा है। राजा के बिना प्रजा का विनाश हो जायेगा। इसलिए इब्राहिम को यहीं रहना चाहिए। गुरुदेव ने कहा कि राजन् कहाँ जा रहे हो? यहीं रहकर प्रजा पालन करो। इस बात पर राजा ने कहा कि जिस वस्तु के लिए मैंने हजारों साधुओं को बंदी बनाया था, वह वस्तु आप 'बंदीछोड़' की कृपा से उपलब्ध हो गई है। भला आप ही बतलाइए कि सूर्य के प्रकाश को छोड़कर कौन ऐसा मूर्ख है जो दिन में दिया जलाएगा? सद्गुरु ने कहा कि मैं तुम्हारा गुरु हूँ। तुम मेरी बात मान लो, नहीं तो मैं पुनः तुम्हें पहले की स्थिति में कर दूँगा, परन्तु राजा के मन में कुछ भी भय नहीं हुआ। अपने दृढ़निश्चय पर राजा अटल रहा। राजा को निर्भय जानकर कबीर साहब ने सोचा कि यह राजा संसार से परे हो गया। इसको पुनः संसार में लाना अच्छा नहीं है। तत्पश्चात्

---

१. सुलताना बलक बुखारेदा।

शाही तज कर लिया फकीरी, अल्लानामा पियारेदा॥
तब थे खाते लुकमा उमदा, मिसरी कन्द छुहारेदा।
अब तो रूखा सूखा टूका, खाते साँझ सकारेदा॥
जा तन पहने खासा मलमल, तीन टङ्कनी तारेदा।
अब तो बोझ उठावन लागे, गुद्‌ड़ दशमन भारेदा॥
चुनि चुनि कलियाँ सेज बिछाते, फूलों न्यारे न्यारेदा।
अब धरती पर सोवन लागे, कङ्कर नहीं बुहारेदा॥
जिनके संग कटक दल बादल, फक्कड़ हुआ अखारेदा॥

—श्रीकबीर भजनमाला, पृ० ८४।

राजकुमार को बुलाकर सद्गुरु ने राज्य सिंहासन पर आरूढ़ करा दिया और मंत्रियों से कहा कि तुम लोग राज्य को सुन्दर ढंग से चलाना, तुम्हारा सुल्तान इससे विरक्त हो गया है। मंत्रियों ने कहा—प्रभो ! यह राज-काज हम लोग आपकी आज्ञानुसार ही करेंगे, परन्तु 'श्रीराम' मंत्र हम लोगों को भी दीजिए।

सद्गुरु ने सभी को जिज्ञासु जानकर रानी एवं राजकुमार और राज्य के सभी मंत्रियों को श्रीराममंत्र सुना दिया। इसके बाद वहाँ से समरकंद होते हुए ईरान, तुर्की, ईराक आदि देशों का भ्रमण करते हुए मक्का एवं मदीना पहुँचे, जहाँ पर सद्गुरु अकेले ही गए थे। संत मण्डली को बलख देश में छोड़ दिये थे। संत मण्डली राजा के उद्यान में तब तक निवास करती रही जब तक कि सद्गुरु कबीर उधर से नहीं लौटे।

गुरुदेव कबीर मक्का में रात्रि में पहुँचे तथा मक्केश्वरनाथ के मंदिर के द्वार पर सो गए। उधर मक्का में रहने वालों को रात्रि में स्वप्न हुआ कि मेरे मित्र कबीर हिन्द से आए हैं ? उठो उनका स्वागत करो। निद्राभंग हो गई। मक्केश के पुजारी शीघ्र उठकर कबीर स्वामी को ढूँढ़ने लगे। अन्त में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मक्केश्वरनाथ के द्वार पर एक अजनबी मनुष्य उनको सोया हुआ मिला, जो मोहम्मदीय सम्प्रदाय के विरुद्ध सोया था। उस मनुष्य को देखकर पुजारियों ने क्रोधित होकर कहा कि तुम कौन हो ? उठो, क्यों भगवान् की ओर पैर करके सोये हुए हो ? इसके बाद सद्गुरु कबीर ने कहा भाई मैं बहुत दूर से यात्रा करके आया हूँ उठने की शक्ति मुझमें नहीं रह गई है। आप लोग कृपा करके मुझे इधर से उधर कर दीजिए। मैं रात्रि के समय आया, पता नहीं चला कि किधर मेरा सिर है और किधर पैर है ? भाई मुझे क्षमा करना। उक्त अपरिचित की बात को सुनकर पुजारी शान्त हो गए और गुरुदेव कबीर को उठाने लगे, परन्तु शरीर इतना भारी हो गया था कि टस से मस नहीं हुआ। तब पुजारियों ने अनुमान लगाया कि यही कबीर साहब हैं, जो अल्लाह के दोस्त हैं।

अन्त में सभी पुजारियों ने कबीर साहब से क्षमा माँगी और उनका स्वागत सत्कार करने लगे। इसके बाद कबीर साहब बोले कि तुम लोगों ने कोई अपराध नहीं किया है, केवल अपराध यही है कि तुम लोग भारत आदि देशों में जाकर बूतपरस्ती की निन्दा करते हो और

यहाँ पर वही कार्य आप लोग करते हैं। भला आप लोग ही बताइए कि यह नीला पत्थर क्या है ? जिसको तुम लोग "अल्लाहताला" की किहुनी कहते हो और संसार का प्रत्येक मुसलमान आकर उसे चूमता है एवं अपने को कृत्य-कृत्य मानता है। दूसरे धर्मावलम्बियों को तुम लोग नास्तिक तथा काफ़र कहते हो। क्या यह पत्थर बूत नहीं, जो तुम्हारे मंदिर में पड़ा है ? तुम लोग कहते हो कि हम लोग ही मुसलमान हैं एवं परमेश्वर पर विश्वास रखते हैं। तुम्हीं लोग बतलाओ कि ईश्वर एकदेशी है या सर्वदेशी है या व्यापक। यदि ईश्वर व्यापक है, तो इस नीले पत्थर में क्यों विश्वास रखते हो ? सभी स्थानों पर उस ईश्वर का अनुभव करो। तुम लोग कहते हो कि बूत नहीं बोलते हैं, तो क्या यह तुम्हारा बूत बोलता है ? यदि बोलता है तो आज इसे बुलाओ ! क्या वे सैय्यद की कब्रें बोलती हैं जहाँ पर चादर एवं घड़ा चढ़ाते हो और जो यह ऊँट, बकरे खड़े किये हो, इसे क्या करोगे ? क्या इन्हें बलिदान करोगे ? क्या इन बलि पशुओं में तुम्हारा व्यापक ईश्वर नहीं है, जिसको तुम लोग अल्लाहताला परवरदिगार कहते हो ? क्या इन पशुओं के मारने से तुम्हारा अल्लाह प्रसन्न रहता है ? यदि ये सब बातें होंगी तो वह अल्लाहताला नहीं है, वह और कोई कृत्रिम है, जो तुम लोगों को भ्रम में डाले हुए है। क्योंकि तुम लोग कहते हो कि उसने मारने के लिए मुझे आदेश दिया है। ये सब बातें बाल बुद्धि की हैं। तुम लोग अब सावधान हो जाओ ! इस प्रकार की बातों को सुनकर मक्केश के पुजारी निरुत्तर हो गए। सभी करबद्ध प्रार्थना करने लगे और साहब से बोले सत्य मार्ग क्या है ? साहब ने कहा कि जब तक तुम लोग इस कुकर्म को नहीं छोड़ते हो तब तक तुम लोगों के लिए कोई सत्य मार्ग नहीं है। सर्व प्रथम तुम लोग हिंसा का त्याग करो तभी तुमलोगों का कल्याण होगा, अन्यथा कोई उपाय नहीं है कि सत्य का दर्शन तुमलोगों को हो, क्योंकि सत्य तमावृत्त है। इसलिए तमोवृत्ति का त्याग करो और प्राणी मात्र पर दया करो। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अहिंसा का पालन करो तभी तुम लोगों को सत्य का दर्शन होगा।

पुजारियों ने कहा कि बहुत अच्छा, अतएव गुरुदेव का आगमन सुनकर पूरे अरब क्षेत्र के लोग आकर सद्गुरु के अमृतमय उपदेश को सुनने लगे। इस प्रकार बहुत भीड़ हो गई। सभी लोग प्रेम पूर्वक उप-

देशामृत का पान करने लगे। सभी के मुखों से "राम श्री राम" निकल रहा था। इस प्रकार वहाँ कुछ समय तक रहकर सद्‌गुरु कबीर मक्का के पुजारियों से एवं वहाँ के प्रशासक से विदा लेकर अन्य क्षेत्रों के लिए प्रस्थान कर दिये। बहुत समय तक अरब में हिंसा आदि कुकर्म बन्द थे, परन्तु इधर पुनः शैतान के बहकावे में आकर हिंसारत हो गए। ऊँट, भेड़, बकरे पूर्ववत् कटने लगे। उधर सद्‌गुरु कबीर मरुस्थल के अन्य देशों का भ्रमण करते हुए एवं सत्य की शिक्षा देते हुए मिस्र पहुँचे। वहाँ के लोगों ने सद्‌गुरु कबीर का स्वागत सत्कार किया और उनकी वाणी को अपने सिद्धान्त में स्थान दिया। इसके बाद वहाँ से विदा लेकर जेरूशलम गये और वहाँ के धार्मिकों से उन्होंने बड़ा शास्त्रार्थ किया। वे लोग कहते थे कि जो मूसा ने कहा है वही सत्य है।

सद्‌गुरु कबीर ने कहा कि मूसा ने हिंसा करने को नहीं कहा है। परन्तु तुम लोगों ने ईसा को मार डाला। क्या तुम मूसा की बातों पर आरूढ़ हो? मूसा ही नहीं संसार के सभी लोगों ने सत्य का उद्‌घाटन किया है। इसलिए सभी लोग अपने-अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं। किसी की निन्दा-स्तुति करना अज्ञानमूलक है। इसलिए आप लोग सत्य को अपनाइये। सत्य से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है। मिथ्या भाषण से बढ़कर कोई पाप नहीं है। अतः सद्‌गुरु कबीर के इस प्रकार की बातों को सुनकर जेरूशलम के निवासियों ने उनका लोहा मान लिया और उनके अनुगामी हो गये। अहर्निश सभी लोग राम नाम जपने लगे। तत्पश्चात् गुरुदेव कबीर ने वहाँ से अपनी जन्म भूमि के लिए प्रस्थान कर दिया।

अरब के छोटे-छोटे देशों को देखते हुए कबीर साहब पुनः बलख नगर में आ गये और वहाँ से संत मण्डली के साथ काबुल होते हुए उन्होंने पंजाब की सीमा में प्रवेश किया और पुनः पंजाब से राजस्थान प्रदेश में पदार्पण किया। कुछ लोगों का मत है कि कबीर साहब रोम भी गये थे, परन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में रोम की यात्रा वर्णन का उल्लेख नहीं किया गया है, केवल एशिया के लगभग सभी देशों में जाने का प्रमाण मिलता है इसीलिए उन-उन देशों का उल्लेख कर दिया गया है। जहाँ-जहाँ गुरुदेव कबीर गये थे।

वैसे तो कबीर साहब ने कहा है कि—

"देश विदेश हौं फिरौं, गाँव-गाँव की खोरि" इत्यादि। बीजक-साखी के अनुसार विदेशों का भी भ्रमण सद्गुरु कबीर ने किया था, परन्तु किन किन देशों में गये थे इसका कोई प्रबल प्रमाण उपलब्ध नहीं है। असत्य बातें लिखना समाज को भ्रम एवं धोखा में डालना है। इसलिए उन्हीं कथाओं का उल्लेख किया गया है, जो कथाएँ प्रामाणिक एवं गुरुजनों के मुख से पाई गई हैं और उन्हीं कथाओं का उल्लेख करना उचित भी है चाहे उक्त कथाएँ पूरी हों या अधूरी।

अतएव सद्गुरु कबीर साहब का इतिहास अनेक प्रकार से लिखा गया है। इतिहास-ग्रंथों में जो कथाएँ प्रामाणिक रूप में प्राप्त हुई हैं उन्हीं घटनाओं को इस जीवन चरित्र में लिखा गया है। इस प्रकार की बातें बार-बार स्पष्ट रूप से कह दी गई हैं। इसका कारण यह है कि कभी-कभी अनेक कथाओं को देखकर भ्रम हो जाता है और उस पर बहुत विचार करना पड़ता है। इस प्रकार दृढ़ निश्चय के बाद ही आगे बढ़ना होता है। सद्गुरु कबीर के विषय में रञ्जनात्मक लेख बहुत है, जिनसे मन ऊब जाता है। इसीलिए रञ्जनात्मक कथाओं का बहिष्कार कर दिया गया है।

सद्गुरु का स्वदेश आगमन एवं राजस्थान का परिभ्रमण

राजस्थान में कबीर साहब को नाथों से एक बार और कड़ा सामना करना पड़ा। सद्गुरु जब राजपुताना में आ गए तो उनका आगमन सुनकर नाथों को पुनः भय हो गया तथा उन्होंने अनेक प्रकार के उपद्रव करना आरंभ कर दिये। जयपुर में सत्य कबीर रुके थे जहाँ पर बड़े-बड़े राजा दर्शन के लिए आये हुए थे और सभी सद्गुरु के उपदेश को सुन रहे थे। इसी बीच एक विशालकाय सर्प सभास्थल में दिखाई दिया और बहुत से लोगों को निगलने लगा। जिसको देखकर सारा समाज भाग खड़ा हुआ। कबीर साहब तो नाथों की माया को जानते थे। उन्होंने उक्त सर्प के मस्तक पर अपना हाथ रखा, तत्काल वह सर्प अन्तर्धान हो गया और निगलित लोग ज्यों के त्यों दिखाई दिये तथा भागे हुए लोग भी वापस लौट आये। सभी लोग गुरुदेव कबीर का चमत्कार देखकर उनकी महिमा का गान करने लगे। साहब ने कहा कि यह सब करामात नाथों का है। आप लोग भयभीत न हों। कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि श्रीराम जी आप लोगों को रखवाली कर रहे हैं। लीजिए यह तृण,

इसको सभा के चारों तरफ घुमा दीजिए। सभा के प्रमुख व्यक्तियों ने वैसा ही किया। इस प्रकार जहाँ तक तृण घुमाया गया था वहाँ तक नाथों की करामात नहीं असर कर सकी, परन्तु उसके बाहर बड़े-बड़े उपद्रव दिखाई देने लगे। कभी तो ऐसा लगता था कि चारों ओर अग्नि से सारा नगर जल रहा है। कभी तो ऐसा मालूम पड़ता था कि सारा नगर जलमग्न हो गया है और कभी तो ऐसी तेज आँधी चलने लगती थी कि मालूम पड़ता था कि सभी पेड़-पौधे उखड़ गए हों और कभी तो तेजी से भूकम्प आने लगता था, यह सब देखकर साहब ने कहा कि आप लोग घबड़ाओ नहीं और श्रीराम-श्रीराम जपो। सभी उपद्रव शान्त हो जायँगे।

उक्त प्रकार के दृश्य को लोग देख रहे थे। लोगों को यह दिखाई देता था कि जब उधर से कोई उपद्रव आ रहा है, तो इधर से एक साधु पुरुष चक्र घुमाकर उसे शान्त कर दे रहा है। अस्तु, एक प्रहर में ही नाथों की सारी कला शान्त हो गई। तदनन्तर सभी लोग प्रसन्न मुद्रा में दिखाई दिए। कुछ ही पल में उधर से नाथों के बड़े-बड़े सिद्ध योद्धा निम्न रूप में दृष्टिगोचर हुए। कोई तो कटि भाग से ऊपर मनुष्य से भिन्न है, तो कोई नीचे गर्दभ के रूप में है, तो कोई ऊपर से अश्व के समान है और नीचे से मनुष्य। अनेक प्रकार से रोते-चिल्लाते सभी कबीर साहब की ओर आ रहे हैं। सिर का भाग मनुष्य के होने के कारण कुछ नाथ पहचान में आ जाते थे कि ये अमुक नाथ हैं, ये सर्वनाथ हैं, ये जमपाल नाथ हैं और ये अनंगनाथ हैं, इत्यादि नाथ सभी लोगों की जानकारी में थे, जो कई एक राजस्थानी राजाओं के गुरु भी थे जिनको देखकर राजागण लज्जित होकर अपना-अपना सिर नीचा कर लिए तथा मन ही मन नाथों के कुकृत्य से घृणा करने लगे उधर नाथ लोग मनुष्य और पशु का रूप लिए हुए कबीर साहब के चरणों पर गिरकर विनय करने लगे। कुछ को कहने में असमर्थ देखकर साहब ने उन लोगों को पहले की दशा में कर दिया। अपने पहले रूप को पाकर नाथों ने कबीर साहब से बड़ी प्रार्थना की और अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी। साहब ने कहा कि तुम्हारे अपराध को मैंने क्षमा कर दिया, जाओ राम-नाम का जप करो। इस पर नाथों ने कहा कि प्रभो! हम लोगों को राम-मंत्र दे दीजिए। साहब ने वैसा ही किया और लोगों से कहा कि तुम लोग गुरुदक्षिणा के रूप में राम-नाम का प्रचार करना तथा किसी संत को

दुःख नहीं देना। आज से तुम लोग अहिंसा धर्म का पालन करना और अहर्निश श्री हरि का जाप करना, अन्यथा तुम लोगों के लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है, जो इस संसार सागर से पार करा सके। इतना कहकर साहब ने सभी नाथों को 'दास' पदवी देकर सम्मानपूर्वक विदा किया और कहा कि तुम लोग आज से वैष्णव धर्म का जीवन पर्यन्त प्रचार करना। इस प्रकार नाथों ने साहब का चरण स्पर्श करके अपने-अपने आश्रमों को चल दिये। इधर राजपूताने के जितने राजे थे, उन्होंने अपने-अपने राज्यों में जाकर सद्गुरु कबीर के उपदेशों को सभी लोगों को सुनाया और अहिंसक बन गए।

तत्वा-जीवा का प्रसंग

इस प्रकार सद्गुरु कबीर ने राजपूताने के लोगों को वैष्णव वनाकर और सभी को वैष्णवी रामभक्ति के उपदेश को सुनाकर गुर्जर प्रदेश में प्रवेश किया और वहाँ के लोगों को सत्य मार्ग का दर्शन कराते हुए नर्मदा नदी के तट पर भड़ौंच के अन्तर्गत शुक्लतीर्थ पहुँचे, जहाँ ब्राह्मणों का शुक्ल तीर्थ नामक ग्राम था। उस ग्राम में दो भाई ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम तत्वा एवं जीवा था। उन दोनों ने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि हम दोनों तपस्वी भाई तभी गुरुमुख होंगे जब कोई इस बट की सूखी हुई शाखा को अपने चरणामृत से हरा भरा कर देगा, जिसको हम दोनों ने भूमि रोपन किया है। अतः जिस सन्त के चरणामृत को धोकर डालने से तुरन्त नवीन पत्ते निकल आवेंगे उसी सन्त को हम दोनों अपना गुरु मानेंगे। उक्त दोनों विप्र बन्धु बड़े ही हरि भक्त थे। प्रतिदिन बिना संत सेवा के अन्न जल नहीं ग्रहण करते थे। इस प्रकार से बहुत समय बीत गया। बट की सूखी लकड़ी ज्यों की त्यों रह गई। प्रतिदिन संतों का चरण धोकर डाला जाता था, लेकिन उस बट वृक्ष में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। अतः इस घोर व्रत से उन दोनों की ख्याति सारे विश्व में फैल गई। लोग दूर-दूर से उनके दर्शन के लिए आने लगे। सूर्य की भाँति दोनों का प्रकाश लोक में छा गया। उन दोनों भाइयों में राम-लक्ष्मण जैसा प्रेम था। अन्त में व्रत की सफलता न देखकर दोनों भाई उदास हो गए और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि चलो अब गुरु नहीं मिलेंगे। इसलिए वे दोनों भाई नर्मदा नदी में डूब मरने के लिए जा रहे थे, इसी बीच मैला वस्त्र पहने हुए एक संत आये जिन्हें दोनों

भाइयों ने देखा पर पहले के समान संत सेवा में दोनों भाइयों की आस्था अब नहीं रह गई थी। उन दोनों भाइयों में सबसे बड़े का नाम तत्वा एवं छोटे के नाम जीवा था। दोनों श्रेष्ठ बुद्धि के मनुष्य थे। तत्वा ने उस सन्त को मैले वस्त्र को पहने हुए देखकर पहले तो अनास्था व्यक्त की, परन्तु भगवत् कृपा से क्षण मात्र में ही बुद्धि शुद्ध हो गई और दौड़कर उसने सन्त को आसन पर बैठाया। तत्पश्चात् उस सन्त के पैरों का प्रक्षालन किया और उस प्रच्छालित जल को ले जाकर उस सूखे पेड़ में डाल दिया जल डालते ही हरे पत्तों से युक्त हो गया। यह देखकर दोनों भाई नाचने-कूदने लगे तथा जोरों से श्री राम जय राम की ध्वनि करने लगे। इसके बाद वह दोनों भाइयों ने चाहा कि चलो अब संतदेव को गुरुदेव बनावें। इधर आगन्तुक संत अन्तर्धान हो गए। अतः वे दोनों भाई उक्त सन्त को न देखकर व्याकुल हो गए और अपने घर के चारों ओर उस सन्त को खोजने लगे, परन्तु सन्त भगवान कहीं नहीं दिखाई दिए। इसलिए दोनों भाइयों की दशा पूर्ववत् हो गई। इस प्रकार दोनों भाइयों को व्याकुल देखकर सद्गुरु कबीर पुनः उन दोनों के समक्ष प्रकट हो गए और बोले तुम लोग भक्त हो, तुम दोनों को क्या चाहिए ?

दोनों भाइयों ने अपनी प्रतिज्ञा एवं दृढ़ निश्चय को सद्गुरु से कह सुनाया। साहब ने कहा आओ तुम दोनों को मैं सब कुछ भेद बदला देता हूँ। तुम दोनों मीन मार्ग का अनुशरण करो और एकान्त में पद्मासनारूढ़ होकर राम-नाम का जप करो। मन को बाह्य जगत में रोककर अन्तः में कर लो इतना कहकर साहब ने अपना कर-कमल उन दोनों भाइयों के मस्तक पर रख दिया। अतएव कर-कमल रखते ही दोनों की समाधि लग गई। संसार की सारी वासनाएँ छिन्न-भिन्न हो गई। सप्तम व्योम पर वृत्ति आरूढ़ हो गई। अहर्निश दोनों भाई ध्यान मग्न रहने लगे। सप्तभूमिका का ज्ञान हो गया। दोनों भाई कृत-कृत्य हो गए। जन्म-मरण की बेड़ियाँ टूट गई तथा तन-मन-धन सब कुछ गुरु की सेवा में उन दोनों भाइयों ने अर्पित कर दिया।

इस प्रकार दोनों भाइयों की अधिक निष्ठा देखकर साहब ने कहा कि तुम दोनों सिद्धासन नहीं करना। इसका कारण यह है कि तुम दोनों विवाहित हो। उक्त आसन अवधूतों के लिए विहित है। तुम दोनों सदा राम-नाम का जप करना और परोपकार करते रहना, जब तक गृह में

रहो तब तक उक्त धर्म का भली भाँति पालन करना क्योंकि गृह धर्म भी उत्कृष्ट धर्म है। तुम लोग तो परम सन्त हो, कारण कि तुम दोनों जीवन मुक्त पुरूष हो, तुम्हारे लिये गृह-वन दोनों समान हैं। गृह-वन में तो अन्तर भेद बुद्धि वाले रखते हैं आत्मज्ञानियों के लिए सब जगह एक समान है। इसलिए तुम लोग न गृही हो और न वनवासी, तुम दोनों परमहंस हो। अतः उन दोनों भाइयों को जीवन मुक्ति प्रदान कर वहाँ से संत मण्डली को लेकर कबीर साहब अन्य स्थानों के लिए प्रस्थान कर दिए।

●

षष्ठ आलोक

ज्ञानी जी का प्रसंग एवं एक चोली पंथी की घटना

इस प्रकार देशाटन करते हुए सद्गुरु कबीर गुर्जर प्रदेश के अन्तर्गत एक स्थान था जो शुकलतीर्थ के पास में ही विद्यमान था, जहाँ ज्ञानीजी नामक एक साधक रहते थे, उनसे भी साहब की भेंट हुई। श्री ज्ञानी जी महाराज साधक थे। जिनको यह संदेह था कि मुक्ति भक्ति से होती है या ज्ञान से। साहब ने उनके इस संदेह को दूर कर दिया और मुक्ति के लिए ज्ञान युक्त भक्ति को ही श्रेष्ठ बतलाया, क्योंकि ज्ञान बिना भक्ति के आत्माशुद्धि नहीं होती और आत्माशुद्धि के बिना स्वरूप का ज्ञान होना दुर्लभ है। इसी प्रसंग को साहब ने ज्ञानी जी को सविस्तार समझाया। इस प्रकार ज्ञानी जी से विदा लेकर सद्गुरु कबीर ने गुर्जर प्रदेश के अन्य क्षेत्रों में ज्ञान-भक्ति का उपदेश[1] दिये।

---

१. मैं अपने राम को रिझाऊँ।

जंगल जाऊँ वृक्ष न छेड़ू न कोई डार सताऊँ।
पात-पात में है अविनाशी, वाही में दरस कराऊँ ॥ मैं० ॥
औषध खाऊँ न बूटी लाऊँ न कोई वैद बुलाऊँ।
पूर्ण वैद मिले अविनाशी, ताही को नबज दिखाऊँ ॥ मैं० ॥
आदि आदि पद गाने वाला कौन ?—भक्त कबीर।

एक नव युवक (रामदास) चित्त में चुभ जाने वाला गाना सुनकर वैराग्य से भर आया। नेत्रों में जलभर कर कबीर जी के चरणों पर सिर रख दिया और हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, "आप सब शक्ति रखते हैं मुझे भी भगवान के दर्शन कराओ।" कबीर जी रामदास के सच्चे भक्ति-भाव को देखकर इनकार न कर सके, कुछ देर बाद परसों दर्शन कराने का वादा कर लिया और लिए सामान पहुँचाने के लिए भी रामदास को खूब समझा बुझा दिया।

दूसरे दिन रामदास ने खुशी-खुशी अपनी संपति बेचकर उसके चावल, खाँड़, घी, मैदा, दूध आदि खरीद लिए। नियत दिन को बहुत उत्तम भोजन तैयार किये गये और साधु लोग निमंत्रित किये गये। इधर भाँति-भाँति के स्वादिष्ट भोजन तैयार धरे हैं उधर महात्मा लोग आ-आकर अपने-अपने भजन-पाठ में लगे हैं। रामदास

→

सद्गुरु कबीर श्री ज्ञानी जी को निःसन्देह कर, जीवन मुक्ति प्रदान करके संत मण्डली के साथ आगे बढ़े जा रहे थे। कुछ ही दूर नर्मदा नदी के तट पर एक ब्राह्मणों की बस्ती मिली। जिसमें रामदास नामक

→

परम प्रेम और भक्ति के साथ एकांत में पूजा कर रहा है इस आशा पर कि अभी भगवान के दर्शन हुए कि हुए। रामदास को दर्शन होने के बाद सब महात्मा पंगत में सम्मिलित होंगे। सब आँख फाड़-फाड़ कर उत्तम मुहूर्त के ध्यान में हैं। लो दोपहर ढल गई, रामदास को अभी तक दर्शन नहीं हुए तीसरा पहर हो गया, दर्शन नहीं हुए।

कुछ नवयुवक साधुजनों की अतड़ियाँ परमेश्वर को कुछ का कुछ कहने लगीं कि हाय हमारे उदर और सुस्वादु पदार्थों के मध्य में व्यवधान क्यों बना है। कुछ पर निराशा छा गई। कुछ कबीर को दोष देने लगे, कुछ रामदास को पागल समझने लगे कि बात पर रीझ पड़ा। कुछ प्रेमी इस आनंद भरे विचार से बगलें बजाते थे कि कदाचित् रामदास के चरणों की कृपा से हमें भी दर्शन प्राप्त हों। निदान आशा और प्रतीक्षा में प्रत्येक का—"चूं गोशे रोजादार बर अल्लाहु अकबर अस्त" रोजा खोलने के लिए अल्लाह अकबर की बाँग सुनने पर रोजादार के कान लगे हुए का-सा मामला हो रहा था।

इन लोगों को तो अपने-अपने विचारों में लीन छोड़िए। उधर भोजन आदि की सुध लीजिए। पवित्र रसोई (चौके) में यह क्या घमाशान मचा है। इस जगह यह भैंस किधर से आ गई ? खीर के बर्तन औंधे पड़े हैं, कड़ाहों में हलुवे को भैंस का मुंह लगा हुआ है, मालपुए सब जूठे हैं, दाल बाल के देगचे फूट रहे हैं, भैंस ने सींगों से चूल्हे भी तोड़ दिये हैं, सारे स्थान को जहाँ-तहाँ खुरों से खराब कर दिया है, जगह-जगह गोबर कर दिया है अब भैंस थुथनी उठाकर अड़ाने लगी।

आशा के विरुद्ध भोजन बनाने के कमरे में यह आवाज सुनकर सब साधु चौंक पड़े। दिनभर के भूख के कारण आकुल-चित्त तो पहले हो रहे थे, खाने-पीने पर साफ चौका और सब आशाओं के सिर पानी फिरता देख उनकी क्रोधाग्नि आवश्यकता से अधिक भड़क उठी और तमोगुण को उन्नति अकथनीय। उधर से रामदास भी पागल की तरह लठ हाथ में लिए आ गया। साधुओं ने भैंस को

→

एक ब्राह्मण निवास करता था, जो कबीर साहब की महिमा को सुन चुका था। अतः उक्त गाँव के पास सद्गुरु को आया सुनकर वह भक्ति

→

घेर रक्खा और रामदास ने भैंस की गत बनानी आरंभ की। मार-मार कर सब खाया-पिया निकाल दिया।

कोई कबीर जी पर फब्तियाँ गढ़ रहा था, कोई ठेने ठप्पे (उलाहने) सुना रहा था, कोई तेज और कड़वे वाक्य चुस्त कर रहा था। भैंस जख्मी होकर रक्त-रंजित शरीर लिए लँगड़ाती-लँगड़ाती दुःख-भरी ध्वनि से फरियाद करती कठिनता से अपने प्राण बचाकर बाग के उस कोने की ओर आ निकली, जहाँ कबीर ठहरा हुआ था। पीछे-पीछे रामदास और साधु लोग भी कबीर जी की खूब खबर लेने को उसी ओर आ रहे थे। आकर क्या देखते हैं कि मारे सहानुभूति के भक्त कबीर भैंस के गले लिपट कर विह्वल हो रहा है–'हे भगवन् ! हाय ! आप को आज वह चोटें आई, जो रावण से लड़ते समय भी नहीं आई थीं। हाय ! आप को आज वह कष्ट सहना पड़ा, जो कंस से संग्राम करते समय भी नहीं सहना पड़ा था। हाय ! आप को आज..........।

कबीर भक्त के रोने-धोने से समस्त दर्शकों की दशा एकाएक बदल दी। जैसे आग के साथ जो वस्तु छू जाती हैं, आग हो जाती हैं, वैसे उस अवसर पर कबीर के प्रभाव से रामदास आदि के अन्तःकरण ऐसे निर्मल हो गये कि आनन्दघन अद्वैत रूप के अतिरिक्त कुछ न रहा। द्वैत भावना एकदम मिट गई। दुई का पर्दा उठ गया, हर स्थान पर हर वस्तु में, एक ही आत्मा पाया—

मन ऐसो निर्मल भयो जैसे गंगा-नीर।
पीछे-पीछे हर फिरे कहत कबीर-कबीर॥

दुःख और शोक, विषयों की भावनाएँ शरीर की सब कामनाएँ दूर हो गई। अपना एक शरीर होने के स्थान पर समस्त शरीर खास अपना आप दिखाई पड़ने लगे और यह खास अपना आप संसार का सुख स्वयं राम ही था। विचित्र दर्शन है कि दर्शन करने वाला और दर्शन देने वाला दो नहीं रहते। अपने आप तमाशा और अपने आप तमाशा देखने वाला, आश्चर्य है। हर (परमेश्वर) का यही दर्शन है कि हर (पशु पक्षी, मनुष्य, संसार सब) मैं ही हूँ।

—"सुलह कि जंग १ गंगा तरंग", स्वामी रामतीर्थ, पृ० सं०–२८४-२८७।

भाव के सहित दौड़ता हुआ जाकर कबीर साहब के चरणों पर लेट गया। सद्‌गुरु ने उस रामदास को गले से लगाया और बोले—कहो विप्र! कुशल है न! रामदास ने कहा हाँ प्रभो कुशल ही कुशल है। साहब ने पूछा तुम्हारा क्या अर्थ है? रामदास ने कहा प्रभो! मुझे भगवान् के दर्शन की बड़ी अभिलाषा है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। कबीर साहब ने कहा तुझे भगवान् का दर्शन होगा, परन्तु एक भण्डारा का आयोजन करो जिसमें बहुत से साधु सन्तों को निमंत्रण देकर सूचित कर दो ताकि सभी भगवान् का दर्शन करें। सद्‌गुरु के वचनों को सुनकर श्री रामदास ने एक वृहद् भण्डारा का आयोजन किया, जिसमें निश्चित तिथि पर बहुत दूर-दूर से साधु जन, भक्त एवं सज्जन पधारे। उस स्थल से थोड़े ही दूर पर सद्‌गुरु कबीर भी संत मण्डली के साथ आस-पास के लोगों को भगवत् नामों को श्रवण करा रहे थे। उधर रामदास जी के भण्डारा के रोज सभी का मन भगवत्दर्शन के लिए आकुल हो रहा था। सभी लोग बड़ी उत्सुकता के साथ श्री हरि के दर्शन के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। दिन के तीन पहर बीत गए। सभी लोग भूखे छटपटा रहे थे। कुछ लोग कबीर साहब को झुट्ठा बना रहे थे, कुछ लोग रामदास को फटकार रहे थे। कुछ लोग कहते रहे कि यह बुलाकर सभी को भूखों मार रहा है। तब तक एक विशालकाय भैंसा शरीर में कीचड़ लपेटे हुए रामदास के यज्ञशाला में दिखाई दिया और उसने अपने शक्तिशाली सींगों से यज्ञशालाको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और वहाँ से जाकर पाकशाला में भोज सामाग्री हलुआ, पुड़ी, लड्डू आदि को चट करने लगा और इधर उधर घूम-घाम के बची हुई सामग्रियों को यत्र-तत्र बिखेरने लगा। तब तक सन्तों की उक्त भैंसे पर दृष्टि पड़ी और बड़े जोर-जोर से हल्ला करते हुए चारो तरफ से दौड़कर भैंसे को घेर लिया। इसी बीच में रामदास भी कहीं से आ पड़े जो लाठी लिए हुए भैंसा भगवान की सेवा करने लगे। कोई साधु उस भैंसे को सँड़सा से पीट रहा है, तो कोई साधु बैशाखी के डंडों से पीट रहा है, कोई अपने कमण्डल को ही घुमाकर मार रहा है, अब भैंसे बेचारे की दशा दयनीय हो रही थी, तब तक किसी ओर से मार्ग खुला पाया रक्त रंजित वह भैंसा भाग निकला और पीछे से सन्तों ने हल्ला करते हुए उसका पीछा किया। भैंसा भागता हुआ संत मण्डली के पास पहुँचा, जिसको देखकर सद्‌गुरु कबीर दौड़ पड़े और जाकर उसके गले से लिपट गए। बोले प्रभो!

आपको बहुत कष्ट हुआ। भला इस कलिकाल में आपको कौन पहचानता है। सभी लोग माया के गुलाम हैं। इसीलिए तो आपको दुःख दिया गया है। इतना कहकर सद्गुरु अपने कमण्डल से जल लेकर भैंसा को धोने लगे। उसके सभी घावों पर संतों से जड़ी माँगकर मरहम पट्टी की। कबीर साहब के इस प्रकार के व्यवहार से सभी लोग आश्चर्य चकित हो गए और सभी के हृदय से अज्ञानरूपी यवनिका हट गई। क्षणमात्र में ही भैंसा अदृश्य हो गया और रामदास सहित सभी साधुओं ने कबीर साहब के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगी और बोले प्रभो! आज हम लोगों को आपने जगा दिया। आज हमारे अनन्त जन्मों के दोष मिट गए इत्यादि बातें कहते हुए सभी अपने-अपने घर को चले गये। इधर संत मण्डली उक्त स्थान से विदा लेकर प्रत्येक गाँव एवं नगरों में भ्रमण करती हुई आगे बढ़ी।

गुर्जर प्रान्त में ही एक दिन एक घटना घटी, जो इस प्रकार की है— कबीर साहब एक दिन घूमते हुए जा रहे थे। इसी संदर्भ में शाम हो गई। एक छोटा सा जंगल था जहाँ पर एक कुटी दिखाई दी, जिसे देख करके संत मंडली उधर ही चल पड़ी, जहाँ पहुँचकर संतों ने एक चोली पंथी साधु को देखा। वह साधु बड़ा सिद्ध था। आस-पास के लोग उसको अपना गुरु मानते थे। उसी स्थान पर आठ दिन पर माद्यक्य मेला लगता था। वह चोली पंथी संत वहाँ पर अन्य किसी संत को नहीं रहने देता था, परन्तु उसके विरुद्ध कबीर साहब ने पचासों संतों को लेकर वहीं डेरा डाल दिया। इस प्रकार संत मण्डली को देखकर वह साधु कुटिया से बाहर आकर बोला-तुम लोग यहाँ से भाग जाओ! नहीं तो तुम लोगों को अन्न जल नहीं मिलेगा। सद्गुरु कबीर ने उस चोली पंथी साधु की बातों को सुनकर कहा—तुम भी संत हो और मैं भगवान् का भक्त हूँ, एक रात यहीं रहने दो। उस साधु ने साहब की उक्त बात न मानी। तब साहब ने कहा कि तुम भी संत हो इसलिए संतों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। उसने कहा अच्छा रहो, पर तुम लोगों को अन्न–जल और अग्नि नहीं मिलेगी। साहब ने कहा कि बाबा केवल रहने दो। तुम से कुछ नहीं माँगा जायेगा। उसकी अनुमति से संत मण्डली रुक गयी और अपने ध्यान पूजा में लग गई। कुछ समय तक आरती पूजा हुई, तत्पश्चात् कबीर साहब ने कहा कि आज दिनभर से संत भूखे हैं, इसलिए कुछ उपाय करना चाहिए। श्री पद्मनाभ जी ने कहा प्रभो!

यहाँ क्या उपाय करना चाहिए। यहाँ तो सभी चोली पंथी लोग हैं, वे दूसरों को गाँव में आने नहीं देते। ऐसी स्थिति में किससे उपर्युक्त बातें कही जाय। पद्मनाभ जी की बात सुनकर सद्‌गुरु ने कहा कि आप लोग अपने-अपने जल-पात्र को बाहर रख दो। सभी संतों ने वैसा ही किया उधर चोली पंथी साधुओं ने अपना भोजन बनाने के लिए जो चूल्हा जलाया था, वह बंद हो गया और उसके पात्र का जल संतों के पात्र में आ गया। अर्थात् जो-जो सामान उसके पास था वह सभी संतों के पास चला आया। बिना अग्नि के ही इधर संतों का दाल चावल पकने लगा। उधर उक्त चोली पंथी साधु संतों के पात्र में चावल उबलते हुए देखकर आश्चर्य चकित हो गया। इसी संदर्भ में उसके कुछ शिष्य भी वहाँ आ गए। वे भी इस आश्चर्ययुक्त बात को देखकर चकित हो गए। इस चमत्कार से उक्त लोग बहुत प्रभावित हुए और अपने गुरु को वहाँ से तुरन्त भगाकर वे सभी सद्‌गुरु कबीर के शिष्य हो गए। आज भी वहाँ पर कबीरपंथी रहते हैं, जो सदा राम भक्ति करते हैं यह स्थान व ग्राम बलसार के पास में था जो अब बलसार से मिल गया है।

अतएव उस स्थान की जनता को दुष्कर्मों से विरत कराते हुए वहाँ से संत मंडली ने महाराष्ट्र की सीमा में प्रवेश किया। वहाँ के प्रत्येक ग्राम, वनों, पर्वतों के निवासियों को ज्ञानरूपी अमृत पिलाया। महाराष्ट्र के लोग शीलवान थे इसलिए सद्‌गुरु कबीर का विरोध नहीं हुआ। सभी लोगों ने गुरुदेव का स्वागत किया और राम भक्ति के उपासक बन गये।

इस प्रकार से महाराष्ट्र के कोने-कोने में जाकर सत्यधर्म एवं परा भक्ति का उन्होंने प्रचार किया, फलस्वरूप उस प्रान्त के लोग सहर्ष वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गये। प्रत्येक जनपद के लोग अपने-अपने ग्रामों में ले जाकर सन्तों का समादर करते थे। इस प्रकार महाराष्ट्र प्रान्त में कई महीनों तक धर्म प्रचार होता रहा। तदुपरान्त सन्त-मंडली ने महाराष्ट्र को प्रबुद्ध बनाकर कर्नाटक क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया जहाँ पर वैष्णव धर्म का पहले से भी बोलबाला था। सद्‌गुरु को वैष्णव समझकर वहाँ के निवासी अति प्रसन्न हुए। कर्नाटक के प्रत्येक जनपद में जाकर श्री राम भक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया। सन्त मंडली क्रमशः दक्षिण की ओर बढ़ती जा रही थी। इसी संदर्भ में बंगलोर के पास एक शाक्त सिद्ध से समागम हुआ, जिसका नाम था पूर्णानन्द। वह

शाक्त सिद्ध बहुत बड़ा प्रभावशाली था। उसके प्रभाव से वहाँ की जनता प्रभावित थी। सद्गुरु कबीर को संत-मंडली के साथ आया जानकर वह अति कुपित हो गया। उसने अपने तंत्र बल से एक कुत्ता भेजा और कहा कि जाकर कबीर को काट लो। उसने मुझे नमस्कार न करके मेरा अपमान किया है। वहाँ से कुत्ता चल पड़ा और सद्गुरु के पास आया। गुरुदेव अन्तर्यामी थे। उक्त सिद्ध की करामात जानकर बोले–आइये भैरव नाथ! आपका स्वागत है। सद्गुरु की वाणी को सुनकर कुत्ता अपने स्वर में रोने लगा। सद्गुरु ने उसको शरणापन्न जानकर अपनी योगमाया से मनुष्य बना दिया। मनुष्य के बनते ही सन्त मंडली में अचम्भा व्याप्त हो गया। सभी लोग सद्गुरु कबीर का जय-जयकार करने लगे और वहाँ की उपस्थित भीड़ इस आश्चर्य भरी घटना को जानने के लिए उत्सुक हो गई। सद्गुरु कबीर ने उक्त घटना को ज्यों का त्यों सुना दिया। पूर्णानन्द के व्यवहार से वहाँ के आस-पास के लोगों को बहुत रोष हो आया और उन लोगों ने जाकर उसको वहाँ से भगा दिया। अन्त में पूर्णानन्द ने सन्त मंडली के समक्ष आकर क्षमा माँगी और गुरुदेव से कहा कि मुझे सत्य धर्म का उपदेश कीजिये। पूर्णानन्द को जिज्ञासु जान कर सद्गुरु ने कहा कि सन्तों को किसी से ईर्ष्या-राग-द्वेष नहीं करना चाहिये, क्योंकि राग-द्वेष ही भव बन्धन का कारण है। निरभिमान होकर आत्म-चिन्तन एवं हरिनामों का सुमिरन करना चाहिये। यही सनातन धर्म है। इतना कहकर सद्गुरु कबीर स्वरूप में समाधिस्थ हो गये। रातभर सन्त मंडली ने वहाँ निवास किया और प्रातः ही आगे के लिये प्रस्थान किया। वहाँ के निवासियों ने श्रद्धाभाव के साथ संतों को बहुत दूर तक पहुँचा कर विदा लिया उधर सन्तों ने स्थानीय लोगों से संतुष्ट होकर अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया।

इसके बाद संत मण्डली सत्य की शिक्षा देती हुई दक्षिण की ओर मुड़ी और क्रमशः राम-भक्ति का प्रचार करती हुई बढ़ती गई। दक्षिण में कहीं-कहीं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों से संघर्ष भी करना पड़ा जिसमें सभी पराजित हुए। उन पंडितों में कुछ के नाम और उनकी मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—योगाजीत नाम के पंडित से वार्ता हुई, जो कहता था कि कर्मकांड के त्याग से मुक्ति संभव नहीं है, क्योंकि बिना कर्म के ज्ञान होना संभव नहीं है और ज्ञान कर्म साध्य है। इसलिए वेदोक्त कर्म करने वाला सर्वोत्कृष्ट है, आप क्यों कर्मवाद का विरोध करते हैं? इसलिए मेरा

पक्ष सत्य है। इस बात के खण्डन में सद्‌गुरु ने कहा कि पंडित जी कर्म से जगत हुआ है, कर्मजन्य होने से अन्ततोगत्वा इस जगत् का नाश देखा गया है। इसलिए कर्म करके जो उत्पन्न होगा, वह शाश्वत एवं चिरंतन नहीं हो सकता। पण्डित जी आपको भ्रम हो गया है। आपने शास्त्र पढ़ा है, लेकिन सत्संग नहीं किया है। सद्‌गुरु की बात को सुनकर पण्डित योगाजीत एवं प्रेमदर्शनम् मौन हो गए। साहब ने कहा सत्संग करो, राम भजन करो, मौन होने से कार्य का संपादन नहीं होगा।

साहब का उक्त कथन सुनकर पंडित योगाजीत एवं प्रेमदर्शनम् सद्‌गुरु के चरणों पर गिर गए और बोले भगवन्! मुझे मार्ग दर्शन कराइए। सद्‌गुरु ने सहज ध्यान की विधि को बतलाकर दोनों पण्डितों के मस्तक पर अपना करकमल रख दिया। इसके बाद दोनों पण्डितों की समाधि लग गई। संसार की सारी वासनाएँ नष्ट हो गई। आशा की बेड़ियाँ टूट गई। श्रीराम नाम का जप करते हुए दोनों पंडित समाधि से जागृत अवस्था में आए और साहब के चरणों पर गिर पड़े। साहब ने उन दोनों पंडितों को अनेक प्रकार के ज्ञान के प्रसंग को सुनाया, जिससे दोनों पंडित सहित वहाँ के अन्य लोग भी कृतकृत्य हो गए। उक्त वार्ता कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु के संगम के पास तमिलनाडु क्षेत्र में हुई थी।

आचार्य पण्डित श्रुतिगोपाल-प्रसंग

इस क्षेत्र का ही सर्वाजीत नामक अत्यन्त प्रकाण्ड एक विद्वान् था, जो तत्कालीन पंडित समाज का अग्रणी था और योगाजीत के पराजित होने से पहले ही काशी आ गया था, वहाँ पराजित होकर सद्‌गुरु कबीर के शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया था। जिसका नाम श्री श्रुतिगोपाल-दास पड़ा, जो आगे चलकर कबीर पंथ के प्रधानआचार्य हुए और आज तक काशी कबीरचौरा मठ में उनकी शिष्य परम्परा चली आ रही है।

पाठकों को ज्ञात हो कि उनका जन्म सुरम्यपुरम् नामक नगर में कार्तिक मास शुक्ल पक्ष के दशमी के दिन, विक्रम संवत् १४६५ में माता कल्याणी देवी के उदर से हुआ था। आप श्री के पिता का नाम भवभंजनम् था। आप दोनों पति-पत्नी की अवस्था लगभग पैंतीस-चालीस वर्ष की हो चुकी थी। बताया जाता है कि आपके माता-पिता की दूसरी सन्तान नहीं थी। कुछ लोगों का मत है कि प्रज्ञा नाम की

एक बहन भी थीं, जो बाद में आपके प्रभाव में आकर संन्यासिनी होकर सन्तमण्डली में भ्रमण करती रही, जो आप से ज्येष्ठ थी। आप दोनों बहन-भाई मिलकर कबीर साहब के उपदेशों का खूब प्रचार-प्रसार करते रहे। आपका ग्राम सुरम्यपुरम् उटकमण्ड नामक नगर के पास में था, जो तमिलनाडु प्रदेश में विराजमान कहा जाता है। इस समय उक्त ग्राम का क्या नाम है हमें पता नहीं है, पर उटकमण्ड नगर के समीप ही कहा जाता है आप श्री का निर्वाण विक्रम सम्वत् १६०८ में मार्ग शीर्ष एकादशी के दिन हो गया। आप श्री के बनाये हुए कई ग्रन्थ बताये जाते हैं, जिनमें आत्मसम्बोधन नामक ग्रंथ बहुत ही महत्वपूर्ण बताया जाता है। जिसकी खोज जारी है। उक्त ग्रन्थ संस्कृत भाषा में सुना जाता है। अतः प्राप्त होने पर आप लोगों के समक्ष आ जायेगा, जिसमें विशिष्टाद्वैत एवं अद्वैत का समन्वय सूक्ष्मता से किया गया है।

पण्डित सर्वानन्द जी अपने समय के महान् दार्शनिक एवं सम्पूर्ण भारत और विश्व के दिग्विजयी विद्वान् थे, जिन्होंने कई बार तत्कालीन विश्व का भ्रमण भी किया था। अन्त में जब कोई विशिष्ट विद्वान् उनको पराजित नहीं कर सका तब अपने को सर्वाजीत नाम से प्रसिद्ध किया। अतः सर्वाजीत एक दिन अपनी माता से बोला, जो परम विदुषी थी और कहा कि माँ सभी लोग मुझे सर्वाजीत कहते हैं। परन्तु तुम मुझे पहले के नाम से ही उद्घोषित करती हो, इसका क्या कारण है ? बहुत से ग्रन्थों को मैंने पिता जी से एवं तुमसे भी सुना है और मेरी बुद्धि की तुमने बार-बार सराहना की है। अस्तु, जब संसार के विद्वान् मेरे समक्ष नतमस्तक हो गए तो मैंने अपना नाम सर्वाजीत रख लिया। यदि तुम्हें यह ज्ञात हो कि अभी कोई ऐसा जगत का विद्वान्, जो मेरे द्वारा पराजित नहीं हुआ है, तो उसे बताओ ? मैं उस धुरंधर वेद-वेत्ता को पराजित करके पुनः तुम्हारे चरणों का दर्शन करूँगा।

पंडित सर्वानन्द की बात को सुनकर माता कुछ देर तक मौन हो गई, तत्पश्चात् बोली की पुत्र तुम्हारे सदाचार एवं शील से मैं सदैव सन्तुष्ट रहती हूँ, परन्तु अभी एक महानतम पण्डित से तुम्हारा अभी दर्शन ही नहीं हुआ है; जो इस समय काशी में प्रगट हुए हैं, जिसको आज का संसार जानता है और वह कबीर के नाम से विख्यात है। क्या उस महामनीषी का दर्शन हुआ है ? यदि नहीं भी हुआ है, तो भी

मैं तुम्हें वहाँ जाने को नहीं कहूँगी। इसका कारण यह है कि वह महान् पण्डित शिव योगी के समकक्ष महान सिद्ध तथा योगी पुरुष है, जो तुमको मोहित कर लेगा। वह ऐसा पुरुष है कि जिसकी ओर अपनी सुदृष्टि फेरता है, वह व्यक्ति सहज ही में उसकी तरफ आकृष्ट हो जाता है। यदि वहाँ जाओगे, तो तुम मुझसे अलग हो जाओगे। इसलिए तुम वहाँ नहीं जाना, क्योंकि तुम मेरी अकेली संतान हो।

माता की इस प्रकार की बातों को सुनकर पंडित सर्वानन्द ने कहा कि माँ! मैंने कई बार काशी में जाकर वहाँ के दम्भी ब्राह्मणों को पराजित किया है, परन्तु किसी ने नहीं कहा कि कबीर महापण्डित है। मैंने सुना था कि वे महात्मा हैं। इसलिए मैं वहाँ नहीं गया, मुझे तो केवल पोथीवालों से काम था अतः हे माता तुझे कैसे ज्ञात हुआ? माता ने कहा कि पुत्र! जब तुम पश्चिम दिशा का भ्रमण कर रहे थे, उसी समय मैं तीर्थ करने के लिए निकली हुई थी और तीर्थाटन करते हुए काशी पहुंची तो कुछ लोगों से मैंने पूछ-ताछ की कि यहाँ पर कोई आध्यात्मिक महापुरुष हैं अथवा ये सभी कोरे शास्त्रीय पण्डित ही हैं? इस बात पर वहाँ के निवासियों ने बताया कि माता जी, इस समय यहाँ पर साक्षात् भगवान् शंकर ही हैं, जो कबीर नाम से प्रगट होकर अपनी नगरी की देखभाल कर रहे हैं। अतः मैंने उनका पूरा पता पूछकर जान ली और वहाँ गयी एवं भगवान् कबीररूपी शंकर का दर्शन किया, जो सदैव ध्यान मुद्रा में विलीन रहते हैं और बिना अधिकारी के बुलाए वे बोलते नहीं। मैंने उस भगवान् कबीर से सहज योग सीख ली है। वे मेरे परम गुरु हैं। उनका दर्शन करके मैं परम शान्ति को प्राप्त हुई हूँ। इस समय के वे साक्षात् महादेव हैं। वे कबीर अजन्मा, अविनाशी, अखंड, व्यापक और अद्वितोय हैं। उन्होंने केवल भक्तों के दुःखों का हरण करने के लिए ही अपना भक्त का रूप बनाया है। उनको देखने से ऐसा लगता है कि वे साक्षात् विष्णु ही हैं। इतना कहकर माता मौन हो गई।

अस्तु, माता की बातों को सुनकर पुत्र का मन कबीर साहब के दर्शन के लिए लालायित हो गया और उन्होंने माता से कहा–माँ! मुझे आज्ञा दो, मैं काशी जाऊँगा। माता जी ने कहा—बेटा तुम जा सकते हो। लेकिन वहाँ पर अभिमान नहीं करना, अन्यथा तुम्हारा अहित होगा। माता की आज्ञा पाते ही पण्डित श्री सर्वानन्द जी ने अपने सहयोगियों के साथ सोलह बैलों पर पुस्तकें लादकर काशी के लिए द्रविड़

से प्रस्थान कर दिया। बैलों पर जो पुस्तकें लदी थीं वे सब ताम्रपत्रों एवं भोजपत्रों पर लिखी हुई थीं। एक-एक पुस्तकें बहुत बड़ी-बड़ी लगती थीं जो शास्त्रार्थ में सहायक होती थीं। कुछ लोगों का मत है कि बैलों की संख्या १६०० थी जिस पर विजित एवं विजय के लिए पुस्तकें लदी थीं। परन्तु काशी कबीरचौरा मूल गादी के भूतपूर्व आचार्य मेरे गुरु श्री रामविलासदास जी साहब ने, जो कबीर पंथ के सिद्धान्त के चोटी के मर्मज्ञ एवं सिद्ध पुरुष थे, और जिनकी अनुकम्पा से मैंने इस कबीर चरित्र का ज्ञान प्राप्त किया, जिन्होंने अपनी ऋतम्भरा शक्ति के बल पर अनेक ऐसी कथाएँ बतलाई, जो अभी तक पंथ में एवं पंथ के बाहर के किसी लेखक ने नहीं लिखी है, वही श्री गुरुदेव ने मेरे पूछने पर कहा–वत्स ! सोलह सौ नहीं केवल सोलह बैल आए थे[1]।

अतः मैंने गुरुदेव की बात को प्रामाणिक मानकर केवल सोलह बैलों का ही उल्लेख किया है। पण्डित सर्वानन्द जी कुछ महीने के अथक परिश्रम के बाद श्री काशी जी में पहुँचे तथा उन्होंने अपने सहयोगियों सहित दशाश्वमेध घाट पर अपना शिविर लगाया। इसके बाद उन्होंने कबीर साहब के आश्रम का पता लगाया। अस्तु, जब काशी के ब्राह्मणों ने यह सुना कि आज दक्षिणी पंडित से कबीर का शास्त्रार्थ होगा, तो जितने गुरुदेव के प्राचीन विद्वेषी थे वे सभी दक्षिणी ब्राह्मण के साथ हो गए और परिहास करते हुए उक्त पण्डित के पीछे-पीछे चलने लगे। इस प्रकार कुछ ही देर में कबीर साहब के आश्रम पर पहुँच गए तथा सर्वप्रथम उन संतों के दर्शन हुए जिनके द्वारा सर्वानन्द जी ने सद्गुरु के यहाँ सूचना भेजी थी कि मैं द्रविण देश से आया हूँ। अतः दूर देश से आए हुए पण्डित जी का नाम सुनकर सद्गुरु कबीर अपनी पर्णकुटी से बाहर आये और पण्डित सहित सभी लोगों का स्वागत करने के बाद समाचार पूछते हुए उन्होंने आने का कारण पूछा। सद्गुरु की बातों को सुनकर पण्डित ने कहा कि मैं आप से शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ। साहब ने कहा कि आप से शास्त्रार्थ कौन करे।

आप तो स्वयंभू सर्वजीत हैं और मैंने वेद, शास्त्रों को तो पढ़ा नहीं है। इसलिए मैं आप से शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ। इस बात पर

---

१. कबीर का घर शिखर पर, जहाँ शिलहली गैल।
पाँव न टिके पिपीलिका, पंडित लादे बैल॥

बीजक, साखी।

सर्वानन्द जी ने कहा कि जब आप शास्त्रार्थ नहीं कर सकते हैं, तो आप अपनी पराजय स्वीकार कर लिख दीजिए। सद्‌गुरु ने कहा कि मैंने लेखनी न उठाने की प्रतिज्ञा की है। तुम अपने हाथों से स्वयं लिख लो कि कबीर की स्वीकृति को सुनकर विरोधी लोग प्रसन्नचित्त हो गए और वे सद्‌गुरु कबीर साहब की हँसी करने लगे। पंडित सर्वानन्द जी ने अपने हाथों लिखा कि कबीर साहब पराजित हो गए, सर्वानन्द जीत गये। इसके बाद स्वदेश के लिए पंडित सर्वानन्द जी ने प्रस्थान कर दिया और घर पहुँच कर उन्होंने अपनी माता को सारी बातें कह सुनाईं। माता ने कहा कि लाओ देखें कहाँ विजय पत्रिका है। माता की आज्ञा पाकर प्रसन्नचित्त सर्वानन्द जी ने विजय पत्रिका दिखला दी, जिस पर लिखा था, सर्वानन्द पराजित एवं कबीर साहब विजयी। साक्षियों एवं विरोधियों के नाम भी थे, जिन्होंने लिखा था। इस पर माता ने कहा कि पुत्र असत्य क्यों बोल रहे हो ? इस पर तो कबीर की जीत लिखी हुई है और तुम्हारी हार। इस प्रकार माता कल्याणी की बात सुनकर और स्वयं देखकर श्री सर्वानन्द जी आश्चर्य चकित हो गए और मन में उन्होंने स्वीकार कर लिया कि कबीर साधारण मनुष्य नहीं हैं। माता जी ने कहा कि बेटा ! मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि वहाँ अभिमान नहीं करना। इस घोर अपराध से मुक्ति पाने के लिए सद्‌गुरु कबीर की शरण में जाओ।

माता कल्याणी देवी की आज्ञा पाकर पंडित श्री सर्वानन्द ने पुनः काशी के लिए अकेले ही प्रस्थान किया और वे काशी में सद्‌गुरु के आश्रम पर पहुँच गये। यहाँ पहुँचने पर पण्डित श्री सर्वानन्द जी ने देखा कि सद्‌गुरु कबीर नहीं हैं। उस दिन वहाँ कोई भी सन्त नहीं था। संत मण्डली के साथ सद्‌गुरु कबीर वहाँ से लगभग २०० हाथ की दूरी पर पण्डित को विमोहित करने के लिए सो रहे थे और इधर पण्डित जी पर्णकुटी के पास चिन्ताग्रस्त खड़े थे तब तक पूर्व से कबीर साहब का एक परिचित व्यक्ति आया और पूछा कि आप किसको चाहते हैं ? पण्डित सर्वानन्द जी ने कहा कि मैं सद्‌गुरु कबीर का दर्शन करना चाहता हूँ। उक्त व्यक्ति पण्डित को जिज्ञासु जानकर बोला—देखो कबीर साहब उत्तर तरफ सन्तों के साथ सोये हुए हैं, चले जाओ।

उक्त व्यक्ति के संकेतों की तरफ सर्वानन्द जी चल पड़े और वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि पचोसों व्यक्ति गंभीर निद्रा में सोये हुए हैं,

जिसमें कबीर साहब को पहचानना कठिन था। सभी लोग चादर ओढ़े हुए थे, जहाँ पर घंटों पण्डित सर्वानन्द जी खड़े होकर कबीर जी ! कबीर जी ! पुकारते रहे, परन्तु कोई नहीं जागा। इस पर पण्डित के मन में क्रोध आया और एक व्यक्ति को उन्होंने दो थप्पड़ मारा। पहले बतलाने वाला व्यक्ति अपना अभीष्ट कार्य करके जा रहा था, जिसने देखा कि वह व्यक्ति कबीर साहब को मार रहा है, जिसको मैंने बतलाया था। इसे देखकर वह वहीं से दौड़ते हुए बोला अरे भाई वही कबीर साहब हैं, जिन्हें तुम मार रहे हो। ऐसा अपराध क्यों कर रहे हो ? तब तक सद्गुरु कबीर भी जाग गये और उन्होंने अपने सामने पण्डित को देखा, उसके पीछे उनका परिचित व्यक्ति भी खड़ा होकर परिचय दे रहा था। अतः जब सर्वानन्द जी को पूर्ण विश्वास हो गया कि मैंने कबीर साहब को ही मारा है, तो लज्जा के कारण शून्य सा हो गये और पुनः सचेत होकर कबीर साहब के चरणों पर गिर पड़े तथा अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे ! सद्गुरु ने देखा कि यही पंडित एक महीने पूर्व मेरे यहाँ से अपनी जीत लिखाकर ले गया था।

साहब ने कहा कि अरे भाई ! क्यों क्षमा माँगते हो ? उसन कहा कि मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है। मेरे जीवन में ऐसी गलती कभी नहीं हुई थी। इसलिए मेरे इस घोर अपराध को क्षमा कीजिए। साहब ने कहा कि अभी आप तो यहाँ से विजय प्राप्त करके गये थे। पुनः मेरे यहाँ किस कार्य के लिए आये हो ? पंडित सर्वानन्द जी ने कहा कि प्रभो ! मैं आपका शिष्य बनने आया हूँ तथा यहीं आपके पास रहकर आपकी सेवा करूँगा। साहब ने कहा कि तब तो आप ने कोई अपराध नहीं किया है, क्योंकि संसार में लोग एक पैसे की हंडी को लेते हैं और उसे बीसों बार ठोकते हैं जिसमें एक दिन भी चलने की आशा नहीं रहती है और आप तो मुझे जीवन भर के लिए गुरु बना रहे हैं, आप ने तो मुझे दो ही बार ठोका है।

अस्तु, सद्गुरु कबीर की महत्वपूर्ण बात को सुनकर पण्डित सर्वानन्द जी घोर लज्जा में डुब गये और अपने किए हुए पर चिन्ता करने लगे। पंडित को शोकाकुल जानकर सद्गुरु ने उन्हें समझाया। अन्त में उन्हें अपना शिष्य बना लिया तथा आत्मज्ञान का उपदेश दिया। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण पंडित सर्वानन्द जी थोड़े समय में ही गुरु के उपदेश से युक्त होकर साहब के साथ भ्रमण करने लगे। प्रतिदिन सत्संग होता रहा

और इसी संदर्भ में सद्गुरु कबीर ने एक भण्डारे का आयोजन किया और बोले कि संतों को धन संग्रह नहीं करना चाहिए। इसलिए जो अन्न संग्रह हुआ है, वह दीन दु:खियों को बाँट देना चाहिए। ऐसा सोचकर भण्डारा की तिथि निश्चय की गई और चारों ओर घोषित कर दिया गया कि अमुक दिन को कबीर के यहाँ भंडारा है, जिसे सुनकर लोगों में प्रसन्नता हुई। लोग कहने लगे कि कबीर जैसा भण्डारा किसी का नहीं होता है। अतः समय आने पर चलना होगा। भंडारा का नाम सुनकर भक्तों के द्वारा चारों ओर से भोजन-सामग्री आने लगी, जिसमें हजारों लोग खा सकते थे। चारों ओर भंडारा का धूम-धाम होने लगा।

इसी संदर्भ में विरोधी ब्राह्मण बड़ी संख्या में आकर रात्रि के समय सारा सामान चावल, दाल, आटा आदि उठा ले गये, केवल पत्तल एवं लकड़ी बच गई। प्रातः होते ही शिष्यों ने आश्रम में देखा तो कोई भी भोजन-सामग्री नहीं रह गई। उक्त समाचार चारों ओर फैल गया। आस पास के लोगों ने आकर देखा, तो सारा सामान गायब है। सभी सामान को चोर उठा ले गए थे। शिष्यों ने सारा समाचार सद्गुरु को सुनाया। साहब उक्त समाचार को सुनकर हँसने लगे और बोले कि तुम लोग पत्तल एवं लकड़ी उठा करके शत्रुघ्न पंडा, परशुराम पंडा, जगन्नाथ पंडा तथा रामचरन पंडा के यहाँ दे आओ और कह दो कि महाराज आप पत्तल एवं लकड़ी कहाँ पायेंगे, लीजिए कबीरदास ने इसे भेजा है। अतः शिष्यों को देखकर एवं उनके मुख से सुनकर पंडों के मन में भ्रम व्याप्त हो गया कि कहीं कबीर का शिष्य राजा वीरदेव सिंह न सुन लें नहीं तो वह हम लोगों का सर्वनाश ही कर देगा या नगर से निष्कासित कर देगा। चलो कबीर दास जी को सारा सामान देकर क्षमा माँग लें।

पण्डे लोग उक्त विचार-विमर्श करने के बाद सभी सामान को ले जाकर साहब के सामने रखकर क्षमा याचना करने लगे। साहब ने कहा कि आप लोगों ने बड़ी कृपा की है, जो प्रपंच मुझे करना था उसे आप लोगों ने दूर कर दिया, अब इसको ले जाइए। सभी पण्डे, साहब के पैरों पर गिर पड़े और रोने लगे। साहब ने देखा कि सभी पंडों के मन से अभिमान दूर हो गया। इसलिए छोड़ दिए जायँ। पण्डों की बुद्धि शुद्ध हो गई और श्री राम जी के भक्त हो गए और अन्त में मुक्ति को प्राप्त हुए। यह घटना श्री सर्वानन्द के शिष्य होने के आस-पास की है, इसलिए उनके प्रसंग में इसे जोड़ दी गई है।

इस प्रकार सर्वानन्द शिष्य बने और उनका नामकरण (गुरु कुल का) श्रुतिगोपाल हो गया और वे भी सन्त मण्डली में शामिल हो गए एवं शांतिपूर्वक रहने लगे।

अब आइए उधर द्रविड़ क्षेत्र में चलें जहाँ पर सद्‌गुरु योगाजीत को शिष्य बनाकर एवं जीवन मुक्त पद प्रदान कर अन्य लोगों को ज्ञान का उपदेश दे रहे थे और शरणागतों को सत्य मार्ग में दीक्षित कर रहे थे। कहीं-कहीं पर कट्टरपंथियों का सामना भी करना पड़ रहा था, जो सहज में ही धराशायी होकर सत्य धर्म वैष्णवधर्म को स्वीकार कर लेते थे। अतः आंध्र, केरल, तैलंगाना, मैसूर, मद्रास के अनेक संभागों में सत्य धर्म का प्रचार करते हुए लोगों को राम भक्ति एवं वैष्णव बनाते हुए मद्रास के एक मनोरम ग्राम अलन्ट पुरम् में संत मण्डली के साथ सद्‌गुरु रुके हुए थे। इसी संदर्भ में एक शैव सिंह की जमात लिए हुए चला आ रहा था, जिसके तीन नेत्र थे, जो मुख से अग्नि का गोला उगल रहा था। ऐसा लगता था कि सभी संतों को भस्म कर देगा। थोड़ी ही देर में वह संत मण्डली के पास आ गया और उसने चारों ओर से संतों को घेर लिया। सद्‌गुरु को अपशब्द कहने लगा और बोला कि तुम शिव का अपमान कर रहे हो। यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो तुम्हें और तुम्हारे शिष्यों को सिंह को खिला दूँगा। इस बात पर साहब ने कहा कि सब राम है। भला राम को राम कैसे खाएँगा। इतना कहकर उन्होंने अपने जलपात्र से जल लिया और सभी के ऊपर छिड़क दिया। जल छिड़कते ही सभी सिंह मनुष्य देहधारी होकर सद्‌गुरु के चरणों पर गिरकर स्तुति करने लगे और सभी को गुरुदेव ने राम मंत्र दे दिया। उधर जो शैव था, उसने भी आकर सद्‌गुरु से क्षमा माँगी और बोला प्रभो! मेरा उद्धार कर दीजिए। मैंने अज्ञानता से सिद्धि के वश में आकर आपका अपमान किया है। साहब ने कहा कि जाओ छह महीने तक तन-मन एक करके श्रीराम नाम का जप करो, तभी तुम्हें प्रभु का प्रसाद प्राप्त होगा। अतः उक्त शैव ने कबीर साहब के चरणों पर गिर कर इच्छित स्थान के लिए प्रस्थान कर दिया।

कर्मकाण्डियों का मान-मर्दन

उक्त घटना को देखकर सभी उपस्थित लोग साहब का जय-जयकार करने लगे। इसके बाद राम नाम का जप करते हुए सद्‌गुरु कबीर सन्त

मण्डली के साथ उक्त ग्राम से उत्तर की ओर मुड़े। रामभक्ति का प्रचार करते हुए ज्यों ही कुछ योजन पर पहुँचे त्यों ही आचारी सम्प्रदाय का एक आश्रम मिला, जिसको तोतादरी के नाम से जाना जाता था। जहाँ पर बहुत से संत-महात्मा निवास करते थे। उक्त स्थान को वैष्णव मठ समझकर सद्गुरु ने आदेश दिया कि आज यहीं पर रात्रि बिताई जाय। संत-मंडली के रुक जाने पर स्थान के मठाधीश महंत आकर सद्गुरु से मिले और उन्होंने कुशल क्षेम पूछा। दोनों ओर से अभिवादन होने के बाद संत-मंडली सद्गुरु सहित राम-नाम में लीन हो गयी। उधर महंत जी ने आश्रम में जाकर अपने सहयोगियों से विचार-विमर्श किया और कहने लगे कि कबीर तो जुलाहे हैं और उनकी मंडली में अधिकतर संत शूद्र ही हैं। भला उनके साथ बैठकर कैसे भोजन किया जाएगा ? और वैष्णव के नाते भोजन आने पर देना नितान्त आवश्यक है। यदि लोगों को अलग खिलाया जाय, तो वे लोग अपना अपमान समझेंगे और एक साथ खाने से वर्णाश्रम का धर्म नष्ट हो जाएगी। इस प्रकार के ऊहा-पोहमें श्री महंत जी महाराज पड़े हुए थे। तब तक तोतादरी मंदिर का एक पुजारी, जो महंत जी के साथ सदैव रहता था, उसने एक युक्ति विचारी कि कबीर जी से कहा जाय कि जितने संत शुद्ध-शुद्ध गायत्री मंत्र का जप करते हों वे लोग एक पंक्ति में बैठें और जो लोग गायत्री का शुद्धोच्चारण न कर सकते हों वे अलग और दूसरी पक्ति में बैठें। पुजारी का आशय यह था कि कबीर जी की मण्डली में संस्कृत के जानने वाले ब्राह्मणों को छोड़कर दूसरे लोग नहीं हैं।[1] इसलिए उक्त युक्तिसे धर्म बच जायगा। पुजारी की युक्ति युक्त बात सुनकर श्री महंत जी ने कहा बहुत अच्छा। चलो कबीर जो महाराज से कहा जाय कि भोजन कर लें, क्योंकि दोनों ओर पूजा-पाठ हो गया है। ऐसा कहकर वे पुजारी के साथ संत-मंडली के पास गए और उन्होंने उपर्युक्त विचार को सुनाया। श्री महंत जी के वचनों को सुनकर सद्गुरु कबीर ने उनके रहस्य को जान लिया और कहा बहुत अच्छा। कबीर साहब ने कहा आपके आश्रम में जितने संत है क्या वे वेद मंत्रों का शुद्ध-शुद्ध उच्चारण कर लेते हैं ? महंत जी ने कहा हाँ, कर लेते हैं।

---

१. पुजारी का अभिप्रायः यह था कि कबीर की मंडली में कोई ब्राह्मण तो है नहीं, अतः न कोई वेद पढ़ सकेगा और न ही पंक्ति में बैठेगा।

इस पर सद्गुरु कबीर ने कहा कि क्या वेद मंत्रों को पढ़ने वाले ही शुद्ध होते हैं ? इस पर महन्त जी ने कहा—हाँ, वेद ईश्वर के द्वारा प्रकट किये गये हैं, इसलिए वे ईश्वर की वाणी हैं। बिना वेदों के पढ़े मनुष्य शुद्धता को प्राप्त नहीं होता। इतना कहकर महन्त जी मौन हो गये। सद्गुरु ने कहा–क्या यह भैंसा, जो सन्तों का आसन-वासन ढोता है वह भी वेद मंत्रों का उच्चारण करने से शुद्ध हो जायेगा ? श्री महन्त जी ने कहा कि भैंसा को वेद मंत्र उच्चारण करना पशु होने से सम्भव नहीं है। साहब ने कहा ईश्वर सर्व शक्तिमान है, सम्भव से असम्भव और असम्भव से सम्भव कर सकता है। इतना कहकर सद्गुरु कबीर अपने दाहिने हाथ से भैंसा का स्पर्श किया, तदुपरान्त भैंसा दिव्य ज्ञान से युक्त हो गया और वेद ऋचाओं का उच्चारण करने लगा। उक्त घटना से सन्त मंडली आश्चर्य में पड़ गयी और बार-बार सद्गुरु कबीर का जय-जयकार मनाने लगी। उस समय सद्गुरु का तेज इतना बढ़ गया कि उनकी ओर किसी को देखना कठिन हो गया। मालूम होता था कि उनके शरीर से किरणें निकल रही हैं। चेहरा लाल हो गया, आखें फड़क रही थीं, मानों अचारिओं के अज्ञान को तत्काल भस्म कर देंगे। सद्गुरु के उक्त स्वरूप को देखकर पंडित श्रुति गोपाल साहब एवं श्री रविदास जी जाकर साहब के चरणों पर गिर पड़े और बोले कि हमलोगों को तथा इन अचारिओं को अभय प्रदान कीजिये। उधर अचारी लोग घबड़ा गये और भयभीत होकर काँपने लगे। अचारिओं की उक्त दशा को देखकर सद्गुरु कबीर ने सान्त्वना देते हुए कहा—आप लोग भयभीत न हों, प्रभु आपकी रक्षा करेगा। आप लोगों में बहुत बड़ा भ्रम है, भला कहिये आप के आदि आचार्य-षष्ठकोपाचार्य कौन थे ? श्री त्रिकाल कौन थे ? आदि पूर्व के आपके आचार्य कौन वेद पढ़े थे। अतः आप लोग वैष्णव समाज को कलंकित कर रहे हैं। आप द्वैत भावना से आवृत हैं। इसलिए प्रभु आप से दूर रहते हैं। आप लोग ईश्वर को केवल ब्राह्मणों में ही निवास मानते हैं। इसीलिए हम सन्तों के साथ द्वैत व्यवहार कर रहे हैं, जाइये आप लोग भोजन-भजन कीजिये। अब हम लोग यहाँ से अन्यत्र चले जाते हैं, जहाँ पर मनुष्यों में भेद-भाव बरता जाता हो, ऐसे लोगों से हम सन्त लोग दूर ही रहते हैं। हमलोग तो प्राणी मात्र में ईश्वर की सत्ता का दर्शन करते हैं। इसलिए किसी प्राणी से दुराव नहीं रखते। इतना कह कर सद्गुरु कबीर ने भैंसा के

ऊपर से अपना हस्त कमल हटा लिया। भैंसे ने हाथ को हटाते ही वेद मंत्रों का उच्चारण करना बन्द कर दिया। सद्गुरु के आदेशानुसार सन्त मंडली ने अपने आसन-वासन को बाँधकर चल दिया। सन्तों को अपने आश्रम से जाते देखकर अचारिओं में कोलाहल मच गया। सभी अचारी लोग दौड़ कर सद्गुरु कबीर के चरणों पर गिर पड़े और बोले—प्रभु ! हमलोगों ने अज्ञान से विमोहित होकर आप सन्तों के साथ दुर्व्यवहार किये हैं, परन्तु आप की असीम अनुकम्पा से आज हमलोगों का अज्ञान दूर हो गया।

अब हमलोग बैठकर एक साथ भोजन-भजन करें। साहब ने अचारिओं को निराभिमानित जानकर उनके अपराधों को क्षमा कर दिया। अचारियों के आग्रह पर सन्त मंडली पाँच दिन तक तोताद्रि में सत्संग-वार्ता सुनाती रही। उनके प्रभाव से अचारी लोग शुद्धाद्वैत वैष्णवधर्म के अनुसार आचरण करने लगे। इस प्रकार वहाँ के आस-पास के नगरों के लोगों ने सद्गुरु एवं सन्तों के उपदेश को बड़े प्रेम से सुना और जीवन मुक्त को प्राप्त हो गये। इधर सद्गुरु ने अचारिओं से विदा ली और उन्होंने मद्रास, केरल तथा कर्नाटक के प्रत्येक गाँव एवं नगरों में जा-जाकर श्री राम भक्ति का प्रचार किया और सभी को वैष्णव बनाकर उक्त सम्भागों से सन्त मंडली उत्तर दिशा की ओर चल पड़ी। श्रीराम भक्ति का उद्घोष करती हुई संत मंडली ने आन्ध्र प्रदेश में पदार्पण किया। वहाँ पर महीनों रह कर प्रत्येक ग्राम एवं नगर के निवासियों को उसने सदुपदेश दिया। आन्ध्रप्रदेश के लोगों को वैष्णव धर्म में दीक्षित कर, वहाँ से मण्डलो समुद्रतट से होती हुई वन-पहाड़ों को लाँघती हुई उत्कल प्रदेश में प्रविष्ट हुई।

उत्कल प्रदेश में श्री भक्ति का प्रचार

वहाँ पर बड़े-बड़े धार्मिक नेताओं से समागम हुआ। उधर मद्रास के लोग साहब को अपनी सीमा तक पहुंचाकर अपने-अपने घरों को चल दिए।

उत्कल प्रदेश में सद्गुरु कबीर श्री हरि भक्ति का प्रचार करते हुए वन्य पहाड़ी क्षेत्रों का दर्शन करते हुए, सभी को वैष्णव बनाते हुए उत्कल के उस इलाके में आये जहाँ पर ब्राह्मण लोग विद्याध्ययन का बड़ा महत्त्व मानते थे। वह स्थान पुरी के समीपस्थ था, जहाँ पर ब्राह्मणों

की एक बड़ी वस्ती थी, जो भुवनेश्वर के अंचल में ही पड़ती थी। उसी वस्ती के पास गुरुदेव कबीर संत मण्डली के साथ रुके हुए थे। सद्गुरु को वहाँ आया हुआ जानकर उक्त ग्राम के ब्राह्मण शास्त्रार्थ करने की दृष्टि से गुरुदेव के पास आये और बोले कि हम लोग आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। साहब ने कहा कि मैं वेद-शास्त्र नहीं पढ़ा है। इसलिए आप लोग मुझसे कैसे शास्त्रार्थ कर सकते हैं? मैं तो राम की भक्ति का प्रचार करता हूँ तथा श्री हरि के नामों का गुणानुवाद करता हूँ। श्रुति गोपालदास जी का विचार हुआ कि मैं शास्त्रार्थ करूँ, परन्तु साहब ने उन्हें रोक दिया।

साहब की बात को सुनकर ब्राह्मणों ने कहा कि जब आप पढ़े लिखे नहीं हैं, तो धर्म का अर्थ क्या जानेंगे? और जब तक आप वेद नहीं पढ़ेंगे तब तक आत्मतत्त्व का रहस्य भी नहीं जान सकते? ब्राह्मणों की बात को सुनकर साहब ने कहा कि यदि वेद गर्दभ पढ़ ले, तो क्या वह आत्म-तत्त्व जान जएगा? कबीर साहब की इस बात पर ब्राह्मणों ने कहा कि गर्दभ पशु योनि में होने के कारण वेद पढ़ने में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए आपका उपर्युक्त वक्तव्य असंगत है। सद्गुरु ने कहा कि पशु, पशु नहीं होता। पशु तो अविवेकी पुरुष है। यदि आप लोग वेद पढ़ने से ही आत्मज्ञानी होना मानते हैं, तो धैर्य धारण कीजिए मैं अभी गर्दभ-नाथ से वेद पढ़वाता हूँ। यह सुनकर ब्राह्मण परिहास करने लगे और वेद-वचन बोलने लगे। इधर साहब ने धोबी के घर से एक स्वस्थ गर्दभ को मँगाया और उसके पीठ पर अपने कर कमल को रख दिया। बस, वह गर्दभ तुरन्त वेदों की ऋचाओं का उच्चारण करने लगा। सद्गुरु ने कहा कि ब्राह्मणों! अब आप लोग गर्दभनाथ से शास्त्रार्थ कीजिए। अस्तु, कहिए गर्दभनाथ आत्मज्ञानी हो गए? उक्त चमत्कार को देखकर सभी लोग अवाक् रह गए। जितने ब्राह्मण थे वे सबके सब भयभीत होकर घवड़ा गए। अन्त में गुरुदेव के कमलवत् चरणों पर गिरकर क्षमा याचना करने लगे और अनेक प्रकार से विनय करके स्तुति करने लगे।

साहब ने कहा कि अब आप लोग पवित्र बुद्धि को प्राप्त हो गए हैं। पहले का जैसा संस्कार रहता है उसी के अनुसार मनुष्य आचरण करता है। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। उठिए मेरा पैर छोड़िए। श्री राम नाम का जप कीजिए। मनुष्य के हृदय में जब तक तमोगुण का संचार

रहता है तब तक श्रीराम की भक्ति हृदय गुहा में उदित नहीं होती और बिना भक्ति के आत्म-साक्षात्कार हो सकता। आत्मज्ञान केवल श्रीहरि की कृपा से ही प्राप्त होता है। आत्मज्ञान न तो वेदपाठी होने से प्राप्त होता है और न ही यज्ञ आदि कर्मकाण्ड करने से। आत्मज्ञान केवल आत्मविद् सद्गुरु एवं श्रीहरि की प्राप्ति से ही संभव है. अन्यथा क्रिया कलाप मनोरंजन का विषय है, जिसमें आप लोग फँसे हुए हैं। जब तक आप लोग वेदशास्त्र के शिकञ्जे से बँधे हुए हैं, तब तक आप लोगों को परमार्थ का दर्शन होना दुर्लभ है।

इसलिए उपर्युक्त क्रिया-कलापों का परित्याग करके श्रीहरि का ध्यान कीजिए और दूसरे क्रिया-कलापों के चक्कर में न पड़ें, नहीं तो सांसारिक बंधन से मुक्त होना संभव नहीं है। इस प्रकार साहब की अमृतरूपी वाणी को सुनकर सभी लोग कृत-कृत्य हो गये। उपर्युक्त चमत्कार को सुनकर पचासों कोश से लोग दर्शनार्थ आने लगे। अपार जन-समुदाय के मध्य में गुरुदेव सत्य का मार्ग बतलाने लगे। सभी लोग ध्यान मग्न होकर सुन रहे थे। कहीं किसी को कुछ संदेह नहीं होता था। सभी लोग मृग के समान ध्यानस्थ थे और लोग सद्गुरु के उपदेश को सुनकर वैष्णवधर्म को ग्रहण करने लगे। इस प्रकार उस प्रदेश के समस्त लोग सद्गुरु कबीर साहब के वचनामृत से तृप्त हो गये। लोग गुरुदेव से वैष्णव संन्यास लेकर श्रीराम के अनन्य भक्त होकर, साहब के चरणों की सेवा करते रहे।

उक्त त्यागी शिष्यों में कुछ के नाम इस प्रकार हैं—श्री जगरदत्त, बाद में श्री जागू साहब ने नाम से प्रसिद्ध हुए और जिनकी गादी कटक में बनी थी। किसी कारणवश कटक के महाराजा से मतभेद हो गया। इसके बाद में उनके शिष्य गण वहाँ से चलकर विद्दूपुर ग्राम में अपना स्थान बनाकर जागूवाली गादी की स्थापना की, जो आज भी विराजमान है। इसी प्रकार पं० आत्माराम उपाध्याय, श्री आदित्यनाथ त्रिपाठी, मदनदेव त्रिपाठी आदि बहुत से त्यागी शिष्य हो गये, जो बाद में दूसरे नामों से प्रख्यात हुए। अतः साहब की महिमा उत्कल प्रदेश में चारों ओर फैल गई। सभी लोग जय कबीर ! जय कबीर ! कहने लगे।

जगदीश मंदिर का समुद्र से संरक्षण

जहाँ पर गुरुदेव रुके थे वहाँ से लगभग पाँच योजन पर ही श्री

जगन्नाथ जी का मंदिर था। वह समुद्र के तट पर वना था और उस मंदिर को समुद्र की लहरें क्षतिग्रस्त कर देती थीं। वहाँ के राजा इन्द्र-दमन के वंशजों को सदा कठिनाई का सामना करना पड़ता था। सुना जाता है कि भगवान् जगन्नाथ जी के मंदिर को महाराज इन्द्रदमन ने ही बनवाया था, जिसको समुद्र के कारण प्रतिवर्ष सुधार करवाना पड़ता था। अस्तु, साहव का उत्कल प्रदेश में आगमन सुनकर राजा इन्द्रदमन के वंश का तत्कालीन राजा अपने राजगुरु एवं मंत्रियों के साथ, जहाँ पर साहब रुके थे, वहाँ पर दर्शन करने के लिए आया और विधि-विधान से गुरुदेव कवीर का पूजन करके उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। जिस प्रकार से राजा ने सद्गुरु को साष्टांग प्रणाम किया उसी प्रकार से राजा के राजगुरु ने भी तत्पश्चात् राजा का परिचय गुरुदेव से कराया गया। गुरुदेव ने राजा का समादर किया तथा उन्हें उच्चासन दिलवाया। इसके वाद सद्गुरु बोले कि राजन्! बैठो, परन्तु राजा उक्त आसन पर नहीं वैठा। जैसे जनसाधारण वैठे थे उसी प्रकार से राजा भी बैठ गया।

साहव ने देखा कि यह राजा है, बिना अर्थ के मेरे यहाँ आने का कोई कारण नहीं है। यद्यपि साहव अन्तर्यामी थे, राजा के आने का कारण जान गए थे, परन्तु लोक व्यवहार की दृष्टि से आने का कारण पूछना आवश्यक था। साहव ने पूछा कि राजन्! मेरे यहाँ आने का क्या कारण है? राजा ने खड़ा होकर और हाथ जोड़कर कहा कि प्रभो! मैं चाहता हूँ कि आप मेरे धाम को शुद्ध करें। साहब ने कहा कि राजन्! मैं राजाओं एवं महाराजाओं के यहाँ नहीं जाता। मैं तो केवल दीन-दुःखियों के यहाँ जाता हूँ। तुम आये हो, तो अपने आने का कारण कहो! राजा ने बहुत अनुनय-विनय किया और कहा—प्रभो! मैं भी गरीब ही हूँ। राजा होने से मैं राजा नहीं हूँ। राजा तो केवल परमेश्वर हैं और दूसरे राजा आप सव संत हैं। अतः राजा धर्मपाल ने बहुत अनुनय विनय किया और कहा—प्रभो! मेरे यहाँ चला जाय। अस्तु, सद्गुरु कवीर ने राजा की श्रद्धा को देखकर कहा—राजन् चलो।

अतएव उक्त समाज से विदा लेकर, जाते समय सद्गुरु कवीर ने सभी लोगों से कहा कि आप लोग राम की भक्ति करें। यही मेरी शिक्षा है। ऐसा कहते हुए सद्गुरु कवीर राजा के साथ चल दिये। राजा ने सद्गुरु से बहुत कहा कि प्रभो! पालकी पर चलें। साहव ने इसे अस्वी-

कार कर दिया और कहा कि मेरे पैर ही पालकी हैं। अन्ततोगत्वा सद्गुरु कबीर और राजा पैदल ही चल पड़े। वहाँ जाकर गुरुदेव ने राजा को सपरिवार राम भक्ति का उपदेश दिया तथा राजा की प्रार्थना पर समुद्र तट पर, जहाँ जगन्नाथ जी का मंदिर था, वहाँ गये। वहाँ जाकर सद्गुरु कबीर ने देखा कि समुद्र अत्यन्त वेग से अपनी लहरों को बहुत ऊपर उछालते हुए आ रहा है। साहब ने राजा से कहा कि यह भगवान का मंदिर है और उन्हीं की पुरी भी कही जाती हैं, यहाँ पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखना चाहिए। जो भी भक्त यहाँ आवें उन सभी का प्रसाद लेकर सभी को बाँट देना परमावश्यक है और यह कार्य सदैव चलता रहे तभी आप लोगों का मनोरथ पूर्ण होगा, अन्यथा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। साहब की इस आज्ञा को राजा एवं उसके पुजारियों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार उक्त आदेश को देकर साहब समुद्र तट पर गए। उधर समुद्र साहब को आते देखकर अपनी उत्ताल तरंगों से युक्त होकर सद्गुरु की ओर बढ़ा। ऐसा लगता था कि समुद्र सारे विश्व को अपने उदर में समाविष्ट कर लेगा। इस प्रकार समुद्र का रूप देखकर, जो साहब के साथ हजारों व्यक्ति थे, वे सभी पीछे की ओर हट गए। उस भीड़ को अपने पास से हटते हुए देखकर साहब ने कहा कि यहाँ से हटो मत, ये प्रलयकालीन उत्ताल तरंगें तुम्हारा कुछ नहीं कर पायेंगी। सद्गुरु ने अपनी ओर समुद्र को भयानक रूप धारण किए तथा घोर गर्जन-तर्जन करते हुए आते देखकर कहा कि शान्त हो जाओ। इतना कहकर सद्गुरु ने अपने हाथ की खंती आगे कुछ दूर पर जाकर गाड़ दी और अपने आप शान्त भाव से खड़े हो गए। तत्पश्चात् समुद्र की लहरें आईं और साहब के चरणों का स्पर्श करके चली गईं। लहरों के चले जाने पर दिव्य रूप धारण किए हुए समुद्र आया और साहब का पूजन किया। अपने अपराधों की क्षमा के लिए समुद्र ने साहब से याचना की। साहब ने कहा कि तुम्हारा कल्याण हो! आज से तुम यहाँ से आगे नहीं बढ़ना। भगवान जगन्नाथ जी के मंदिर को क्षतिग्रस्त मत करना।

इस बात पर समुद्र ने कहा कि प्रभु त्रेता युग में मेरा अपमान हुआ है। इसलिए मैं अपने अपमान का प्रतिशोध करता हूँ। साहब ने कहा कि यह तुम्हारा भ्रम है। मैंने तुम्हें संसार के हित के लिए बनाया है। मैं ही संसार के हित के लिए माया से आवृत्त होकर आता हूँ और

संसार के भूले हुए प्राणियों को शुभ मार्ग दिखलाता हूँ। मेरे आने के अनेक कारण हैं। इस समय मैं कबीर नाम से प्रकट हुआ हूँ। इस वार मुझे लोग अवतार के रूप में नहीं मानेंगे, मुझे लोग भक्त के नाम से ही जानेंगे, क्योंकि असुरों को छलने के लिए मैंने अवतार का खण्डन किया है और असुर लोग मुझे अदेहि कहकर मेरी प्रतिमाओं का खण्डन कर रहे हैं, जिसे भक्त लोग ध्यान के लिए मेरी प्रतिमा के माध्यम से मेरा स्मरण करते हैं। मेरा कोई रूप नहीं है। मैं सत्, चित् और आनंद कहा जाता हूँ, परन्तु मैं क्या हूँ यह मैं ही जानता हूँ। मैं सर्व समर्थ हूँ। रूप अरूपमय दोनों मुझे जानो। जो मेरे सगुण रूप का भजन करता है वह, और जो मेरे अनन्त स्वरूप का चिन्तन करता है वह भी मेरे को ही प्राप्त होता है। परन्तु असुर लोग मुझे एक देशीय मानकर सातवें आकाश पर मानते हैं, जो भ्रामक है और मेरे सरल-चित्त भक्तों को दुःख देते हैं।

हे जलनिधे! जो मुझे जिस भाव से भजता है, उसी रूप में मैं उसको प्राप्त होता हूँ। देखो, मैं सर्वसमर्थ, सर्वव्यापक, अजन्मा और अविनाशी हूँ। मेरा आना-जाना कहीं से नहीं होता। मैं जन्म-मरण से परे अखण्ड एवं अखेद हूँ। केवल माया का सहारा लेकर आविर्भूत होता हूँ। साधारण जन्म लेने वाले प्राणियों की तरह मेरी चेतना विलुप्त नहीं होती। संसार में केवल दिखाने के लिए ही, मैं गुरु-शिष्य अथवा पिता-पुत्र का भाव लौकिक मर्यादा का पालन करने के लिए करता हूँ। वेदों का प्रकटीकरण मेरे ही निःस्वास से हुआ है। संसार को स्थिर रखने के लिए मैं ही सारे नियमों का निर्माण करता हूँ और वड़े-वड़े ज्ञानियों एवं भक्तों को मैं ही प्रकट करता हूँ, जिनके द्वारा संसार के प्राणियों को त्राण मिलता है।

साहव के उपर्युक्त वचनों को सुनकर समुद्र ने कहा कि प्रभो! सुनते हैं कि आप वेद-शास्त्रों की निन्दा करते हैं और आप ही कहते हैं कि वेदों को मैंने ही प्रकट किया है। इस विरोधयुक्त वक्तव्य का क्या रहस्य है? समुद्र की वात को सुनकर साहव ने कहा कि हे जलनिधे! देखो मैं वेद-शास्त्रों की निन्दा नहीं करता। वेद-शास्त्रों के नाम पर लोग बहुत अनर्थ करते हैं तथा अपनी मान्यताओं के अनुसार वेद-शाखा नाम से वहुत से उपनिषद् बना लिए हैं और कुछ धर्मशास्त्र भी, उसमें वर्णाश्रम

का निर्माण करके लोगों तथा समाज में वैषम्यता उत्पन्न कर दिये हैं। जो आपस में मतभेद होने का कारण है। किसी को अन्त्यज, किसी को शूद्र, किसी को ब्राह्मण, किसी को क्षत्रिय आदि नामों से घोषित करते हैं। अपने स्वार्थ के लिए किसी को ऊँच और किसी को नीच निरूपित किए हैं। तुम्हीं बताओ किसी को नीच कहा जाय तो वह कितना दुःखी होगा ? उसका प्रेम भला उस धर्म में कभी रह सकता है। जो धर्म यह कहता है, वेद सुनने वाले शूद्र के कान में शीशा पहना दो अथवा उसे तपस्या करते समय प्राणों से वंचित कर दो। ये अभागे शूद्र मंदिरों में जाने के अधिकारी नहीं हैं। भला ऐसे धर्म और समाज को कौन अपनाएगा ? देखो, इसी कारण दूसरे देशों के धर्मावलम्बी आकर भारत के अकिंचनों को एवं अपने स्वार्थ के लिए त्यक्त हुए लोगों को अपनी उदारता दिखलाकर स्वधर्म की तरफ आकृष्ट कर रहे हैं। धर्म तो सबकी चीज है न कि व्यक्तिविशेष या वर्ग विशेष का। पृथक्-पृथक् धर्म में अनेक नियम हो, ईश्वर भजन, वेदाध्ययन सभी के लिए अनिवार्य है, परन्तु स्वनिर्मित ग्रंथों के द्वारा स्वार्थियों द्वारा अपने वेद को सुनाकर सर्वसाधारण-जनसमूह को भ्रम में डाल रहे हैं।

उपर्युक्त असत्य वेदों का ही मैंने विखण्डन किया है, जो स्वार्थियों के लिए घातक हो रहा है। दूसरी तरफ असुर लोग कहते आ रहे हैं कि ईश्वर का अवतार नहीं होता और न ही उसकी कोई प्रतिमा ही होती है। इसलिए ईश्वर अवतारवादी लोग नास्तिक एवं काफ़र हैं। हे जलनिधे ! असुरों को ज्ञान नहीं है, यदि ज्ञान होता तो उक्त प्रकार की शंका नहीं करते। भला जो सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता और इस अनिर्वचनीय भुवन का निर्माण करने वाला है, क्या वह हजारों रूपों में नहीं बन सकेगा ? जब वह सर्व समर्थ है, तो वह जो चाहे सो कर सकता है। प्रकट होना, न होना और रूप बना लेना, यह सब उसके लिए कोई कठिन कार्य नहीं हैं। हे वारिधे ! वह कहीं आता-जाता नहीं है, केवल प्रतीत होता है। वह परमात्मा अविनाशी है, केवल माया से आवृत्त होकर अपनी सत्ता का प्रेषण करता है।

इसलिए हे अम्बुनिधे ! तुम मेरे स्वरूप को इस प्रकार से जानकर, मुझ से प्रतिशोध की भावना न रखो, अन्यथा तुम्हारा अहित होगा। मैं

जगत् के हित के लिए सब कुछ कर सकता हूँ[1] और तुम्हारे ऊपर जो सेतु मैंने बाँधा था वह कार्य के लिए ही, क्योंकि जब मैं मनुष्य बनकर आता हूँ, तो मेरा सारा आचरण मनुष्य ही जैसा होता है। यदि ईश्वर का रूप कहा जाय तो वैसा नहीं है, वह रूप में आता ही नहीं। वह कुछ नहीं कर सकता, जैसे बिना आधार के मंदिर आदि नहीं रुक सकते। उसी प्रकार से बिना माया के मैं कुछ करने में असमर्थ हूँ। साधारण प्राणी मेरी माया के वश में रहता है, लेकिन मैं अपनी माया के वश में नहीं रहता। वह मेरी माया मेरी ही वश में रहती है। इसलिए जो मैं आज्ञा करता हूँ वही वह मेरे सहयोग से करती है। माया ही मेरी शक्ति और मैं ही उसका आधार हूँ। इसलिए मैं और मेरी माया दोनों अपने-अपने स्थान पर सबल एवं शाश्वत हैं। माया मुझसे भिन्न होते हुए भी अभिन्न है। बिना माया की शक्ति के प्रत्येक प्राणी निर्बल हैं। इस प्रकार मेरे साथ समभाव रखकर हम दोनों का भजन करो। माया का भजन केवल मेरी

---

१. (क) आप कटोरा आपैं थारी, आपैं पुरिखा आपैं नारी ॥
आप सदाफल आपैं नींबू, आपैं मुसलमाँन आपैं हिन्दू ॥
आपैं मछ कछ आपैं जाल, आपैं धींवर आपैं काल ॥
कहै कबीर हम नाँहीं रे नाहीं, नाँ हम जीवत न मुवले माँहीं ॥
हम सब माँहि सकल हम माँहीं, हम थैं और दूसरा नाहीं ॥
तीनि लोक मैं हमरा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा ॥
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमहीं अतीत रूप नहीं रेखा ॥
हमहीं आप कबीर कहावा, हमहीं अपनाँ आप लखावा ॥
—कबीर-ग्रन्थावली, पृ० सं० २००, ३३१, ३३२।

(ख) हौं सबहिन में हौं मैं नाहीं। मोहि बिलग बिलग बिलगाइल हो ॥
ओढ़न मोरा एक पिछोरा। लोग बोलैं एकताई हो ॥
एक निरन्तर अन्तर नाहीं। ज्यौं शशि घट जल झाँई हो ॥
एक समान कोइ समझत नाही। जाते जरा मरण भ्रम जाई हो ॥
रैनि दिवस ये तहवाँ नाहीं। नारि पुरुष समताई हो ॥
हौं मैं बालक बूढ़ा नाहीं। नाम मोरे चिलकाई हो ॥
त्रिविध रहौं सँभनिमाँ बरतौं। नाम मोर रमुराई हो ॥
पठये न जावौं आने नहिं आवौं। सहज, रहौं दुनियाई हो ॥
—बीजक, क़हरा, पद० सं० १०।

हित के लिए इस मंदिर को क्षतिग्रस्त मत करना। इस प्रकार कबीर साहब की अमृतमयी वाणी सुनकर समुद्र सद्‌गुरु से विनय करके वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गया और तभी से आज तक वहाँ कटाव बन्द हो गया। सभी लोग आनन्दपूर्वक रहने लगे। भारत तथा विदेश के लोग भी प्रतिवर्ष जाकर जगन्नाथ जी का दर्शन करके अपने को कृतार्थ मानते हैं। आज तक साहब की चलाई हुई खिचड़ी वहाँ पर चलती आ रही है सभी लोग परस्पर एक दूसरे की प्रसादी लेते हैं। उसी स्थान पर एक कबीर मंदिर है जहाँ पर कुबड़ी गाड़कर कबीर साहब ने समुद्र को रोका था। वह स्थान भी काशी कबीर चौरा के अन्तर्गत ही पड़ता है।

इस प्रकार वहाँ के लोगों को सद्‌गुरु कबीर ने अपनी अमृतमयी वाणी को सुनाकर सन्तुष्ट कर दिया। इसके बाद उत्कल प्रदेश के अधिकांश लोग सत्य मार्गावलम्बी हो गए। कुछ घटनाएँ वहाँ की इस प्रकार हैं—जिस दिन से कबीर साहब की आज्ञा समुद्र मान गया उस दिन से हजारों लोग आने लगे तथा अपने-अपने दु:ख को सद्‌गुरु से कहने लगे। हजारों की संख्या में कुष्ठ रोगी, स्वास रोगी, लकवा से ग्रस्त लोग साहब की महिमा को सुनकर साहब के पास आए। साहब उक्त रोगियों को देखकर द्रवीभूत होकर बोले कि आप लोग प्रेम से एक वार राम-नाम का उच्चारण करें। अस्तु, सभी लोगों ने वैसा ही किया। इस प्रकार सभी लोगों ने अपनी-अपनी इच्छानुसार फल पाया। रोगी रोग से रहित हो गए। दरिद्री लोग धनी हो गए। वंश से हीन लोग वंश वाले हो गए। मुक्ति चाहने वाले लोग आत्मज्ञानी हो गए।

●

सप्तमालोक

महाराजा राम सिंह बाँधवगढ़-प्रसंग

इसके बाद कबीर साहब वहाँ से विदा लेकर बंग प्रदेश की ओर जाना चाहते थे, परन्तु कुछ लोग जगन्नाथपुरी में साहब का आना सुनकर दूर-दूर से आ गए थे, जिसमें मध्यभारत से भी कुछ लोग आए थे। मध्यभारत के महाराजाधिराज नरेश, बाँधवगढ़ के स्वामी श्री राम सिंह बघेल वहाँ विराजमान थे। उक्त महाराज संतों के बहुत बड़े भक्त थे, जो बिना सन्तों की सेवा किए अन्न-जल नहीं ग्रहण करते थे और उन लोगों की भक्ति को सद्‌गुरु कबीर भी सुन चुके थे। बान्धव नरेश दीन-दुखियों एवं संत जनों के भक्त थे। अस्तु, गुरुदेव कबीर ने जब बंग प्रदेश में जाने की तैयारी की, उसी समय महाराजाधिराज श्री राम सिंहजू देव हाथ जोड़कर साहब के आगे खड़े होकर कहने लगे कि भगवन्! मेरे राज्य में चलने की कृपा प्रदान करें। इस बात पर कबीर साहब ने कहा कि राजन्! मैंने तो व्यक्तिगत राज्यद्वार पर न जाने की प्रतिज्ञा की है, परन्तु तुम भगवद्‌भक्त हो, इसलिए चलो अब मैं तुम्हारे राज्य में चलूँगा। बंग देश की यात्रा दूसरे समय में होगी। साहब के वचन को सुनकर राजा राम सिंह ने सद्‌गुरु को साष्टांग प्रणाम किया और कबीर साहब से पालकी में बैठने की प्रार्थना की। परन्तु सद्‌गुरु ने इसे अस्वीकार कर दिया। तब राजा ने पुनः हाथ जोड़कर सद्‌गुरु को प्रणाम करके कहा कि साहब आप मेरे स्वामी हैं इसलिए दास की प्रार्थना सुन लें। अतः राजा के बहुत अनुनय-विनय करने के बाद सद्‌गुरु कबीर पालकी पर आरूढ़ हो गये। वह पालकी सोलह कहारों से चल रही थी, जिसमें राजा भी भक्ति-भाव से प्रेरित होकर कहीं-कहीं अपना कंधा लगा देता था। अस्तु, कई सप्ताह के अथक परिश्रम के बाद संत मंडली एवं कबीर साहब के सहित राजा अपने राज-भवन में आ गया। साहब के रहने की व्यवस्था अन्तःपुर के उद्यान में की गई जहाँ पर राजा और रानी दोनों गुरुदेव की सेवा में लगे रहते थे। संत मंडली राजा की सेवा से बहुत प्रसन्न रहा करती थी।

महाराजा श्री राम सिंह एवं उनकी धर्मपत्नी द्वारा प्रेम-भाव से प्रतिदिन गुरुदेव कबीर को अर्घपाद्य, नैवेद्य आदि से पूजन एवं आरती होती रही। राजा और रानी सद्गुरु कबीर साहब के शिष्य हो गए। उसके बाद नगर के सभी प्रबुद्ध एवं महाराज के मंत्री गण भी सद्गुरु के शिष्य हो गये। राज सभा में प्रतिदिन हजारों की भीड़ लगी रहती थी। दूर-दूर से साहब का उपदेश सुनने के लिए लोग आने लगे। इधर कितने लोग उपदेश सुनकर अपना घर-द्वार छोड़कर अपने जीवन का भार सद्गुरु के चरणों में समर्पित कर देते थे। उधर महाराजा रामसिंह राज्य के कार्य भार मन्त्रियों के ऊपर छोड़कर प्रतिदिन गुरुदेव के चरणों की सेवा में ही लगे रहते थे।

बाँधवगढ़ में गुरुदेव को इस प्रकार बहुत दिन रहते हो गया। राज्य के सभी लोग साहब के अनुगामी हो गए। सद्गुरु कबीर राजा की सेवा से प्रसन्न होकर बोले, राजन्! तुम्हारी आगामी बयालिस पीढ़ी अबाध गति से चलती रहेगी और भगवत्भक्ति बनी रहेगी, इसमें संदेह नहीं है। सदा प्रजा का पालन करेगी। राज्य नहीं रहने पर भी प्रजा सदा प्रेम करेगी और तुम्हारे वंश के अधीन रहेगी। अन्त में तुम्हारे वंश के लोग सत्यलोक मेरे धाम में हंस पंक्ति में विराजेंगे। जहाँ रात-दिन नहीं होता और जिन्हें अपनी इच्छानुसार सारी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। वह मेरा लोक सभी लोकों से परे है। जहाँ पर केवल संत पुरुष जाते हैं। वहाँ पर पंचभौतिक जगत् नहीं है और वहाँ से लौटकर इस जगत् में नहीं आना पड़ता है। वहाँ सुख दुःख से परे एक दूसरा ही आनन्द है, जिसका कथन वाणी के द्वारा नहीं किया जा सकता। हे राजन्! तुम भगवद्भक्त हो इसलिए तुम्हें मैं सारा भेद बता देता हूँ। वहाँ पर जाने वाले पुरुष का काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अविवेक, तृष्णा, अज्ञान, अहंकार, असूया, मद, मत्सर, राग और द्वेष-जन्य दुःख नहीं सताते जिसको ये सब सताते हैं, वे सब मेरे दिव्य लोक में जाने के अधिकारी नहीं हैं।

उपर्युक्त बातों को कह कर साहब अपने स्वरूप में लीन हो गए। तब राजा ने पुनः हाथ जोड़कर सद्गुरु से कहा कि प्रभो! मुझे यह संसार अब अच्छा नहीं लग रहा है। अब मैं अपना राज-पाट त्याग कर आपकी शरण लेना चाहता हूँ। मुझे यह संसार भयानक लग रहा है। कबीर

साहब ने कहा कि राजन् ! गृह त्याग करना उत्तम नहीं है, क्योंकि जहाँ कहीं भी रहना होता है वहाँ छाया में ही रहना पड़ता है। इसलिए तुम मेरी बात मानकर घर पर ही रहो और श्रीराम भक्ति का प्रचार करते रहो तथा आए हुए संतों की सेवा करो। इसी से तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। साहब की बात सुनकर महाराज श्री रामसिंह ने कहा कि प्रभो ! जैसी आप की आज्ञा होगी, वही कार्य मैं करूँगा। एक बात के लिए आप से प्रार्थना है कि मेरे वंश में कोई आप का विरोधी तो नहीं होगा तथा मेरे वंश के लोग इस राज्य के कब तक स्वामी रहेंगे। राजा की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा तुम्हारा बयालिस वंश अटल रहेगा। उसमें एक से एक पंडित और भक्त होते रहेंगे, जो संसार में बहुत प्रसिद्ध होंगे और प्रजाजनों का पालन अच्छी रीति से करेंगे। हे राजन् ! तुम्हारे वंश का शासन तब तक रहेगा। जब तक तुम्हारे वंश के लोग सत्यमार्ग पर चलते रहेंगें, अन्यथा पुण्य क्षीण होने पर भारत के सभी राजाओं का राज्य दूसरे के हाथों में चला जाएगा।

इस प्रकार साहब की बात को सुनकर राजा ने कहा कि प्रभो ! इस समय जब कि पूरे देश में म्लेच्छों का बोलवाला है, जो हिन्दुओं को आए दिन यम लोक भेज रहे हैं, इनका शासन कब तक रहेगा तथा इनके बाद क्या होगा ? कबीर साहब ने कहा राजन् ! वर्त्तमान में, जो अनाचार देख रहे हो, उसे दूर करने के लिए मैंने अनेक संगठन स्थापित किए हैं, जो म्लेच्छों का सामना करने में लगे हुए हैं। बहुत शीघ्र ही सफलता प्राप्त होगी और वे म्लेच्छों का अन्त कर देंगे। इसके बाद कुछ समय के लिए आंग्ल असुरों का शासन सारे जगत् पर हो जाएगा और वह शासन अनेक प्रकार से प्रजाजनों की भलाई करेगा तथा और भी अनेक प्रकार की उन्नतिपूर्ण कार्य करेगा जो समाज के हित और अहित में होगा, जिसके कारण बहुत भयानक विश्व युद्ध होगा और वह युद्ध सम्पूर्ण मनुष्य जाति को क्षति पहुँचाएगा। सभी लोग सदैव संत्रस्त रहेंगे। पूरे विश्व में अशान्ति छा जाएगी, जिसके शान्ति के लिए मैं भारत में तथा भूमण्डल के सभी भूभागों पर जहाँ तक मानव बसे हुए हैं अनेक रूपों में प्रकट होकर मानव जाति को पुनः शान्ति का मार्ग दिखलाऊँगा। और अनेक प्रकार से मनुष्यों के लिए कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त होंगे, फलस्वरूप मानव जाति विश्व की समस्त समस्याओं का निराकरण आपस में बैठकर कर सकेंगे।

कोई किसी पर अत्याचार करने का अधिकारी नहीं होगा और न किसी की धरती कोई बलात् छीनेगा। संसार में न्याय का जुग स्थापित होगा और मानवीय समस्याओं का समाधान सभी लोग समझकर करेंगे। सम्पूर्ण विश्व में जनता का शासन हो जायेगा। पैचासी राजतंत्र[1] का अन्त हो जायेगा क्योंकि राजा लोग परस्पर स्पर्धा के कारण प्रजा का विनाश करते हैं, सदा लड़ते-लड़ाते रहते हैं। अनेक प्रकार से प्रजा का शोषण करते रहते हैं। राजा व देश के सम्राट बहुत विलासी होते हैं। धन एक जगह होने के कारण लोगों को भ्रष्ट बनाता है, सामुदायिक विकास के लिए धन होता है। इसलिए धन को सभी प्रजा में लोकहित के लिए बांट देना चाहिए। जो अकेल ही धन को भोगता है धन उसका नाश कर देता है क्योंकि धन प्रजा के द्वारा उपार्जित होता है और राजा लोग अनेक प्रकार के कर लगाकर प्रजा का शोषण करते हैं जो देश के लिए व राष्ट्र के लिए हितकर नहीं होता है। राजतंत्र के कारण ही सभी प्रकार के अनर्थ होते हैं इसलिए हे राजन्! उस दोष से तुम भी बचो। सारा वैभव प्रजा का समझकर पृथ्वी का पालन करो अन्यथा विनाश का कारण बनेगा। देखो समय चक्र घुमते रहता है वह कभी किसी को निर्धन बना देता है और कभी किसी निर्धन को सम्राट बना देता है। इसलिए यह जो लक्ष्मी है स्थिर रहने वाली नहीं है, इसका पूरा उपभोग आज तक कोई नहीं कर सका। देखो अब थोड़े दिन में ही समस्त राजतंत्र विलीन हो जायेंगे क्योंकि राजे सब अयोग्य हो गये प्रजा पालक नहीं हैं। सभी भूभागों मे पंचायत राज्य हो जाएगा, जिसके चलते रहने के कारण कुछ समय तक शान्ति रहेगी।

पुनः कुछ समय के बाद असुर पैदा होंगे, जो अशान्ति फैलाएँगे और फिर से युद्ध की ज्वाला उठेगी एवं मानव जाति का नाश कर देगी। उसके बाद पुनः सन्तों का आगमन होगा और शान्ति आयेगी। इसी प्रकार जब-जब अशान्ति होती है तब-तब सन्त लोग आते हैं अस्तु,

---

१. चमुआर रोहुआ टाणुकी। मकपाव जोहा माणुकी।
अझरंझ किहणा साणकी। सविदेहड़ा चुव धाणुकी ॥ ७ ॥
तिध्धप कबीरा कारूआं। छंदास मोहण गासआं।
विद्यांत सउपड़ फारूआं। रामेंति पुहपुण पारूआं ॥ ८ ॥
—पैचासी भाषा का ग्रन्थ-"प्रसंग पारिजातम् अष्टपदी ९१ वें पंक्ति।

हे राजन्! संसार इसी प्रकार से चलता है। जब-जब भक्त सन्तों को असुर लोग दुःख देते हैं, तब-तब महात्मा के रूप में प्रभु अपनी माया से आवृत्त होकर अनेक रूपों में आकर अनेक कार्य करते हैं। कभी-कभी प्रभु को बड़े-बड़े दैत्यों को मारने के लिए हिंसकरूप भी धारण करना पड़ता है और कभी-कभी अपने आश्रितों के लिए शीघ्र प्रकट होकर उनकी सेवा भी करना पड़ता है'। हे राजन्! यह जगत् अनादि है। कर्म करने में स्वतन्त्र है, केवल फल भोगने के लिए कर्त्ता के अधीन रहता है। जो जैसा करता है, हरि उसको वैसा ही फल देता है। प्रभु, किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। इसमें केवल प्रभु भक्त प्रिय होता है। इसलिए जो हरि भजन करता है, प्रभु उसके साथ गुप्त रूप में सदैव रहता है। अधिक लोग उसको विष्णु के नाम से जानते हैं। वह सबसे परे देव है। दूसरा उसके समकक्ष में नहीं है। जो सब कुछ त्यागकर हरि का भजन करता है, वह भी उसी भक्त को भजता है और उस महान् भक्त का कोई भी कुछ नहीं कर पाता। जो मेरे कबीर नाम तथा विष्णु नाम का जप करता है, वह करोड़ों पापों से मुक्त होकर संसार को पार कर लेता है और अन्त में मेरे परम धाम में जाता है, जो सदैव स्व-स्वरूप में विराजता है।

हे राजन्! मैं इस समय गिरी हुई जाति को उठाने के लिए ही गिरी जाति में अवतीर्ण हुआ हूँ। जिसको लोग कोरी या हरिजन कहते हैं। अतः उक्त गिरे वर्ण के लिए मुझे कई बार इस युग में आना पड़ेगा। इसलिए तुम अब न्याय के साथ प्रजा जनों का पालन करो और मेरे

---

१. (क) तन मन भजि रहु मोरे भक्ता। सत्य कबीर सत्य है वक्ता॥
आपुहि देव आपु है पाती। आपुहि कुल आपुहि है जाती॥
सर्वभूत संसार निवासी। आपुहि खसम आपु सुखवासी॥
कहइत मोहि भयल युगचारी। काके आगे कहौं पुकारी॥
साँचहि कोई न माने, झूठहि के संग जाय।
झूठहिं झूठा मिलि रहा, अहमक खेहा खाय॥
—बीजक, रमैनी, पद सं० १४।

(ख) राम कबीरा एक हैं, दूजा कहा न जाय।
दूजा तो सो कहे, सद्गुरु मिला न ताहि॥
—चौरासी अंग की साखी।

निर्दिष्ट मार्ग को अपनाओ तथा मेरे उपदेश को अपने राज्य में प्रसारित करो। अब मैं जाता हूँ। इतना कहकर श्री श्रुतिगोपाल साहब एवं जागू साहब आदि संत मण्डली के संचालकों के साथ मध्य भारत के अनेक क्षेत्रों में बघेल वंशियों, चौहान क्षत्रियों एवं दीन-दुःखियों के यहाँ जा-जाकर सत्य धर्म का उन्होंने उपदेश दिया। उक्त लोगों ने अपने-अपने नगरों एवं राज्यों में ले जाकर साहब की सेवा की और साथ ही वैष्णव धर्म का उपदेश भी लिये।

अमर सिंह पूरा एवं पंचमकारी-प्रसंग

मध्य भारत के चौहानवंशीय भूपति के यहाँ सद्गुरुदेव रुके हुए थे, जिसका नाम था अमर सिंह पूरा। वह बहुत बड़ा योद्धा था तथा अपने सामन्ती राज्य का अच्छे ढंग से पालन करता था। वह राजा भगवान विष्णु का बहुत बड़ा भक्त था और उसके यहाँ एक पंचमकारी अवधूत भी आया करता था, जो बहुत बड़ा सिद्ध माना जाता था। अस्तु, वह सिद्ध एक दिन साहब की उपस्थिति में भी आया। उसे देखकर राजा सहित उसके मंत्री एवं सभासदगण उठकर उसका स्वागत किया, परन्तु सद्गुरु कबीर उसको देखकर नहीं उठे। इसलिए वह सिद्ध पंचमकारी बहुत दुःखी होकर बोला कि कबीर तुम बहुत बड़े ज्ञानी बनते हो देखो, अभी मैं तुम्हारे ज्ञान को नष्ट कर देता हूँ। उक्त पंचमकारी ने शीघ्रता से एक तृण उठाकर नगर की ओर फेंक दिया। अस्तु, उस तृण के फेंकते ही उसके शरीर में आग लग गई और वह जोरों से चिल्लाने लगा। उसको चिल्लाते हुए देखकर अमर सिंह एवं उनके अन्य कर्मचारी सद्गुरु से पूछने लगे कि प्रभो यह क्या बात है ? हम लोग समझ नहीं पा रहे हैं। साहब ने कहा राजन् ! यह सारे नगर को भस्म करना चाहता था, जिसके लिए इसने एक तृण को उठाकर फेंका था, परन्तु इसकी नीचता का फल स्वयं इसे मिल रहा है। मैं इसे अघोरी एवं हिंसक जानकर आसन से नहीं उठा। इसलिए यह मेरी परीक्षा और तुम लोगों को भय-भीत करने लिए ऐसा कार्य करना चाहता था। मैं सर्वरूप होने से अग्नि भी हूँ। इसलिए इसके कुकर्म का फल मैं दे रहा हूँ। तुम लोग घबड़ाओ नहीं यह अब ठीक हो जायेगा।

इतना कहकर साहब ने अपने कमण्डल से जल लेकर उसके शरीर पर छिड़क दिया। वह सचेत हो गया और उसके शरीर की कान्ति

स्वर्ण जैसी हो गई। इस प्रकार सचेत होने पर वह तुरन्त उठा और जाकर साहब के चरणों पर गिरकर अनेक प्रकार से प्रार्थना करने लगा। उसकी प्रार्थना से सद्गुरु प्रसन्न होकर बोले—अब तुम जाओ, आज से कभी इस प्रकार का कर्म मत करना, अन्यथा तुम्हारा अहित होगा। यह अपनी कमाई है, इसको बचाकर रखो और सुनो, संतों से ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए। ईर्ष्या ही मृत्यु है। इसलिए आज से तुम ईर्ष्या मत करना और जाकर श्री राम नाम का जप करो। अपनी सिद्धि के बल पर किसी को दुःख न देना। अतः आज से तुम्हारा नाम सत्यरक्षादास होगा। जैसे मेरे पास शिष्य नीर एवं खीर दास भजन करते हैं, उसी प्रकार से तुम भी करना। इस प्रकार वह पंचमकारी वैष्णव हो गया एवं सत्य धर्म पालन करने का अधिकारी बन गया और अंत में साहब से विदा लेकर वहाँ से चला गया।

सद्गुरु कबीर उस पंचमकारी को वैष्णव बनाकर वहाँ से प्रस्थान करने के लिये सोच ही रहे थे, तब तक उसी ग्राम में एक विकलांग था, जिसका आठो अंग वक्र हो गये थे. वह दुःख से कराह रहा था और जब उसने साहब का आगमन सुना तो दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की और अपने परिवार वालों से कहा कि मुझे सद्गुरु कबीर का दर्शन करा दो। इस पर परिवार के सदस्यों ने कहा कि उस भीड़ में तुम कहाँ जाओगे जहाँ पर हजारों की भीड़ कबीर साहब को घेरे हुए हैं। वह व्यक्ति साहब के दर्शन के लिए बहुत व्याकुल हो रहा था, परन्तु शक्ति हीन होने के कारण जाने में असमर्थ था। वह खाट पर ही सद्गुरु कबीर का नाम जप रहा था।

इधर सद्गुरु कबीर, राजा एवं उक्त एकत्रित भीड़ से विदा लेकर उसी ओर चले जहाँ पर उस गरीब की कुटिया थी। आगे-आगे साहब जा रहे थे। पीछे से अपार भीड़ साहब को पहुँचाने के लिए जा रही थी। लोगों ने देखा कि साहब उस विकलांग के घर की ओर जा रहे हैं। इस पर अमर सिंह और शिष्यगण आदि लोग बहुत आश्चर्य करने लगे। लोग परस्पर कहने लगे कि गुरुदेव वहाँ क्यों जा रहे हैं? वहाँ तो उस अन्त्यज का घर है, जो लकवा से पीड़ित है। इस प्रकार की बातें लोग कर ही रहे थे कि सद्गुरु वहाँ जाकर उस विकलांग के शरीर से लिपट गए और क्षण-मात्र में वह आठों अंगों से स्वस्थ हो गया, मानों उसको कभी कुछ हुआ ही नहीं था। वह रोगी साहब की अपार प्रशंसा

करने लगा। साहब ने कहा कि तुम राम-नाम का जप करते रहना। ऐसा कहकर सद्‌गुरु कबीर शिष्यों सहित वहाँ से अंतर्धान हो गए।

इसमाइल खाँ प्रसंग

इधर उक्त चमत्कार को देखकर सभी लोग विस्मय में पड़ गए और सत्य कबीर की जय हो, गुरुदेव कबीर की जय हो, आदि नारा लगाते हुए अपने-अपने घरों को चले गए। साहब के वियोग में लोग महीनों प्रेमाश्रु बहाते रहे। अचानक सद्‌गुरु कबीर के अंतर्धान हो जाने से लोग और दुःखी हो गए।

उधर सद्‌गुरु कबीर संत मण्डली के साथ मध्य देश के कोने-कोने में सत्य धर्म का उपदेश देते हुए जबलपुर के पास पहुँचे और वहाँ पर एक उद्यान में आसन लगाकर राम-नाम का जप करने लगे। वह उद्यान एक धनी मानी मुसलमान का था, जो कट्टर सुन्नी इस्लामी था। उसने जब यह सुना कि मेरे उद्यान में हिन्दू-साधुओं की मण्डली उतरी है, तो उसने अपने अनुचरों से कहा कि जाओ उन मुड़ियों से कह दो कि यह उद्यान खाँ साहब का है और तुम लोग यहाँ से चले जाओ। अतः अनुचरों ने जाकर कहा कि आप लोग यहाँ से चले जाइए। इस पर श्री रविदास जी बोले भाई हम लोगों को एक रात ही यहाँ रहना है। प्रातः होते ही हम लोग स्वयं चले जाएँगे। इस समय हम लोग कहाँ जायँ क्योंकि सूर्य ढल चुका है। हमलोग अपरिचित व्यक्ति हैं। इस समय किसके द्वार पर जाँय, जाकर अपने स्वामी से कह दो कि हम लोगों को केवल एक रात ही यहाँ रहने दें। अनुचरों ने जाकर खाँ साहब को श्री रविदास जी की बात सुना दी। इस पर वे बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने उस क्षेत्र के स्ववर्णों को बुलाया और कहा आप लोग जाकर उन काफ़रों को मेरे उद्यान से शक्ति के साथ निकाल दें। यदि वे सब नहीं मानते हैं, तो उन्हें प्राण दण्ड दे दो। स्वामी की उक्त बात को सुनकर स्ववर्णों ने जाकर कहा कि तुमलोग भाग जाओ, अन्यथा ठीक नहीं होगा। इस बात पर सद्‌गुरु कबीर ने कहा कि चलो भाई संतों! राम-राम करें। इस समय हम लोग कहाँ जाएँगे।

अस्तु सन्तों के न हटने पर वे लोग वही करने लगे, जो उनके स्वामी ने कहा था। चारो तरफ से वे सब संत मंडली पर टूट पड़े। श्री रविदास जी ने कहाँ भाई आप लोग शान्त हो जाइए, परन्तु वे सब

नहीं माने और चारो तरफ से ढेलावाजी करने लगे, जिसके कारण किसी संत का सिर फूटा और किसी को अन्य अंगों में चोट आई। इस प्रकार सभी सन्त घायल हो गए। इतने में ही उस उद्यान स्वामी के घर में आग लग गई। सारा सामान जलने लगा तथा उद्यान स्वामी इसमाइल खाँ जोरों से चिल्लाने लगा। उसकी चीख को सुनकर सद्गुरु कबीर ने संतों से कहा कि इस गाँव में चिल्लाहट सुनाई पड़ रही है। आग की लपटें भी दृष्टिगोचर हो रही हैं। चलो, देखा जाय किसका घर जल रहा है। इधर संतों को मारने वाले गुण्डे छोड़कर गाँव की ओर दौड़ पड़े और जाकर आग को बुझाने लगे, परन्तु अग्नि में जितना ही जल डाला जाता था, वह तेल का काम करता था। आस-पास के अन्य मुसलमानों के घरों में भी अग्नि की लपटें बढ़ने लगीं। इधर संत मण्डली के साथ सद्गुरु कबीर भी वहाँ पहुंच गए और बोले प्रभो! थोड़े से अपराध के कारण इतना बड़ा दण्ड क्यों दिया जा रहा है। अब कृपा की जाय। इतना कहते हुए सद्गुरु कबीर ने अपने कमण्डल से जल निकालकर अग्नि पर छोड़ दिया। उधर उद्यानपति ने देखा कि संत लोग मेरे घर में लगी आग को बुझा रहे हैं। मैंने तो इन संतो के साथ बड़ा अभद्र व्यवहार किया है, जिसका फल मुझे तत्काल मिला। संत लोग रक्त रञ्जित हो गये थे, गुण्डों ने संतों के शरीर को विदीर्ण कर दिया था, जिसकी परवाह न करके ये सब सन्त मेरी भलाई में लगे हुए हैं।

उद्यानपति ने सोचा कि ये सब साधारण मनुष्य नहीं हैं। ये लोग महापुरुष हैं। संतों के इस कार्य से खाँ साहब बड़े आश्चर्य में पड़ गये एवं तत्काल जाकर सद्गुरु कबीर के चरणों पर गिर पड़े तथा अपने किए हुए अपराध के लिए क्षमा माँगने लगे। उद्यान स्वामी ने कहा—प्रभो! मैंने तो बड़ा अपराध किया है। उस पर भी आप लोग मुझ जैसे अधम पर इतनी कृपा क्यों कर रहे हैं? साहब ने कहा कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ। हम लोग तुम्हारे उद्यान में कुछ देर तक ठहरे हैं उसी का मूल्य चुका रहे हैं और मनुष्य का कर्त्तव्य होता है कि आपत्ति में पड़े हुए लोगों की सहायता करे। इसलिए मैं कोई विशेष कार्य तो नहीं कर रहा हूँ। इस प्रकार गुरुदेव की उपर्युक्त बात सुनकर उद्यानपति ने अपने किए हुए अपराध पर साहब से पुनः क्षमा माँगी और कहा प्रभो! मुझे सत्य मार्ग का दर्शन कराइए। साहब ने कहा कि किसी को दुःख नहीं देना चाहिए,

यही सत्य मार्ग है। यदि तुम्हारे में उक्त भाव आ जाता है, तो तुम सत्य का दर्शन कर लोगे। अतः जब तक तुम अहिंसक नहीं बनोगे तब तक तुम सत्य-धर्म से दूर रहोगे। इस प्रकार से साहब, खाँ साहब को शिक्षा देकर प्रातः होते ही वहाँ से चलने के लिए प्रस्तुत हो गए, परन्तु ग्राम स्वामी ने बहुत अनुनय-विनय करके साहब को रोक लिया और चार दिनों तक अपने यहाँ रखकर ऐसी सेवा की कि सन्त लोगों ने प्रसन्न होकर अनेक प्रकार के कथाओं को उन लोगों को सुनाया, जिससे प्रभावित होकर खाँ साहब और गाँव के सभी मुसलमान वैष्णव बन गए एवं भगवान हरि के उपासक हो गए। अतः चौथे दिन उन लोगों को यह पता चला कि ये संत कबीर साहब हैं। यह जानकर बड़ी श्रद्धा के साथ लोगों ने साहब की सेवा की और आस-पास के ग्रामों में सूचना भेजकर सभी को आमन्त्रित कर दिया कि कबीर साहब का आगमन मेरे गाँव में हुआ है।

उक्त समाचार सुनकर चारों तरफ से कबीर साहब के दर्शन के लिए लोग आने लगे। इस प्रकार वहाँ अपार भीड़ एकत्रित हो गई। सभी लोग कबीर साहब का दर्शन करके कृतकृत्य हो गए तथा सद्गुरु के उपदेशों से लाभान्वित हुए। अंत में सभी वैष्णव धर्म में दीक्षित भी हो गए। इस प्रकार इसमाइल खाँ की आत्मा को परिवर्तित कर सद्गुरुदेव वहाँ से विदा लेकर गुरुभाइयों एवं शिष्यों के साथ प्रत्येक गाँव में जाकर श्रीराम भक्ति का प्रचार-प्रसार करते हुए पश्चिमोत्तर दिशा की ओर बढ़े।

डाकू अजीत सिंह रोही-प्रसंग

संत लोग जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ-वहाँ के लोग उन्हें सर्वप्रथम माल्यार्पण से स्वागत करने के बाद इतना सत्कार करते थे कि संत लोग प्रसन्न हो जाते थे और सद्गुरु कबीर वहाँ के ग्रामवासियों के समस्त कष्टों को दूर करने के उपाय भी किया करते थे। सन्तों के व्यवहार से सभी लोग प्रमुदित हो जाते थे। उनकी सेवा सत्कार से किसी का मन ऊबता नहीं था। उसी प्रकार सन्त लोग भी प्रत्येक ग्राम एवं नगरों में जाकर सभी के दुख-दर्द को दूर करने का उपाय करते थे। सभी लोग अपने-अपने ग्रामों एवं नगरों में ले जाते थे और सन्तों की सेवा-पूजा करते थे। इस प्रकार सन्त मंडली पूरे मध्य भारत का भ्रमण करती

हुई प्रान्त के पश्चिमी छोर पर पहुँची जहाँ कुछ काल तक विश्राम करने के अन्तर संत मण्डली वहाँ पर आई जहाँ मध्य भारत, राजस्थान तथा संयुक्त प्रान्त की सीमा समाप्त हो रही थी। वहाँ पर एक घोर जंगल था, जो अत्यन्त भयानक था। वहाँ पर सूर्य के प्रकाश का अभाव था। उसी भयानक जंगल में चंबल नदी पड़ती थी, जो अपनी वेगवती धारा को लेकर वह रही थी। उसमें बड़े-बड़े मगर, कच्छप आदि जल-जन्तु निवास करते थे, जो देखने में भयानक लग रहे थे। उसी नदी के तट पर आकर संत मंडली रुक गई और स्वच्छ रमणीक जल में स्नान करने लगी। पूजा ध्यान करने के बाद संत मंडली उस पार जाने के लिए नौका की प्रतीक्षा करने लगी।

जंगल भयानक था। इसलिए संत लोग जल्दी ही पार होना चाहते थे। उस जंगल में कही सिंह दहाड़ रहा था, तो कहीं हाथियों का झुण्ड घूम रहा था और वे हाथी अपनी सूँड से कमजोर वृक्षों को उखाड़कर लिए जा रहे थे, तो कहीं पर बड़े-बड़े वाराह गर्जना कर रहे थे। हाथियों की चिग्घार बड़ी भयावह थी जिसे सुनकर निर्बल प्राणी कम्पित हो जाते थे। कहीं पर पक्षियों का कलरव हो रहा था, जिसे सुन एवं देखकर संत लोग अपनी थकान से विस्मृत हो रहे थे। इसी बीच नदी के मध्य में एक नौका दिखाई पड़ी, जो लुटेरों की नौका थी। तब तक एक दस्युओं का दल भी आ मिला, जिसका काम था उस मार्ग से जाने वालों को लूटना तथा उन्हें मार डालना। उक्त दस्युओं के दल के सरदार का नाम था अजीत सिंह रोही। वह अपने हाथों में बल्लभ और तलवार लिए हुए आगे-आगे आ रहा था। उसके दल में पचासों लोग थे तथा सभी शस्त्र लिए हुए थे। सन्तों को देखकर सरदार ने कहा कि ओ मुड़ियों ! सुनो मैं अभी नाव मँगा देता हूँ। मेरी नाव यंत्रयुक्त है, जो आप लोगों को उस पार शीघ्र ही पहुँचा देगी। अस्तु, उक्त सरदार के पुकारने पर सभी संत लोग पीछे मुड़कर देखने लगे, तो यह देखते हैं कि वह पुकारने वाला व्यक्ति पचासों व्यक्तियों के साथ आ रहा है। उस नदी को पार करने वाली जो नौका वहाँ पर थी, वह नाव लुटेरों की ही थी, जो लोगों को नाव पर चढ़ाकर नदी के मध्य धारा में ले जाकर सारा सामान छीन लेते थे और वहीं पर मारकर फेंक देते थे। इस प्रकार उन लुटेरों का दल संत मण्डली के पास आकर बोला— स्वामी जी चलो नाव पर बैठो। साहब ने कहा कि सरदार जी अपनी

नौका शीघ्र मँगावो। सशस्त्र लुटेरों को देखकर सन्त मण्डली भयभीत हो गयी। साहब ने संकेत किया कि तुम लोग डरो मत, ये सव भक्त हैं। तत्पश्चात् लुटेरों का सरदार बोला-बाबा डरो नहीं, हम लोग जंगल के राजा की ओर से रक्षक नियक्त किये गये हैं, चलिए नाव आ गई है।

साहब तो उसकी माया को जानते ही थे। उन्होंने मुस्कराते हुए सन्तों से कहा—रविदास जी नाव पर चढ़ो। अतः साहब की आज्ञा पाते ही संत मण्डली नाव पर चढ़ गई। नौका नदी की धारा में चलने लगी और वह ज्यों ही बीच धारा में पहुँची त्यों ही सरदार ने अपना परिचय दिया और कहा कि यही मेरी जीविका है। अब तुम लोग अपना आसन-वासन रख दो तथा अंतिम समय है भगवान का भजन कर लो। आज तुम लोगों को संसार से जाना है। सरदार अजीत सिंह की बात को सुनकर गुरुदेव कबीर ने उसकी ओर अपनी दृष्टि घुमाते हुए कहा—सरदार, हम लोगों को तो तुम आज इस संसार से भेज रहे हो, भला यह तो बतलाओ कि तुम लोग कब और कितने दिनों में आओगे? अच्छा हम लोगों को इस संसार से भेजो।

सद्गुरु की निर्भीक बातों को सुनकर सरदार रोमांचित हो गया। उसके अंग-प्रत्ययंग शिथिल पड़ गए और वह मन ही मन सोचने लगा कि यह साधारण साधु नहीं है। अपने मन को स्थिर रखते हुए अजीत सिंह ने सद्गुरु से पूछा कि बाबा आपका क्या नाम है? साहब ने कहा कि तुम किसका नाम पूछते हो, देह का या जीव का। सरदार सद्गुरु के इस प्रश्न को सुनकर आश्चर्य में पड़ गया और बोला कि प्रभो! मैं आपका आशय नहीं समझ पा रहा हूँ। ठीक से अपना परिचय दें। साहब ने कहा कि लोग मेरे इस शरीर को कबीर कहते हैं और मेरा नाम रूप नहीं है। मैं दोनों से परे हूँ। अतः साहब के नाम को सुनकर अजीत सिंह ने कहा कि आप वही कबीर हैं जिन्होंने सिकन्दर को पराजित किया था। इस पर श्री पद्मनाभ जी ने कहा—हाँ, वही गुरुदेव कबीर हैं। इतना सुनते ही अजीत सिंह गुरुदेव के पैरों पर गिर गया और जोरों से रोने लगा। अपने सरदार की इस दशा को देखकर उसके अन्य साथी आश्चर्य में पड़ कर बोले—क्या बात है? क्या यह साधु जादूगर है? इसके बाद सद्गुरु कबीर ने अजीत सिंह को अपने पैरों से उठाकर छाती से लगाया तथा राम-नाम की महिमा को सुनाकर उसको परम भक्त बना दिया।

इसी प्रकार से सद्गुरु ने अन्य साथियों को भी राम का भक्त बना दिया। इसके बाद सरदार ने कबीर साहब से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि प्रभो! तीस वर्षों से इस जघन्य कर्म को करता आ रहा हूँ। इस अवधि में मैंने हजारों हत्याएँ की होंगी, अब मेरा उद्धार कैसे होगा? साहब ने कहा कि अब तुम पापी नहीं रह गये, क्योंकि राम के सन्मुख हो जाने से जीव निष्पाप हो जाता है। जैसे सूर्य के प्रकाश में खद्योत नहीं दिखाई पड़ते उसी प्रकार प्रभु के समक्ष पाप नष्ट हो जाते हैं। अब तुम इस वन में श्री राम का सुमिरन करो और जितने भी तुम्हारे समान कार्य करने वाले हों उन सभी को सत्यमार्ग का उपदेश दो। बस, इसी से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा।

भगवान गोस्वामी-प्रसंग

साहब की आज्ञा को मानकर वे सब संत हो गए। सद्गुरु ने वहाँ से विदा ली और वहां से जंगल, पहाड़ों एवं ग्राम के निवासियों को ज्ञान रूपी अमृत पिलाते हुए प्रत्येक ग्राम एवं नगरों में भ्रमण करते हुए पिथौराबाद (बुन्देल खण्ड) में पहुँचे। वहाँ पर श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का एक मठ था, जिसके महंत श्री भगवान गोस्वामी जो थे, जो बहुत बड़े महात्मा एवं पण्डित थे। उनके अपने हजारों निष्ठावान् सेवक-भक्त थे। अतएव साहब का आगमन सुनकर श्री भगवान् गोस्वामी जी अपने शिष्यों के साथ जहाँ पर सद्गुरु रुके हुए थे, प्रवचन सुनने के लिए गए। वे सब पहले से ही सुन चुके थे कि कबीर नाम के एक महात्मा काशी जी में उत्पन्न हुए हैं, जो बड़े ही ज्ञानी और महात्मा हैं, जिन्होंने हजारों मनुष्यों का उद्धार किया है। वहाँ पहुँचकर श्री भगवान गोस्वामी एवं उनके शिष्यगण सद्गुरु कबीर को नमस्कार करके संत-मंडली में बैठ गए।

सद्गुरु ने श्री भगवान गोस्वामी जी से उनका परिचय पूछा। उन्होंने शिष्यगणों के सहित अपने संप्रदाय का परिचय दिया और उसी के एक शाखा का अपने को महंत बताया। अतः जब साहब ने श्री भगवान गोस्वामी जी का परिचय जान लिया तो उन्होंने श्री पद्मनाभ जी से कहा कि इन संतों को अलग पंक्ति में आसन दो। गुरुदेव की आज्ञा मानकर श्री पद्मनाभ जी ने वैसा ही किया। सभी सन्त गण साहब के प्रवचन को सुन रहे थे। उस समय गुरुदेव का यही प्रवचन हो रहा

था कि इन्द्रियाँ बड़ी ही चंचल होती हैं। बिना साधन के ये वश में नहीं होती। इसलिए हे संत गण ! सबसे पहले आप लोग मनेन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न करें इसके अनन्तर समस्त इन्द्रियाँ स्वतः वशीभूत हो जाएँगी।

इस प्रकार जब इन्द्रियाँ वश में हो जाएँगी, तो मनोवृत्ति बाह्य विषयों की ओर से मुड़कर आत्ममुखी हो जाएँगी। आत्मा-अंतरंग हो जाने पर जन्म-मरण की बेड़ियाँ टूट जाएँगी और यह जीवात्मा अनन्त आनन्दानुभूति करने लगेगा। इसलिए हे संतों ! ध्यान, धारणा, शम, दम, उपरति, मुमुक्षुता, विवेक, वैराग्य एवं तितिक्षा का होना परम अनिवार्य है। दूसरी बात यह है कि एकांत में बैठकर श्री राम-नाम का जप करना और श्री गुरुदेव की मूर्ति का ध्यान करना तथा जो उनके उक्त उपदेश हैं उसको ध्यान में रखना। सदाचार, पवित्रता सदैव रखना, क्योंकि यही मुक्ति के द्वार हैं। इसी का मनीषियों ने पहले पालन किया है। इन मन को सहज आसन पर बैठाकर स्वाँस के साथ लगा दो और जप की संख्या बढ़ाते जाओ। लगातार छह महीने जप करने से मुख मिश्री की भाँति मीठा हो जाता है। इसके बाद दिव्य प्रकाश का उदय होने लगता है, तब दूर की बातें बैठे-बैठे ही दिखाई पड़ने लगती हैं।

अपनी सुरति को सदा हृदय कमल पर लगाना। अपनी आत्मा को सब में जानना और ब्रह्मचर्य का पालन करना। हिंसा, चोरी, असत्य भाषण, पिशुनता, पर स्त्री-गमन, अकारण वैर-भाव, अधिक बोलना, अधिक खाना, अधिक सोना, अधिक जागना, अधिक परिश्रम करना, आलस्य करना, प्रमत्त रहना, अकारण परदेश जाना, मदिरा-मांस का सेवन करना, राग-द्वेष करना, बिना बुलाए किसी की सभा में जाना, ईर्ष्या करना, दूसरे के अपवाद में रहना, असत्य साक्षी देना, दूसरों का छिद्रान्वेषण करना, अपनी आत्मश्लाघा करना, किसी से कुछ माँगना, अधिक संग्रह करना, बिना परिश्रम का धन खाना, विश्वासघात करना और धन जन का अभिमान करना, ये सब मनुष्यों के लिए त्याज्य हैं। अतः संतों को उक्त दोषों से मुक्त रहना चाहिए, क्योंकि यही महान् तप है। यदि उक्त दोषों में से एक भी दोष संतों में रहता है तो यह जान लो कि सभी दोष आ जायेंगे। जैसे एक कामना होने से क्रोध, लोभ, मोह, द्रोह, आदि आ ही जाते हैं।

इसलिए आप लोगों को सदैव सावधान होकर आत्म-चिन्तन करना चाहिए, अन्यथा तुम लोगों का अहित होगा। इस प्रकार के उपदेशों को देकर सद्गुरु ने सन्तों से कहा कि अब यहाँ से चलना चाहिए। गुरु आज्ञा पाते ही संत मण्डली अपने आसन-वासन को बाँध कर प्रस्तुत हो गई। तब तक श्री भगवान गोस्वामी जी उठे और हाथ जोड़कर श्री गुरुदेव से प्रार्थना करने लगे कि प्रभो! मेरे धाम को भी पवित्र करने की कृपा करें, क्योंकि अब इस प्रकार का अवसर नहीं उपलब्ध होगा। साहब ने कहा कि यहाँ पर कई दिन हो गए, परन्तु जब आपकी इच्छा है, तो चलिए। अतः संत-मंडली एक दिन के लिए श्री भगवान गोस्वामी जी के आश्रम पर गई, जहाँ पर संतों ने बड़े प्रेम से कथा-कीर्तन किया। श्री गोस्वामी जी ने भी बड़ी श्रद्धा के साथ संतों की सेवा एवं पूजा की; जैसे अपने इष्ट की सेवा लोक में लोग करते हैं, उसी प्रकार श्री भगवान गोस्वामी जी ने संतों की सेवा की। संत लोग स्वामी जी की सेवा पूजा से बड़े प्रसन्न हुए।

इसके बाद गोस्वामी जी ने सद्गुरु के समक्ष करबद्ध प्रार्थना की कि प्रभो! मुझे भी अपने शरण में ले लीजिए और मुझे गुरु-मंत्र दे दीजिए। आपने जो कल प्रवचन किया है और अनेक प्रकार की उक्तियों के द्वारा आपने सद्ज्ञान सुनाया, उससे मेरा मन अपने वश में नहीं है। इसलिए मुझ दीन को अपना लीजिए। मैं आज तक केवल शास्त्रों के जाल में उलझा रहा, अभी तक मुझे सत्य का दर्शन नहीं हुआ है कि सत्य क्या वस्तु है? शास्त्रों में परस्पर विरोधी वाक्य मिलते हैं जिनके कारण अनिश्चितता बनी हुई है। अब विलम्ब न कीजिए, मुझे गुरु-मंत्र की दीक्षा दीजिए नहीं तो मेरे प्राण पखेरू इस शरीर रूपी पिंजड़े से उड़ जायेंगे।

इस प्रकार की बातों को कहकर भगवान गोस्वामी गुरुदेव कबीर के चरणों पर गिरकर पाहिनाथ! पाहिनाथ! कहने लगे। अपने पैरों पर गिरा हुआ देखकर सद्गुरु ने उन्हें उठा लिया और अपनी छाती से लगाकर बोले—महन्त जी, आप तो स्वयं पंडित एवं महात्मा हैं। अतः जब आपने अपना गुरु बना ही लिया है, तो पुनः गुरु-मंत्र लेने की क्या आवश्यकता है? सद्गुरु की इन बातों को सुनकर श्री भगवान गोस्वामी जी ने कहा कि प्रभो! अभी मैं कुछ नहीं हुआ हूँ। मुझे केवल शुकवत् ज्ञान

है, अभी मैं केवल कोरा पंडित ही हूँ। साहब ने कहा कि आप जाकर अपने गुरुदेव जी से पूछिये तब मैं आपसे कुछ कह सकता हूँ। सद्गुरु की बात को सुनकर श्री भगवान गोस्वामी बहुत प्रसन्न हुए तथा एवमस्तु कहकर[1] श्री वृन्दावन गए और सारी बातों को अपने गुरुदेव से उन्होंने कह सुनाया। उनकी बातों को सुनकर उनके गुरु ने कहा कि कबीर परम वैष्णव हैं और वे इस समय प्रभु के रूप में हैं। इसलिए जाओ उनको आत्मज्ञान के लिए एवं परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपना गुरु बना लो और उनके चरणों में रहकर उनकी सेवा करो। मुझमें वह शक्ति नहीं है कि तुम्हें आत्मसाक्षात्कार करा दूँ। इसलिए तुम्हें उनकी शरण में जाने से मुझे बड़ी प्रसन्नता है। तुम्हारा कल्याण हो। भगवान गोस्वामी के गुरु बड़े निर्मल मन के सन्त थे। उनमें राग-द्वेष नहीं था। वे महात्मा पुरुष थे।

गुरुदेव की आज्ञा को लेकर श्री भगवान गोस्वामी पिथौराबाद आए और सद्गुरु कबीर साहब को अपने गुरु की स्वीकारोक्ति पत्र को दे दिया और दो साक्षियों के साक्ष्य को भी भगवान गोस्वामी जी ने दिलवाया जिनको वृन्दावन से ही ले गए थे। इसके बाद साहब ने कहा कि बहुत अच्छा, आइए। अतः साहब की आज्ञा पाते ही भगवान गोस्वामी ने उनके पास आकर गुरुदेव के चरणों पर माथा टेक दिया। गुरुदेव कबीर ने उनको सोऽहम् शब्द सुनाया तथा भगवान गोस्वामी के कण्ठ पर अपना एक हाथ रखा और दूसरे हाथ को नाभी प्रदेश पर रखकर कुण्डलिनी को जागृत कर दिया। जिसके जागते ही भगवान गोस्वामी क्षण मात्र के लिए संज्ञाशून्य हो गये।

यह देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ और सभी लोग भयभीत हो गए कि भगवान गोस्वामी जी मर गए, परन्तु पलक मारते-मारते भगवान गोस्वामी ज्ञान समाधि में सुस्थिर हो गए। फलस्वरूप उनका सारा भवबन्धन टूट गया। आगम-निगम की बातें उनको सूझने लगीं।

---

१. कोई-कोई भगवान गोस्वामी का गुरु द्वारा गलता गद्दी राजस्थान भी बतलाते हैं, परन्तु अभी तक कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिला है। इसलिए वृन्दावन को ही मानना समुचित जान पड़ता है, क्योंकि वहाँ हरिव्यासियों का गढ़ है। इसी प्रकार से कोई-कोई अलवर बतलाते हैं, जो गलत प्रतीत होता है।

जन्म-मरण का भय भाग गया। ज्ञान की सप्तमी भूमिका में वे विराजने लगे, तब उनको सद्गुरु कबीर की महिमा का ज्ञान हुआ।

इधर अभेद होते हुए भी भगवान गोस्वामी सद्गुरु कबीर की अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे। उनके अनुयायियों ने जब उनकी यह दशा देखी कि वे परमानंद में विराज रहे हैं, तो सब के सब शिष्य हो गए और साहब ने उन सभी मंत्रराज श्री राम का उपदेश दे दिया और भी जो उनके आस-पास के लोग थे, साहब से मंत्र ग्रहण कर लिए। सबके सब गुरुदेव के उपदेश को सुनकर कृतार्थ हो गए और नित्य जीवन मुक्त होकर अपने-अपने घरों को चले गए।

भगवान गोस्वामी जी का नाम अब भगवानदास हो गया। क्योंकि दास पद सर्वोच्च है। इसलिए साहब ने उन्हें दास पद दे दिया और पुकार कर कहा कि आज से आपका नाम भगवानदास प्रचलित रहेगा। आज तक लोग उन्हें दोनों नामों से जानते हैं। उनकी शिष्य शाखा का विशेष स्थान आज तक धनवती नामक स्थान में है, जो सारन जनपद में विद्यमान है। वहाँ के संत बड़े पवित्र एवं ज्ञानी होते हैं, जो सदा सद्गुरु के मूल ग्रंथ बीजक का ही पाठ करते हैं। वहाँ पर दीन-दुःखियों की बहुत सेवा होती है।

मथुरा-वृन्दावन में हरिव्यास जी का प्रसंग

श्री भगवानदास जी ने पिथौराबाद के मठ को अपने गुरु को समर्पित कर गुरुदेव कबीर के साथ हो गए, जिनको संत मण्डली ने अपने में मिला लिया। तत्पश्चात् संत मण्डली वहाँ से विदा होकर अन्य क्षेत्रों का भ्रमण करती हुई और सत्य धर्म का प्रचार करती हुई उत्तरी संभाग में मुड़ी जहाँ पर संतों का विचार हुआ कि हम लोग मथुरा होते हुए चलें और पुनः वहाँ से भ्रमण करते हुए अयोध्या चलें। इसके बाद, वहाँ से प्रयाग होते हुए काशी जी चलें। उक्त विचार को श्री रविदास जी ने सद्गुरु के समक्ष रखा इस पर सद्गुरु ने कहा कि जैसा आप संतों का विचार हो वैसा ही करें। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। अतः गुरुदेव की अनुमति प्राप्तकर संत मंडली वहाँ से चल पड़ी और चलते-चलते मथुरा में आ गई। जहाँ के लोग सुनकर दौड़ते हुए आए कि काशी जी से श्री कबीर जी महाराज आए हैं। सभी लोगों ने वहाँ आकर गुरुदेव का दर्शन किया और उनसे सत्य धर्म का उपदेश भी लिया। तत्पश्चात् संत

मंडली मथुरा से वृन्दावन गई जहाँ पर कुछ दिनों तक रुकी रही और उसी स्थान पर कथा-कीर्त्तन होता रहा।

वृन्दावन में साहब का आगमन सुनकर बहुत दूर-दूर से लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे और सद्गुरु के प्रवचन को सुनकर जीवन को सार्थक बनाने लगे। वहाँ से थोड़ी दूर पर हरिव्यास नामक एक पंडित भागवत की कथा कह रहे थे, जिनका जन्म बंग प्रदेश में हुआ था, ऐसा सुना जाता है और वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् एवं कथावाचक थे। उनकी कथा को सुनने के लिए हजारों लोग आया करते थे और उक्त व्यास जी के हृदय में श्री कृष्ण भगवान का साक्षात् भी होता था, जिसके कारण व्यास जी सदा प्रसन्न रहा करते थे।

एक दिन की कुछ बात है कि कुछ कथा श्रोतागण सद्गुरु कबीर की कथा को सुनने के बाद श्री हरिव्यास जी के यहाँ आए और उनसे पूछा कि महाराज कबीर जो कथा करते हैं वह कथा आपकी समझ से कैसी है, क्योंकि आपके यहाँ से वहाँ अधिक भीड़ होती है तथा उनकी कथा को श्रोतागण बड़े प्रेम से सुनते हैं। लोगों के इस बात पर श्री व्यास जी नेझुँझलाकर कहा कि कबीर का ज्ञान नवीन है। वे भक्तिरस की बात को नहीं जानते, केवल वे नीरस-निर्गुणवाद का समर्थन करते हैं, जो सभी के लिए सुलभ नहीं है। उनकी बातें कुछ ऊटपटांग भी होती हैं और वे बातें समझ में नहीं आतीं।

श्री हरिव्यास जी के इस निन्दापूर्ण बातों को सुनकर उक्त श्रोतागण मौन हो गए। कुछ लोग इधर से भी गए और साहब से पूछे कि श्री हरि-व्यास जी, जो कथा कहते हैं वह सही है? इस बात पर साहब ने कहा कि श्री हरिव्यास जी की कथा में अमृत की वर्षा होती है। वे तो भगवान के बड़े भक्त हैं। उनका दर्शन करना पुण्य-दायक है। इस प्रकार की साहब की बातों को सुनकर दोनों ओर के कथा श्रोताओं ने कहा कि कबीर जी धन्य हैं, कबीर जो धन्य हैं। आपकी जय हो, आपकी जय हो! इत्यादि नारे लगाए गए। उधर श्री हरिव्यास जी ने जिस दिन से कबीर साहब की निन्दा की, उसी दिन से उन्हें भगवान का दर्शन होना बंद हो गया। अब श्री व्यास जी का मन व्याकुल हो गया और उन्होंने अन्न-जल को त्याग-कर कई दिनों तक अनशन भी किया, परन्तु उन्हें पुनः श्री हरि का दर्शन

नहीं हुआ। उनकी घबड़ाहट बढ़ती गई और व्याकुल होकर चारों ओर ढूँढ़ने लगे, परन्तु कहीं कुछ भी नहीं मिला। अंत में अपने एक परिचित संत के यहाँ गए, जो बड़े सिद्ध थे। उस समय वे वृन्दावन के श्रेष्ठ संतों में गिने जाते थे। अतः वहाँ जाकर श्री हरिव्यास जी ने अपने दुःख को उनसे कह सुनाया। उक्त संत महापुरुष ने हँसकर कहा कि तुमने अपने पाण्डित्य के बल पर किसी महापुरुष की निन्दा की है। इसी कारण तुमको श्री हरि ने त्याग दिया है। जाओ उस महापुरुष को प्रसन्न करो तब श्री हरि पुनः तुम्हें दर्शन देंगे।

इस बात पर श्री व्यास जी ने उक्त संत पुरुष से कहा कि मैंने किसी महापुरुष की निन्दा नहीं की है। केवल एक दिन कुछ प्रसंगवश श्री कबीर जी के विषय में कहा था। उक्त संत ने कहा कि श्री कबीर जी असाधारण पुरुष हैं। इस समय सत्य-धर्म की रक्षा के लिए प्रकट हुए हैं। वे स्वयं भगवान विष्णु जी के अवतार हैं। अतः बिना कबीर साहब के प्रसन्न हुए तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। इसलिए जाओ कबीर जी को प्रसन्न करो। जंगल निवासी उस महात्मा की उपर्युक्त बातों को सुनकर श्री हरिव्यास जी बहुत दुःखित एवं लज्जित हुए और अपने किए हुए पर पश्चाताप करने लगे। इसके बाद सद्गुरु कबीर की अनेक छन्दों में स्तुति करने लगे[1]। बार-बार रोते हुए उन्होंने स्तुति की, परन्तु अपराध क्षमा नहीं हुआ। अंत में व्यास जी अपना प्राणोत्सर्ग करने के लिए श्री यमुना जी में जाकर कूद पड़े। अतएव श्री व्यास जी ज्यों ही यमुना के गहरे जल में कूदे त्यों ही सद्गुरु कबीर ने उसी बीच धार में प्रकट होकर श्री व्यास जी को पकड़ लिया और कहा कि ब्राह्मण! तुम मेरे

---

१. कलि में साँचो भक्त कबीर।

जब ते हरि चरणन रुचि उपजी तबते बुन्यो न चीर।
दीन्हों लेहिं न यांचे काहू ऐसो मन को धीर।
योगी यती तपी संन्यासी इनकी मिटी न पीर।
पाँच तत्व ते जनम न पायो काल न ग्रस्यो शरीर।
व्यास भक्त को खेत जुलायो हरि करुणामय नीर॥ १॥

—श्री हरिव्यास जी के पद, भक्तमाल टीका, (वि० सं० १९५३ की छपी) पृ० सं० १३७।

ऊपर क्यों प्राण दे रहे हो ? चलो अब तुम्हारा अपराध क्षमा हो गया। तुम पवित्र हो गए। आज से पुनः श्री नारायण जी तुम्हें दर्शन देंगे, परन्तु तुम्हें किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। भगवान का भजन अनेक प्रकार से होता है, जिसको जिस मार्ग से सुलभ हो, वही करे। किसी के मार्ग की निन्दा नहीं करनी चाहिए, अन्यथा उसका अहित होता है। इतना कहकर श्री व्यास जी को सद्गुरु कबीर ने यमुना के तट पर छोड़कर वहाँ से अन्तर्धान हो गए।

यह देखकर श्री व्यास जी को बड़ा आश्चर्य हुआ और अनेक प्रकार से सद्गुरु देव की स्तुति करने लगे। इसके बाद जहाँ गुरुदेव का प्रवचन हो रहा था. वहाँ पर गए और सारी घटना को जन समुदाय को सुनाने लगे। सभी लोग इस घटना को सुनकर सद्गुरु कबीर की अनेक प्रकार से प्रशंसा करने लगे। अंत में श्रीहरि व्यास जी जाकर गुरु कबीर के चरणों पर गिरकर रोने लगे। साहब ने पुनः उठाकर उन्हें कण्ठ से लगाकर अपने बगल में बैठा लिया। अतएव इस घटना का पूरे व्रज में शोर हो गया। उक्त घटना को सुनकर लोगों ने दूर-दूर से आकर साहब का दर्शन किया और उनसे सत्य धर्म की दीक्षा ली तथा जीवन मुक्त होकर अपने-अपने कार्य करते रहे।

इधर सद्गुरुदेव संत मण्डली से बोले कि यहाँ कई दिन हो गये। अब यहाँ से काशी के लिए चलना चाहिए, क्योंकि इस वर्ष गुरुदेव की जयन्ती पर काशी पहुँचना आवश्यक है। अस्तु, गुरु की आज्ञा पाते ही संत मण्डली अपने-अपने आसनों को बाँधकर श्री वृन्दावन से मथुरा होते हुए चल पड़ी। उनके स्वागत में मथुरा एवं आस-पास के सामन्त लोग बहुत दूर तक गुरुदेव के पीछे गए। अंत में गुरुदेव सभी को समझाकर लौटा दिए। सभी लोग प्रेमाश्रु बहाते हुए एवं साहब की सरलता तथा महत्ता का गुणानुवाद करते हुए अपने-अपने घर को लौट आए। उनमें से अधिकांश लोगों ने अपने घर को छोड़कर गुरुदेव के साथ काशी तक पहुँचाने के लिए चल दिए।

अष्टमालोक

जलेशर नगर के पास की घटना

प्रेतों से उत्पीड़ित ग्रामवासियों की रक्षा

संत मण्डली के साथ श्री गुरुदेव प्रत्येक ग्राम, एवं, नगर में घूमते एवं सदुपदेश देते हुए आ रहे थे। इसी संदर्भ में मथुरा वृन्दावन से लगभग बीस कोश की दूरी पर आए, तो एक ग्राम के निकट जहाँ एक सुरम्य सरोवर था, जिसका जल स्वच्छ दर्पण की भाँति दिखाई दे रहा था, सरोवर के चारो ओर सुन्दर वाटिका लगी हुई थी और अनेक प्रकार के वृक्षों-पुष्पों से वह वाटिका शोभायमान हो रही थी, ऐसा लगता था कि वह वाटिका आगन्तुकों के श्रम का परिहार कर रही हो, अतः उस सरोवर की परम रमणीकता को देखकर सन्त मण्डली ने वृक्षों की सघन छाया में अपने-अपने आसन को डाल दी और शौच आदि से निवृत्त होकर सरोवर में स्नान करने के वाद अपने-अपने आसनों पर राम ध्वनि करने लगी और एकाग्रचित्त से गुरुमंत्र का जप होने लगा। कुछ देर के वाद संतों ने अपने-अपने शंख की ध्वनि की एवं घण्टा को बजाकर गुरुदेव को आरती की गई। तत्पश्चात् पवित्र स्तोत्रों का गान होने लगा।

लगभग एक घन्टा तक भजन-कीर्त्तन हुआ। उसके वाद सभी सन्तों ने जाकर साहव को साष्टांग प्रणाम किया और पुनः अपने आसन पर जाकर बैठ गए। उधर साथ में जो सेठ लोग थे, जिनको मथुरा के सामन्तों ने भेजा था और कहा था कि तुम लोग सद्गुरु कबीर को काशी पहुँचाकर वापस आना। मार्ग में सन्तों को कोई कष्ट न होने पाये, इसका ध्यान रखना। जिस वस्तु की जरूरत हो उसको बाजर से खरीद करके संत-मण्डली को देते रहना। उक्त सेठों ने कहा कि गुरुदेव अव आज्ञा हो, आप लोगों के लिए हमलोग अन्न-जल की व्यवस्था करें। यहाँ पास में ही गाँव है, कहीं दुकान आदि का पता लगाना है, क्योंकि संत मण्डली दिन भर की भूखी। गुरुदेव ने उन सेठों से कहा कि आप

लोग गाँव में चले जायँ और आटा, चावल, हँड़िया, लकड़ी इत्यादि हो वहाँ से ले आइए।

गुरुदेव की आज्ञा पाते ही कुछ संत भी उन सेठों के साथ गाँव में गए, जहाँ पर सभी चीजों की दुकानें थीं। वहाँ से सभी सामान खरीदकर लाया गया, तत्पश्चात् भोजन बन जाने के बाद गुरुदेव ने भगवान को भोग लगाया। इसके बाद सभी संत भोजन करने के बाद अपने-अपने आसन पर सोने के लिए गए। अतः ज्यों ही अपने-अपने आसन पर विश्राम के लिए संत लोग बैठे, त्यों ही अचानक समीप के एक गाँव में आर्त्तनाद सुनाई दिया। इसी बीच संत मण्डली देखती है कि उक्त गाँव के सभी घरों से अग्नि की ऊँची-ऊँची लपटें निकल रही हैं। गाँव के सभी लोग त्राहिमाम्-त्राहिमाम् के शब्दों की ध्वनि कर रहे हैं। सभी संत उक्त दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित हो गए। कुछ संत लोग गुरु की आज्ञा पाकर उस गाँव तक गए जहाँ पर लोग अपने-अपने सामान को लेकर भाग रहे थे। उनमें से किसी का सारा सामान जल गया था, कोई अपने बाल-बच्चे को बचा हुआ पाया, किसी के बालबच्चे जल चुके थे, कोई स्वयं जल रहा था, किसी कि स्त्रियाँ चिल्ला रही थीं कि हमारा पति जल गया। इस प्रकार की दशा को देखकर ग्रामवासियों से पूछ-ताछ करने लगे। ग्राम-वासियों ने अपनी बीती हुई करुण कहानी को संत मण्डली को सुनाया।

ग्रामवासियों ने कहा कि महाराज! हम लोगों ने इस ग्राम को सातवीं बार बसाया है। यहाँ पर इसी प्रकार से हर दशवें वर्ष उपद्रव होते हैं और हम लोग जले हुए ग्राम को छोड़कर पुनः नई बस्ती बनाते हैं। हम लोगों के दुःखों की कोई सीमा नहीं है। इस प्रकार ग्राम-वासियों की दुःख भरी कहानी को सुनकर सन्तों को बड़ा कष्ट हुआ। संतों ने कहा कि तुम लोग एक काम करो। तुम्हारे गाँव के निकट सद्गुरु कबीर साहब आए हुए हैं, जो हम सबके गुरु हैं। तुम लोग चलकर उनसे कहो। तुम्हारे दुःखों को वे अवश्य दूर कर देंगे। इस बात पर ग्रामवासियों ने कहा कि कौन कबीर, जो काशी में प्रकट हुए हैं और जिन्होंने बादशाह सिकन्दर को पराजित किया था, क्या वही कबीर साहब हैं? संतों ने कहा कि हाँ वही कबीर हैं।

अतः साहब के आगमन को सुनकर उस गाँव के नर-नारी,

वृद्ध-युवा, जो जिस रूप में था, वह उसी रूप में जाकर प्रभु कबीर का दर्शन किया। प्रभु ने सभी से कुशल क्षेम पूछा। सभी अपने ऊपर बीती हुई परिस्थितियों को साहब से कहकर रोने लगे। प्रभु दुःखियों के दुःख से दुःखित होकर विह्वल हो गए और उन ग्रामवासियों से उन्होंने कहा कि तुम लोग शान्त रहो। रोओ मत! यह तुम्हारे पूर्वजों का पाप है, जिसके कारण तुम लोग कष्ट भोग रहे हो। ग्रामवासियों ने कहा कि हे प्रभो! हम लोग नहीं जानते कि कौन-सा पाप हमारे पूर्वजों ने किया है? इस पर प्रभु ने कहा कि तुम लोग शान्त चित्त होकर बैठ जाओ। मैं अभी तुम लोगों के पूर्वजों के पापों को प्रकट करता हूँ। इस प्रकार प्रभु की आज्ञा पाकर सभी लोग शान्त चित्त होकर बैठ गए। इसके बाद प्रभु ने उन मृत आत्माओं का चिन्तन किया, जिनको ग्रामवासियों के पूर्वजों ने जला दिए थे।

उन आत्माओं का मुखिया, चिन्तन करते ही प्रभु के सामने प्रकट हो गया[1]। विशालकाय, बड़े-बड़े दाँत, पचीसों हाथ ऊँचा, बड़े-बड़े बाल वाला वह व्यक्ति हाथ जोड़े हुए प्रभु के समक्ष खड़ा हो गया। उस मृत आत्मा की ओर लक्ष्य करके गुरुदेव कबीर ने पूछा कि तुम कौन हो? तब वह आत्मा बोला कि मैं प्रेत हूँ। गुरुदेव ने कहा कि तुम इन लोगों को क्यों कष्ट देते हो? मृत आत्मा बोला कि प्रभु! इन ग्रामवासियों के पूर्वजों ने मेरे सात भाइयों को जीते जी जला दिया था। मैं जाति का ब्राह्मण था। हम सभी को जला देने के बाद हमारे माता-पिता को भी इनके पूर्वजों ने जीते जी जमीन में गाड़ दिया और मेरी सारी सम्पत्ति को इन लोगों ने लूट लिया। हे देव! इन लोगों के पूर्वज लुटेरे थे, जो दूसरों की सम्पत्ति को लूटकर अपना जीविकोपार्जन करते थे।

इस प्रकार उस मृत आत्मा को देख एवं उसकी बात को सुनकर उस गाँव के सभी उपस्थित लोगों के रोंगटे खड़े हो गए तथा भय से सभी लोग काँपने लगे। प्रभु ने उस मृतक आत्मा से कहा कि तुम्हारे वे छह भाई एवं तुम्हारे माता पिता कहाँ हैं? तब उस मृत

---

१. कबीर करनी आपनी निष्फल कबहुँ न जाय।
सात समुद्र आणा परे तो भी मिलसी आय॥

—चौरासी अंग की साखी।

आत्मा ने कहा कि हे प्रभो ! वे सभी आप के पास हाथ जोड़कर खड़े हैं। प्रभु ने कहा कि उन सभी से तुम कहो कि वे प्रकट हो जायँ। अतः प्रभु के कहते ही वे सभी मृत आत्माएँ हाथ जोड़कर साहब के सामने खड़ी हो गई। तत्पश्चात् प्रभु ने उन मृत आत्माओं से कहा कि यह, जो तुम सबसे पहले प्रकट हुआ है, उसने जिन बातों को कहा है, क्या वे सत्य हैं ? सभी ने रोते हुए कहा—प्रभो ! सभी बातें सत्य हैं। पुनः प्रभु ने उन प्रेत आत्माओं से पूछा कि तुम लोग अब क्या चाहते हो ? उन लोगों ने कहा कि प्रभो ! हम लोग इस प्रेत योनि से मुक्त होना चाहते हैं, क्योंकि इस प्रेत योनि में हम लोगों को बहुत कष्ट हो रहा है, इसलिए हम लोगों को इस प्रेत योनि से मुक्त कर दीजिए। प्रभु ने पूछा कि तुम लोग ऊपर के लोकों में कहाँ तक जा सकते हो ? प्रेतों ने कहा कि हे प्रभो ! यम लोक से आगे जाने की हमलोगों को आज्ञा नहीं है।

हम लोग विशेषकर मृत्युलोक में ही रहते हैं। प्रभु ने पूछा कि तुम लोग कुछ और जानते हो। तब मृत आत्माओं ने कहा कि हे प्रभो ! कौन कैसा है, कब मरेगा और क्या होगा ? इन सभी बातों को हमलोग जानते हैं। हम लोग पलक मारते-मारते हजारों कोश चले जाते हैं और जहाँ चाहते हैं वहीं प्रकट हो जाते हैं, परन्तु हम लोगों को आज्ञा होती है कि कितने दायरे में तुमलोगों को रहना है। आज्ञा के विपरीत हम लोग कुछ नहीं करते। यदि कोई प्रेत आज्ञा की अवहेलना करता है, तो उसको यम लोक भेजकर बड़े-बड़े कष्ट दिए जाते हैं। साहब ने पूछा कि तुम लोगों को कौन आज्ञा देता है। प्रेतों ने कहा कि हम लोग यमराज की आज्ञा में रहते हैं। उनके बहुस से कर्मचारी हैं। वे सब हम लोगों की निगरानी किया करते हैं। साहब ने उन प्रेतात्माओं से पूछा कि जो तुम लोग इन ग्राम वासियों को परेशान करते हो, क्या यह भी यमराज की आज्ञा है ? उन्होंने कहा कि हाँ, इसमें हम लोग स्वतंत्र हैं। प्रभु ने पूछा कि तुम लोगों की आयु कितने वर्षों की होती है। प्रेतात्माओं ने कहा कि एक हजार वर्ष तक हमलोग इस प्रेत योनि में रहते हैं।

अभी हम लोगों को इस योनि में रहते केवल तीन सौ वर्ष ही हुए हैं। प्रभु ने पूछा कि तुम लोगों को क्यों प्रेत योनि मिली ? प्रेतों ने कहा कि हे प्रभो ! जब हम लोग इन ग्रामवासियों के

पूर्वजों द्वारा जला दिए गए, तो इसके बाद चार दूत आए और हम लोगों को आकाश की ओर पकड़ ले गए। हम लोगों को एक ऐसे लोक में ले गए जहाँ स्वतः प्रकाश रहता है। वहाँ सूर्य, चन्द्रमा नहीं होते। दूतों ने हम लोगों को ले जाकर एक ऐसे पुरुष के सामने खड़ा कर दिया, जो अनंत तेज से युक्त था, जिसकी ओर देखना कठिन था।

उस पुरुष ने हम लोगों को देखकर कहा कि इन सभी की आयु अभी शेष है इसलिए इन लोगों को प्रेत योनि में डाल दो। इन सभी का उद्धार कबीर साहब करेंगे। इस प्रकार की आज्ञा देकर उस पुरुष ने हमलोगों को वहाँ से हटा दिया। तभी से हम लोग इस योनि में पड़े हुए हैं। साहब ने पूछा कि इनके पूर्वज इस समय कहाँ हैं, जो तुमलोगों को जलाए हुए थे? प्रेतों ने कहा कि हे प्रभो! इन ग्रामवासियों के पूर्वज इस समय महारौरव नरक में निवास कर रहे हैं। साहब ने उन प्रेतात्माओं से पूछा कि कितने नरक होते हैं। प्रेतों ने कहा कि हे प्रभो! हजारों नरक हैं और वहाँ हजारों प्रकार की यातनाएँ हैं; जिसका जैसा दोष है, उसको उसी के अनुसार सजा दी जाती है। सबसे बुरी दुर्गति आततायियों की होती है। उनको लाखों वर्ष दुःख दिये जाते हैं। साहब ने कहा कि अब तुम लोग क्या चाहते हो? प्रेतों ने कहा कि हे प्रभो! अब हमलोग इस योनि से मुक्त होना चाहते हैं। प्रभु ने कहा कि अब मैं तुम लोगों को इस प्रेत योनि से मुक्त कर देता हूँ। तुम लोग पुनःब्राह्मण के घर पैदा होगे उसके बाद वैष्णवधर्म में तुम लोग दीक्षित होकर मेरे लोक में आ जाओगे। इतना कहकर प्रभु ने सभी के ऊपर अपने पैर को धोकर छिड़क दिया, तत्पश्चात् सभी वहाँ से अन्तर्विलीन हो गये।

उक्त घटना तथा संवादों को सुनकर वहाँ के उपस्थित लोगों ने कबीर साहब की बड़ी स्तुतियाँ कीं और बार-बार उनके कमलवत् चरणों पर अपने-अपने माथा को टेके। साहब ने कहा कि तुम लोगों के पास जो भी धन है, वह पाप से होता आया है। इसलिए उस धन को गरीबों में बाँट दो और अब ऐसा कुकर्म मत करना नहीं तो अपने किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ता है। सद्गुरु की आज्ञा मानकर ग्राम वासियों ने वैसा ही किया। इसके बाद सभी लोगों ने गुरुदेव कबीर से राम-मंत्र की दीक्षा ली और एक बहुत बड़ा भण्डारा किया, जिसमें दूर-दूर से साधु, ब्राह्मण एवं दीन-दुःखियों को आमंत्रित करके उनको भोजन

कराया गया। उक्त समाचार को सुनकर आस-पास के बहुत से ग्रामीणों ने आकर साहब के दर्शन किये और बाद में उनसे सत्य धर्म का उपदेश भी ले लिए तथा वहाँ पर पाँच दिनों तक वे सब गुरुदेव एवं संत मंडली के साथ टिके रहे। सद्गुरु लोगों को ज्ञानामृत पिलाते रहे। सभी लोग जीवन मुक्त हो गये और साहब का दर्शन करके अपने-अपने घरों को प्रस्थान कर गये। इधर संत-मंडली काशी नगरी के लिए चल पड़ी।

अवध के क्षत्रियों का उद्धार

इस प्रकार प्रत्येक गाँव एवं नगरों में सत्य का उपदेश देती हुई संत मण्डली चली जा रही थी। इस संदर्भ में एक घटना घटित हुई, जो इस प्रकार है—सद्गुरु आगे-आगे चले जा रहे थे। थोड़ी दूर पर एक गाँव पड़ा, जिसमें ब्राह्मण बसे हुए थे। अतः उसी गाँव का एक ब्राह्मण दम्पति आ रहा था, जो सद्गुरु कबीर को देखकर उनके चरणों पर गिर गया और कहने लगा कि प्रभो ! क्या मुझे आप यहीं रखेंगे ? प्रभु ने कहा कि मैं पाँच बार तेरे घर में प्रकट हुआ हूँ लेकिन तुमने हर बार मुझे अपना पुत्र ही समझा। इसलिए तुझे यहीं पर रहना पड़ा। अस्तु इस समय मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हूँ। अब तुम दोनों को शीघ्र ही मैं अपने दिव्य-लोक में भेज देता हूँ। साहब के इतना कहते ही सब के देखते ही देखते एक हंसाकार विमान आकाश की ओर से आया, जिस पर वे दोनों पति-पत्नी बैठकर अंतरिक्ष की ओर चल दिये।

इस घटना को देखकर श्री रविदास जी ने कहा—प्रभो ! मेरे माता-पिता भी ऐसे ही हैं। उनका उद्धार कैसे होगा ? साहब ने कहा कि संतों के माता-पिता केवल परमेश्वर है। संत किसी को अपना साधन बनाकर इस मृत्यु-लोक में जनहित के लिए आते हैं और परोपकार करके चले जाते हैं। उनके कोई माता-पिता नहीं होते हैं। संत तो अजन्मा होते हैं। वे अविनाशी के अंशभूत होने से अविनाशी ही हैं, ऐसा जानो। इतना कहकर सद्गुरु मौन हो गये। संत मंडली सत्संग वार्त्ता करती हुई प्रत्येक गाँव एवं नगरों में सत्य धर्म का प्रचार करती हुई अयोध्या के पास पहुंची जहाँ पर बहुत से हिन्दुओं को तुर्क बना लिया गया था। उनमें से अधिकांश राजपूत थे, जो पुनः आर्य धर्म को ग्रहण करना चाहते थे। अतः वहाँ के पचासों गाँवों में घूमकर संत लोगों ने सभी को पुनः आर्य

धर्म में संस्कृत किया। वाइस सौ क्षत्रिय केवल अयोध्या से थोड़ी ही दूर पर थे, जो सभी मुसलमान वन चुके थे। उन सभी को सद्गुरु कबीर ने हिन्दू बनाया और सत्य धर्म का उपदेश दिया। उक्त क्षत्रिय लोक रामानन्द गोत्र के कहे जाते हैं। इस प्रकार से पूरे अवध के भ्रष्ट हिन्दुओं को आर्यं बनाकर एक विशाल भण्डारे का आयोजन किया गया, जिसमें सभी लोगों ने एक स्थान पर वैठकर भोजन किया और वे हिन्दू धर्म का पालन करने लगे।

देश-विदेश की यात्रा समाप्त कर काशी आगमन

अवध के हिन्दुओं (मुसलमानों) को पुनः हिन्दू बनाकर सत्गुरु प्रयाग के लिए संत मण्डली के साथ रवाना हो गए और पाँचवे दिन श्री प्रयागराज में आ पहुँचे। जहाँ से कुछ संतों ने आकर राजा श्री वीरदेव सिंह वघेल को सूचना दी और कहा कि गुरुदेव कबीर संत मण्डली के साथ प्रयागराज में महर्षि भारद्वाज के आश्रम पर रुके हुए हैं जहाँ पर आसपास के लोग आकर उनकी सेवा में लगे हुए हैं।

उक्त समाचार सुनकर श्री महाराजाधिराज वीरदेव सिंह आनंद से नाचने लगे और बोले कि आज वारह वर्षों के बाद श्री गुरुदेव का आगमन मेरे उद्धार के लिए हुआ है। ऐसा कहते हुए महाराजा ने राज्य कर्मचारियों को आदेश दिया कि शीघ्रातिशीघ्र सोलह कहारों वाली पालकी को सजाओ और अंतःपुर के उद्यान को साफ करके रखना। मैं आये हुए सन्तों के साथ गुरुदेव को लाने के लिए प्रयागराज जा रहा हूँ। अतः इतना कहकर महाराज वीरदेव सिंह राज्य के मुख्य-मुख्य पुरुषों को लेकर चल पड़े और तीसरे दिन प्रातः काल भारद्वाज के आश्रम में पहुँचे और उन्होंने गुरुदेव का दर्शन किया। गुरुदेव ने राजा से कुशल क्षेम पूछा। राजा ने कहाकि प्रभो! आपके दर्शन के अभाव में कुशल कहाँ था? कुशल तो आज हुआ है। इसके बाद राजा वीरदेव सिंह सभी संतों से मिले और तत्पश्चात् साहब को पालकी में बैठाकर चौथे दिन पुनः काशी पहुँचे। राजा वीरदेव सिंह ने सर्वप्रथम साहब के चरणों को धोकर अपने पूरे परिवार को चरणामृत पिलाया और सपरिवार साहब एवं संत मण्डली की उन्होंने सेवा-बंदगी की। इस प्रकार संत मण्डली कई दिनों तक वहाँ रहकर राजा के अंतःपुर से अपनी

मातृभूमि वाली कुटी पर चली आई जहाँ पर आते ही चारों ओर से शिष्यों एवं प्रेमियों ने आकर साहब के दर्शन किए ओर आनंद मनाने लगे।

इस प्रकार बारह वर्ष के बाद जब पुनः सद्‌गुरु कबीर काशी में आये तो लोगों की भीड़-भाड़ का ठिकाना नहीं रहा। इसका कारण यह था कि गुरुदेव बारह वर्षों तक काशी से बाहर रहे। इसलिए उनका आगमन सुनकर देश-विदेश से अनेक लोग आए, जो साहब से सत्य मार्ग का अध्ययन करने लगे। तत्कालीन विश्व, सद्‌गुरु कबीर से विशेष परिचित हो गया था। इसके परिणाम स्वरूप सद्‌गुरु की प्रतिष्ठा पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गई थी, क्योंकि भारत एवं विदेश के राजे, महराजे धनी और गरीब सभी लोग साहब से अधिक प्रभावित हो गए। यही कारण था कि कबीर साहब के आश्रम पर बराबर मेला लगा रहता था। सभी लोग कथा-कीर्त्तन करते रहते थे।

कबीर साहब का भण्डारा

इस बात को देखकर बचे हुए शाक्त एवं ब्राह्मण लोग पुनः जल उठे और बोले कि देखो, कबीर तो शंकर से भी अधिक सम्मानित हो गया है। पहले की अपेक्षा इसका अत्यधिक सम्मान बढ़ गया है। चलो पुनः इसके लिए षड़यंत्र रचा जाय। ऐसा कहकर ब्राह्मणों ने चार अपने सगे-संबंधियों को बुलाकर सिर के बाल मुड़वा दिए।[1] इसके बाद सुन्दर

---

१. होय के खिसाने द्विज, निज चारि विप्रन के
मूर्ड़नि मुड़ायो भेष सुन्दर बनाये हैं।
दूर-दूर गाँवनि मैं, नावनि को पूँछि पूँछि,
नाम लै 'कबीर जू की झूठै न्योति आये हैं।
आए सब साधु सुनि एतौ दूरि गये कहूँ चहूँ
दिसि सन्तनि के फिरैं हरिषाए हैं।
इन्हीं को रूप धरि न्यारी न्यारी ठौर बैठे
एक मिलि गये नीके पोषि के रिझाये हैं।
—नाभादास कृत "भक्तमाल", पृ० सं० ४९०, कवित्त सं० ३४०।

वैष्णव का रूप बनाकर तुलसीदल देकर चारों दिशा में उन्हें भेज दिया और कहा कि अस्सी कोश तक जितने साधु-संन्यासी एवं ब्राह्मण मिले उन सभी को निमंत्रण दे देना। उन लोगों से यह कह देना की श्री कबीर जी माघ की वसन्त पंचमी के दिन बड़ा महोत्सव कर रहे हैं। इसलिए उस दिन आप लोगों का आना नितान्त आवश्यक है।

विरोधियों ने माघ मास के प्रथम पक्ष की नवमी तक सभी को आमंत्रित करने को कहा था। अस्तु, वे चारों छद्मवेशी लोगों ने वैसा ही किया जैसा उनके निर्देशकों ने उनसे कहा था। चारों तरफ तुलसी-दल बाँट दिए गए और उन लोगों से कहा गया कि महाराज समय का स्मरण रखना भूलना नहीं। आपलोग अपने सगे-संबन्धियों तक भी इस निमंत्रण को पहुंचा देना। प्रातः होते ही आप लोग बसंत पञ्चमी के दिन आ जाना, क्योंकि उसी दिन कबीर जी आप लोगों की बाट कोदेखते रहेंगे। एक पत्र दिखाते हुए कहा कि देखिए उन्होंने यह पत्र दिया है जिसपर उक्त तिथि अंकित है।

इस प्रकार संतों ने उन धूर्तों की बात को सत्य मानकर तुलसी दल को ले लिया। उनकी धूर्तता को वे संत नहीं जान सके और उन्होंने उसी दिन काशी की यात्रा आरंभ कर दी। इधर प्रपंची लोग बड़े हर्ष के साथ घर आये और आपस में उक्त बातों को कह-कह कर बहुत मगन होते रहे। परस्पर लोग कहने लगे कि चलो कबीर का खूब अपमान होगा तथा अन्न जल न मिलने पर संत लोग उसको शाप देकर नष्ट कर देंगे और तब हम लोगों का सिर दर्द सदा के लिए दूर हो जाएगा एवं हम सब शांति पूर्वक जीवनयापन करेंगे। ऐसा सोचकर अपने-अपने घरों में आनंद मनाने लगे। उधर वसंत पञ्चमी के दिन निमंत्रित संतों की भीड़ आनी शुरू हो गई। उन लोगों की भीड़ की गड़ना उसी प्रकार नहीं की जा सकती जिस प्रकार वर्षा ऋतु में पानी की बूंदों की गणना नहीं की जा सकती।

दीज्यौ दल कबीर के नांऊँ। असी कोस लग जितनां गांऊँ॥
माघ मास पहले पखवारे। नौमी कै दिन चलै सवारै॥
झूठौ दल दीनौ सब काहू। वेगि वसंत पंचमी आहू॥
—अनंत परिचई।

विरोधियों ने उस भीड़ के व्यक्तियों की गणना करने के लिए कुछ ब्राह्मणों को नियुक्त किया था, परन्तु अपार भीड़ होने से उन ब्राह्मणों ने गणना करना छोड़ दिया। तत्पश्चात् आगन्तुकों को वे लोग शिक्षा देने लगे कि कबीर के आश्रम पर इतनी सामग्री है कि बीस दिनों तक आप लोग रह सकते हैं। आगन्तुकों ने पूछा कि कबीर जी का आश्रम कहाँ है ? वे ब्राह्मण उनके आगे-पीछे लगे रहे और बोले कि कबीर इस समय गंगा तट पर सत्संग कर रहे हैं चलिए आप लोगों को उनके आश्रम तक हम लोग पहुंचा देते हैं। अस्तु, संत लोग उन ब्राह्मणों के साथ कबीर आश्रम नीरूटीला कबीर चबूतरे पर आ गए। थोड़ी ही देर में कबीर आश्रम पर एक बड़ा मेला लग गया। जिसमें कई हजार लोग थे, जिनको निमंत्रण मिला था। इस प्रकार संतों की अपार भीड़ को देखकर आश्रम के संतों ने उनलोगों से पूछा कि आप लोग इतनी संख्या में यहाँ किसलिए पधारे हुए हैं ? आगंतुक संतों ने कहा कि हमलोगों के यहाँ कबीर साहब का निमंत्रण गया था कि वसंत पंचमी के दिन हमारे यहाँ भण्डारा है। इसलिए आप लोगों से निवेदन है कि उस दिन आने की कृपा करना। इसी कारण हम लोग आए हुए हैं। देखिए कबीर जी का भेजा हुआ यह पत्र और तुलसी दल। इस प्रकार संतों की बात सुनकर आश्रमवासी संत चुप हो गये तथा छिपकर वहाँ चले गए जहाँ कबीर साहब लोगों को उपदेश दे रहे थे। उनसे इन सारी बातों को संतों ने कह सुनाया। इस प्रकार आश्रमवासी संतों की बात को सुनकर सद्गुरु कबीर मन ही मन समझ गए कि यह ब्राह्मणों का षडयंत्र है। तत्पश्चात् सद्गुरु ने संतों से कहाँ कि तुम लोग जाओ और आये हुए उन सभी संतों से कह दो कि आपलोगों की सेवा में कबीर अभी उपस्थित हो रहे हैं।

इस प्रकार साहब की आज्ञा पाकर संतों ने आकर साहब के उपर्युक्त संदेश को उपस्थित भीड़ को सुना दिया। सभी लोग राम ध्वनि में लग गए। उधर कबीर साहब हरि चर्चा में लगे रहे। ऐसा जान पड़ता था कि उन्हें उस आगंतुक भीड़ का पता ही नहीं है। सद्गुरु की इस विशुद्ध दशा को देखकर श्री मायापति भगवान केशव ने विचार किया कि कबीर के आश्रम पर अपार भीड़ उमड़ी हुई है और श्री कबीर जी परम तत्त्व में लीन हैं। अस्तु, चलो भीड़ को सँभाला जाय। श्री लक्ष्मी

जी को भगवान ने आदेश दिया कि तुम दासी का रूप धारण कर सैकड़ों रूपों में हो जाओ और मैं भी सैकड़ों कबीर के रूप में हो जाता हूँ। चलो, कबीर के आश्रम पर बहुत भीड़ एकत्र हो गई है। अतः श्री भगवान केशव ने सद्गुरु का रूप धारण करके साथ में जगज्जननी को लेकर अनेक प्रकार की भोज्य सामग्री छकड़ों पर लादकर कबीर के आश्रम पर उतार दिए और हजारों कबीर होकर प्रत्येक साधु की सेवा में लग गए। उधर जगज्जननी माँ लक्ष्मी दासी बनकर सैकड़ों रूप धारणकर भोजन बना रही हैं। आगन्तुक संतों को यह जान पड़ता था कि श्री कबीर जो सब की सेवा कर रहे हैं। जिसकी जो इच्छा है और जो जिस वस्तु को माँग रहा है वह उसी वस्तु को पा रहा है। वहाँ किसी को अन्न वस्त्र की कमी नहीं थी। सभी के सामने सोने की थाली और सोने की कार्णीका दिखाई पड़ने लगी। ऐसा लगता था कि यह मृत्यु लोक नहीं वल्कि इन्द्र लोक है।

इस प्रकार चहल-पहल के साथ पाँच दिनों तक भण्डारा चलता रहा। सभी लोग जय कबीर! जय कबीर! कहते रहे। उधर सद्गुरु कबीर ने अपने ध्यान में देखा कि मेरा वास्तविक स्वरूप धारण कर श्री हरि आकर मेरे नाम पर संतों की सेवा कर रहे हैं। अतः कबीर गंगा तट से उठकर यहाँ आए और श्री हरि केशव से मिले। भगवान् केशव कबीर को गले से लगाकर आँसू बहाने लगे और बोले कि कबीर मैं तुम्हारे वश में हो गया हूँ[1] तुमने मुझे अपने वश में कर लिया है। साहब ने कहा कि हे प्रभो! यह सब आपकी लीला है[2]। आप अपने भक्तों पर बड़ी कृपा करते हैं। सदा उनकी देख-भाल करते हैं। कबीर की इन बातों को सुनकर भगवान श्री हरि ने कहा कि यह सब आपकी महिमा है, जो मुझे बुलाकर संतों की सेवा करने का अवसर आप ने दिया है। श्री हरि ने कहा कि आप और मैं एक ही हूँ। केवल देखने में दो रूप हमारे और आपके लगते हैं। हे कबीर! जब मैं मनुष्य का रूप

---

१. कबीर मन निरमल भया जैसा गंगा नीर।
पाछे लागो हरि फिरहिं कहत कबीर कबीर॥ —साखी

२. ना कछु किया न कर सका, न करने योग्य शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भया कबीर कबीर॥ -गुरु ग्रन्थ साहिब।

धारण करता हूँ तो मेरा सारा कार्य मनुष्य जैसा हो जाता है। इसलिए भक्त और भगवान में कोई अन्तर नहीं होता है। जो भक्त है, वही भगवान है।

इस प्रकार भगवान श्री हरि और कबीर से अनेक प्रकार की ज्ञान चर्चा हुई, जिसको श्री गरीबदास जी महाराज ने विस्तारपूर्वक लिखा है। अस्तु, दोनों ने मिलकर संतों की विदाई की। जैसी संतों की इच्छा हुई वैसी ही वस्तु श्री हरि ने अपने ही हाथों से उन्हें दी। दक्षिणा प्राप्त कर संतों ने उद्घोष किया कि श्री कबीर की जय हो, श्री कबीर की जय हो! और इस प्रकार से स्तुति करते हुए संत मंडली आश्रम से विदा हुई और अपने-अपने आश्रम को चली गई इस प्रसंग को देखकर श्री अनंतदास[1] जी कहते हैं कि श्री राम और कबीर में सदा बनि आई है, क्योंकि दोनों एक ही हैं। वे गुरु हैं, तो वे गोविन्द। इसलिए दोनों की महिमा महान् है। संतों का भण्डारा हो गया। उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित हुई। इसे देखकर ब्राह्मणों का मुख काला हो गया, क्योंकि ब्राह्मणों ने उक्त भण्डारे में अनेक प्रकार के विघ्नों को उपस्थित करने का उपाय किया था, ब्राह्मण झूठ ही शोर करते थे कि इधर यह कमी है उधर वह कमी है। वे संतों का वेश धारण कर बीच-बीच में बैठकर सद्गुरु कबीर की निन्दा करते थे और कहते थे कि यह ठग है। बड़े-बड़े सेठ साहूकारों को इसने अपने वश में कर लिया है। इस प्रकार की अनेक बातें कहते थे, परन्तु श्री हरि ने कोई भी बाधा नहीं पड़ने दी। संतों ने बड़े हर्षपूर्वक भोजन-भजन किया।

इधर श्री हरि ने निन्दा करने वाले ब्राह्मणों को शाप दे दिया कि तुम लोग जीवन पर्यन्त निन्दा के पात्र बने रहोगे तथा तुम्हारे वंश के लोग सदा दूसरों के सामने हाथ फैलाएँगे और कहेंगे कि एक पैसा दे दो! इस प्रकार तुम और तुम्हारी संतति बराबर ठगी का काम करती रहेंगी। इस काशी नगरी के लोग या बाहर के लोग तुम लोगों को ठग समझेंगे, क्योंकि तुम लोग अकारण संत की निन्दा में लगे रहते हो। इसके फलस्वरूप इस कलिकाल में तुम लोग मेरे परम-पुनीत लोक में नहीं आ सकते। इस बात को श्री हरि ने तब कहा जब पुनः ब्राह्मण

---

१. अनन्त परिचई।

एकत्र होकर दूसरे षड़यंत्र को सोचने लगे। उक्त वक्तव्य को श्री हरि ने आकाशवाणी के रूप में दिया था, जिसको सुनकर काशी के ब्राह्मण हाथ जोड़कर आकाश की ओर शिर उठाकर कहने लगे कि हे प्रभो ! हम लोग यह नहीं जानते थे कि कबीर के रूप में आप ही हैं। इस पर आकाशवाणी ने कहा कि स्वयं मैं ही कबीर रूप में हूँ, लोक हित के लिए अनेक रूपों को धारण करता हूँ। कच्छप, मत्स्य, बाराह आदि तो मेरे ही अवतार है। क्या वे सब निन्दा के पात्र हैं ? तुम लोग मेरे कबीर रूप की निन्दा क्यों करते हो ? यदि आज से तुम लोग कबीर की निन्दा करोगे, तो निश्चय ही तुमलोगों का मूलोच्छेदन हो जाएगा और मैं तुम लोगों को चाण्डाल योनि में डाल दूंगा। इसलिए तुम लोग सावधान हो जाओ।

इस प्रकार की आकाशवाणी को सुनकर ब्राह्मण अत्यन्त भयभीत हो गये और कितने ब्राह्मण तो भयवश बेहोश हो गये तथा कितने ब्राह्मण प्रभु से विनय करते हुए कहने लगे कि हे प्रभो ! हमलोगों का उद्धार अब कैसे होगा ? इस बात पर प्रभु ने कहा कि तुम लोग उद्धार करने के योग्य नहीं हो, क्योंकि तुम लोगों ने कबीर के साथ बड़ा कुत्सित व्यवहार किया है। इसलिए मैंने जो कुछ कहा है वह सत्य होगा। यदि कबीर जी तुम लोगों के अपराध को क्षमा कर देंगे तो मैं भी क्षमा कर दूंगा, परन्तु दरिद्रता से तुम लोग घिरे रहोगे। इस शंकर भगवान की पुरी में रहते हुए भी तुम अभागे बने रहोगे। इसका कारण यह है कि तुम लोग सदा अत्याचार करते आ रहे हो। इतना कहकर आकाशवाणी मौन हो गई। इधर ब्राह्मणों ने एक सम्मेलन किया और उसमें यह निश्चय किया कि चलो अब हम लोग श्री कबीर जी के शरणापन्न हो जायँ, अन्यथा हम लोगों का कल्याण नहीं होगा और आज से उनकी निन्दा करना भी हम छोड़ दें।

इस प्रकार उक्त निश्चय करके विप्रमण्डली श्री गुरुदेव के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगी अनेक प्रकार से उनकी स्तुति करने लगी। ब्राह्मणों को अपने सामने गिड़गिड़ाते देखकर साहब ने कहा कि आप लोग मेरी ओर से निश्चिन्त रहें, परन्तु उस करुणामय की बातों को मुझमें क्षमा करने की क्षमता नहीं है, क्योंकि वह मेरा स्वरूप सर्वोपरि एवं

महान् है। इसलिए जो मेरे साथ आप लोग किए हैं उसका फल देनेवाला वही है, मैं नहीं। अतः मैं आप लोगों को अपनी ओर से क्षमा कर देता हूँ, जाइए आप लोग अपना काम कीजिए। इस प्रकार साहब की बातों को सुनकर ब्राह्मणों को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने सद्‌गुरु से कहा— प्रभो ! हम लोगों को राम मंत्र दे दीजिए नहीं, तो हम लोग नरकगामी हो जाएँगे। साहब ने कहा कि आप लोग राम-मंत्र के अधिकारी नहीं हैं। आप लोग शिव मंत्र के अधिकारी हैं, जाइए शिव मंत्र का जाप कीजिए। इतना कहकर साहब वहाँ से अंतर्विलीन हो गए। यह देखकर ब्राह्मण लोग निराश होकर अपने-अपने घर पर चले आए।

इधर ब्राह्मणों के वापस चले जाने पर कबीर साहब ने चबूतरे पर पुनः प्रकट होकर संतों को दर्शन दिया, जिससे प्रसन्न होकर सभी लोग आनंद मनाने लगे। उन लोगों ने भी उनके दर्शन किए, जो दूर-दूर से आए हुए साहब के शिष्य थे। महाराजा वीर देव सिंह ने, जो भण्डारा के समय तीर्थ यात्रा में चले गए थे, वहाँ लौटकर, गुरु द्वारा कबीर चौरा में आकर, साहब को साष्टांग प्रणाम किया। साहब ने महाराजाधिराज को उठाकर अपने गले से लगा लिया। तत्पश्चात् राजा ने साहब से निवेदन किया कि प्रभो ! मैं तीर्थ यात्रा से लौटने के उपलक्ष्य में संतों का एक भण्डारा करना चाहता हूँ। साहब ने कहा राजन् जब तुम्हारी इच्छा हो संतों को भोजन कराओ, क्योंकि संत सेवा परमोत्कृष्ट है।

श्री सद्‌गुरु की आज्ञा पाकर महाराजाधिराज वीरदेव सिंह वृहद् भण्डारे के आयोजन में लग गये। इधर ब्राह्मणों ने आकाशवाणी की बात सुनकर गुरुदेव कबीर का पीछा जीवन पर्यन्त के लिये छोड़ दिए और अपने किये हुए कर्मों के परिणाम स्वरूप भिखमंगे हो गये।

षड्‌यंत्र करके ब्राह्मणों ने जो भण्डारा-कराया था और जिसमें श्री हरि ने स्वयं पधारा था—भण्डारा के अनंतर वे अपने-अपने लोक, को चले गए। उनके जाने के साथ ही वहाँ का सारा वैभव समाप्त हो गया। वही रूप ज्यों का त्यों रह गया, जैसा भण्डारे के पूर्व था अर्थात् वहाँ मात्र संतों की, जो कुटिया थी, वह रह गयी। न तो कहीं उसका चिह्न है और न तो कहीं उसकी सजावट। सब का सब मायामय था। भगवान् श्री हरि के अन्तर्धान होते ही सभी मंडप और भवन

समाप्त हो गए। सभी को स्वप्न के समान लगा। कोई विश्वास ही नहीं करता था कि यहाँ सचमुच कोई भण्डारा हुआ था। वे सभी विमोहित हो गए थे। महीनों लोग कहते रहे कि कबीर ने क्या किया था ? वे सभी दृश्य कहाँ गये ? वही सत्संग और वही कुटिया केवल रह गइ थी वहाँ।

राजा वीरदेव सिंह का प्रसंग

इसी संदर्भ में महाराजाधिराज जो तीर्थ करके आये थे और जिन्होंने गुरुदेव से निवेदन किया था कि मेरे तीर्थ यात्रा के उपलक्ष्य में संतों के लिए एक भण्डारा का आयोजन किया जाय, सद्‌गुरु ने कहा ठीक है। अतः गुरुदेव की आज्ञा पाते ही महाराजाधिराज ने कहा कि प्रभो ! कल प्रातः सारी भोज्य-सामग्री आपके आश्रम पर आ जाएगी। सभी स्थानों पर कल के लिए निमंत्रण भेज दिया गया है। सद्‌गुरु ने कहा कि राजन् ! बहुत अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा ही करो। अतः प्रातः ही समस्त भोज्य सामग्री आश्रम पर आ गई। भण्डारा चालू हो गया। दूर-दूर से खाने वाले लोग आते रहे।

बड़ी धूम-धाम से दस दिनों तक महाराजाधिराज का भण्डारा चलता रहा। पूड़ी, लड्डू खाते-खाते लोग ऊब गए। सभी लोग बिना कहे ही भागने लगे। राजा ने सभी को रोककर दक्षिणा-सौगात के के साथ विदाई की। राजा के भण्डारे की चर्चा भी बहुत दिनों तक चलती रही। उक्त भण्डारे में राजा ने संतों की बड़ी सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर साहब बोले कि राजन् ! तुम क्या चाहते हो ? मुझसे वर माँगो ! इस प्रकार साहब को प्रसन्न जानकर राजा वीरदेव सिंह ने हाथ जोड़कर साहब से कहा प्रभो ! आपसे क्या माँगूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिए। सारा भोग मुझे उपलब्ध है, जो नाशवान कहा गया है। पुनः मैं उसी को कैसे भोग सकता हूँ। मुझे केवल आपकी दया मिलनी चाहिए जिसके द्वारा मैं जन्म मरण के चक्कर से मुक्त हो जाऊँ। आप ही ने तो कहा कि जहाँ तक चाहने की इच्छा है वह सब काल का ग्रास है, तो अब तो मैं क्यों चाहने की इच्छा करूँ। आपकी परम कृपा से अब मेरी कोई इच्छा अपूर्ण नहीं है, केवल भक्ति की इच्छा है। इसलिए उसी को मुझे दीजिए। इतना कहकर महाराजाधिराज साहब के चरणों

पर गिर पड़े, सद्गुरु कबीर ने राजा को उठाकर अपने गले से लगा लिया।

इस प्रकार साहब ने राजा को इच्छा रहित जानकर कहा—राजन् ! तुम उत्तम जिज्ञासु हो, इसलिए तुम उत्तम सपरिवार आत्मज्ञान प्राप्त करके अन्त में मेरे लोक चलोगे। बस, तुम्हारे लिए यही वरदान है। राजा, साहब की इस बात को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा उसने सैकड़ों बार साहब को साष्टांग प्रणाम किया। साहब ने पुनः राजा को उठाकर अपने गले से लगाया और कहा राजन् ! जाओ राज्य कार्य की देख-भाल करो और प्रतिदिन सत्संग में आया करो। राजा ने कहा कि प्रभो ! यही तो मैं भी चाहता हूँ, ऐसा कहकर राजा ने अपने सारे राज-काल को साहब के चरणों पर चढ़ा दिया और बोला, प्रभो ! आज से मैं आपका दास हूँ। इसको स्वीकार करके साहब ने कहा कि राजन् ! यह सब मेरा है, तुम भी मेरे हो। इसलिए मेरी आज्ञा से इसका देख-भाल करो। राजा ने साहब की आज्ञा स्वीकार कर वैसा ही किया।

नवमालोक

दामोदर भक्त-प्रसंग एवं रविदासजी, सेनजी से कबीर साहब से सत्संग

अब इधर संत मण्डली के सामने कोई वाधा नहीं रह गई। ब्राह्मण लोग सदा के लिए नतमस्तक हो गए। प्रतिदिन सत्संग अवाध गति से चलने लगा। सभी संत राम-नाम जपते रहे।

एक दिन की बात है। गुरुदेव कबीर सत्संगियों को राम-नाम की महिमा एवं सत्य धर्म की बातें सुना रहे थे। इसी संदर्भ में साहब के शरीर से पसीना चलने लगा। ऐसा लगता था कि हजारों मन का भार साहब के ऊपर पड़ा हो। यह देखकर श्रीश्रुतिगोपाल साहव ने पूछा प्रभो! अचानक पसीना चलने का क्या कारण है? साहब ने कहा कि वत्स! वैसे ही वह रहा है। तब तक श्रीमान् पद्मनाभ साहव ने कहा कि समुद्र में दामोदर नामक व्यापारी की नौका डूब रही थी, जो साहब का शिष्य है। अपनी नौका को डूबते देखकर दामोदर ने साहव को पुकारा। अतः उसी की पुकार को सुनकर गुरुदेव ने वहाँ जाकर उसकी नौका को ठेलकर किनारे पर लगा दिया. जिसमें अनेक प्रकार की सामग्रियाँ लदी हुई थीं। उस नौका को पार लगाने से साहब के शरीर से पसीना छूट रहा है। उक्त बात श्री पद्मनाभ जी के मुख से सुनकर सभी के सरीर में रोमांच हो आया। सभी लोग जाकर साहब के कमलवत् चरणों पर गिरकर उनकी महिमा का गान करने लगे। राजा वीरदेव सिंह ने तो पहले ही पूरी वाली घटना की परीक्षा कर ली थी। इसलिए उन्हें आश्चर्ययुक्त बात पर शंका नहीं हुई। अतः सब लोग उसी दिन से श्री पद्मनाभ को पद्मनाभदास कहने लगे और उनका सम्मान अत्यधिक बढ़ गया, क्योंकि वे साहब की नाभि की बात जान गये थे।

एक दिन ज्ञान गोष्ठी चल रही थी। इसी बीच में श्री रविदास जी, सेन महाराज तथा गुरुदेव कबीर के बीच कुछ विवाद छिड़ गया[1]। तोनों

---

१. यह गाथा रविदास परचई से ली गई है।

संत महापुरुष थे, परन्तु बड़े गुरुभाई एवं ज्ञान वृद्ध होने के कारण श्री रविदास जी एवं श्री सेन जी सद्गुरु कबीर को गुरु मानते थे, क्योंकि सेन जी, रविदास जी तथा पीपा जी को एवं अन्य गिरी हुई जातियों में उत्पन्न व्यक्तियों को सद्गुरु ने ही स्वामी रामानन्द जी से शिष्य बनवाया था। इस कारण जितने छोटे गुरुभाई कबीर साहब के थे, वे सब उनको गुरु के समान ही मानते थे। अतः एक दिन रविदास जी महाराज ने कहा कि प्रभो! आप अपने सगुण रूप को महत्ता नहीं देते, जिसके द्वारा संसार का सारा कार्य संचालित होता है और जिसकी प्राप्ति सुलभ है एवं जो अनाथों का नाथ है। निर्गुण निष्क्रिय अनीह है। उसके द्वारा संसार चल नहीं सकता, जिसको आप श्रेष्ठ मानते हैं।

इस प्रकार श्री रविदास जी एवं श्री सेन महाराज जी की उक्त वार्ता को सुनकर गुरुदेव ने कहा कि हे संतों! सगुण माया मिश्रित होने से समचित्त नहीं है और निर्गुण माया-विकारों से रहित होने से समचित्त है, क्योंकि उसमें माया का लेश नहीं है। वह निरुपाधि, निरुपम, अनवद्य, अकल और अनीह है। इसलिए वह निरन्तर एक समान ही रहता है। उसमें क्षरत्व और वृद्धत्व नहीं होता है। वह न तो कहीं जाता है और न कहीं से आता है। इसके बाद श्री रविदास जी ने कहा—क्या सगुण उससे भिन्न है? इस बात पर सद्गुरु ने कहा कि भिन्न नहीं होते हुए भी मायोपाधि से भिन्न है, क्योंकि मायोपाधि के कारण सगुण ससीम है और निर्गुण आकाश की भाँति व्यापक एक विभु है जिसमें सदैव कलनाओं का अभाव रहता है। इसलिए निर्गुण सगुण से भिन्न कहा गया है। अतः आप ही बताइए कि स्वप्न की बातें चिरस्थायी होती हैं कि प्रत्यक्ष की देखी हुई? तत्पश्चात् श्री रविदास जी ने कहा कि स्वप्न की अपेक्षा जागृत अवस्था वाली बातें चिरस्थायी होती हैं। इस पर सद्गुरु ने कहा कि इसी प्रकार से निर्गुण माया का आश्रय लेकर आता है और थोड़े समय में अन्तर्विलीन हो जाता है। इसलिए वह माया मिश्रित स्वरूप सगुण कहा गया है। उसमें चिरस्थायित्व नहीं है, परन्तु उसका जो अकृत्रिम स्वरूप है वह अल्पकालिक नहीं होता। वह शाश्वत है और उसे प्राणी मात्र की आत्मा भी कहा गया है। इसलिए उसी की प्राप्ति से जन्म-मरण का अन्त होगा।

उधर सगुण ब्रह्म समय-समय पर आकर भक्तों के क्लेश को दूर करके अपने वास्तविक स्वरूप में विलीन हो जाता है। इसके दर्शन से सुख एवं वियोग से दुःख होता है। इसलिए सगुणजन्य जो सुख है, वह स्थायी नहीं है। उसके परिणाम स्वरूप होने से उसकी महत्ता उतनी नहीं है, जितनी निर्गुणब्रह्म की। निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति से सदा एक रस आनन्द होता रहता है। उसमें वियोगजन्य दुःख नहीं है। इसलिए प्रभु के वास्तविक रूप का ही चिंतन-भजन करना चाहिए। इस बात पर रविदास जी ने सद्गुरु से कहा कि प्रभो ! जब वह गुणातीत है, तो उसका चिन्तन-भजन कैसे होगा ? सद्गुरु ने कहा कि उसी में गुण का आरोप करके उसे सर्वव्यापक जानकर चिन्तन-भजन करना चाहिए। जिस वस्तु का ध्यान प्रेमपूर्वक किया जाता है, उसकी प्राप्ति अवश्य होती है। क्योंकि निर्गुण ब्रह्म ज्ञान स्वरूप होने से यह जानता है कि मेरा चिन्तन करता है, तदनन्तर उसकी अन्तरात्मा में ही प्रगट होकर उसे कृतकृत्य कर देता है। निर्गुण ब्रह्म ही अपनी आत्मा है और जब उसका ज्ञान हो जाता है, तो वह दूसरे के चक्र में नहीं पड़ता।

इतना कहकर सद्गुरु मौन हो गए। इस प्रकार उक्त अमृतमय वाणी को सुनकर श्री रविदास जी, श्री सेन जी महाराज तथा अन्य संत सभासद कृतकृत्य हो गए और अपने-अपने स्वरूप में समाहित हो गए।

तत्वा एवं जीवा का काशी आगमन

इस प्रकार का सत्संग चल ही रहा था कि तब तक गुर्जर प्रदेश से श्री तत्वा एवं जीवा दोनों भाई सद्गुरु के निवास स्थान को पूछते हुए आश्रम पर आ गये। उन दोनों भाइयों को देखकर सद्गुरु ने प्रसन्नचित्त होकर पूछा—कहो ! कुशल है न ? दोनों भाइयों ने कहा कि जहाँ गुरुदेव की कृपा है वहाँ अकुशल कैसे हो सकता है, ऐसा कहते हुए वे दोनों भाइयों ने साहब के चरणों पर दो-दो फूल चढ़ाकर बंदगी करके साष्टांग प्रणाम किया और सद्गुरु के चरणों को धोकर चरणामृत का पान किया। सद्गुरु ने उन दोनों भाइयों का समादर करते हुए आसन पर बैठने का आदेश दिया वे दोनों भाई आसन पर बैठ गए, तत्पश्चात

सद्‌गुरु ने आश्रम के संतों से कहा कि इन दोनों भाइयों को स्नान कराकर भोजन कराओ। अस्तु, दोनों भाइयों ने स्नान करने के वाद भोजन किया। इसके बाद सद्‌गुरु कबीर के समीप बैठ गए।

इस प्रकार दोनों भाइयों को सुस्थिर जानकर गुरुदेव ने पूछा—कहो क्या समाचार हैं? तत्वा ने कहा—प्रभो! अपने ऊपर बीती हुई बात को कहने के लिए ही आपके पास मैं आया हूँ। हम दोनों भाइयों के एक-एक पुत्र हैं और एक-एक पुत्री, हैं जिनका विवाह अपनी जातियों में नहीं हो रहा है। मेरी जाति के भाई कहते हैं कि ये दोनों कबीर जुलाहे के शिष्य होने से विधर्मी हो गये क्योंकि कबीर मुसलमानी जुलाहा है। उक्त समाचार को ब्राह्मणों ने पूरे देश में प्रसारित कर दिया है। इसलिए हम दोनों भाई के लड़के और लड़कियों का विवाह नहीं हो पा रहा है। अतः अब आपकी जैसी आज्ञा हो वैसा ही हमलोग करें।

तत्वा की उक्त बात को सुनकर सद्‌गुरु ने कहा कि तुम लोग किसी बात की चिन्ता मत करो, क्योंकि संसार एक ही माता-पिता की सन्तान है। इसलिए सर्वप्रथम जो विवाह हुआ था, वह बहन और भाई में ही हुआ था। इसके प्रमाण स्वरूप सृष्टि के आदि में भगवान स्वयंभू ब्रह्मा की कुक्षि से मनु एवं शतरूपा प्रकट हुए थे, जो इस सृष्टि के मूल कारण बने। दोनों ने परस्पर सम्पर्क करके इस सृष्टि का विस्तार किया है। इसलिए तुम दोनों जाकर एक भाई की पुत्री से दूसरे भाई के पुत्र का विवाह कर दो, इसमें कोई दोष नहीं है। अतएव श्री गुरुदेव की आज्ञा पाकर वे दोनों भाई बड़े प्रसन्न हुए और बारम्बार गुरुदेव के चरणों पर माथा टेकते रहे। इसके बाद वे दोनों भाई काशी से गुजरात (भड़ौच) के लिए रवाना हो गए।

वे दोनों भाई अपने निवास स्थान पर पहुँच गए। उन्होंने गुरुदेव की बात को सारे परिवार वालों को बताया। परिवार के लोग गुरु की आज्ञा से सहमत हो गए और गुरु के आदेशानुसार विवाह की रचना प्रसारित कर दी गई। दिन-वार-तिथि रख दी गई तथा विवाह के मांगलिक गीत गाये जाने लगे। उक्त वैवाहिक गीत को सुनकर आस-पास के ब्राह्मणों को बड़ा आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् ग्राम के सभी

ब्राह्मण एकत्र होकर मंत्रणा करने लगे कि तत्वा के घर विवाह के गीत हो रहे हैं। क्या किसी ब्राह्मण ने उनके लड़के-लड़कियों को लेना-देना स्वीकार कर लिया है ? सभी ब्राह्मणों ने आपस में विचार किया कि इसका पता लगाया जाय। अस्तु, पता लगाया गया तो ज्ञात हुआ कि कोई ब्राह्मण अपना लड़का-लड़की नहीं दे रहा है। ब्राह्मणों ने मंत्रणा की एवं वे स्वयं तत्वा के घर गए जहाँ बारह वर्षों से आना-जाना वंद था। अतः अपने द्वार पर आया हुआ देखकर उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों से कुशल क्षेम पूछा और सभी ब्राह्मणों ने कुशल ही बतलाया।

ब्राह्मणों ने कहा कि तुम दोनों अपना कुशल सुनाओ। उक्त दोनों भाइयों ने कुशल ही बतलाया। इसके बाद ब्राह्मणों ने उन दोनों भाइयों से पूछा कि तुम दोनों अपनी पुत्री एवं पुत्र किसको दे रहे हो ? दोनों भाइयों ने कहा कि हम किसी को नहीं दे रहे हैं। आपस में ही बहन-भाई का विवाह कर दे रहे हैं। इस बात पर ब्राह्मणों ने कहा ऐसा न करो। छोड़ो, जो हुआ सो हुआ; अब हम लोग तुम दोनों को अपना लड़का और लड़की देंगे। आपस में भाई बहन की शादी विवाह करने से संसार का नियम बदल जाएगा एवं भ्रष्टाचार फैल जाएगा। अतः जो वेद की रीति है वह नष्ट हो जाएगी। इसलिए ऐसा न करो। ब्राह्मणों की उक्त बात को सुनकर तत्वा ने कहा कि मैं वही करूँगा, जो मेरे गुरु की आज्ञा है। तुम लोग शाक्त हो, हम वैष्णव हैं। भला आप ही बतलाइए कि विजातियों में विवाह का संबंध कैसे हो सकता है ? इस बात पर ब्राह्मणों ने कहा कि तुम ब्राह्मण हो और हम भी ब्राह्मण है इसलिए हमलोग सजातीय हुए। श्री तत्वा ने कहा कि ब्राह्मण सजातीय धर्म से होता है न कि वर्ण से।

हमारा धर्म वैष्णव है और तुम्हारा शाक्त। इसलिए हम दोनों में समता होना कठिन है। पुनः ब्राह्मणों ने हाथ जोड़कर कहा कि हम सबों की प्रार्थना मान लो, ऐसा कहते हुए ब्राह्मण तत्वा के चरणों पर गिर पड़े। तत्वा ने कहा कि आप लोग अभी शान्त रहें, मैं काशी जाकर अपने गुरुदेव से आज्ञा ले लूँ और देखो कि वे क्या कहते हैं ? इसके बाद ही मैं आप लोगों की बातों पर विचार कर सकता हूँ। ब्राह्मणों ने कहा कि एवमस्तु, जाइए।

श्री तत्वा पुनः काशी आये और उन्होंने गुरुदेव को उक्त सारा समाचार ज्यों का त्यों सुना दिया। श्री गुरुदेव ने तत्वा को आज्ञा दी कि जाओ उन ब्राह्मणों से कह दो कि आप सभी अहिंसक वैष्णव धर्म को स्वीकार कर लें, तो हम लोग अपने लड़के-लड़कियों को तुम्हें देंगे, अन्यथा गुरु की आज्ञा नहीं है। मेरे श्री गुरुदेव ने कहा है कि यदि वे लोग वैष्णव बन जायें, तो उनको लड़का-लड़की देना, नहीं तो परस्पर में ही विवाह कर लेना। तत्वा गुरु की इस आज्ञा को सुनकर प्रसन्न हो गये और गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम करके अपने निवास स्थान पर चले आये। यहाँ आकर तत्वा ने गुरु की आज्ञा को ब्राह्मणों से कह सुनाया। ब्राह्मणों ने कहा कि बहुत अच्छा! आप अपने गुरुदेव को बुलाइए, हम सभी उनके शिष्य होंगे। अतः तत्वा ने गुरुदेव कबीर को बुलाकर सभी ब्राह्मणों को सत्यज्ञानानुमार्गी बनवा दिया। तदनन्तर अपने पुत्र एवं पुत्री को ब्राह्मणों को दे दिया। इसके बाद सब आनन्दपूर्वक रहने लगे और श्री राम-नाम का जप करने लगे।

जहाँनीगस्त का प्रसंग

अरब स्थान में एक मुसलमानी धर्म के सन्त रहते थे, जिनका नाम था जहाँनियाँगस्त। उन्हें भारत एवं एशिया के अन्य देश के लोग भी जानते थे। यह भी सुन चुके थे कि वे बड़े सिद्ध पुरुष एवं महायोगी हैं। उक्त देश उनसे काफी प्रभावित रहे। अतः जब सद्गुरु कबीर अरब स्थान में भ्रमण के लिए गए थे, तो उस समय उक्त संत से मुलाकात नहीं हुई थी। उन्होंने कबीर साहब से अपने को महान् समझा था और उस समय उनका दर्शन नहीं किया था। इसके बाद उक्त सिद्ध पुरुष को रात्रि में स्वप्न हुआ कि तुम जाकर भारत में श्री कबीर का दर्शन करो नहीं तो तुम्हारा अज्ञान दूर नहीं होगा। इस बात पर जहाँनियाँ ने कहा कि कौन कबीर? स्वप्न पुरुष ने कहा कि भारत के कबीर, जिसने सम्राट् सिकन्दर लोदी को पराजित किया है। जहाँनियाँ ने उस स्वप्न पुरुष से कहा कि मैं कबीर साहब का दर्शन अवश्य करूँगा।

प्रातः होते ही जहाँनियाँ स्वप्न की बात पर चिन्तन करने लगा कि मैंने कबीर साहब के यहाँ आने पर उनका अपमान किया था। इसलिए भगवान अल्लाह की ओर से मुझे यह आदेश हुआ

है। अतः जहाँनियाँ कबीर के दर्शन के लिए अरब से चल पड़े और कुछ ही समय में सद्गुरु कबीर के आश्रम पर आ गए। इधर सद्गुरु कबीर पहले ही जान गए थे कि जहाँनियाँ मेरे यहाँ आ रहे हैं। इसलिए उनके बैठने के लिए आसन का प्रबंध कर दिया गया था। परन्तु सद्गुरु ने एक चमत्कार को जहानियाँ की परीक्षा के लिए किया था, क्योंकि उन्हें जहाँनीगस्त के भ्रम को दूर करना था। साहब ने अपने आश्रम के सामने एक सूकर को बँधवा दिया था जिसके कारण सद्गुरु के शिष्य भी उनसे घृणा करने लगे. परन्तु किसी का साहसा नहीं पड़ता था कि वह साहब से पूछें कि आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? सभी ने परस्पर विचार करके कहा कि इसका कोई कारण अवश्य होगा।

इसी बीच अरब के संत आ गए और दूर से ही यह देखकर उनके मन में घृणा हुई कि कबीर जी सूकर को क्यों बाँधे हुए हैं? वे तो संत हैं, उनको इससे दूर रहना चाहिए। इस प्रकार मन में तर्क-वितर्क करने के वाद लौटने का विचार करने लगे। उनके मन में यह भाव जागृत हुआ कि उस शैतान ने स्वप्नावस्था में मुझे भ्रम में डाल दिया था। वे ऐसा सोच ही रहे थे कि सद्गुरु कबीर उनके मनोभाव को जान गये और बोले—संत! आओ, क्यों इतनी दूर से आकर वहाँ रुक गए हो? सभी सन्तों ने देखा कि दिव्य मूर्ति वाले अरब के संत खड़े हैं, जो सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे हैं। अतः सद्गुरु ने अपने आकर्षण शक्ति से उन्हें अपनी तरफ खींच लिया। वे कबीर साहव के पास आकर आसन पर बैठ गए। दोनों तरफ से कुशल-मंगल की पूछ-ताछ हुई, तदन्तर उनको भोजन कराया गया। इसके पश्चात् सत्संग की वार्ता सद्गुरु कबीर और जहाँनियाँ में छिड़ गई।

जहाँनियाँ ने सद्गुरु से कहा कि आपका नाम वहुत दिनों से मैंने सुना कि आप वहुत बड़े महापुरुष एवं संत हैं, परन्तु यह समझ में नहीं आ रहा है कि आप ने इस अग्राह्य को क्यों ग्रहण किए हुए हैं? यह अच्छा नहीं है। इस बात पर सद्गुरु कबीर ने कहा कि जहाँनी जो, मैंने अपने अग्राह्य को भीतर से वाहर कर दिया है, परन्तु आप अभी उसको भीतर ही रखे हुए हैं। तदनन्तर जहाँनियाँ ने सद्गुरु से कहा कि इसे सुस्पष्ट कीजिए? साहब ने कहा कि मैंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष एवं अहंकार रूपी सूकर को भीतर से निकालकर बाहर बाँध दिया

है। परन्तु इसके विपरीत भेद-बुद्धि-रूपी सूकर को आप अपने अन्दर रखे हुए हैं और इस पर भी आप अपने को पवित्र बनते हैं। उनके द्वारा मनुष्य को नरक होता है और इसे ही नरक का द्वार कहा गया है। उन सभी वस्तुओं को आप अपने शरीर रूपी आश्रम में छिपाकर रखे हुए हैं।

सद्गुरु की उक्त बात को सुनते ही जहाँनियाँ का भ्रम दूर हो गया और उनकी बुद्धि प्रकाशमय हो गई। वे साहब की अनेक प्रकार से प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार उस दिन सत्संग की वार्ता होते-होते सूर्यास्त होने लगा जिस पर जहाँनियाँ चौंक उठे। साहब ने पूछा कि क्या बात है? जहाँनियाँ ने कहा कि प्रभो! मैं प्रतिदिन मगरवी (पश्चिमी-पूजा) निमाज, मक्का शरीफ में करता हूँ, परन्तु आज यहीं पर सूर्यास्त हो रहा है। अब मैं कैसे अपने आश्रम पर पहुँच सकता हूँ? साहब ने कहा कि आप चिन्ता न करें। आप अपने शिष्यों सहित आँख मूँद लीजिए। साहब की आज्ञा पाते हो जहाँनियाँ एवं उनके शिष्यों ने अपनी-अपनी आँखों को मूँद लिये। साहब ने कहा कि स्वतः जहाँ आँख खुल जाय वहीं रुक जाना। इतना कहकर साहब मौन हो गये। उधर पलक मारते-मारते जहाँनियाँ अपने शिष्यों सहित मक्का की बड़ी मस्जिद में पहुँच गये, जहाँ वे नमाज की अग्रिम पंक्ति में खड़े होते थे। अस्तु, जहाँनियाँ ने जब अपने को मक्का की अग्रिम पंक्ति में खड़ा पाया, तो सभी लोगों ने कहा कि अभी हम लोग हिन्द में थे और पल भर में ही प्रतिदिन की भाँति यहाँ नमाज पढ़ रहे हैं। इसका क्या कारण है। जहाँनियाँ ने अपने शिष्यों से कहा कि कबीर साहब दूसरे परवरदिगार हैं। उनके विषय में तुम लोग कुछ सोचो नहीं। उन्हें मन ही मन नमस्कार करो। अतः शिष्यों ने वैसा ही किया। उन लोगों ने नमाज पढ़ी। साहब का गुणानुवाद करने लगे एवं सभी भगवान विष्णु के उपासक बन गये और जय कबीर! जय कबीर! कहने लगे।

पद्मनाभ का प्रसंग

सद्गुरु कबीर काशी में श्री राम-नाम की महिमा में लोगों को विलीन करने लगे। सद्गुरु के परम शिष्य श्री पद्मनाभजी, जो उनके अंतरंग शिष्यों में से थे, एक दिन गंगा में स्नान करने के लिए

गए थे। उन्होंने गंगा तट पर एक दृश्य देखा, जो मणिकर्णिका का था। वहाँ पर बहुत भीड़ लगी हुई थी, जिसको देखकर श्री पद्मनाभदास जी उसके निकट गए और देखते क्या हैं कि एक कुष्ठ रोगी अपने हाथ पैर को बाँधकर गंगा में कूदना चाहता था।[1] अतः उक्त कुष्ठ रोगी को गंगा में कूदने के लिए प्रस्तुत देखकर श्री पद्मनाभ दास जी ने कहा कि सुनो, तुम क्यों गंगा में कूदने जा रहे हो? उसने कहा—महाराज! मेरे इस कुष्ठ रोग से घृणा करके परिवार वालों ने मुझे घर से निकाल दिया है। पुत्र एवं पत्नी भी मुझसे घृणा करते हैं। मेरे इस कष्ट के प्रति किसी की सहानुभूति नहीं है। मैं सबसे उपेक्षित हूँ। इसीलिए मैं अपने को असहाय समझकर गंगा में कूदना चाहता हूँ। उसकी इस बात पर श्री पद्मनाभदासजी ने कहा कि यदि तुम कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाओगे तो क्या करोगे? उसने कहा स्वामी जी तब मैं भगवान् का भजन करूँगा। उसकी बात को सुनकर श्री पद्मनाभदास जी ने उपस्थित लोगों से कहा कि इसका बंधन खोल दो, परन्तु वह भीड़ केवल तमाशा देखने के लिए उपस्थित थी। उसमें से किसी ने भी उसके बंधन को नहीं खोला, क्योंकि उसके तन से रक्त बह रहा था और बदबू आ रही थी। उसे देखकर लोगों को घृणा हो रही थी।

अतः जब किसी ने उसके बंधन को नहीं खोला तब श्री पद्मनाभ दास जी ने स्वयं अपने कर-कमलों से उसके बंधन को खोल दिया और उससे कहा कि तुम गंगा जी में औंधे मुख खड़े हो जाओ। अतः वह

---

१. कासी बासी साहु भयो कोढ़ी, सो निबाह कैसे,
परिगये कृमि चल्यो बूड़िबे को, भीर हैं।
निकसे "पदम" आय, पूछी ढिग जाय,
कही गही देह खोलौ गुन-न्हाय गंगा नीर है।।

"राम नाम कहै बेर तीन मैं, नवीन होत",
भयोई नवीन कियो भक्ति मति धीर है।
गयौ गुरु पास, "तुम महिमा न जानी,
अहो! नाम भास कामकर" कही ज्यों कबीर है।।
—भक्तमाल—प्रियादास की टीका, कवित्त सं० ३११, पृ० ५३५।

पद्मनाभ जी के कथनानुसार खड़ा हो गया। पद्मजी ने उससे कहा कि तुम तीन बार राम-राम कहो। उसने वैसा ही किया ज्यों ही उसके मुख से अंतिम राम शब्द निकला त्यों ही उसका शरीर सोने के समान देदीप्यमान हो गया तथा वह राम-राम रटता रहा। उक्त समाचार वाराणसी नगर में शीघ्रता से फैल गया। लोग कहने लगे कि कबीर साहब के शिष्य श्री पद्मनाभदास जी ने अमुक वणिक कुष्ठ रोगी को केवल तीन बार राम-राम कहलवाकर रोग मुक्त कर दिया। उक्त समाचार सद्‌गुरु कबीर को भी मिल गया। जिसे सुनकर सद्‌गुरु मन ही मन सोचने लगे कि पद्म जी अभी राम-नाम की महिमा नहीं जान पाए। इस प्रकार सद्‌गुरु कबीर सोच ही रहे थे कि श्री पद्मनाभ दास जी आश्रम पर आ गए। उन्होंने जाकर साहब को साष्टांग प्रणाम किया। साहब ने उनको अपनी छाती से लगाकर कहा वत्स! तुमने एक छोटे से कार्य के लिए तीन बार श्री राम-नाम का आवाहन करवाया है। अभी तुमने प्रभु के इस पावन नाम के महत्व को नहीं जाना है।

सद्‌गुरु की उक्त बात को सुनकर पद्म जी ने कहा कि हे प्रभो! मुझे श्री राम-नाम की महिमा सुनाइए। सद्‌गुरु ने कहा वत्स! तुम अस्सी पर जाओ। वहाँ पर पागल के रूप में मेरा एक गुरु भाई रहता है वही तुम्हें श्री राम-नाम की महिमा बतलाएगा। अतः गुरुदेव की आज्ञा पाकर श्री पद्म जी अस्सी पर गये जहाँ पर पागल बाबा रहते थे। उक्त बाबा ने दूर से ही पद्म जी को आते हुए देखकर कहा—आओ पद्म, तुम्हें कबीर भाई ने भेजा है। यह सुनकर पद्म जी दौड़कर उस बाबा के चरणों पर गिर पड़े और बोले—हाँ, गुरुदेव कबीर ने ही मुझे आप के पास भेजा है। बाबा ने कहा कि बहुत अच्छा जाओ वह शव, जो गङ्गा के किनारे लगा हुआ है, उसके कान में 'र' कह दो। बाबा की आज्ञा पाकर श्री पद्‌मनाभ जी ने उस शव के कान में 'र' शब्द कहा। तदनन्तर 'र' शब्द कहते ही उसने उठकर श्री पद्म जी को साष्टांग प्रणाम किया और पद्म जी के साथ वह आकर उक्त पागल सन्त के पैरों पर गिरकर अनेक प्रकार से स्तुति करने लगा। बाबाने उससे कहा कि तुम अभी रहना चाहते हो। उसने कहा जैसी आपकी कृपा। बाबा ने कहा पद्म के साथ जाओ कबीर मेरे बड़े गुरुभाई हैं उनसे राम-नाम का मंत्र ले लो और जीवन पर्यन्त श्री हरि का स्मरण करना।

इतना कहकर पद्मनाभ के देखते ही देखते बाबा अन्तर्धान हो गए। इधर पद्मनाभ जी उसको साथ में लेकर साहब के पास आए और सद्गुरु से उक्त बाबा का समाचार सुनाया। साहब ने कहा ठीक है। तुमने हरि की महिमा को जाना कि नहीं? पद्म जी ने कहा कि प्रभो! सब आपकी कृपा है जिसके बल पर मैंने परम तत्त्व का परिचय पाया। साहब ने कहा कि अब तुम जाओ मेरी शिक्षा का प्रचार करो और सभी को राम—नाम का उपदेश दो, नहीं तो यहाँ के लोग तुम्हारे पीछे पड़ जाएँगे। लोग यही कहेंगे कि तुम बड़े सिद्ध हो और तुमसे कहेंगे बाबा यह कर दो, वह कर दो। तुम देखते नहीं हो कि मैं सदा इन चमत्कारों से दूर रहता हूँ। अपनी शक्ति का व्यय करना अच्छा नहीं है। इस प्रकार के प्रयोग जन्म मरण के कारण हैं। आज से तुम ऐसा मत करना।

गुरुदेव की आज्ञा पाकर श्री पद्मनाभ जी गुजरात की ओर जाकर श्री हरि की भक्ति का प्रचार करने लगे जहाँ पर अभी भी उनके शिष्यों की शाखा विद्यमान है और वह सत्य धर्म के प्रचार में लगी हुई हैं। वे उधरेज आदि स्थानों के स्वामी हैं, जिनके अनेक झोपड़े बने हुए हैं। इधर वह कुष्ठी भी राम की महिमा के बल से अच्छा हो गया और वह सद्गुरु से वैष्णवधर्म का उपदेश लेकर जीवन पर्यन्त राम-नाम का जप करता रहा और वह व्यक्ति जो मृतक से जीवित हो गया था, वह भी सद्गुरु के शरणापन्न हो गया और अन्त में मुक्ति पा लिया। इसी प्रकार से गुरुदेव के शरण में लाखों मनुष्यों का बराबर उद्धार होता रहा।

श्री महारानी झाली रानी प्रसंग[1]

तत्कालीन चित्तौर के महाराजा की पत्नी श्रीमती झाली रानी नाम से प्रख्यात थी, जो पूर्णरूपेण भगवत् भक्ता थी। महारानी बहुत समय तक भक्ति भावना में रत रहीं, परन्तु उनको आत्म-दर्शन नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा उन्होंने अपने मन में यह निश्चय किया कि काशी में सद्गुरु कबीर का दर्शन और गुरु मंत्र ग्रहण कर श्री हरि की सेवा भाव करूँ। अपने इस आशय को महारानी ने महाराजाधिराज से कहा। महाराजाधिराज महारानी से बहुत प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने आज्ञा दे दी और उन्होंने बहुत से सैनिक एवं राजगुरू को साथ में लगाकर

१. यह कथा रविदास परचई (अमुद्रित ग्रंथ) से ली गई है।

महारानी को काशी के लिए भेज दिया। कथा-कीर्त्तन करती हुई महारानी जी ससमाज काशी में पहुँच गई और गुरुदेव के आश्रम का पता लगाकर वहाँ भी पहुँच गयी।

महारानी ने गुरुदेव का विधि-विधान-पूर्वक पूजन-अर्चन किया। गुरुदेव से उन्होंने अपनी इच्छा को भी व्यक्त कर दिया गुरुदेव ने महारानी जी से कहा कि मैं आपका गुरू तो हूँ ही, इसमें संदेह नहीं। मेरी आज्ञा मानना ही शिष्यत्व है। अतः आप यहाँ से मेरे गुरुभाई श्री रविदास जी के पास जायँ और उन्हीं से राम-मंत्र की दीक्षा ले लें। कबीर साहब की आज्ञा पाते ही उन्होंने रविदास जी के पास जाकर राम-मंत्र की दीक्षा ले ली। इसे देखकर ब्राह्मणों को ईर्ष्या बड़ी हुई कि महारानी ने ब्राह्मणों से राम-मंत्र की दीक्षा न लेकर एक चर्मकार से राम-मंत्र की दीक्षा ली। इतना सोचते ही रविदास जी के शरीर पर सोने के तीन तागे का जनेऊ दिखाई दिया, जिसे देखकर ब्राह्मणों का विकृत मस्ष्तिक स्वस्थ हो गया और वे श्री रविदास जी के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगे। श्री रविदास जी ने सभी ब्राह्मणों को क्षमा कर दिया। इसके बाद सभी ब्राह्मणों ने श्री रविदास जी से राम-मंत्र ले लिया और उन्होंने अपने जीवन को सार्थक-बनाया। इसके साथ ही दान-दक्षिणा देकर श्री रविदास जी से विदा लेकर राम-नाम जपते हुए उन ब्राह्मणों के साथ महारानी झाली चित्तौर कुछ ही दिनों में पहुँच गयीं।

वहाँ जाकर रानी ने बहुत बड़ा भण्डारा किया, जिसमें बहुत से साधु-ब्राह्मण एवं दीन दुःखियों ने भोजन किया। महारानी ने जब से श्री रविदास से राम-मंत्र को ग्रहण किया तभी से उनकी समाधि लगने लगी थी। उन्हें आत्म साक्षात्कार हो गया उन्होंने इस उपलक्ष्य में श्री गुरु रविदास को अपने राज्य में बुलाने का विचार किया। उन्होंने सोचा कि जब तक श्री गुरुदेव मेरे यहाँ नहीं आते तब तक यह धाम परिशुद्ध नहीं होगा। अतः महारानी ने चार अनुचरों को भेजा और उनसे कहा कि मेरे गुरु को काशी से लिवा लाओ, क्योंकि जिसके द्वार पर गुरुदेव नहीं आते वह द्वार, द्वार नहीं है, वह श्मशान जैसा है। इस प्रकार दूतों को समझा-बूझाकर रानी ने भेज दिया। वे दूत चित्तौर से चलकर कुछ दिनों में काशी आ गए और रविदास जी का आश्रम

पूछते-पूछते उनके पास पहुँच गए और उन्होंने रानी की लिखी हुई पत्रिका श्री रविदास जी को दे दी। उन्होंने उस पत्रिका को पढ़ा और वे कुछ संदेह में पड़ गये और साथ ही अपने साथी-संतों से विचार-विमर्श भी करने लगे। संतों ने कहा कि आप सद्‌गुरु कबीर से इसके विषय में राय-मसविदा कीजिए तभी मार्ग मिलेगा। संतों की उक्त बात सुनकर श्री रविदास जी ने कहा—

"तब रविदास विचारी बाता। गुरु समान कबीर बड़ भ्राता॥"

—रविदास परिचयी

प्रातः होते ही श्री रविदास जी सद्‌गुरु कबीर के यहाँ गए और रानी की आई हुई पत्री को पढ़ कर उन्हें सुनाया। साहब ने कहा तुम जाओ भक्त का मान रख आओ। डरो मत। संतों को निर्भीक रहना चाहिए। अतः साहब की आज्ञा मान कर श्री रविदास जी दूतों के साथ वहाँ चले गए और वहाँ के सभी लोगों को राम-नाम का उपदेश भी दे दिया। तदन्तर वहाँ से पूजित होकर अपने स्थान को चले आए। वहाँ से आकर सारा समाचार सद्‌गुरु कबीर को भी सुना दिया। साहब ने कहा कि बहुत अच्छा आप जैसे संत सभी को सुख दे सकते हैं, क्योंकि यदि संसार में संत नहीं होते तो यहाँ अग्नि की लपटें इस संसार को जला देती। संत ही उक्त धारा को बुझाते हैं, इत्यादि बातों को सद्‌गुरु कबीर श्री रविदास जी से कहकर प्रतिदिन की भाँति सत्संग में लग गए।

इसी संदर्भ में एक घटना घटी, जो इस प्रकार है—सत्संग चल ही रहा था कि इसी बीच में गुरुदेव ने दो पत्थर के टुकड़ों को लेकर उसमें से एक को उत्तर फेंका और दूसरे को दक्षिण फेंका। गुरुदेव के इस कार्य को देखकर लोग आश्चर्य में पड़ गए। उसी सत्संग में महाराजाधिराज वीरदेव सिंह बघेल भी उपस्थित थे। उक्त महाराज ने हाथ जोड़कर सद्‌गुरु कबीर से पूछा कि प्रभो! आपने यह क्या किया? साहब ने कहा कि राजन्! बंग देश में झगड़ा हो रहा है, जिसमें एक बहुत बड़ा भक्त फँस गया था, जिसका उसमें कोई दोष नहीं था। उस भक्त को कलंकित करने के लिए उसके विद्वेषी लोगों ने एक वेश्या को कुछ पैसा देकर उसके ऊपर झूठा अभियोग लगवाया था। परिणामतः गाँव के कुछ लोग भ्रम में पड़ गये और उस भक्त को गाँव से बाहर

निकालने के लिए उद्यत भी हो गए। कुछ लोग उसके अंतरंग एवं प्रेमी भी थे, जो यह जानते थे कि संत निर्दोष हैं। वे लोग भी अस्त्र-शस्त्र लेकर आमने-सामने खड़े हो गए।

उन दोनों दलों से पहला दल कहता था। इसको गाँव से निकाल दो। दूसरा दल कहता था कि यह संत है, इसको गाँव से नहीं निकाला जा सकता। इस प्रकार वाद-विवाद करते हुए दोनों दलों में संघर्ष होने जा रहा था। मैंने देखा कि वहाँ संत का अपमान होगा और जन-हानि होगी। इसलिए उस संघर्ष का मैंने निवारण किया है। सद्गुरु की उक्त बात को सुनकर उपस्थित लोग आनन्द से नाचने लगे। साहब की जय-जयकार करने लगे। तदनन्तर पुनः कथा-कीर्तन एवं सत्संग प्रतिदिन की भाँति चलने लगा। लोग राम-नाम का जप करने लगे। इस प्रकार साहब का गुणानुवाद होता रहा और विपत्तियों का नाश भी होता रहा।

अप्सरा प्रसंग एवं कबीर विष्णु सम्वाद

षड्यंत्र वाले भण्डारा के एक साल व्यतीत होने पर एक दिन गुरुदेव कबीर एकान्त में गङ्गा के तट पर निवास कर रहे थे। उस दिन सद्गुरु के साथ उनका कोई भी प्यारा शिष्य नहीं था। वहाँ पर सुन्दर वृक्षों की सघन छाया थी। सद्गुरु को परमानन्द का अनुभव हो रहा था। इसी बीच कहीं से बबूल का काँटा साहब के दाएँ पैर में चुभ गया। काँटा के चुभते ही साहब को अपार वेदना होने लगी। उधर भगवान् विष्णु उनकी दशा को देखकर बैकुण्ठ में त्राहि-त्राहि करने लगे और उनकी उक्त दशा को देखकर जगन्माता श्री लक्ष्मी जी भी दौड़ती हुई आईं और उन्होंने भगवान से पूछा कि महाराज आप क्यों कराह रहे हैं? भगवान ने कहा चुप रहो मुझे काँटा गड़ गया है और अपार वेदना हो रही है। लक्ष्मी जी ने कहा—प्रभो! यहाँ काँटा कहाँ से आ गया? प्रभु ने कहा कि मुझे यहाँ काँटा नहीं गड़ा है। यह काँटा मुझे मृत्युलोक में गड़ा है। इस समय मैं कबीर नाम से अवतरित हुआ हूँ, जो मेरा कारुणिक अवतार है और जो दास रूप में रहेगा, वह अपने को ईश्वर नहीं कहेगा। मेरे वास्तवित रूप का उपदेश करेगा और माया मिश्रित सगुण ब्रह्म को गौण बतलाएगा। वही मुझसे, जो परे अचिन्त्य है, जो माया के वश में नहीं आता। उसी ने सगुण रूप को

धारण किया है, जिसके पैर में काँटा गड़ गया है। इसलिए मुझे दुःख हुआ है।

इस प्रकार भगवान् की आश्चर्ययुक्त वाणी को सुनकर लक्ष्मी जी स्तब्ध रह गईं और मन ही मन कबीर की परीक्षा लेने की उन्हें चिन्ता बढ़ गई। इसके बाद लक्ष्मी जी इन्द्रलोक में गईं और वहाँ के मनोरमा नामक अप्सरा को बुलाकर उन्होंने कहा कि आज तुम काशी जाओ। वहाँ पर कबीर नामक एक संत है और वह अपने को परम सिद्ध मानता है। उसने मेरा तिरस्कार किया है। जिस प्रकार हो सके तुम उसका योग भ्रष्ट कर दो। लक्ष्मी जी की बात को सुनकर श्री मनोरमा ने कहा कि आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। आप जगन्माता हैं। आपही के कारण हम अप्सराओं का अस्तित्व है[1] इतना कहकर मनोरमा ने अति कमनीय सुन्दरी का रूप बनाया। उसके इस रूप को देखकर जड़ भी कामातुर हो जाता। मनोरमा सद्गुरु को एकान्त में देखकर अपने हाव भाव को दिखाती हुई वहाँ पहुँची और बोली—कबीर मुझे भगवान विष्णु ने आपके लिए भेजा है और कहा है कि जाओ कबीर को अपना पति स्वीकार कर लो। इसलिए मैं आपके पास आई हूँ। अब मुझे आप ग्रहण करें।

मनोरमा की बात को सुनकर सद्गुरु कबीर ने कहा कि देवी ! मेरा और तेरा कैसा संबंध है ? मैं तो भगवान राम का दास हूँ और तुम अप्सरा हो। यदि भगवान ने तुम्हें मेरे लिए भेजा है, तो क्या वहाँ पर कोई तुम्हारे योग्य स्वामी नहीं था ? वहाँ तो दिव्य-देह-धारी देवगण

---

१. आई अपछरा, छरिबे के लिये, वेष किये,
हिये देखि गाढ़े, फिरि गई, नहीं लागी हैं।
चतुर्भुज रूप प्रभु आनि कैं प्रकट कियो,
लियो फल नैननि कौ, बड़ी बड़भागी है।
सीस धरै हाथ, "तन साथ मेरे धाम आवौ,
गावौ गुण, रहौ जौ लौं तेरी मति पागी हैं।
"मगह" मैं जाय, भक्तिभाव को दिखाय,
बहुफूलनि मँगाय, पौढ़ि मिल्यौ हरि रागी हैं।
—"भक्तमाल" प्रियादास की टीका, पृ० सं० ४९०।

रहते हैं, जो सभी प्रकार के भोग आदि भोगते हैं। उनके लिए सभी वस्तुएँ उपलब्ध हैं। इधर मैं दीन-अकिंचन व्यक्ति हूँ। इसलिए आप वहीं चली जायँ जहाँ सब सुख उपलब्ध है।

सद्गुरु की इस प्रकार की बात सुनकर मनोरमा बोली—मैं आप ही को वरण करूँगी। साहब ने कहा—हे मनोरमे! जल में अग्नि नहीं लगेगी। तुम्हारा सारा प्रयत्न विफल हो जाएगा। इसलिए आप जहाँ से आई हुई हैं वहीं चली जायँ।[1] यदि तुम्हें श्री रघुनाथ जी ने मेरे लिए भेजा है तो उनकी बड़ी कृपा है, जो मेरा माहात्म्य बढ़ाने के लिए उन्होंने ऐसा किया है। तुम जाओ मुझे राम का भजन करने दो। कबीर साहब की उक्त बात को सुनकर मनोरमा ने कहा—यदि कोई मनुष्य का शरीर पा कर नारी का साहचर्य न करे तो उसका जन्म नारकीय प्राणियों के समान है। अनेक जन्मों तक तप करने पर भी मैं किसी को प्राप्त नहीं होती हूँ, परन्तु तुम्हारे लिए मैं सहज ही में उपलब्ध हुई हूँ। इसलिए

---

१. तुम्ह घरि जाहु हंमारी बहनां, विष लागैं तुम्हारे नैंना
अंजन छाडि निरंजन राते, नां किसहीं का दैनां।
बलि जांऊ ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां॥
रात खांडी देखि कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ।
सरग लोक थैं हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ॥
सर्ग-लोक मैं क्या दुख पड़िया, तुम्ह आई कलि मांहीं।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूँ पतीजो नांहीं॥
तहां जाहु जहां पाट पटंबर, अगर चन्दन घसि लीनां।
आइ हमारै कहा करौगी, हम तौ जाति कमींनां॥
जिनि हम साजे साज्य निवाजे, बांधै काचै धागै।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, पांणीं आगि न लागै॥
साहिब मेरा लेखा मांगे, लेखा क्यूं करि दीजै।
जे तुम्ह जनत करौ बहुतेरा, तौ पांहण नीर न भीजै॥
जाकी मैं मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू।
टुक एक तुम्हारै हाथ लगाऊँ, तौ राजा रांम रिसालू॥
जति जुलाहा नांम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी।
आसि पासि तुम्ह फिर फिर बैसो, एक माऊ एक मासी॥ २७०॥
—कबीर ग्रंथावली, पृ० १८०।

आप मुझे वरण करें। हे कबीर ! मेरे रूप को तो देखो ! मेरी ओर दृष्टि-पात तो करो ! सधुआई के चक्कर में क्यों पड़े हो ? छोड़ो, माला-तिलक हटा दो। चलो, किसी पहाड़ की गुफाओं में आनंद लें।

साहब ने मनोरमा की बात को सुनकर कहा कि मैं तुम्हारे जाल में आने वाला नहीं हूँ। जैसे पत्थर के भीतर जल प्रवेश नहीं कर पाता वैसे ही तुम्हारी माया-जाल मेरे अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती। संसार में जिसने तुम्हारा साथ किया है और करेगा वह कभी भी सुख का उपभोग न कर सकता है और न करेगा। जो तुम्हें त्याग देता है वह मनुष्य सदा आनंद से सुख रूप आत्मा में विचरण करता है। इसलिए तुम यहाँ से चली जाओ। यदि तुम नहीं जाना चाहती हो, तो चलो एक मेरी माता हैं, दूसरी तुम मौसी बनकर रहो, अन्यथा तुम्हारे लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इस प्रकार मनोरमा सद्‌गुरु को अडिग जानकर निराश होकर अपने लोक को चली गई।

मनोरमा के अन्तर्धान होते ही भगवान विष्णु चतुर्भुज रूप में सद्‌गुरु के समक्ष प्रकट हो गए और साहब के मस्तक पर अपना कर-कमल रखकर बोले—आप धन्य हैं, जो मेरी माया से बच गए। आप में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। मैं ही आपके रूप में प्रकट हुआ हूँ इसलिए जब तक इस लोक में रहने की आपकी इच्छा हो तब तक आप रहें। अन्त में आप सशरीर अपने परम धाम में आकर निर्वाणरूप में लीन हो जाइएगा। आप मेरे एक ऐसे रूप हैं, जो माया के जाल में नहीं फंसे, नहीं तो मेरे कितने अंश आते हैं, जो इस माया में विलीन हो जाते हैं। अतः आप जो कहें, वह सब इस मानव शरीर में आपको उपलब्ध हो जाएगा। कहिए तो मैं आपको तीनों लोकों का राजा बना दूँ या मैं और कमला आपकी सेवा करूँ।[1] जो आपकी आज्ञा हो वही मैं करूँ।

इस प्रकार भगवान हरि की बात को सुनकर सद्‌गुरु ने कहा कि आप सर्वज्ञ हैं। यह क्या कह रहे हैं ? यह संसार में रहने वाले लोगों को चाहिए। भक्तों को यह नहीं चाहिए एवं सद्‌गुरु कबीर ने कहा

---

१. अठ सिद्धि नव निध हौं देऊँ। कवला सहत चरन हौं सेऊँ॥

—अनन्तदास कृत कबीर परचई (अमुद्रित ग्रंथ)।

प्रभो ! संसार सागर से तरने के लिए कुछ कहिए। सद्गुरु की बात को सुनकर भगवान विष्णु ने कहा कि जो मुझे कहना है उसे संत लोग जानते ही हैं। केवल मेरी बड़ाई के लिए संत लोग मुझे आदेश देते हैं। मैं संतों की आज्ञा का पालन करता हूँ। हे मेरे विशेष अंश कबीर ! यह जगत् दुःख स्वरूप है इसलिए इसमें आशक्त रहना अच्छा नहीं है। निरन्तर मेरे स्वरूप का चिन्तन करना परम कर्तव्य है। संसार की सारी वासनाओं के परित्याग को मुक्ति कहा गया है। संतों द्वारा सुना गया है कि आत्मा सत्य है और जगत् असत्य है, इसे दृढ़ एवं निश्चित जानो, अतः जो इस प्रकार का दृढ़ निश्चयी होता है, वह मेरे लोक में विराजता है और जीवन मुक्त हो जाता है। हे संत ! मेरा लोक सभी लोकों से परे है। वह कभी नष्ट नहीं होता। अन्य लोक नष्ट हो जाते हैं, परन्तु मेरा दिव्य लोक वैकुण्ठ है, वह अविनाशी है। वह लोक सदा एक रस रहता है। उस लोक में जो संत जाता है, वह कभी लौटकर नहीं आता। वहाँ हवा प्रवेश नहीं कर सकती और न वहाँ सूर्य-चन्द्रमा का प्रकाश ही है। वह लोक ही स्वयं प्रकाशमय है। उसमें गति-अगति नहीं होती। वह परम लोक है। मैं उसी लोक में रहकर आप लोगों की सेवा करता हूँ।

अतः हे सन्त ! जो पुरुष मेरे अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता वह पुरुष परम-शक्ति को उपलब्ध करने में असमर्थ रहता है। वह चाहे महान् योगी पुरुष क्यों न हो, परन्तु जब तक मेरी उपासना के द्वारा

नैंक निहारि हो माया बीनती करै,
दीन वचन बोलै कर जोरै, फुनि फुनि पाइ परैं,
कनक लेहु जेता मनि भावै, कांमनि लेहु मन-हरनीं।
पुत्र लेहु विद्या अधिकारी, राज लेहु सब धरनीं ।।
अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनां, नवैं निधि है तुम्ह आगैं।
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहैं न मांगैं ।।
तै पापणीं सबै संधारे, काको काज संवार्‍यो।
जिनि जिनि संग कि तौ है तेरो, को बेसासि न मान्यौ ।।
दास कबीर राम कै सरनैं, छाड़ी झूठी माया।
गुर प्रसाद साध को संगति, तहाँ परम पद पाया ।। ३६९ ।।
—कबीर ग्रंथावली, पृ० सं० १८०।

आत्म शुद्धि नहीं कर लेता तब तक उसका कल्याण नहीं हो सकता। जैसे लोक में कर्म करने वालों को बिना स्वामी के फल नहीं मिलता है उसी प्रकार से जो मुझे त्याग कर योग-युक्ति करते हैं, उन्हें शान्ति रूपी फल अप्राप्त रहता है।

इस प्रकार भगवान विष्णु की अमृतमयी वाणी को सुनकर कबीर साहब ने कहा–प्रभो! कुछ लोगों का मत है कि महावीर स्वामी और भगवान बुद्ध ने ईश्वर की सत्ता को नहीं स्वीकारा, परन्तु वे दोनों निर्वाण पद को प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त और भी मत-मतांतर हैं, जो आपके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। इस बात पर श्री हरि ने कहा प्रभो! भगवान बुद्ध आदि ने परोक्ष रूप में मेरी सत्यता को स्वीकार किया है, क्योंकि भगवान बुद्ध ने स्वयं कहा कि मैं कोई नई बात आप भिक्षुओं से नहीं कहता हूँ। मैं तो आर्य ऋषियों के बताए हुए मार्ग को आपलोगों को बतलाता हूँ, जिसको अज्ञान के कारण लोग भूल गए थे। अस्तु, जब भगवान् बुद्ध ने स्वयं आर्य ऋषियों के ही बतलाए हुए मार्ग को प्रस्तुत किया है, तो इसमें कहाँ संदेह है कि उन्होंने मेरी सत्ता को नहीं स्वीकारा है। भगवान बुद्ध ने सदैव एवं सर्वत्र सत्य को स्वीकार किया है और मैं सत्य का स्वरूप ही हूँ। इसी प्रकार से महावीर स्वामी को भी जानना चाहिए। वे भी मुझसे भिन्न नहीं हैं। उनके बाद उनके मतानुयायियों में अनेक बुद्धिवादी हुए हैं, जो उनकी मूल शिक्षा में बहुत परिवर्त्तन करके सनातन ऋषियों से और भगवान् बुद्ध से बहुत दूर हट गए। जिस प्रकार से चार्वाकाचार्य अपर बृहस्पति गोशालि आदि पूर्व भौतिकवादियों ने मेरी सत्ता को पूर्णरूपेण ग्रहण नहीं किए हैं उसी प्रकार से नागार्जुन, वसुबन्धु, धर्मकीर्ति, नागसेन आदि बुद्ध मतावलम्बियों ने मेरी सत्ता को स्वीकार नहीं किए हैं।

इसी प्रकार हे कबीर जी महाराज! आपके बाद आपके वचनों को भी लोग असत्य अनुवाद करेंगे और यही कहेंगे कि कबीर साहब ईश्वर की सत्ता नही मानते थे, केवल जीव को ही मानते थे। और आप के दो सौ वर्ष बाद एक सत् सेवी सद्गृहस्थ होगा,[1] जो शूद्र के नाम से विख्यात होगा। जिसको आपकी शिष्य परम्परा का एक प्रभावशाली बालापीर

---

१. दोय सै वर्ष बीति जब गयऊ। धर्मदास के इहाँ जिन्ना गयऊ॥

—दरिया साहब का वचन।

कबीर नाम का फकीर, जो मुसलमान के कुल में पैदा होगा। वही मधुपुरी में जाकर उक्त शूद्र को चेतावेगा और उसको वह शूद्र कहेगा[1]

---

१. धर्मदास तुम शूद्र अवतारा। जाते सतगुरु भक्ति चित्त धारा॥
बोधसागर अन्तर्गत अमरमूल नामक ग्रन्थ, पृष्ठ संख्या २३९, (गंगा विष्णु श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण मुंबई)।

एकदा भगवान् विष्णुः पादुर्भूय सुचिन्यमयः।
श्री कबीरमुपागम्य प्रसंगाच्चेदवक्ष्यति॥ १॥
अये कबीरत्वयिसत्य लोकं
गते त्वदीयाः सुधियः सुशिष्याः
प्रचारयिष्यन्ति सतां मतंहि।
त्वदर्दशितं विश्वजनीनधर्मम्॥ २॥
गतेषु द्विशताब्देषु गृहस्थः साधुसेवकः।
सत्कर्मा जन्मतः शूद्रः एकः ख्यातो भविष्यति॥ ३॥
यवन कुल सम्भूतः श्री बा लापीरनामकः।
मधूपुरीं समागत्य तं शूद्रं बोधयिष्यति॥ ४॥
तस्यैव ज्येष्ठ पुत्रस्तु विरोत्स्यति च तन्मतम्।
स तु मोहसमापन्नो गुरोर्वेषं प्रहास्यति॥ ५॥
पुनस्तद् गृहमागत्य बालापीरः सुधींवरः।
अनेकाभिः सुयुक्तिभिरुपदेशं प्रदास्यति॥ ६॥
बालापीरः कबीरोऽस्तीतिशूद्रः कथयिष्यति।
अश्रुत्वा पुत्र बाक्यं च वंशं संस्थापयिष्यति॥ ७॥
आचार्य पदवीं दत्वा लघु पुत्राय धीमते।
रामनाम जपन् दिव्यं मम लोकं समेष्यति॥ ८॥
पितृवद् धर्मकार्याणि कंचित् कालं तु तत्सुतः।
विधास्यति सुयत्नेन यशोभागी भविष्यति॥ ९॥
तदनु कामसंसक्तो बुद्धिविभ्रान्तकारिणः।
रागद्वेष समायुक्तान् कुग्रन्थान् कारयिष्यति॥ १०॥
तथापि नैव दुर्वृतं तज्जीवन भवष्यति।
पश्चाद् वंश्यास्तदीयास्तु भ्रष्टाचारे तत्पराः॥ ११॥
जीववाद रता दुष्टा अश्रौतनामकल्वकाः।
हीनाः स्थास्यन्ति निर्वशानिज धर्मविमानिनः॥ १२॥ →

कि कबीर मुझे आकर दर्शन दिये हैं। पुनः वह बालापीर कबीर शूद्र के घर पर जाकर उपदेश करेगा जिसका घोर विरोध उस शूद्र का बड़ा लड़का करेगा, परन्तु वह शूद्र उसके बहकावे में आकर पुत्र की एक भी नहीं सुनेगा। जो वह कहेगा उसी को वह मानेगा। एक बार तो वह एक प्रेत के बहकावे में आकर कंठी माला भी तोड़कर फेंक देगा जिसको पुनः बालापीर कबीर रास्ते पर लावेगा। अपने जीवन पर्यन्त वह शूद्र मेरे राम नाम का जप करेगा और श्री भक्ति का प्रचार करेगा तथा

→ भविष्य पुराण पत्रावली पृष्ठ संख्या ३७८ भगवान् विष्णु एवं कबीर सम्वाद में उक्त श्लोकों के बारे में मुझे जानकारी महात्मा शुकदेव दास जी से प्राप्त हुई है, जो जगदीशपुर जिला भोजपुर (आरा) में रहते थे। वहाँ पर एक कबीर मठ भी था, अर्थात् वे महात्मा जी अपनी स्वयं की जमीन में मठ बनवाकर रहते थे। उक्त मठ का सम्बन्ध बोरीभट्ठी मठ से था। धर्मदास सम्प्रदाय का एक मठ आज भी विद्यमान है जिसके महन्त श्री पुनीत साहब हैं।

बाबा शुकदेवदास जी से उक्त भविष्य पुराण की प्रति जब मैंने मांगा तो वे बोले कि मैं उक्त प्रति को साहब दे नहीं सकता क्योंकि एक ब्राह्मण आकर प्रति दिन मुझे सुनाता है। अस्तु, उक्त प्रति उनसे प्राप्त नहीं होगी यह जानकर मैंने उपर्युक्त पदों को एक कागज पर लिख लिया जिनमें कुल बारह श्लोक हैं और जो तद्वत इस जीवन चरित्र में दी गई हैं। सज्जनों को ज्ञात रहे कि उस समय में मैं आरा जिला में ही रहता था, जो जगदीशपुर से तीन कोश पर आयर नामक ग्राम है जहाँ पर काशी कबीरचौरा का एक मठ आज भी विद्यमान है।

श्री शुकदेवदास जी साहब के सत्यलोक गमनोपरान्त निमंत्रण पाकर आयर जगदीशपुर में गया था जिनकी सतरही भण्डारा में श्री रामसागरदास जी साहब कर्त्ता-धर्ता थे। भण्डारा समाप्त होने पर मैंने उनके दो परपोतों तथा पुत्रवधू से उक्त ग्रन्थ भविष्य पुराण की प्रति मांगी, तो उसने कहा, जो पंडितजी गुरु महाराज को प्रतिदिन कथा सुनाते थे, जिनकी पोथियाँ थीं, वे सब अपने घर उठा ले गये। उक्त वचन महात्मा शुकदेवदास जी के पुत्रवधू से सुनकर मैं निराश होकर चला आया तथा उपर्युक्त बारह श्लोकों को सुरक्षित रखे रहा, जिसे अब जीवन चरित्र में टिप्पणी के रूप दी जा रही हैं।

अपने सारे धन को गरीबों को लुटा देगा और अन्त में मेरे लोक में विराजेगा।

उसके बाद उसका छोटा लड़का होगा, जो मेरे राम नाम को त्यागकर कल्पित नामों का प्रचार करेगा। वह अनेक कपोलकल्पित ग्रंथों का निर्माण कराएगा। उन ग्रन्थों की कोई भी बात सत्य नहीं होगी। उसके बाद से तो केवल गुरुडमता चलेगीं, उसके अनुयायी लोग धर्म-कर्म त्यागकर अपने मान बड़ाई में ही जीवन व्यतीत करेंगे। विलासिता बढ़ जाएगी। वाम मार्ग का प्रवेश हो जाएगा और आप के शिष्यों को गाली देना शुरू कर देंगे। काशी स्थित आपकी मूलगादी को छोड़ देंगे। स्वयं अपने गुरु बन जाएँगे। काशी कबीरचौरा से द्वेष-भाव रखेंगें। आपके नाम से अनेक ग्रन्थ बनाकर भोलीभाली जनता को वंचक की भाँति ठगेंगे तथा उन्हें कुमार्गगामी बना देंगे। उस परम्परा के लोग भगवान् कलि के रूप को धारण कर लेंगे, जो झूठा-झूठा पोथा रचकर एक नई सृष्टि का उद्घोष करेंगे और मेरे तथा ब्रह्मा आदि देव गणों को गाली देंगे। मेरा नाम सुनते ही मुझसे दूर भाग जाएँगे। उन्हीं शूद्रों में से एक जीववादी समाज निकलेगा, जो परम नास्तिक एवं श्वेतवस्त्र को धारण करेगा और जो अपने से भिन्न लोगों को पातकी मानेगा तथा नास्तिकता का प्रचार करेगा।

इस प्रकार उन शूद्रों का इतना रूप हो जाएगा कि गाँव-गाँव में जाकर अपने को आचार्य घोषित करेंगे तथा आपस में लड़ना-झगड़ना ही उनका मुख्य कर्त्तव्य रह जाएगा। काशी स्थित जो आपकी मूलगादी है, उससे संबंध विच्छेद कर लेंगे। अपने को वे स्वयं सभी लोगों का गुरू मानेंगे और कहेंगे कि कुदरमाल में ही कबीर साहब ने अपनी गादी को स्थापित किया है और शूद्रों को ही संसार का राजा बनाया है। वे जितना ही विषय भोग में लीन रहेंगे उतना ही पाखण्ड का विस्तार करेंगे। आपके अन्य मतानुयायियों को दूत-भूत कहेंगे और स्वयं ही कबीर पंथी बन जाएँगे। किसी को चोर, किसी को खवास कहेंगे। इस प्रकार के अपशब्दों का सदैव प्रयोग करते रहेंगे और उनके वंश से प्रकट जीववादी समाज तो सभी की निन्दा करेगा।

उपर्युक्त बातों को कहने के बाद भगवान विष्णु ने कहा कि हे कबीर! कहो मैं ये सब बातें झूठ कह रहा हूँ? सद्गुरु ने कहा कि हे

प्रभो ! मुझे भी यह ज्ञात है, जो आपने अभी कहा है। वह पूर्णरूपेण सत्य है। शूद्र लोग जिस जाल को फैलाएंगे उससे मुझे भी लोग कलंकित करेंगे और मेरी वाणियों में से राम-नाम निकालकर कल्पित नाम को प्रविष्ट कर देंगे। वे मनमानें ढंग से मेरे पदों का अनुवाद करेंगे और मेरो असली वाणी केवल बीजक में रह जाएगी। कुछ लोग उसमें भी विकृति लाएंगे, परन्तु हे प्रभो ! यह सब होने वाला है। श्री हरि ने कहा कि जो मेरे राम-नाम का जप करेगा वही इस घोर कलिकाल से विमुक्त होगा। इसलिए मेरे पवित्र नामों का जप करना ही परमपद का कारण होगा, क्योंकि कलियुग में मनुष्य की आयु अल्पकालिक है और अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित मनुष्य ब्रह्म का चिंतन एवं योग साधना के योग्य नहीं हो सकता। इस कलिकाल में लोग लोभ, मोह, भ्रम, अविवेक तथा राग-द्वेष, स्वार्थपरता से ग्रसित रहेंगे। इसके कारण कलियुग के प्राणी कभी ब्रह्म का चिन्तन नहीं करेंगे। इसलिए सर्वोत्कृष्ट यही है कि जो लोग मेरे राम नाम शब्द का अहर्निश सर्वव्यापक जानकर जप करेंगे वही प्राणी सभी प्रकार की बाधाओं से मुक्त होकर मेरे परमधाम में विराजित होंगे।

इस प्रकार मेरे परमप्रिय भक्त के लिए शम, दम आदि का पालन करने की आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति मेरे नाम को जपता है वह सब कुछ करने के योग्य हो जाता है। जैसे पारस मणि के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है वैसे ही मेरे नाम में स्वाभाविक गुण है कि जपने वाले को मनुष्य से देवता बना देता है। मेरा नाम मनुष्य को सुधारने के लिए परम मंत्र है। जो व्यक्ति मेरा नाम लेता है वह कभी दुःखी नहीं होता। वह अनेक विघ्न-बाधाओं को लाँघता हुआ परम शांति का भागी बनता है। इसलिए मेरा नाम और मेरे भक्तों की सेवा, ये दोनों एक समान फलदाता है। भक्त और नाम में कोई अन्तर नहीं है। मुझसे भी बढ़कर मेरे नाम और भक्त हैं। जो मेरे नाम की निन्दा करते हैं और उससे दूर रहते हैं उनसे मैं भी बहुत दूर रहता हूँ। मैं भक्तों के ही कारण मायामय होकर आता हूँ और बड़े-बड़े राक्षस एवं दैत्यों का संहार करता हूँ। वे भक्त ही मेरी संतान हैं। मेरे भक्तों का कोई रूप नहीं होता। वे जहाँ कहीं भी रहते हैं वहाँ वे मान और मद से दूर रहते हैं। काम, क्रोभ, लोभ, मोह, राग—द्वेष, हिंसा, द्रोह, अप्रिय प्रलाप, शोक,

अशान्ति, भय, अविवेक, आलस्य, अनुद्यम, मिथ्याभाषण, परस्त्रीगमन, चोरी, निन्दा, पिशुनता, कठोरता, वक्रता एवं ममता आदि कलनाओं से मेरे भक्त दूर रहते हैं और यही मेरे भक्तों के लक्षण हैं। निंदा, स्तुति दोनों में समचित्त विचरते हैं।

अतएव उपर्युक्त लक्षण से रहित व्यक्ति मेरा भक्त नहीं हो सकता। चाहे वह कितना भी बड़ा दानी एवं पण्डित हो, वह तब तक मुझे प्राप्त नहीं कर सकता जब तक उसमें पूर्वोक्त दोष हों। इसलिए उपर्युक्त दोषों को त्यागकर मेरा भजन करना चाहिए। इतना कहकर श्री हरि कबीर साहब से बोले अब आप मुझे आज्ञा दीजिए। साहब ने श्री हरि का अनेक प्रकार से सम्मान किया और स्तुति वन्दना के साथ उनको विदा किया। तदनन्तर अपने स्थान कबीरचौरा में आकर सद्गुरु श्री भक्ति का प्रचार-प्रसार करने लगे।

दशमालोक

मलूकदास जी प्रसंग

सभी भक्त राम-नाम का जप कर रहे थे। तब तक इसी बीच में श्री मलूकदास जी[1] आ गए, जो बड़े शान्तचित्त से साहब को नमस्कार करके बैठ गये और उनसे साहब ने कुशल क्षेम पूछा। श्री मलूकदास जी ने कहा—प्रभो! मुझे राम-मंत्र मिलना चाहिए। उसी के लिए मैं आपके पास आया हूँ। श्री मलूकदास की उक्त बात को सुनकर साहब ने कहा कि आपको मंत्र देने की एक शर्त है। यदि आप गृहस्थी में रहना चाहें, तो मैं श्री राम-मंत्र दूँगा नहीं तो आपको राम मंत्र देना संभव नहीं है। श्री मलूकदास जी ने कहा कि हे प्रभो! यदि मुझे घर में ही रहना होता तो मैं आपसे राम-मंत्र नहीं लेता। उस दशा में मैं तो शिव मंत्र लेता। लेकिन अब मैं घर में नहीं रहना चाहता, इसलिए मुझे राम-मंत्र दीजिए। इस पर साहब ने श्री मलूकदास जी से कहा कि जाओ तुम अपना सारा धन गरीबों को लुटा दो, तब मैं तुम्हें राममंत्र दूँगा। साहब की इस बात को सुनकर श्री मलूकदास ने कहा कि प्रभो! आपकी यह आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। इतना कहकर श्री मलूकदास जी अपनी जन्मभूमि प्रतिष्ठान कुशीदन्तनगर में चले आये और वहाँ की सारी सम्पत्ति को चार भाग कर दिये। एक भाग पुत्र को, दूसरा भाग पत्नी को, तीसरा भाग दीन-दुःखियों को और चौथा भाग हरि भक्तों को देकर पुनः श्री गुरुदेव की शरण में आ गये और वहाँ का सारा समाचार गुरुदेव से कह सुनाया जिसे सद्गुरु पहले ही जान गए थे।

श्री मलूकदास के इस व्यवहार से साहब बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें तुरन्त श्री राम-मंत्र का उपदेश देकर बोले—तुम देश-विदेशों में जाकर

---

१. ये मलूकदास जी कबीर साहब के समसामयिक उनके शिष्य में थे और कबीर साहब के साथ बहुत समय तक रहे। इनका भी घर प्रयाग क्षेत्र में ही सुना जाता है। इसके बाद में भी एक मलूकदास जी हुये हैं, जो सतरहवीं शताब्दी में हुए हैं।

श्री हरि की भक्ति का प्रचार करो और जो राम से विछुड़े हुए लोग हैं, उनको भगवान के शरणापन्न करा दो; क्योंकि यही परम भजन है कि जो कुमार्गियों को सुमार्ग पर लावे।

अस्तु, कुछ समय तक गुरुदेव की शरण में रहकर श्री मलूकदास जी उनके उपदेशानुसार देशाटन करने लगे। बोलो भाई श्री राम-नाम की जय! इस प्रकार कहते हुए देश के कोने-कोने में श्री राम-भक्ति का प्रचार प्रसार होने लगा। यह भक्ति द्रविड़ देश में प्रकट हुई थी और जिसे श्री रामानंदाचार्य जी ने उत्तर भारत में लाया एवं उस पराभक्ति का प्रचार उनके परम शिष्य सद्‌गुरु कबीर ने सात-द्वीप, नौ खंडों में किया[1] जिससे संसार कृतकृत्य हो गया। उसी अनपायनी भक्ति द्वारा सनातन धर्म की रक्षा हुई। आज तक कबीर-पंथ उसके प्रचार-प्रसार में लगा हुआ है।

इस प्रकार संत मंडली देश के प्रत्येक भाग में उक्त पराभक्ति आत्म-चिंतन का प्रचार करती रही और बहुत समय तक काशी में रहकर भूले-भटके लोगों को सुमार्ग पर लाती रही।

पूर्वी संभाग को यात्रा

इसी संदर्भ में एक दिन सद्‌गुरु कबीर ने संत मंडली की ओर लक्ष्य करके कहा—अभी पूर्व दिशा की ओर पूरा सुधार नहीं हो पाया है। इसलिए वसंत-पंचमी बिताकर आसन बाँधो। अतः संत मण्डली वसंत पंचमी के व्यतीत होते ही चल पड़ी और गंगा को पार करती हुई व्यास चबूतरे पर गई जहाँ पर दो दिन तक सत्संग चलता रहा, तत्पश्चात् संत मण्डली वहाँ से आगे की ओर जाने के लिए तैयार हो गई। सभी संतों ने अपना-अपना बिगुल बजाया और आगे की ओर चल दिये। काशी नगर से दो योजन तक महाराजाधिराज वीरदेव सिंह बघेल पहुँचाने गये, जिनके साथ राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारी भी थे। सद्‌गुरु ने उन लोगों से कहा कि अब आप लोग वापस जाइए। अपने राज्य के कार्य को देखिए और प्रजाजनों का सुख पूर्वक पालन कीजिए। अतः सद्‌गुरु की आज्ञा पाकर वीरदेव सिंह ससमाज वापस चले आये और राज्य का देख-भाल करने लगे।

---

१. भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद।
परगट करो कबीर ने सात द्वीप नौ खण्ड॥—सत् कबीर की साखी।

उधर संत मण्डली प्रत्येक गाँव एवं नगरों से होती हुई भक्ति भाव का प्रचार-प्रसार करती हुई पूर्वी राजस्थान[1] (युक्त प्रांत-विहार) में बक्सर के पास पहुँची जहाँ बड़े-बड़े सिद्ध एवं विद्वानों के दर्शन हुए। वहाँ के सभी लोग सद्‌गुरुदेव के आगमन को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और सभी भद्र पुरुष संत मण्डली के आगमन को सुनकर स्वागत के लिए नगर से बाहर आए एवं सद्‌गुरु के गले से मिले।

संत मण्डली के साथ गुरुदेव चरित्रवान महर्षि विश्वामित्र के आश्रम पर गये। वहाँ पर वट वृक्ष के नीचे सभी सन्तों का आसन लग गया और कथा-कीर्त्तन एवं राम नाम की ध्वनि होने लगी। सद्‌गुरु के आगमन को सुनकर दूर-दूर के लोग दर्शन के लिए आने लगे और सद्‌गुरु का दर्शन करके कृतकृत्य होने लगे। सभी लोग ध्यानपूर्वक गुरुदेव के प्रवचन को सुनने तथा श्री राम भक्ति को दृढ़ता के साथ अपनाने लगे।

इस प्रकार लोगों का अधिक झुकाव सद्‌गुरु कबीर की ओर जानकर कुछ ब्राह्मणों ने उनसे नोक-झोंक करने की इच्छा की, परन्तु वहाँ के सामन्त राजपूतों ने सभा से उक्त ब्राह्मणों को निष्कासित कर दिया। फिर भी कुछ कट्टरपंथी ब्राह्मणों ने एक दिन प्रातः संत मंडली के समीप आकर कुछ प्रश्नों को किया, जिसका उत्तर श्री श्रुतिगोपाल साहब ने बड़ी सरलता से दे दिया। इस प्रकार प्रत्येक ब्राह्मण अपने-अपने प्रश्नों का उत्तर सुनकर चुप हो गये। अन्ततोगत्वा सभी ब्राह्मण पराजित होकर सद्‌गुरु के चरणों पर गिर पड़े एवं उनसे राम-मंत्र पाने की याचना करने लगे। उनमें विनम्रता आ जाने के कारण सद्‌गुरु कबीर ने उन्हें महा मंत्र राम मंत्र का उपदेश दिया। सद्‌गुरु ने उसी निर्गुण राम की भक्ति को दृढ़ किया, जो जन्ममरण से परे तथा जो कभी माता के उदर में समाविष्ट नहीं होने देती।[2] कबीर साहब के उक्त उपदेश को वहाँ के सभी जन साधारण एवं पण्डित लोगों ने प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

---

१. पश्चिम बिहार अर्थात् भोजपुर क्षेत्र को पूर्वी राजस्थान कहा जाता था।

२. भजिए निर्गुण राम को, तजिए विषय विकार।—बीजक। फ० पा०

व्याघ्रसर (बक्सर) के नाग योगी का उद्धार

इसी संदर्भ में एक दिन व्याघ्रसर के किला से बहुत बड़ा सर्प निकला। जिसका शिरोभाग मनुष्य का था एवं नीचे का भाग सर्प के आकार था। उसे देखने से ऐसा लगता था कि मानो साक्षात् भगवान् शेषनाग ही हो। अतः उक्त सर्प के आगमन को सुनकर सद्गुरुदेव ने उसके लिए एक आसन बिछवा दिया और उसके आने पर उसे गले से लगा लिया तथा उससे कुशल क्षेम पूछा। तत्पश्चात् सद्गुरुदेव और उस नाग-योगी से कुछ सांकेतिक रूप में ज्ञान की चर्चा होने लगी। इस सांकेतिक चर्चा को उपस्थित लोगों में मात्र श्री श्रुतिगोपालदास जी ही समझ रहे थे, अन्य लोगों को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। श्री नागराज ने भूमि पर एक रेखा खींच दी जिसमें शून्य लिखा। तत्पश्चात् सद्गुरु ने कहा कि यदि आप की इच्छा हो तो एकांत में चला जाय। इस बात पर नागराज ने कहा प्रभो! मैं तो बहुत दिनों से आपकी आशा में ध्यान लगाए बैठा था। अब मुझे आप इसी स्थान पर राम तत्त्व को समझाइए।

इसके बाद साहब ने श्री श्रुतिगोपालदास जी से कहा—गंगा जल लाओ! गंगाजल आया, तत्पश्चात् सद्गुरु कबीर ने इस गंगा जल में अपनी अँगुली से चिह्न किया जिसको देखकर नागराज मुस्कराए और फिर उदास हो गए। साहब ने कहा कि उदास होना योगियों के लिए अच्छा नहीं है। आपके भीतर जब तक योग तत्त्व का अभिमान रहेगा तब तक शून्यता ही रहेगी। जब आपको राम भक्ति समझना है, तो योग के अभिमान को त्याकर श्री हरि की भक्ति अपनाइए तभी आपका कल्याण होगा, अन्यथा सदैव शून्यता ही रहेगी। अतः गुरुदेव की उक्त बात को सुनकर हाथ जोड़कर नागयोगी साहब के चरणों पर गिर पड़ा। साहब ने श्री श्रुतिगोपाल साहब से कहा कि वत्स! अब ये महात्मा राम तत्त्व जानने के अधिकारी हो गए हैं।

सद्गुरु ने कहा हे योगिराज! राम तत्त्व बहुत निगूढ़ है। वह विनम्रता से ही प्राप्त होता है। जो राम है, वह अपनी आत्मा है। यही चिंतन अहर्निश करना चाहिए। रसना से सदा राम राम जपे और उस रूप में रमने वाले राम को सभी प्राणियों के भीतर देखें। जैसे आकाश

एक होते हुए उपाधियों से अनेक दीखता है, उसी प्रकार से यह आत्मा एक है, परन्तु घटरूपी शरीर के अनेक होने से बहुत भाषता है। पर राम तत्त्व एक है और वह सबों की आत्मा है तथा वही राम, इस संसार का मूल कारण है। वह आप से भिन्न नहीं है। वही सब कुछ है। इसी प्रकार से चिंतन करना परम भजन कहा गया है। जब तक आप अपने से भिन्न राम को समझिएगा तब तक अनन्त युगों तक आप जन्म-मरण के भागी बने रहेंगे।

सद्गुरु की बात सुनकर श्री नाग योगी बहुत प्रसन्न हुए और गुरुदेव से राम-नाम की दीक्षा लेकर अपने स्थान पर चले गए। उस योगी के चले जाने पर संतों ने गुरुदेव से पूछा—प्रभो! ये कौन थे? जिन्होंने आश्चर्यमय रूप को धारण किये थे और उन्होंने आपसे सांकेतिक भाषा में सत्संग किया। संतों की बात को सुनकर साहब ने कहा कि वे महात्मा बड़े योगी थे। वे इसी व्याघ्रसर के किले में रहते हैं। वे किसी से मिलते नहीं। इच्छारूपी हैं, जब उनके मन में जो इच्छा होती है वही बन जाते हैं। अभी उनको आत्म-ज्ञान नहीं हुआ था। इसीलिए मेरा आगमन जानकर यहाँ आए हुए थे। अब उनको सही मार्ग मिल गया है, जिससे वे परम शांति के लाभ से लाभान्वित होंगे। अतः इतना कहकर सद्गुरु मौन हो गए। इधर आस-पास के लोग प्रतिदिन हजारों की संख्या में सद्गुरु के दर्शन के लिए आते रहे और श्री राम भक्ति का उपदेश सुनकर जीवन को सार्थक बनाते रहे।

इस प्रकार संपूर्ण भोजपुर क्षेत्र वैष्णव बन गया। यह देखकर सद्गुरु ने संत मण्डली को आदेश दिया कि यहाँ से चलना चाहिए। अस्तु, प्रातः होते ही संत मण्डली ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया। अपार जन समूह गुरुदेव को पहुँचाने के लिए बहुत दूर तक गया और अंत में विदाकर अपने-अपने स्थान को लोग लौट आए। परन्तु लोगों का मन महीनों तक सद्गुरु के चरणों में लगा रहा। सद्गुरु की चर्चा बराबर होती रहती थी। सभी लोग आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे।

मिथिला प्रदेश के पण्डितों से शास्त्रार्थ

उधर संत मंडली प्रत्येक गाँव एवं नगरों में भ्रमण करती हुई पाटलिपुत्र, गया, पलामू (पालामऊ) आदि मगध के पूरे इलाकों में

राम भक्ति का प्रचार-प्रसार करती हुई मिथिला प्रदेश में पहुँची जहाँ पर अनेक मैथिल पंडितों एवं तांत्रिकों से भेंट हुई और कई महीनों तक मैथिल प्रदेश के खगड़िया, दरभंगा, मुंगेर समस्तीपुर चम्पारन, अर्थात् अंग देश एवं मिथिला देश के कोने-कोने में भगवद् भक्ति एवं राम चर्चा होती रही। अनेक बाधाओं के बावजूद सत्संग चलता रहा। संत मण्डली को मैथिल पंडितों के घोर विरोध का सामना करना पड़ रहा था। क्योंकि मैथिल लोग राम भक्ति के घोर विरोधी थे। इसलिए प्रचार मार्ग में संतों को पग-पग पर वे बाधा उपस्थित करते थे। मैथिल लोग शक्ति की उपासना पर अधिक बल देते थे। राम-नाम की भक्ति का वे विरोध करते थे। मैथिलों तथा संतमण्डली से तिरहुत प्रदेश में बहुत वड़ा शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें सभी को पराजित कर श्री श्रुतिगोपाल साहब विजयी हुए। जो तांत्रिक थे वे सब साहब के हुंकार मात्र से नष्ट-भ्रष्ट हो गए। अन्त में सभी लोग रामभक्त हो गए और जो शाक्तों में अधिक कट्टर थे, वे सव दूसरे क्षेत्रों में भाग गए।

वहाँ केवल शाक्तों और वैष्णवों की श्रेष्ठता का प्रपंच था। शाक्त कहते थे कि मेरा आदि मत है और वैष्णवमत अवैदिक है, परन्तु वहाँ पर सद्गुरु कवीर साहब ने वैष्णव मत को अनादि सिद्ध कर दिया। अंततोगत्वा वहाँ के सभी शाक्त एवं शैव राम भक्त हो गए तथा परम शान्ति का लाभ उठाने लगे। उनमें से अधिकांश लोगों ने पहले ही सद्गुरु कवीर के सिद्धांत को अपना लिया था। पराजित होने के वाद शेष ब्राह्मण भी गुरुदेव के अनुगामी बन गए और राम भजन करने लगे।

वंगदेश की यात्रा एवं वंगप्रदेश में भैरवी का उपद्रव

मिथिला से अंग देश को प्रबुद्ध बनाकर संतमण्डली वंगप्रदेश की ओर मुड़ी और श्री राम-भक्ति का प्रचार करती हुई वंग प्रदेश में पहुँच गई जहाँ पर संस्कृत साहित्य एवं तंत्र विद्या का केन्द्र था। वहाँ उक्त दोनों विषयों के बड़े-बड़े धुरंधर विद्वानों का बाहुल्य था। अस्तु, वहाँ का प्रबुद्ध समाज सद्गुरु कबीर के नाम को पहले से ही सुन चुका था। उनमें से अधिकांश वंग विद्वानों ने साहब का साक्षात्कार भी कर लिया था।

सद्गुरु के वहाँ पहुँचने पर हलचल मच गया। सभी लोगों

के मुख से यही निकलने लगा कि कबीर बहुत बड़े सिद्ध पुरुष हैं. परन्तु वे लोक मर्यादा को नहीं मानते और वर्णाश्रम की व्यवस्था को मिटा रहे हैं। इसलिए कबीर का बहिष्कार करना चाहिए। उनमें से कुछ पण्डितों ने कहा कि इस प्रकार कबीर का बहिष्कार करना अच्छा नहीं होगा। चलो हम लोग तंत्र एवं संस्कृत भाषा के बल से उनको/पराजित करके यहाँ से भगा दें। उक्त विचार को निश्चित कर वंग प्रदेश के दूर-दूर क्षेत्रों से चुने हुए पण्डितों को आमन्त्रित करके बुलाया गया और आकर सभी ने सद्गुरु का दर्शन किया।

वंगप्रदेश में सद्गुरु ने ऐसी माया दिखाई कि उनका दर्शन करते ही सभी लोगों का अन्तःकरण शुद्ध हो गया और सभी लोग राम भक्ति के अनुगामी हो गए तथा सद्गुरु को अपने-अपने गाँव में ले जाकर सत्संग की वार्ता कराने लगे। वंगप्रदेश के कुछ प्रमुख शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—श्री उदय मुखर्जी, श्री आनन्दोपाध्याय, मंगलदेव चटर्जी, अनिल वोस, जो बहुत समय तक सद्गुरु के साथ रहे। इसी संदर्भ में एक दिन कालदेव नामक भैरवी से सद्गुरु कबीर का दर्शन हुआ। वह वंगप्रदेश का बहुत बड़ा सिद्ध था और वह कालभैरव का उपासक था। जहाँ पर सद्गुरु रुके हुए थे वह स्थान कलकत्ता से कई योजन पूर्व में था। उस गाँव का नाम था देवीपुर, जो फरीदपुर के पास में ही था। इस समय उस ग्राम का क्या नाम है कहना कठिन है। वहीं पर संत मण्डली रुकी हुई थी, जो राम ध्वनि में लगी हुई थी। एक दिन सद्गुरु कबीर ध्यान-मग्न थे तब तक सन्त मण्डली में अचानक कोलाहल मच गया। सन्त मण्डली के चारों ओर बाढ़ आ गई तथा उसके ऊपर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। अग्नि की बड़ी-बड़ी लपटें आकाश छू रही थीं। इसे देखकर संतों के मन में भय सा छा गया और सभी संत जोरों से राम ध्वनि करने लगे।

संतों के कोलाहल को सुनकर सद्गुरु ने कहा-घबड़ाओ मत। इसी बीच श्री भगवान साहब एवं श्री जागू साहब दौड़े हुए सद्गुरु के पास पहुँचे और उन लोगों ने उनसे कहा–प्रभो ! संतों का भय दूर होना चाहिए। साहब ने कहा कि संतों को भय नहीं करना चाहिए। इतने में श्री रविदास जी महाराज अपने कमण्डल से जल लेकर श्री राम-नाम का स्मरण करके उक्त उपद्रव पर छिड़क दिया। जल

छिड़कते ही सारा उपद्रव शान्त हो गया। जल एवं अग्नि के प्रयोग के शान्त होते ही अत्यन्त तेजी से आँधी चलने लगी। तब तक श्री पद्मनाभदास जी ने कहा कि राम की कृपा से शान्त हो जाओ। आँधी भी शान्त हो गई। इसके बाद बड़े-बड़े ओले पड़ने लगे। इस प्रकार अनेक प्रकार के उपद्रवों को देखकर कमाल साहब ने कहा गुरुदेव! यदि आज्ञा हो तो उपद्रवी को पकड़ लिया जाय। उनके इस बात पर सद्गुरु ने कहा—उसकी शक्ति का अपव्यय होने दो। वह स्वयं ही शान्त हो जाएगा।

सद्गुरु ने सेन जी से कहा कि आप और पीपा जी आदि सन्त गण चारों ओर खड़े हो जायँ और संतों को कह दीजिए कि वे घबड़ाएँ नहीं। अतः श्री सेन जी एवं श्री पीपा जी महाराज आदि संतों ने वैसा ही किया। क्षण मात्र में सारा उपद्रव समाप्त हो गया। उधर श्री कमाल साहब पूरब की ओर से एक सिंह को पकड़े हुए आते दिखाई पड़े, जिसे देखकर सभी संत आश्चर्य में पड़ गए और उन लोगों ने कहा कि कमाल जी! किसे लिए आ रहे हो?

तब तक सद्गुरुदेव ने कहा कि यह वही चत्मकारी पुरुष है, जो पहले उपद्रव कर रहा था। अस्तु, सभी संतों के देखते ही देखते वह सिंह मनुष्य के रूप में परिणत हो गया एवं श्री गुरुदेव के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। सद्गुरु ने कहा—कहो बाबा और कुछ करना है? उक्त सिद्ध ने कहा कि प्रभो! जो कुछ मैंने किया है वह अज्ञान के वशीभूत होकर ही किया है। मुझे ऐसा करने के लिए कुछ ब्राह्मणों ने प्रेरित किया था। अस्तु, अब मैं आप के शरण में हूँ। इसलिए मेरे अपराध को आप क्षमा कर दें। मैं आपका दास हूँ। साहब ने कहा कि मैं अभी तुम्हारे अपराध को क्षमा नहीं करूँगा जब तक तुम्हारा शिष्य, इस राज्य का राजा नहीं आ जाता, तब तक तुम्हें मुक्त नहीं किया जाएगा।

उक्त भैरवी के शिष्यों ने जाकर वहाँ के सामन्त को उक्त संवाद सुनाया, जिसको सुनकर वहाँ का सामन्त राजा राय ने अपने साथ ढाका के नवाब हुसेन साह या तत्कालीन बंगाल के हुक्मरान को ले आया। इसके पहले ही सद्गुरु कबीर की बड़ी शोहरत हो गई थी कि सिकन्दर लोदी एवं वीरदेव सिंह राजा कबीर साहब के अधीन हो गए हैं। इसलिए वहाँ समझ-बूझ कर जाना चाहिए। इसी कारण उक्त सामन्त ने

ढाका के प्रशासक को साथ में लाया और सद्गुरु के यहाँ आने पर वे दोनों करबद्ध नतमस्तक हुए। इसके बाद गुरुदेव ने संतों को आदेश दिया कि इन दोनों के लिए आसन लगा दो। संतों ने वैसा ही किया। उस आसन पर वे दोनों प्रशासक बैठ गए। इसके बाद सद्गुरु ने कहा—कहिए, आप दोनों का कुशल क्षेम है न ?

उन दोनों प्रशासकों ने कहा कि आपकी कृपा से सब कुशल ही कुशल है। हम लोग आपका नाम सुन चुके थे, परन्तु सांसारिक बंधनों से बँधे होने के कारण राज्य कार्य में पड़े हुए हैं। इसलिए हमलोग काशी जाकर आपके दर्शन नहीं कर सके। आज से कुछ दिन पहले हम लोग अपने गुप्तचरों से सुन चुके थे कि श्री कबीर जी संत मण्डली के साथ मेरे राज्य में पधारे हुए हैं। अब इससे बढ़कर हमारे लिए और कौन सा भाग्य होगा। साहब ने कहा आप लोग धन्य हैं. जो संतों में निष्ठा रखते हैं, राजा ने कहा—प्रभो ! मेरे भवन में चलिए। साहब ने कहा राजन् मैं राज्यद्वार पर नहीं जाता। यह मेरे गुरु साहब की आज्ञा है। इसलिए तुम मुझे ले जाने के लिए बाध्य न करो। पुनः राजा ने साहब से निवेदन किया कि प्रभो ! मेरे गुरुदेव भैरवनाथ को मुक्त कर दें। साहब ने कहा कि यह तुम्हारा गुरु संतों का अपराधी है. इसलिए इसको पकड़ा गया है। परन्तु मुझे इसको कोई दण्ड नहीं देना है। भोजन करने के बाद इसको मुक्त कर दिया जायेगा। यह अपने किये हुए का प्रायश्चित करे। राजा ने कहा—प्रभो ! आप कौन सा प्रायश्चित इनके लिए नियत करते हैं। साहब ने

---

१. आपको स्मरण होगा कि पहले यह कहा गया है कि सद्गुरु कबीर सिकन्दर लोदी के यहाँ नहीं गये। वह सम्राट् था फिर भी गुरुदेव नहीं गये, क्योंकि उसके यहाँ न जाने की उन्होंने प्रतिज्ञा की थी। वंगप्रदेश में एक तालुकेदार अर्थात् एक छोटा राजा था, जिसके यहाँ भी नहीं गये जबकि स्वयं छोटे एवं अधीनस्थ कई राजाओं के यहाँ पहिले जा चुके हैं और वंगप्रदेश के छोटे राजा श्री राय के यहाँ भी नहीं गये और उन्होंने कहा कि मैं राजाओं के यहाँ नहीं जाता। उसके घर नहीं जाने का कारण यह था कि वह शाक्त था और बहुत सा कृत्य किए हुए था, इसके साथ ही वह जिज्ञासु भी नहीं था। वह केवल अपने गुरु को मुक्त कराना चाहता था। अतएव इस प्रकार के जहाँ परस्पर विरोधी बातें है, उनके भीतर कुछ कारण हैं। ऐसे स्थलों के स्पष्टीकरण करने के लिये ग्रंथकर्ता से संपर्क करना चाहिए।

कहा कि यह तुम्हारा गुरु जहाँ कहीं वैष्णवों को देखे जाकर उनका दर्शन करे और आज से श्रीराम-नाम का जप करे। यही इसके लिए प्रायश्चित है। राजा ने कहा —प्रभो ! ये वैसा ही करेंगे जैसा आपने कहा है। साहब ने कहा राजन् तुम धन्य हो, जो तुमने अपने गुरुका उद्धार किया और ये बाबा भी धन्य हैं जिन्हें तुम्हारे जैसे शिष्य प्राप्त हुए हैं। साहब ने कहा बाबा अब आप जाइए और श्रीराम-नाम का जप कीजिए। आज से आप किसी भी संत को कष्ट नहीं देना, क्योंकि दुःख देने का फल दुःख ही मिलता है। अतः गुरुदेव की अमृतमयी बाणी को सुनकर भैरवी साहब के कमलवत् चरणों पर गिरकर रोने लगा और बोला—प्रभो ! अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा। मैं केवल आपके ही शरण में रहूँगा। मुझे अपना दास बना लीजिए। गुरुदेव ने भैरवी को राममंत्र का अधिकारी समझकर राम मंत्र दे दिया और उसका नाम रामदास रख दिया। वह भी संत मण्डली में रहने लगा और गुरुदेव के वचनों का संग्रह करने लगा। उधर भैरवी का शिष्य राजा भी अपने को रोक नहीं सका। वह भी सपरिवार साहब का शिष्य हो गया एवं श्रीराम-नाम का जप करने लगा।

राजा गुरुदेव का शिष्य हो गया तो उसकी सारी प्रजा गुरुदेव के शरणापन्न हो गई और साथ ही उसने वैष्णव धर्म की दीक्षा भी ले ली। इसके बाद ढाका के नवाब ने भी इच्छा प्रकट की कि मैं भी गुरुदेव का शिष्य हो जाऊँ, परन्तु साहब ने उससे कहा कि आप अल्लाहपाक का नाम जपिए, क्योंकि वही सर्वत्र विद्यमान है। इसलिए साहब ने नवाब से कहा कि अपने हुकूमत में ही प्रभु की भक्ति कीजिए। इस पर नवाब ने कहा कि प्रभो ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु कुछ बातें आपसे मैं करना चाहता हूँ। गुरुदेव ने कहा—बहुत अच्छा। इतना कहते हुए गुरुदेव ने सभी शिष्यों को दूर हटा दिया। कुछ शिष्य, जो उनके अंतरंग थे, जैसे—श्रुतिगोपाल साहब, श्री जागू साहब, श्री भगवान साहब, श्री कमाल साहब, श्री पद्मनाभ साहब, श्री मलूक साहब एवं कबीर साहब के गुरुभाइयों में श्री रविदास जी, श्री सेन जी, श्री पीपा जी और श्री सुरसुरानन्द, जिनसे कोई वार्ता छिपाई नहीं जाती थी, जिनकी राय से संतमंडली का संचालन होता था, वार्ता में सम्मिलित थे।

संत मंडली में लगभग दो सौ संत रहते थे, जो अपने-अपने प्रभाव में एक दूसरे से अग्रगणी थे। उनमें सभी आत्मवेत्ता थे। सभी लोग राम-

भक्ति के प्रचार के लिए प्रकट हुए थे[1] और वे सभी सद्‌गुरु के कृपापात्र माने जाते थे।

एकान्त में हुसेन साह से मिलने पर साहब ने पूछा—कहिए हुक्मरान जी आप क्या कहना चाहते हैं ? जो बातें कहना चाहते हैं उसे स्पष्ट कीजिये। श्री गुरुदेव की आज्ञा पाने पर नवाब संकुचित होकर बोला—प्रभो ! मुझे कोई कमी नहीं है। आज से पन्द्रह वर्ष पहले मैंने एक ब्राह्मण की हत्या करवा दी थी, जो इस समय प्रेत बनकर मेरे परिवार के लोगों को तथा मुझे बहुत कष्ट दे रहा है। उसे दूर करने के लिए मैंने सभी उपाय किये। यहाँ तक की अरब देश से भी मौलवी बुलाये गये और शक्ति के अनुसार कुछ भी करने से उठा नहीं रखा। परन्तु जो लोग दूर हटाने के लिए आते हैं वह प्रेत उनको मार डालता है। इसीलिए अब कोई मेरी इस आपत्ति को दूर करने वाला नहीं आता है। मैं इसी बात को कहने के लिए आप के समीप आया हूँ।

नवाब हुसेन साह की बात सुनकर वन्दीछोड़ ने कहा—तुमने उसको क्यों मारा, उसने तुम्हारा क्या अहित किया था ? नवाब ने कहा—ब्राह्मण बहुत बड़ा तपस्वी था। हिन्दू लोग तो उसके प्रभाव में थे ही, बहुत से मुसलमान भी उसके प्रभाव में आकर हिन्दू धर्म को ग्रहण करते जा रहे थे। यहाँ तक कि एक मेरी पुत्री भी उसकी शिष्या हो गई थी, जो तपस्वी लेकर इबादत खाने में काली-काली जपती रही। मैंने उसको बहुत समझाया। कुछ कुरान की बातें कहीं, परन्तु मेरी पुत्री होने पर भी उसने मेरी कुछ नहीं सुनी। उधर उस ब्राह्मण के प्रभाव में बहुत से मुसलमान जाने लगे जिसके कारण इस राज्य के मौलवियों में हाहाकार मच गया और सभी लोगों ने मेरे पास आकर सारी कथा को सुनाया। मैंने ध्यानपूर्वक उस कथा को सुना और अन्त में निर्णय लिया कि उक्त ब्राह्मण को देश से निष्कासित कर दिया जाय। मैंने एक बार उस ब्राह्मण को देश से बाहर भी कर दिया। इसके परिणामस्वरूप देश में बहुत बड़ा जनाक्रोश हो गया, जिसके कारण उसको पुनः बुलाया गया और अन्त में उसको छल से मार डाला गया। इसी कारण आज तक हम

---

१. एक जगह लिखा है कि सन्त मण्डली में पचास सन्त रहे। उक्त संख्या केवल विदेश यात्रा में जाते समय थी, उसका विस्तार होते-होते २०० सौ तक हो गई थी।

सपरिवार परेशान हैं। कभी कोई परिवार का सदस्य पागल हो जाता है, तो कभी घर में आग लग जाती है। इसी प्रकार से अनेक उपद्रव आये दिन होते रहते हैं। मैं इससे आजीज हो गया हूँ। अब आप मुझे पनाह दें।

गुरुदेव मन ही मन सोचने लगे कि इसके लिए क्या किया जाय? इसके बाद गुरुदेव बोले–तुमने भगवद्भक्त की हत्या की है। इसलिए तुझे उस पाप का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। उससे बचने का केवल एक ही उपाय है, कि जिससे तुम्हारे परिवार में कुछ शान्ति रहेगी। वह उपाय यह है कि तुम निरामिष होकर जहाँ कहीं भगवद्भक्त मिले उनको अन्न-वस्त्र दान करो और प्रतिदिन दीन-दुःखियों की सेवा करो तथा जितने लोग श्री राम-नाम का जप करें उतना जप करवाना और तुम भी सपरिवार श्री गोविन्द-गोविन्द जपना। जिस ब्राह्मण का तुमने वध किया है उसके परिवार वालों को सदा संतुष्ट रखना और जहाँ कहीं वैधव्य प्राप्त स्त्रियाँ हों, उन्हें खोज-खोजकर अन्न वस्त्र देना। अनाथ बच्चों के लिए जहाँ-तहाँ पाठशाला खोलवाकर उसका संचालन करना। उसमें निःशुल्क पढ़ाई करवाना तथा प्रेम पूर्वक प्रजा का पालन-पोषण करना। हिन्दू-मुसलमान को समान दृष्टि से देखना और सम्पूर्ण राज्य में श्री हरि के नामों का जप करवाना तभी तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा तुझे कष्टों से मुक्त होने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इतना कहकर श्री गुरुदेव मौन हो गये।

नवाब गुरुदेव की अमृतमयी वाणी को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और साहब से कहा प्रभो! ऐसा ही होगा जैसा आपने अभी कहा है। गुरुदेव के उपदेशानुसार नवाब कार्य करने लगा। इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे उपद्रव शान्त हो गया और जीवन पर्यन्त नवाब अपने राज्य में श्री हरि की भक्ति का प्रचार करता रहा। इधर सद्गुरु ने एक दिन उस मृत आत्मा को बुलाकर अपने तेज के बल से उसे प्रेत योनि से विमुक्त करके अपने लोक में भेज दिया।

इसके बाद संत मण्डली वंग प्रदेश में भ्रमण करती हुई सुन्दरवन में पहुँची जहाँ पर अनेक संत महात्माओं से दर्शन हुआ और कई दिनों तक सत्संग चलता रहा। इस प्रकार सुन्दरवन में संत मण्डली आनन्द-मग्न हो गई, क्योंकि वहाँ पर अधिकांश संत वैष्णव थे। इसलिए स्वजातीय मिलन से संत मण्डली को बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर संत

मण्डली सुन्दरवन को पार करती हुई आगे बढ़ती जा रही थी तब तक मार्ग में एक विशालकाय सिंह का दर्शन हुआ, जो मार्गविरोध किए हुए था। साहब ने कहा आइए आपका स्वागत है। इतना सुनते ही मृगराज आया और गुरुदेव के चरणों का स्पर्श करके अपने नेत्रों से आँसू बहाने लगा। उसके आशय को गुरुदेव ने समझ लिया और कहा कि कर्म के फल को भोगना पड़ता है। तुम उस जन्म में इस क्षेत्र के राजा और बहुत बड़े मांसाहारी थे, जिससे तुम्हें पुराने संस्कार के कारण ही आज केवल मांस पर ही जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। अब मैं क्या करूँ? जब मैं तुम्हारे लिए रोता था कि बुरा कर्म त्याग दो, तो उस समय तुमने ध्यान नहीं दिया।[1] अब इस समय तुम रो रहे इससे तुम्हें क्या मिलेगा? अच्छा तुमने जो किया सो किया। आओ अब तुम्हें राम-मंत्र को सुनाता हूँ।

गुरुदेव ने उसके कान में राम-मंत्र फूँक दिया और राम मंत्र सुनते ही वह उस शरीर का त्याग कर दिव्य लोक को चला गया। इस घटना को देखकर संत मण्डली आश्चर्य चकित हो गई। इसके बाद संत मण्डली अनेक प्रकार से गुरुदेव कबीर की महिमा का गान करने लगी। अस्तु, गुरुदेव की महिमा का गान करती हुई संत मण्डली सुन्दरवन पार कर गई। संत मण्डली प्रत्येक गाँव, नगरों, पर्वतों के निवासियों को सत्य संदेश सुनाते, राम भक्ति का प्रचार-प्रसार करती हुई कामरूप प्रदेश की सीमा पार करने के लिए नजदीक पहुँच गई।

बंग प्रदेश में यवनों द्वारा त्रासित हिंदूओं का उद्धार

संत मण्डली बंग प्रदेश में ही थी कि निकट के ग्रामों के लोग गुरुदेव का आगमन सुनकर आए और उन्होंने गुरुदेव के दर्शन किए। उन लोगों से गुरुदेव ने कुशल क्षेम पूछा। दर्शनार्थियों ने कहा—प्रभो! हम लोगों को कुशल क्षेम कहाँ है? म्लेच्छ लोग आए दिनों हमलोगों को परेशान किया करते हैं। हमारे गाँव के सहित यहाँ पचासों गाँवों के देव मंदिर तोड़ दिए गए हैं। उन स्थानों पर म्लेच्छों ने मसजिदें-मकबरे

---

१. जब हम रोया तब तुम न सँभारा। गरभबास की बात विचारा॥
अब तै रोया क्या तें पाया। केहि कारण अब मोहि रोवाया॥
—बीजक 'शबद'

बनवा दिए हैं। हमलोगों को वे पूजा-पाठ, शंख-ध्वनि आदि नहीं करने देते। हमारी बहू-बेटियों को दिन दहाड़े उठा ले जाते हैं। हमलोगों के सामने ही उनको अपमानित करते हैं और भय के कारण हमलोग उनसे बोल नहीं सकते। हजारों हिंदू भाइयों को मुसलमान बनना पड़ रहा है। इसका कारण यह है कि म्लेच्छ लोग हिंदुओं को मुसलमान बनने के लिए विवश कर देते हैं। जब हमलोग मुसलमान नहीं बनते हैं, तो वे हमलोगों को निर्धन कर देते हैं एव हमलोगों की भूमि को छीन लेते हैं। हमलोगों को काफर कहकर तिरष्कृत करते हैं। आए दिन हमलोग नित्य गला कटाते हैं। पूर्वी बंगाल से हिन्दू धर्म का लोप होता जा रहा है। हमलोगों के घर प्रतिदिन उजाड़ दिए जाते हैं। बनाया हुआ भोजन हमलोगों को खाने को नहीं मिलता। यहाँ का यही कुशल क्षेम है जो हमलोगों ने अभी आपके समक्ष निवेद किया है।

ग्रामवासियों की दुःख से परिपूर्ण कहानी को सुनकर सद्‌गुरु के नेत्रों से आँसू की धारा बह निकली, जिससे एक गहरा समुद्र वन गया। सद्‌गुरु का मन व्यग्र हो उठा। शरीर रोमांचित हो गया। साहब की इस अभूत पूर्ण दशा को देखकर संत मण्डली ववड़ा गई और श्री रविदास जी ने कहा—प्रभो! इन दीन-दुःखियों का दुःख विना आपके दूर नहीं होगा। इसलिए हमलोग इस क्षेत्र में कुछ दिन और रुकें। उक्त वुराइयों को विना दूर किए आगे बढ़ना उचित नहीं है। साहव ने श्री रविदास जी की वात स्वीकार कर ली और प्रत्येक गाँव में जाकर मुसलमानों एवं हिन्दुओं को उपदेश सुनाने लगे। जिस गाँव में संत मण्डली जाती थी उस गाँव की दशा को देखकर संत मंडली रो पड़ती थी तथा चंदा लगाकर उन लोगों के घर को छवा देती थी। हिन्दुओं के घर के छप्पर पीट दिए गए थे और कहीं-कहीं उनके घर फूंक दिए गये थे। उनके शरीर पर अच्छे वस्त्र नहीं थे। घर में खाने के लिए अन्न भी नहीं था। लोग पेट पर कपड़े बाँधकर सो जाते थे। इस प्रकार मुसलमानों के अत्याचारों को देखकर संत लोग विह्वल हो जाते थे। मुसलमानों को जब यह ज्ञात हुआ कि कबीर साहब आकर हिन्दुओं की सहायता कर रहे हैं, तो कुछ मौलवियों ने आकर साहब से कहा कि आप अपनी संत मण्डली के साथ यहाँ से अर्थात् बंग सीमा से पार चले जाइए, अन्यथा आपका अहित होगा।

मौलवियों की उक्त बात को सुनकर साहब ने कहा—मेरा अहित नहीं होगा। अहित तो तुम लोगों का होगा। मैं कोई पाप नहीं करता। तुम लोग प्रतिदिन पाप करते हो इसलिए तुमलोगों को ही नरक होगा और जो तुम लोग कहते हो कि आप बंग सीमा से पार चले जाइए तो क्या यह पृथ्वी तुम्हारी ही है। मेरी नहीं है। मैं भी तो इसी पर अवतीर्ण हुआ हूँ। मेरा भी तो इस पर रहने का अधिकार होता है। इसलिए मैं तुमलोगों के कहने से बाहर नहीं जा सकता। जब मेरी इच्छा होगी, तो मैं स्वयं चला जाऊँगा। तुमलोगों को जो करना हो, सो करो, पर इसका ध्यान रखना कि तुम लोग वृद्ध हो चुके हो, परन्तु तुम्हारे कर्म अभी नवयुवक हैं, क्या वहाँ भी यही कहोगे ? जो आज दीन दुःखियों को सता रहे हो ! क्या अल्लाहपाक तुमलोगों के इस अपराध को क्षमा कर देगा ? अपने किए हुए को ध्यान से देखो।

सद्गुरु की निर्भीक वाणी को सुनकर मौलवियों के होश ठिकाने लग गए और निराश होकर अपने-अपने घर चले गए। इधर गुरुदेव ने श्री रविदास जी के साथ कुछ संतों को ढाका भेजा और कहा कि नवाब से आपलोग जाकर कह दें कि कबीर साहब आपसे मुलाकात करना चाहते हैं। सद्गुरु की आज्ञा पाते ही संत लोग वहाँ गए और उन लोगों ने नवाब से कबीर साहब का फरमान सुना दिया। साहब का आदेश सुनकर नवाब वहाँ से चल पड़ा और आकर साहब का दर्शन किया। इसके बाद नवाब ने साहब से कहा—प्रभो ! आपका क्या हुक्म है ? प्रभु ने कहा—देखो तुम्हारे राज्य में इन हिन्दुओं की क्या दशा हो रही है ? देखो, ये अभागे जीते हुए भी नरक भोग रहे हैं। इनका घर एवं शरीर देखो, कितनी दयनीय दशा में पड़े हुए हैं। क्या यही तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हो या कर रहे हो ? क्या यही प्रभु का भजन है ?

इस प्रकार कबीर साहब की गंभीर ध्वनि को सुनकर नवाब काँपने लगा और बोला प्रभो ! मैं अकेला क्या करूँ ? कहाँ-कहाँ देखभाल करूँ ? ये मेरे राजकर्मचारियों की अनभिज्ञता है, जो प्रमादवश या साम्प्रदायिक भावना से विमोहित होकर इन दीन-दुखियों की उपेक्षा किए हुए हैं। मैं इसका प्रबंध अभी कर देता हूँ। मेरी जानकारी में कोई दुःखी नहीं रहेगा। जो हुआ सो हुआ, अब इसकी पुनरावृत्ति नहीं होने पाएगी।

नवाब ने उन सभी गाँवों, घरों तथा देव-मंदिरों का फिर से नवनिर्माण करा दिया, जिसको मुसलमानों ने उजाड़ दिये थे।

नवाब ने हिन्दुओं से क्षमा माँगी और इस प्रकार की घोषणा कर दी—'यदि आज से कोई इन हिन्दू भाइयों को कष्ट देगा, तो वह व्यक्ति प्राण दण्ड का भागी होगा और जो हिन्दू भाई हिन्दू से मुसलमान हो गए हैं, उनके ऊपर कोई दबाव नहीं रहेगा। वे चाहें तो पुनः अपना प्रियधर्म हिन्दू अपना सकते हैं, क्योंकि अपना धर्म सभी को प्यारा होता है, इस प्रकार नवाब की बात को सुनकर बहुत से नव दीक्षित मुसलमानों ने पुनः हिन्दू होकर वैष्णवधर्म स्वीकार कर लिए। उधर नवाब ने सभी पुराने पदाधिकारियों को पदच्युत कर दिया और उनके स्थान पर हिन्दू एवं मुसलमानों को समान संख्या में रख दिया जिससे ठीक-ठीक सूचना मिल सके। इस प्रकार अनेक नियम तुरन्त लागू हो गए और सभी लोग शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। अब कोई किसी को सताने वाला, नहीं रह गया। वैसे तो यदा-कदा सर्वत्र घटनाएँ होती ही रहती हैं।

सद्‌गुरु कबीर उन सभी क्षेत्रों में गए जहाँ-जहाँ त्रासित लोग निवास करते थे। उन लोगों के लिए प्रशासक की ओर से सारा प्रवंध कराकर सद्‌गुरु कबीर बंग प्रदेश से प्रस्थान के लिए प्रस्तुत हो गए और सद्‌गुरु ने सन्त मण्डली को वहाँ से प्रस्थान करने के लिए आदेश दिया। अतः आदेश पाते ही सन्त मण्डली आगे की ओर बढ़ी जहाँ मार्ग में एक छोटा सा जंगल पड़ता था। उसी जंगल में जब सन्त मण्डली पहुंची, तो संतों को एक समूह मिला, जो भाला-बल्लम से सुसज्जित था। उसमें सभी दाढ़ी वाले भाई थे, जो सन्त मण्डली को समाप्त कर देने के लिए उक्त जंगल में मार्गावरोध करके खड़े थे। सन्तों को समाप्त करने का कारण यह था कि गुरुदेव ने उस क्षेत्र के हिन्दुओं की सहायता की थी और प्रशासक की ओर से पुनः उनके आवासों को बनवा दिया था एवं आततायियों का रहस्योद्‌घाटन करवा दिया था। जिससे रुष्ट होकर आततायी लोग साहब को नष्ट करने के लिए उद्यत हो गए थे। सन्त मण्डली ने ज्यों ही वन में प्रवेश किया त्यों ही दस्यु लोग उन पर टूट पड़े।

अपनी ओर उन आततायियों को आते देखकर सन्त मण्डली किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। उन लोगों के सन्निकट आ जाने पर गुरुदेव ने

अपना हाथ उठाया और कहा वहीं खड़े हो जाओ। साहब के इतना कहते ही सभी दाढ़ी वाले आततायी स्तंभित हो गए मानों उनके पैरों को किसी ने बाँध दिया हो जो जैसे हाथ उठाए हुए था, वह वैसे ही हाथ किए चितवत् खड़ा रहा। इसके बाद गुरुदेव ने कहा – कहो, तुम लोगों की शक्ति कहाँ गई। भला यह क्या करना चाहते हो? सन्तों को मारकर तुम लोग क्या पाओगे? सन्त तो कभी किसी को दुःख नहीं देते। वे तो सदा राम का गुणानुवाद करते हैं। तुम लोग उनके साथ ऐसा अत्याचार क्यों करने जा रहे हो? गुरुदेव की बात को सुनकर कोई कुछ कह नहीं पा रहा था। जिसका मुख वन्द था वह खुल नहीं पा रहा था और जिसका मुख खुला था वह बन्द नहीं हो पा रहा था। इस प्रकार जो जिस दशा में था वह उसी दशा में खड़ा था। सन्त उन लोगों की इस विचित्र दशा को देखकर आश्चर्य चकित हो गए। उनमें से कोई कुछ कहने का साहस नहीं कर रहा था। सभी लोग साहब की ओर टकटकी लगाए खड़े थे।

श्री रविदास जी महाराज एवं श्री सेन जी महाराज करबद्ध होकर खड़े हो गए और साहब से बोले—प्रभो! इन अज्ञानियों को अब क्षमा प्रदान कर दीजिए। ये लोग अपने किए हुए का फल पा गए। अतः उन दोनों महापुरुषों की बात को सुनकर सद्गुरुदेव ने कहा—क्षमा तो श्री हरि कर हो देंगे, परन्तु ये पामर क्षमा के पात्र नहीं हैं। ये लोग केवल इस्लाम के नाम पर अत्याचार ही करते हैं, दुनिया में इतना अत्याचार अन्य धर्मों में कहीं नहीं मिलेगा जितना अत्याचार इस्लाम धर्म में है। जो इस्लाम के विरुद्ध है। इसके बाद साहब ने उनलोगों से कहा कि तुम लोग प्रेम से एक बार श्री हरि का राम नाम कहो तब श्री हरि तुम लोगों को इससे मुक्त कर देंगे और तभी तुम लोग इस घोर संकट से पार हो सकोगे। साहब का आदेश पाते ही उन लोगों ने भयभीत होकर जैसे ही मन में श्री हरि का स्मरण कर ध्यान किया और केवल 'र' के कहते मात्र ही सभी लोग सचेत हो गए और गुरुदेव के पावन चरणों पर घुटना टेक कर रोने लगे। अपने किए हुए पर स्वयं घृणा करने लगे।

उधर वे करामाती मौलवी एवं इस्लामी कट्टरपंथी ज्यों के त्यों पहले की दशा में ही पड़े रहे। उनकी उक्त दशा देखकर श्री रविदास जी ने

कहा —ये राम-नाम के शत्रु हैं, इसलिए मुख खोलकर खड़े हैं। जब तक ये श्री राम-नाम नाम का चिन्तन नहीं करेंगे तब तक इनकी यही दशा रहेगी। उक्त मौलवी एवं इस्लामी सिद्धों ने बार-बार अल्लाहताला का स्मरण किया, परन्तु कुछ सुधार न देखकर उन लोगों ने श्री राम-नाम का जप एवं चिन्तन किया जिसके फलस्वरूप वे सब सचेत हो गए और साहब के पावन चरण-कमलों पर सिर झुका दिये। तदनन्तर अपने किये हुए अपराध पर साहब से क्षमा याचना करने लगे। सद्‌गुरु ने सार्वजनिक रूप से उन्हें क्षमा प्रदान कर दिये। तत्पश्चात् वे सभी श्री राम-मंत्र के उपासक हो गए और गुरुदेव से विदा लेकर अपने-अपने निवास स्थान पर चले गए।

कामरूप प्रदेश के तांत्रिकों के चमत्कारों का दमन

संत मण्डली ने कामरूप प्रदेश में प्रवेश किया। कामरूप के लोग बड़े सरल एवं सीधे थे। वहाँ के लोगों ने गुरुदेव की आगवानी की और साथ ही उनका स्वागत् भी। इसके बाद वे लोग अपने-अपने गाँवों व नगरों में संत मण्डली को ले जाकर कथा-कीर्त्तन कराते और संतों को सादर विदा करते थे। इसी प्रकार समस्त पर्वतीय क्षेत्र में रामभक्ति का प्रचार-प्रसार करती हुई संत मण्डली कमक्षा देवी (कामाख्या देवी) के समीप पहुँची और वहाँ पर संतों ने डेरा डाल दिया। सभी संत स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ करने लगे। इसी बीच गुरुदेव के देखते ही देखते सभी सन्तों का आकर (रूप) गर्दभ जैसा हो गया। इसको देखकर गुरुदेव उसका प्रतिकार करते हुए शान्तचित्त होकर बैठ गए। उधर समीप के कई गाँवों में से लोग शोर मचाने लगे कि हमारे गाँव की सभी स्त्रियाँ गर्दभी हो गई हैं। अस्तु, वहाँ के बुद्धिमान लोग चारों दिशाओं में खोजने लगे कि कौन ऐसा व्यक्ति आया है जिसने इस करामात को किया है ?

अतः खोजते-खोजते लोगों को यह पता लग गया कि श्री कबीर जी आये हैं। उन्होंने ही कुछ किया होगा। अतः कामरूप के तांत्रिक लोगों ने साहब के पास आकर अनेक प्रकार से अनुनय विनय किया और कहा—प्रभो ! यहाँ के समीप के गाँवों की समस्त ललनाएँ गर्दभी हो गई हैं। यहाँ पर ऐसा कभी नहीं हुआ था। इस रहस्य को हम लोग समझ नहीं पा रहे हैं। अतएव आपसे निवेदन है कि इस रहस्य को कृपा करके हम लोगों को बतलाएँ। तांत्रिक पण्डितों की इस बात को सुन-

कर सद्गुरु ने हँसते हुए कहा—अरे भाई! यहाँ पर जो आता है वह गर्दभ हो जाता है, तो भला यहाँ की स्त्रियाँ गर्दभी हो गई, तो इसमें क्या आश्चर्य है? साहब की उक्त बात को सुनकर उन तांत्रिकों ने कहा—प्रभो! यह महान् भूल है। इस विषय में हमलोग कुछ नहीं जानते थे। अस्तु, अपने किए हुए का फल प्राप्त हो चुका है। आप दया-सागर हैं, हमलोगों को क्षमा कर दें। गुरुदेव ने कहा जाओ उन गर्दभी स्त्रियों को राम-नाम सुना दो सब ठीक हो जाएँगी। गुरुदेव की आज्ञा हो जाने पर सभी लोगों ने अपने-अपने गाँवों में जाकर वैसा ही किया। सभी महिलाएँ स्व-स्व-रूप को प्राप्त हो गई। इधर गुरु कृपा से सन्त लोग तो क्षण मात्र मे ही स्व-स्व-रूप को प्राप्त हो गये थे। इस घटना का समाचार पूरे प्रदेश में बिजली की तरह फैल गया। जिससे प्रदेश की सारी जनता सद्गुरु कबीर से अत्यधिक प्रभावित हो गई और श्री राम नाम का जप सभी लोग करने लगे। अपने-अपने गाँवों में गुरुदेव को ले जाकर उनकी पधरावनी कराने लगे तथा वे लोग भी हरि भक्ति को प्रेमपूर्वक श्रवण करते रहे।

आसाम वासियों को गुरुदेव ने अपने चरित्र के बल से मोहित कर लिया था, जिससे वहाँ की जनता ने साहब का बहुत आदर-सत्कार किया और गुरुदेव ने भी सरल रीति से भक्ति भाव का उपदेश वहाँ के लोगों को दिया। इस प्रकार पूरे आसाम क्षेत्र को वैष्णव बनाकर संत-मंडली भ्रमण करती हुई नेपाल देश की ओर मुड़ी जहाँ पर सत्यमार्ग का संदेश सुनाया। नेपाल के पूरे क्षेत्रों में जाकर संतों ने अनेक प्रकार के उपकार के कार्य किये। कुछ लोगों का यह मत है कि सद्गुरु कबीर वर्मा होते हुए थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, वियतनाम, मलाया, तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया और मंचूरिया आदि एशिया के सभी देशों में गये थे और कुछ विद्वानों का मत है कि यूरोप में भी सद्गुरु कबीर गये थे और वहाँ परा भक्ति का उपदेश दिया था। अस्तु, सद्गुरुदेव महापुरुष थे। वे कहीं भी जा सकते थे। इसमें संदेह नहीं है। वे सब कुछ करने में समर्थ थे, परन्तु मुझे उक्त देशों एवं उक्त प्रान्तों में जाने का पुष्ट प्रमाण नहीं उपलब्ध हुआ है। इसलिए उन देशों एवं प्रदेशों की यात्रा का उल्लेख मैंने नहीं किया है, क्योंकि जब तक सत्य प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक किसी का जीवन वृत्त नहीं लिखना चाहिए। इसका कारण यह है कि

इससे समाज अंधकूप में पड़ता है और उसको सही दिशा का ज्ञान होना असंभव हो जाता है। मुझे जहाँ तक सद्गुरु कबीर के जीवन वृत्त के विषय में सत्य कथाएँ प्रतीत हुई हैं उन्हीं कथाओं का लिखना मैंने अनिवार्य समझा है।

ग्रंथ प्रामाणिकता पर विचार

मेरे इस लेख का पहला आधार श्री हरिव्यास जी की वाणी एवं श्री अनन्तदास जी की परिचयी, जो काशी नागरीप्रचारिणी सभा में सुरक्षित है, जिसका काल वि० सं० १६४५ है। दूसरा आधार भक्तमाल (टीकाकार श्री प्रियादास जी महाराज) है. जो वि० सं० की सतरहवीं शताब्दी की कही जाती है। तीसरा प्रमाण श्री दादूदयाल की वाणी, चौथा प्रमाण उनके शिष्य वषना जी की वाणी, पाँचवाँ आधार उन्हीं के सम्प्रदाय के संत राघोदास जी का भक्तमाल, छठवाँ आधार श्री रज्जब जी की वाणी, सातवाँ आधार श्री गरीबदास जी साहब की वाणी आठवाँ आधार श्री रविदास जी के वचन और पीपा के वचन भी हैं ! दशवाँ आधार श्री राम रसिकावली का है जिसके लेखक रीवाँ के महाराजाधिराज श्री रघुराज सिंह जी थे। ग्यारहवाँ आधार प्रसंग पारिजातम् ग्रंथ का है, जो पैशाची भाषा में लिखा गया है, जिसके लेखक स्वामी रामानन्द के शिष्य या प्रशिष्य चेतनदास जी महाराज बताये जाते हैं। बारहवाँ आधार कबीर ग्रंथावली के वे पद हैं, जिनमें गुरुदेव कबीर के जीवन के विषय में उल्लेख है। तेरहवें आधार में भविष्य पुराण एवं अगस्त्य संहिता भी है। चौदहवें आधार में श्री तुकाराम जी एवं श्री मीराबाई के पद भी हैं, जिनकी वाणियों से कुछ वृत्त लिए गए हैं।

इनके अतिरिक्त और अनेक ग्रंथ हैं जिनका नाम उल्लेख में नहीं आया है। सबसे अधिक प्रमाण अपने गुरुदेव के बताए हुए कथाओं का है, जो किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलती, जिनका खुले दिमाग से प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार से पंथ के अंतर्गत प्रामाणिक पुस्तकों का भी आधार लिया गया है, जो दूसरों से प्रमाणित हैं। अन्य अनर्गल पुस्तकों को मैंने प्रमाण नहीं माना है। जैसे "कबीर मंसूर", "अनुराग सागर" आदि की कल्पित कथाओं का बहिष्कार किया गया है। मेरे इस लेख का आधार कम से कम १०० वर्ष के पहले के लेख हैं। इधर के गपोड़-चौथकों के लेख का प्रमाण नहीं लिया गया है, क्योंकि उक्त लेखों

के लेखक लोग अधिक कल्पना प्रसूत लेख लिखे हैं। इसी कारण इन कल्पित लेखों का वहिष्कार किया गया है। जो लेख केवल कल्पना प्रसूत हैं जो कोरे बुद्धि वाद पर आधारित हैं वे लेख चाहे वाहर के हो चाहे अंतरंग के हो उनका पूर्ण रूप से त्याग किया गया।

आकाशचारी योगी प्रसंग

अव आइए सद्गुरु कवीर साहब के समीप। श्री सद्गुरुदेव नेपाल के उन सभी प्रक्षेत्रों में गए, जो घोर हिमाच्छादित थे जहाँ पर अनेक सिद्ध महापुरुष निवास करते थे, जिनसे बहुत समय तक सद्गुरु से ज्ञान चर्चा हुई। परस्पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ। मनो-मालिन्य भाव का अभाव हुआ। सभी सिद्धगण गुरुदेव से प्रभावित हुए और उनकी अनेक प्रकार से प्रशंसा करने लगे। गुरुदेव ने भूले हुए साधकों को सहज योग का मार्ग दिखाया। सभी लोग समाधि में विलीन हो गए। इसके बाद संत मंडली वहाँ से विदा लेकर पर्वतीय क्षेत्रों को लाँघती हुई समतल भूमि पर आ गई। मार्ग में एक दिन संत मण्डली सीतामढ़ी के पास रुकी रही। वहाँ पर श्री राम ध्वनि हो रही थी।

संत लोग अपने-अपने आसनों पर बैठकर समाधि में लीन हो गए थे। कुछ समय के बाद संत मण्डली सचेत हुई और परस्पर कुछ वात-चीत होने लगी तव तक आकाश मंडल में एक सिद्ध दिखाई दिया, जो आकाश मार्ग से हिमालय से काशी जा रहा था। उसको उड़ते हुए देखकर संतों ने कहा—देखो, यह कौन मनुष्य है, जो ऊपर से उड़ते हुए जा रहा है? इसके वाद कमाल साहव ने कहा—वह अभी ऊपर ही ऊपर है। वह भीतर की वात नहीं जानता। इस वात को उस सिद्ध ने अपने तेज बल से सुन लिया एवं वह-शीघ्रता से नीचे उतर आया और कमाल साहव के सामने खड़ा हो गया। इसके बाद वह वोला—तुमने मुझे क्या कहा? इस बात पर श्री कमाल साहव ने कहा कि मैंने तो यही कहा है कि उड़ता हुआ योगी अभी ऊपर ही ऊपर है। भीतर की वात वह नहीं जानता।

श्री कमाल साहव की इस बात को सुनकर उक्त योगी ने कहा—तुमने मेरा अपमान किया है। इसलिए मैं तुम्हें अभी भस्म कर देता हूँ। श्री कमाल साहव ने उससे कहा—पहले तुम भस्म होने से बचो तव मुझे भस्म करना। तुम तो स्वयं राग, द्वेष, लोभ, मोह, काम, क्रोध रूपी

अग्नि से झुलस रहे हो। तुम अपने को संभालो, अन्यथा आत्मा अज्ञात होकर चली जाएगी। इस प्रकार श्री कमाल साहब की बात को सुनकर उस योगी ने कहा—महात्मन्। आपके वचन मुझे आपकी ओर आकृष्ट किए जा रहे हैं। अतः आप दया करके मेरा उद्धार कीजिए। मैं आपकी महिमा को नहीं जानता था।

अतएव श्री कमाल साहब योगी को अधिकारी जानकर सद्गुरु कबीर के समीप ले गए और उन्होंने सारा समाचार साहब को सुना दिया। श्री कमाल साहब की बात को सुनकर सद्गुरुदेव ने कहा—शम-दम षट् साधनों का अनुशीलन करते हुए आत्मान्वेषण करना चाहिए, क्योंकि आत्मा सत्य है। उसका अभ्यास करना चाहिए। आत्मा से परे कोई वस्तु नहीं है। आत्मा ही सबसे परे पदार्थ है। उपाधि भेद से इसे जीव, ईश्वर एवं ब्रह्म कहा जाता है। वास्तव में यह आत्मा एक ही है। इसमें अनेकता नहीं है। इसी आत्मा का ध्यान आप कीजिए और नित्य प्रति श्री राम नाम का जप करते रहिये एवं एकान्त भूमि का सेवन करिएगा। आइए, मैं आपको गुप्त भेद बता देता हूँ। अतः श्री गुरुदेव ने उक्त योगी को गुप्त भेद बतलाकर वापस लौटा दिया।

सद्गुरु का पूर्वी प्रदेशों से काशी पुनरागमन

सद्गुरुदेव संत मण्डली के साथ भ्रमण करते हुए अपनी काशी पुरी में आ गए। गुरुदेव का आगमन सुनकर महाराजाधिराज वीरदेव सिंह आगवानी करने के लिए पालकी लिए हुए नगर के गणमान्य व्यक्तियों को साथ में लेकर वहाँ तक गए जहाँ पर साहब आ रहे थे। सर्वप्रथम महाराजाधिराज ने जाकर सद्गुरु स्वामी का चरणस्पर्श किया। इसके बाद बारी-बारी से अन्य संत महापुरुषों को दण्डवत् प्रणाम करके गुरु-देव के सामने खड़े हो गए और पालकी में बैठने के लिए प्रार्थना की। राजा की प्रसन्नता के लिए गुरुदेव पालकी में बैठ गए एवं कुछ ही क्षणों में कबीर चबूतरे अर्थात् अपनी मातृभूमि वाली कुटिया पर आ गए। यहाँ पर बहुत दिनों के बाद गुरुदेव का आगमन सुनकर नगर के बाल-वृद्ध, नर-नारियों ने आकर अपने पूज्य स्वामी का दर्शन किया। गुरुदेव अपने नगर के निवासियों को अपने सामने देखकर परमानन्दित हुए और सबसे कुशल क्षेम पूछा। इसके बाद बोले आप लोग आनन्द से हैं न! नागरिकों ने कहा प्रभो! आपके अभाव में हम नागरिकों का

कहाँ कुशल क्षेम है। इस प्रकार से कई दिन व्यवहार चलता रहा। गुरुदेव के देशाटन से आने पर काशी के लोग बड़े हर्ष के साथ साहब से मिले तथा सभी लोगों ने आनंद मनाया।

इस प्रकार गुरुदेव के यहाँ सदा भीड़ लगी रहती थी। नित्य प्रति सायं चार बजे गुरुदेव का प्रवचन होता था। लोग बड़े प्रेम से गुरुदेव के प्रवचन को सुनते थे। गुरुदेव जब कभी बाहर से आते थे, तो इसी प्रकार से लोग आकर मिलते-जुलते ते। गुरुदेव ने इस भारत भूमि का एवं समीप के देशों का लगभग पच्चीस बार भ्रमण किया था और अपने जीवन पर्यन्त समाज की विषमताओं के विरुद्ध जूझते रहे। अथक परिश्रम के बाद आपने समाज को एक अच्छी दिशा दी और एक क्रान्ति दल की स्थापना की जिसका लक्ष्य था इस पृथ्वी पर सबका समानाधिकार हो, सभी का उदय हो, सभी को न्याय उपलब्ध हो सभी को न्याय से जीने का अधिकार प्राप्त हो, किसी को नीचा न कहो, नीचा-ऊँचा कर्म होता है इसमें जाति-पाँति का प्रश्न बहुत भ्रामक एवं देश नाशक। संसार के सभी धर्मों का एक ही लक्ष्य है। वह यह है कि जन्म-मरण से छुटकारा पाना या स्थायी सुख की प्राप्ति करना। सभी धर्मों में अहिंसा का अभाव है। इसलिए अहिंसा से रहित धर्मों में सुगति पाना कठिन है, क्योंकि बिना अहिंसा के आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता। अहिंसा से ही सात्विक वृत्ति बनती है और सात्विक वृत्ति से ही आत्माभिमुख मनोवृत्ति होती है, जो निर्वाण पद की प्रदायिनी वृत्ति है। इसलिए अहिंसक होना किसी धर्म का पहला पाद है।

वैष्णव ही एक ऐसा धर्म है जिसमें पूर्णरूपेण अहिंसा का पालन होता है और ईश्वर की सत्ता भी स्वीकार करता है। यह धर्म लोक, परलोक, पाप, पुण्य और पुनर्जन्म भी मानता है। कबीर वैष्णव केवल समाज की विषमताओं का ही प्रतिवाद करता है। ऐसे तो कुछ धर्म हैं जो अहिंसा मानते हैं. परन्तु वे ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। इसलिए ऐसा धर्म मानव को शान्ति प्रदान करने में असमर्थ हैं। इसी प्रकार से कुछ अन्य धर्म हैं, जो ईश्वर को मानते हैं, परन्तु अहिंसा को नहीं मानते। जिसके बिना धर्म अपूर्ण है, क्योंकि धर्म के आठ अंग होते हैं—१. अहिंसा, २. ब्रह्मचर्य, ३. अस्तेय, ४. अपरिग्रह, ५. ईश्वर में निष्ठा, ६. सत्य भाषण, ७. लोक-परलोक की मान्यता और ८. पुनर्जन्म।

उपांग भी आठ हैं—

१. लोक-मर्यादा, २. समानाधिकार, ३. पाप-पुण्य में विश्वास, ४. क्षमाशील, ५. सदाचार, ६. संध्यावंदन, ७. परोपकार और ८. आप्त पुरुषों में विश्वास।

उपर्युक्त आठों अंग कबीर वैष्णव धर्म में पाए जाते हैं। इन्हीं आठ अंगों पर यह पुनीत धर्म अवलम्बित है, जिसके कारण यह धर्म सर्वग्राह्य एवं उपासनीय है। अन्य धर्मों में उपर्युक्त अंगों का अभाव है। इसी से दूसरे धर्म अपूर्णांग हैं, केवल वैष्णव धर्म पूर्णाङ्ग है। अतः कबीर क्रान्ति दल का यही कार्य था कि सभी को इस पूर्णाङ्ग धर्म पर लावें। एक ईश्वर के अतिरिक्त बहुदेववाद का विरोध करें। एक ईश्वर को ही मानना चाहिए इत्यादि उपदेश 'कबीर क्रांति दल" का था। बहुदेव-वाद का एक में समन्वय करके ही यह धर्म चला था, जिसका उल्लेख बीजक ग्रंथ में बहुलता से हुआ है। अतएव कबीर क्रान्ति दल का ही नाम बाद में चलकर कबीर पंथ पड़ गया, जो आज तक कबीर पंथ के नाम से विख्यात है।

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि का पालन करवाना इसका मुख्य लक्ष्य है। इसी से जन्म-मरण से छुटकारा मिल सकता है, अन्यथा कोई दूसरा मार्ग नहीं है, जो सत्य की ओर अग्रसर करावे। आज के बहुत से धर्मों में चमक-दमक है, जो केवल रञ्जनात्मक मात्र है। इन धर्मों से मानव को सही दिशा मिलना कठिन है। कबीर वैष्णव एक सीधा-साधा धर्म है, जो सती की भाँति शुद्ध-बुद्ध है। इसी धर्म से मानव का कल्याण हो सकता है। यह शुद्ध नियमावलियों से परिपूर्ण है, जो मानव मात्र के लिए हितकारी है और यह धर्म आज तक मानव कल्याण में लगा हुआ है।

सद्गुरु कबीर साहब के अंतिम बार बाहर से आने पर उनकी अवस्था लगभग एक सौ चौदह वर्ष की हो चली थी। अवस्था अधिक हो जाने पर शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है इसलिए जन कार्य करने की क्षमता भी कम हो जाती है। यही दशा सद्गुरु के शरीर की भी हो रही थी। शरीर शिथिल हो चला था। मन विश्राम लेने को कहता था।

अंत में सद्गुरुदेव ने अपने सभी शिष्यों को एक दिन अपने पास बुलाया और कहा कि अब मैं बहुत समय तक यहाँ नहीं रहूँगा, क्योंकि

जितना मुझे करना था उतना कार्य पूरा हो गया है अब मैं शेष कार्य श्री श्रुतिगोपाल जी और अन्य अपने शिष्यों पर छोड़ता हूँ। तुम सभी गुरु भाई मिलकर सत्य धर्म का प्रचार करना और मेरे बतलाये हुए मार्ग का अनुशरण करना। यही मेरी सेवा होगी। मेरे वाणी-वचनों का समाज में प्रचार करना और उस पर स्वयं चलना। तुमलोगों ने जो संग्रह किया है, जिसका नाम 'बीजक' और कबीर वाणी जिसको मेरे शिष्य मलूकदास जी ने संग्रह किया है जिसका नाम आगे चलकर कबीर ग्रन्थावली हो जायेगा वही 'कबीर ग्रन्थावली' एवं चौरासी अंग की साखी है, जिनमें मैंने मानव-हिताय यथार्थ कहा है, जो लोक-परलोक के लिए वास्तविक साधन हैं, उसी का प्रचार-प्रसार करना। तुम लोग आपस में सावधानी का वर्ताव रखना। मेरे न रहने पर तुम लोग गुरुवाई के लिए झगड़ा न करना इत्यादि बातें कहकर सद्गुरुदेव मौन हो गये।



एकादश आलोक

राजा वीरदेव सिंह की सेवा प्रतिज्ञा

नगर में इस बात का शोर हो गया कि सद्गुरु कबीर अपने शिष्यों को बुलाकर अंतिम शिक्षा दे रहे हैं और अब परमधाम जाने के लिए तैयारी कर रहे हैं। उक्त समाचार का पता श्रीमान् महाराजाधिराज वीरदेव सिंह बघेल को लग गया। वे इसे सुनते ही अपने अनुचरों के साथ दौड़े हुए आये और उन्होंने आश्रम में बड़ी भीड़-भाड़ देखी। राजा को देखकर जो लोग मार्ग अवरुद्ध करके बैठे हुए थे वे वहाँ से अलग हो गये। महाराजा ने गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया। राजा को अपने सामने खड़ा देखकर गुरुदेव ने कुशल क्षेम पूछा। राजा ने कहा-प्रभो ! आपकी अनुकंपा से सब आनंद है। मैंने आपके विषय में कुछ सुना है तभी से मन अपने वश में नहीं है। कृपया आप बतलाइए क्या बात है ? गुरुदेव ने कहा-हाँ जी, अब यह विचार हो रहा है कि मेरा कार्य-काल पूरा हो गया। अब मैं अपने धाम चला जाऊँगा। अब मेरा बचा हुआ कार्य श्री श्रुतिगोपालदास जी एवं अन्य शिष्यगण करेंगे। इस बात पर महाराजाधिराज ने कहा-प्रभो ! मैंने एक प्रतिज्ञा की है कि पाँच वर्ष तक मैं अकेला काशी में रहकर प्रतिदिन अपने हाथों से गुरुदेव की सेवा करूँगा, आश्रम में रहकर एक समय भोजन करूँगा एवं अपने हाथों से आपका भी भोजन बनाऊँगा। यदि आप चले जाएँगें तो मैं अपना प्रण त्याग कर दूँगा। राजा की बात और प्रतिज्ञा को सुनकर गुरुदेव मौन रह गये। साहब को राजा प्राणों से प्रिय था इसलिए उसकी ओर संकेत करते हुए बोले-राजन् ! जो तुम्हारी इच्छा है वही होगा। अब मैं और पाँच वर्ष तक इस काशी पुरी में रहूँगा। बन्दीछोड़ का आश्वासन सुन-कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बार-बार सद्गुरु के चरणों पर गिरकर उनकी स्तुति करने लगा। इसके बाद राजा अहर्निश आश्रम में रहकर गुरुदेव की सेवा करने लगा।

पहले की तरह कथा-कीर्तन होने लगा। गुरुदेव के पाँच वर्ष तक रहने का समाचार सभी प्रदेशों के शिष्यों के यहाँ भेज दिया गया। सभी लोग सद्गुरु के दर्शन के लिए आने लगे और उनका दर्शन करके कृतकृत्य

होने लगे। गुरुदेव का प्रवचन चलता रहा। गुरुदेव ने कहा—देखो भाइयों, यह संसार असार है, इसमें फँसना नहीं, जो उपदेश मैंने तुम लोगों को दिया है, उसको भूलना नहीं। तुम्हारे दादे-परदादे चले गए, लेकिन कोई कुछ लेकर नहीं गया। वे केवल खा, जी, सो और अन्त में शून्य हाथों चले गए। इसलिए दो दिन के जीवन में भूलना नहीं। श्री राम-नाम की रट लगाते रहना। यही जप है, यही तप है। किसी प्राणी को दुःख नहीं देना. अपनी कमाई अपने ही नहीं खाना दूसरों को खिलाकर तब खाना। पक्षपात कभी भूलकर भी नहीं करना। न्याय के साथ समाज से वर्त्ताव रखना। जो बात जैसी हो वह उसी प्रकार से कहना। असत्य भाषण नहीं करना अपने आश्रितों का पालन पुत्र के समान करना। ग्राम, जनपद, प्रदेश, देश के सभी प्राणियों के लिए सदा कार्य करते रहना। प्रजाजनों का ध्यानपूर्वक पालन करना। अपने आचरण को सदा शुद्ध रखना, जिसके बल से लोक के सभी प्राणी अपने वश में रहते हैं। शुद्धाचरण के समान कोई तप नहीं है, जो अपने प्रभाव को बढ़ा सके। चोरी आदि नहीं करना. क्योंकि यह भी हिंसा के अन्तर्गत होने से निषिद्ध है। माता-पिता एवं गुरुजनों का सदा सत्कार करना। उनकी आज्ञा का पालन करना, यही परम तप है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा तप नहीं है, जो मानव को पवित्र कर सके। इसलिए जिसके पास जो शक्ति हो वह उसी के द्वारा समाज की सेवा करें। जिसके पास बल हो तो वह निर्बलों को निर्भय करें। धन हो, तो दीन-दुखियों में बाँट दें। शरीर निरोग हो तो प्रभु का नाम जपो, बुद्धि विशेष हो, तो परोपकार करे।

इस प्रकार जिसके पास जो धन हो वह उसी के द्वारा समाज की सेवा करे तभी मानव का कल्याण होगा, अन्यथा कोई दूसरा मार्ग नहीं है जिसके द्वारा भवसागररूपी महासागर पार किया जा सके। एक बात और ध्यान में रखना कि श्री राम-नाम का जप कभी भूलना नहीं और उस राम को प्रत्येक प्राणियों में व्यापक जानकर उसका भजन-चिन्तन करना चाहिए। बिना प्रभु की कृपा से मनुष्य बुराइयों से बच नहीं सकता। इसलिए उसका भजन-चिन्तन अवश्य करना चाहिए। मानव का यह परम कर्त्तव्य है। इस प्रकार की शिक्षा देते हुए साहब का पाँच वर्ष पूरा हो चला था। अब सद्गुरु के जीवन की एक सौ उन्नीस वर्ष की अवधि बीत चुकी थी। महाराजाधिराज वीरदेव सिंह बघेल की पंचवर्षीय

सव्रत प्रतिज्ञा भी पूरी हो गई। अस्तु, प्रतिज्ञा के पूर्ण होने के अन्तिम दिन एक बहुत बड़े भण्डारे का आयोजन हुआ, जिसमें कई हजार मनुष्यों ने भोजन किया। भण्डारे में साधु-असाधु का विचार नहीं किया गया। मानव मात्र के लिए राजा का भोज-यज्ञ किया गया था, जिसमें कोई असन्तुष्ट नहीं रह गया। सभी को दान-दक्षिणा देकर ससम्मान विदा किया गया, जिससे प्रसन्न होकर सद्गुरुदेव ने राजा को अनेक पुण्य वाला मनुष्य कहा था और यह भी कहा था कि तुम मनुष्यों के राजा हो। उक्त वाक्य कहकर सद्गुरु मौन हो गए। संत मण्डली राजा सहित सद्गुरु को कबीर-चबूतरे पर घेरकर बैठ गई और राम-नाम का जप करने लगी।

नवाब बिजुली खाँ का मगहर से काशी आगमन

इस बीच यह समाचार मिला कि नवाब बिजुली खाँ गोरखपुर (मगहर) से आए हैं और वे सद्गुरु से मिलना चाहते हैं। उक्त समाचार शिष्यों ने जाकर सद्गुरु से कह सुनाया। सद्गुरु ने कहा—हाँ उसे बुलाओ, उसके लिए आसन दो। शिष्यों ने साहब की आज्ञा पाकर नवाब को पर्णकुटी के प्रांगण में पहुँचाया। श्री बिजुली खाँ ने साहब को नमस्कार किया। गुरुदेव ने कहा—कल्याण हो। इसके बाद बिजुली खाँ आसन पर बैठ गए। गुरु महाराज ने उनसे कुशल पूछा। नवाब ने कहा—साहब, आपकी दुआ से सब खैरियत है। साहब ने कहा—कहो, आपने यहाँ आने का कैसे कष्ट किया? नवाब ने कहा—प्रभो! आपके दर्शन के लिए ही मैं आया हूँ। साहब अन्तर्यामी थे इसलिए उनके मनोभाव को जान गए, परन्तु साहब नवाब से प्रत्यक्ष पूछना चाहते थे, जिसको नवाब ने स्वयं कहना आरंभ किया। नवाब ने कहा—प्रभो! मेरे क्षेत्र में आज बारह वर्षों से लगातार अकाल पड़ रहा है, वर्षा नहीं हो रही है इसलिए अन्न-जल का अभाव हो गया है। प्रजा भूखों मर रही है। राज्य-कोष का धन समाप्त हो गया है। गुरुदेव ने पूछा वर्षा क्यों नहीं हो रही है? इसका क्या कारण है? नवाब ने कहा-प्रभो! मेरे राज्य में एक संत रहते थे। जो परमहंस के नाम से विख्यात थे। उनको लोग नेपाली सिद्ध भी कहा करते थे। अस्तु, एक दिन परमहंस बाबा राजसभा में पागल के रूप में आए और इधर की वस्तु उधर फेंकने लगे। उनके इस कार्य को देखकर राजकर्मचारियों ने उन्हें सभा भवन से बाहर

निकाल दिया[1]। इसके फलस्वरूप जाते समय बाबा ने कहा—जाओ! तुमलोगों को अन्न-जल नहीं मिलेगा। तब से लेकर आज तक हम लोग परेशान हैं। उक्त बाबा भी अब हमलोगों से नहीं मिलते। मेरे क्षेत्र के कुछ वृद्धों ने मुझसे कहा—यह आपत्ति तभी दूर होगी जब कि आप कुछ उपाय करें। मैंने कहा—इस आपत्ति से मुक्त होने का क्या उपाय है आपही बतलायें? उक्त वृद्धों ने कहा—जहाँपनाह! काशी के मस्तान शाहंशाह कबीर शाह जब आपके दरबार में आ जाएँगे, तो निश्चय ही आपके क्षेत्र का दुःख दूर हो जाएगा। अतः उक्त वृद्धों के कथनानुसार मैं आपके पास आया हूँ और वहाँ चलकर संकट से मुक्ति दिलाने के लिए मैं आपसे निवेदन करता हूँ।

इसलिए आप मुझे बदकिस्मती के साथ चलकर मेरे क्षेत्र को बदनसीहत से बचाइए। नवाब की इस बात को सुनकर सद्‌गुरु कबीर बड़े जोरों से हँसे लेकिन पुनः मौन हो गए। इसके बाद श्री श्रुतिगोपाल साहब ने पूछा—प्रभो! इस प्रकार से आप हँसते नहीं थे। अतः इस प्रकार के हँसने का क्या कारण है? सद्‌गुरु ने कहा—वत्स! कर्मों के फल करोड़ों वर्षों के बाद भी उपस्थित होते हैं। इसीलिए मैंने इतने जोर से हँसा है। बोलो अब क्या करना चाहिए? इस बात पर श्री श्रुतिगोपाल साहब ने कहा प्रभो! जो आपकी इच्छा हो वही कीजिए। मैं कुछ कहने में असमर्थ हूँ।

श्री श्रुतिगोपाल साहब की बात को सुनकर सद्‌गुरुदेव ने संत मण्डली एवं राजा वीरदेव सिंह को बुलाया। सभी लोग आए और गुरुदेव के चरणों को स्पर्श करके बैठ गए। सबको उपस्थित देखकर गुरुदेव ने कहा कि गोरखपुर के नवाब आए हैं, जो मुझे अपने क्षेत्र में चलने के लिए कहते हैं। आप लोगों का क्या विचार है? मेरी राय तो यह है कि वहाँ चला जाय।

गुरुदेव के गोरखपुर जाने की बात जब लोगों ने सुनी, तो एक स्वर से सभी ने विरोध किया और कहा—नहीं! नहीं!! अब शरीर बहुत

---

१. कां, जो साधुन को द्रोह बिचारे, हरि को नाहिं सुहाई।
हिरणाकुश का उदर बिदारा, रावण धूरि उड़ाई॥
दुर्योधन औ परीक्षित राजा, फिर पाछे पछिताई।
—सन्ध्या पाठ गौरी २।

दिनों की हो गई है इसलिए यहाँ से अब कहीं जाना अच्छा नहीं है। वैसे तो आपका शरीर अभी नवयुवक की भाँति है। आपके शरीर में कोई ह्राश नहीं हुआ है और न तो आप वृद्ध ही हुए हैं। केवल देखने मात्र से आप वृद्ध लगते हैं। आप योगी पुरुष एवं परमेश्वर के अवतार हैं। आपकी महिमा को हम जीव नहीं जान पाएँगे, परन्तु अब आपको काशी से बाहर जाना अच्छा नहीं है।

संत मण्डली में उक्त बात हो रही थी तब तक उक्त समाचार सुनकर काशी की जनता एवं काशी के अनेक प्रसिद्ध विद्वान् आ गए। काशी के मैथिली व्यास भी आए, जो प्रतिदिन दशाश्वमेध घाट पर भागवत आदि की कथा कहते थे और उनका नाम सुदूर क्षेत्रों में फैला हुआ था। वे अपने समय के महान् विद्वानों में गिने जाते थे। उक्त व्यास जी ने गुरुदेव से निवेदन किया कि प्रभो ! अन्त में काशी पुरी को न छोड़िए। संसार के लोग यहाँ पर मुक्ति के लिए आकर प्राणोत्सर्ग करते हैं और आप मुक्ति क्षेत्र को छोड़कर अमुक्ति क्षेत्र में जा रहे हैं जहाँ पर सुगति नहीं प्राप्त होती है।

काशी में मरने से मुक्ति होती है, अन्यत्र मरने पर खर-कूकर का जन्म होता है। अतः इसी प्रकार से काशी के और भी विद्वान् मनीषी कहने लगे कि काशी को अन्त समय में छोड़ना श्रेष्ठ नहीं होगा। काशी की जनता अन्तिम क्षण में अपने पूज्य को बाहर जाने देना नहीं चाहती थी इसीलिए उक्त प्रकार के तर्क दिए जाते थे। परन्तु गुरुदेव ने कहा—संतों, नवाब साहब आए हैं और अपना दुःख-दर्द सुना रहे हैं एवं उनके क्षेत्र के हजारों लोग भूखों मर रहे हैं। मुझमें उनका विश्वास है कि यदि आप चलेंगे तो मेरा कष्ट दूर हो जाएगा, तो मैं उनके विश्वास के अनुसार वहाँ अवश्य जाऊँगा। वहाँ का दुःख दूर हो या न हो, परन्तु मुझे किसी की उपेक्षा नहीं करनी है। देखो, सन्त के अपमान का फल यही है, जो सर्वनाश के कगार पर लोग खड़े हुए हैं। इसलिए संतों एवं साधु-पुरुषों को कभी अपमान नहीं करना चाहिए। दूसरी बात, जो आप लोग यह कहते हैं कि काशी में मरने से मुक्ति होती है तथा अन्यत्र मरने से मुक्ति का अभाव है, यह बिल्कुल भ्रामक एवं अज्ञान जन्य विचार है। मुक्ति किसी विशेष स्थान में मरने से नहीं होती है। मुक्ति तो अज्ञान के नाश से ही संभव है।

यदि आप शास्त्र का प्रमाण देते हैं कि काशी के बाहर मरने वालों को खर-कूकर आदि की योनि प्राप्त होती है, तो यह उनके लिए हो सकता है, जो अज्ञ एवं अभक्त हैं। यह नियम राम भक्तों एवं आत्मज्ञानियों के लिए लागू नहीं होता। यदि यह नियम हरि भक्तों एवं आत्मज्ञानियों के लिए लागू होता है, तो हरि भक्त एवं आत्म-ज्ञान का कोई महत्त्व ही नहीं है। ऐसी दशा में साधना एवं भजन-भाव करना सब निरर्थक है। आजीवन पापकर्म करता जाय और अन्त में काशी आकर मर जाय, तो सहज में मुक्त हो जाएगा। इसलिए आप लोग जप-तप सब छोड़कर दूर हो जाइए, जो इच्छा हो वह कीजिए। कर्म, धर्म के चक्कर में आप लोग न पड़ें, क्योंकि काशी में रहने से आप लोगों को सहज ही में मुक्ति मिल जाएगी। यदि आप लोग कहते हैं कि जप-तप करना भी अनिवार्य है, तो काशी आदि पुण्य क्षेत्रों का कोई महत्त्व नहीं है।

इस प्रकार सद्गुरुदेव की न्याय युक्त बातों को सुनकर मैथिल व्यास एवं अन्य उपस्थित पंडित निरुत्तर हो गए। गुरुदेव ने कहा अब मैं काशी में इस शरीर का त्याग नहीं करूँगा। इसका कारण यह है कि मुझे अन्धविश्वास एवं अज्ञानता को दूर करना है अब मैं सुरसरि के तट पर न मर कर आमी नदी के तट पर मरूँगा। आप लोगों की धारणा गलत है। ज्ञानी एवं हरि भक्त कहीं भी मरें चाहे वह काशी हो या ऊसर हो, चाहे ब्राह्मण का घर हो या चण्डाल का घर हो, वह कहीं भी मरने पर मुक्त हो जाएगा। उक्त ज्ञानी एवं हरि भक्त की मृत्यु नहीं होती। वह देखने मात्र से मृत्यु को प्राप्त लगता है, परन्तु वह अमर हो जाता है। मृत्यु तो अज्ञानियों को होती है, जो हरि भक्ति से विमुख रहते हैं। मैं कहता हूँ कि यदि आप मैथिल के सच्चे व्यास हैं और आत्मज्ञानी पुरुष हैं, तो आपका भी मरना मगहर में ही अच्छा है[1]। गुरुदेव की उक्त

१—लोगा तुमहीं मति के भोरा।
ज्यों पानी पानी मिलि गयऊ। त्यों धुरि मिला कबीरा॥
जो मिथिला को साँचा व्यास। तोहर मरण होय मगहर पास॥
मगहर मरै मरन नहिं पावै। अन्तै मरै तो राम लजावै॥
मगहर मरै सो गदहा होय। भल परतीत राम सो खोय॥

बातों का किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। सभी लोग साहब को घेरकर बैठे थे। गुरुदेव ने कहा—संत मण्डली वहाँ चलने के लिए तैयार हो जाय।

मगहर की यात्रा एवं कसरवल धुनी का प्रसंग

संत मंडली गोरखपुर (मगहर) के लिए चल पड़ी। संत मण्डली के साथ साथ गुरुदेव चलने लगे। यह जानकर कि काशी से गुरुदेव का यह अन्तिम प्रस्थान है और जो जिस दशा में था वह उसी दशा में दौड़ पड़ा। नगर में हाहाकारा मच गया। नगर के लोग कहने लगे कि आज क्या हो गया, जो गुरुदेव हम लोगों को अंतिम क्षण के लिए त्यागते जा रहे हैं। इस प्रकार सभी लोग रोते-चिल्लाते पीछे-पीछे चल रहे थे। ऐसा लगता था कि अब काशीपुरी में कोई नहीं रह जाएगा। काशी बिना नाथ की नगरी हो गई। जो लोग जहाँ से सुनते थे, वे लोग वहीं से दौड़ पड़ते थे। सभी लोग नेत्रों से अश्रुपात कर रहे थे। कुछ लोग रविदास जी एवं श्रुतिगोपाल जी को कोश रहे थे और कह रहे थे कि ये लोग क्यों नहीं गुरुदेव को समझाकर जाने से रोकते। कुछ लोग महाराजा वीरदेव सिंह की निन्दा करते थे कि राजा क्यों गुरुदेव को इस वृद्धावस्था में जाने देता है? क्या कारण है कि गुरुदेव हमलोगों को त्यागकर चले जा रहे हैं? कुछ लोग नवाब बिजुली खाँ का आगमन एवं उसका वृत्तान्त सुनाने लगे। उनमें से अधिकांश लोग बिजुली खाँ को ही कोश रहे थे। इस प्रकार जिसको जो आता था वह वही कहता था। सभी लोगों की दशा उस समय पागल की तरह हो गई थी। किसी को अपने तन-मन की सुधि नहीं रह गई थी। ज्ञात होता था कि काशी और गोरखपुर एक हो जाएगा। मनुष्यों का ताँता इतना लगा था कि उसकी गणना ही नहीं की जा सकती थी।

काशीवासी और आस-पास के लोग गुरुदेव को छोड़कर पीछे आना नहीं चाहते थे। गुरुदेव सभी को अनेक प्रकार से समझा बुझाकर वापस करने की चेष्टा करते रहे, परन्तु कोई कुछ नहीं सुनता था। अन्त में

क्या काशी क्या मगहर ऊसर। जो पै हृदय राम बसे मोरा॥
जो काशी तन तजे कबीरा। रामहिं कौन निहोरा॥
—बीजक, शब्द प्रकरण, पद सं० १०३।

नवाब बिजुली खाँ ने सभी से लौटने के लिए अनुनय-विनय किया और कहा—आप लोग लौट जायँ मैं पुनः गुरुदेव को यहाँ वापस पहुँचा दूँगा। अतः नवाब के बहुत अनुनय विनय करने पर काशी के लोग साहब को चार कोश पहुँचाने के बाद लौटने लगे। लोगों का सारा दिन चार कोश में ही बीत गया। थोड़ी ही दूर आने पर पुनः लोग गुरुदेव की ओर देखने लगते थे। जब तक संत मण्डली उन लोगों की आँखों के परे नहीं हुई तब तक वे लोग उन्हें देखते रहे। अन्त में कुछ लोग काशी लौट आए और अधिकांश लोग गुरुदेव के साथ ही साथ गोरखपुर (मगहर) को चले गए।

इधर जो लोग काशी लौटकर आए वे लोग कई दिनों तक भोजन नहीं किए। शोकाकुल लोग जय कबीर ! हे कबीर ! आप कहाँ गए ? अब आप हम लोगों से कब मिलेंगे ? इत्यादि बातों को लोग महीनों परस्पर कहते-सुनते रहे। उधर गुरुदेव को साथ लिए हुए बिजुली खाँ पाँचवें दिन शाम को मगहर के पास आमी नदी के पूर्वी तट पर पहुँच गए। गुरुदेव ने नवाब से कहा अब आप मुझे यहीं रहने दीजिए; मैं आपके दरबार में नहीं जाऊँगा। मैं इसी आमी नदी के तट पर अभी कुछ समय तक रहूँगा और इसके बाद उस पार चलूँगा नवाब ने कहा—प्रभो ! आमी नदी में जल नहीं है। जब से यहाँ सूखा एवं अकाल पड़ा है तब से आमी नदी सूखी पड़ी हुई है। साहब ने कहा—कोई हर्ज नहीं। यहाँ पर मुझे रहने दो।

गुरुदेव सर्वप्रथम वहाँ गए जहाँ धुनी है, जिसे कसरवाल गाँव के नाम से पुकारा जाता है और जहाँ पर गुरुदेव का एक सुरम्य मन्दिर बना हुआ है। वहीं पर संत मण्डली उतरी और राम ध्वनि में लग गई। उसी स्थान पर सद्गुरु ने नवाब को आदेश दिया कि यहाँ पर सर्वप्रथम संतों का एक भण्डारा करो, जिसमें दूर-दूर के सन्तों को आमंत्रित करो और प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करो। इसके अनन्तर ही संत के शाप से तुम्हारा क्षेत्र मुक्त हो सकेगा, अन्यथा कोई दूसरा मार्ग नहीं है जिससे तुम लोगों को उस शाप से छुटकारा मिले। अतः गुरुदेव की आज्ञा पाते ही नवाब भण्डारा कराने के आयोजन में लग गया। सारी भोज्य वस्तु जुटाई गई। दूर-दूर के संतों को आमंत्रित किया गया, जो निश्चित तिथि पर भण्डारे में आ गए। उस भण्डारे में गोरखपुर के नाथ गादी के महन्त

गोरखनाथ जी भी आए थे। आपलोगों को इसका ध्यान होना चाहिए कि जो गोरखनाथ की गादी पर बैठता है, वह महन्त गोरखनाथ के नाम से पुकारा जाता है।

उस समय के वर्तमान महन्त जी से गुरुदेव का समागम कसरवल ग्राम की धुनी पर हुआ था। वे आदि गोरख ही थे, ऐसा अर्थ नहीं लगाना चाहिए क्योंकि आदि गोरखनाथ का समय सद्‌गुरु कबीर के समय से बहुत पहले था। आदि गोरखनाथ सद्‌गुरु कबीर से लगभग पाँच सौ वर्ष पहले हो चुके हैं। उक्त भण्डारे में उस गादी के महन्त जी आए थे, जो बड़े सिद्ध महापुरुष थे। अस्तु, जितने आमंत्रित संत थे वे सब आए तथा भण्डारा का सारा सामान भी आ गया, परन्तु जल की व्यवस्था नहीं हो पाई। जहाँ हजारों लोग आए थे वहाँ कितना जल लगेगा इसका अनुमान किया जा सकता है। अतएव जब महन्त गोरखनाथ जी आए तो वे गुरूदेव कबीर से बड़े प्रेम से मिले। दोनों में बड़ा सत्संग चला, कुछ योग युक्ति की बातें भी हुई। इस बीच सब भोज्य सामान एकत्रित कराकर बिजुली खाँ आए और हाथ जोड़कर बोले—प्रभो ! सभी संत महात्मा आ गए हैं, जल का प्रबन्ध नहीं हो सका है। सायद ही किसी कुएँ में दो चार घड़े से अधिक जल मिल सके। वे भी यहाँ से बहुत दूर हैं।

गुरुदेव ने कहा-इसकी क्यों चिन्ता करते हो ? तुम्हारे नगर में गोरखपुर के महात्मा नाथ जी स्वयं पधारे हुए हैं, तुम राम-राम कहो। सब पूरा हो जाएगा। नवाब को सान्त्वना देकर सद्‌गुरु कबीर श्री नाथ जी से बोले–नाथ जी ! यह भण्डारा कैसे होगा ? नाथ जी ने कहा जल का प्रबंध हो जाएगा और वहाँ से नाथ जी उठे। उन्होंने अपने पैर से भूमि को दबाया। भूमि फट गई। जल स्रोत बह निकला। इस चमत्कार को देखकर जन समूह आनन्दविभोर हो उठा और नाचने-गाने लगा। वहाँ के उपस्थित लोग श्री नाथ जी का जय घोष करने लगे। जल की प्राप्ति हो जाने पर संतों को स्नान-ध्यान करने की सुविधा हो गई। सभी सन्त स्नान-ध्यान करने लगे। तत्पश्चात् संतों को जलपान बाँटा गया। सभी सन्तों ने आनन्दपूर्वक जलपान किया। इसके बाद सभी सन्त अपने-अपने आसन पर बैठकर राम ध्वनि करने लगे। उक्त भण्डारे में बड़े-बड़े सिद्ध सन्त आए थे, जो कहा नहीं जा

सकता था कि किसमें कितनी शक्ति थी। सभी सन्त एक दूसरे से प्रभावित थे। परस्पर ज्ञान-चर्चा होती रही। उधर भोजन बनने लगा और दोपहर होते-होते बनकर तैयार हो गया, परन्तु पुनः जल का अभाव होने लगा। उक्त जल स्रोत से पर्याप्त जल नहीं मिल रहा था। कुछ देर तक खूब जल निकला, परन्तु कुछ घण्टों के बाद बहुत कम जल निकलने लगा।

जल के कम हो जाने पर सन्तों ने जाकर गुरुदेव से कहा कि वह जल स्रोत कमजोर पड़ गया है। उतने जल से कार्य का संपादन नहीं हो सकता। सन्तों की बात को सुनकर गुरुदेव ने कहा नाथ जी अब क्या होगा? नाथ जी ने कहा अब मुझसे दूसरा जल नहीं निकल सकता! नाथ जी की असमर्थता को देखकर सन्तों के मन में बड़ी चिन्ता होने लगी, क्योंकि भण्डारा बन चुका था। भोजन कैसे होगा? इस कठिनाई को देखकर सभी लोग गुरुदेव कबीर का मुख देखने लगे। संतो को निराश देखकर सद्गुरु कबीर ने कहा—आइए सभी सन्त लोग राम ध्वनि करें क्योंकि राम ही भक्तों के संकट को दूर करते हैं। अस्तु, सभी सन्त एकत्र हो गये और राम ध्वनि करने लगे। जो राम असंभव को सम्भव बनाते हैं वे क्या नहीं कर सकते? सन्त लोग राम ध्वनि में लग गये। उन लोगों को अपने तन-मन की सुधि नहीं रही। वृत्ति रामाकार हो गई थी। सभी लोग राम नाम में तल्लीन थे। उधर विचित्र घटना यह घटित हुई कि जो बारह वर्षों से आमी नदी सूखी पड़ी हुई थी, वह फुफकार करती हुई बढ़ी चली आ रही थी। अपने तट के दोनों किनारे पर लगे हुए झोपड़ों के सहित बहती हुई काली नागिन की भाँति आमी नदी फन को फैलाये हुए आ रही थी। जिस नदी में पक्षियों के पीने तक के लिए जल नहीं था, वह आमी नदी बिना वर्षा के आज सैकड़ों घर-द्वार बहाये हुए उन्मत्त हाथी की भाँति अपनी सूँड़ उठाये हुए झूमती हुई चली आ रही है।

उक्त दृश्य को देखकर उपस्थित लोग आश्चर्य चकित हो गये। आस-पास के लोगों ने जाकर उक्त समाचार को संतमण्डली से कहा, परन्तु संतमण्डली श्री राम-नाम में निमग्न थी। उन संतों को यह पता नहीं था कि कहाँ क्या हो रहा है। अन्ततोगत्वा जब नदी का पानी संत मण्डली के पास आ गया, तो सभी लोग अपने-अपने आसन को

बाँधकर भागने लगे। जोरों की चिल्लाहट होने लगी। अरे हम वहे जा रहे हैं, अरे मेरा प्राण गया, मुझे बचाओ, मेरा आसन वह गया, मुझे ठंढक लग रही है, इत्यादि प्रकार से लोग शोर मचाने लगे थे। कार्तिक मास का अंत हो रहा था और शीत कालीन समय आरंभ हो गया था। अगहन की ठंढक लग रही थी। उधर जल विप्लव हो रहा था। संत मण्डली के बीच में पानी चला गया। सभी भींगने लगे। इसके बाद संतों का ध्यान टूटा, तो इधर-उधर देखते क्या हैं कि जल ही जल है। इसे देखकर संतों के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी लोग आनन्द से खिल उठे। जो लोग वहे जा रहे थे वे सब पकड़ लिए गये। कोलाहल शान्त हुआ। सभी को वस्त्र दिए गये। सभी लोग शांत चित्त हुए, तव गुरुदेव ने कहा अब संतों को भोजन कराओ, यह सब श्री राम जी की कृपा है न कि हमारी।

गुरुदेव का आदेश पाते ही सभी संत अपने-अपने कमण्डल में जल भर कर पंगत में पंक्तिबद्ध बैठ गये। भोजन होने लगा। सभी लोगों ने सुखपूर्वक भोजन किया। चार दिन तक भोज भण्डारा चलता रहा। प्रायः उस क्षेत्र के सभी भूखे अन्न विहीन लोग भोजन से तृप्त हो गये। सभी लोग जय कवीर! जय कवीर!! विजुली खाँ की जय हो आदि के नारे लगाते रहे। अंत में चौथे दिन दक्षिणा के साथ संतों की विदाई हुई।

सद्गुरु के उपदेशों से सभी लोगों में नव जीवन का संचार हो आया। गुरुदेव ने कहा आप लोग सच्चाई के साथ संसार में निवास कीजिये अंधविश्वास के कारण किसी की निन्दा न करें। सदैव सत्य का ध्यान कीजिए। सत्य ही धर्म है। सत्य ही ईश्वर है। सत्य ही मनुष्य को तार सकता है। परोपकार करते रहो, क्योंकि परोपकार ही जीवन है, परोपकार ही श्रेष्ठता है। सेवा से बढ़ कर कोई मंत्र नहीं है, जो किसी को बस में कर सके। इसलिए सेवा धर्म संसार को अपने वश में कर सकता है, कथनी निरर्थक है। जब तक कहने के अनुसार कार्य नहीं होता है तब तक लोकप्रियता नहीं मिलती है। कर्म करने वाले मनुष्य में विकार भाव नहीं उत्पन्न होते। इसी कारण कर्म करना सर्वोत्तम है। अकर्मण्य व्यक्ति ही दूसरों को निन्दा करता है। वह सदा अपवादों के चक्कर में पड़ा रहता है। क्षमा के समान कोई दूसरा अस्त्र नहीं है,

जो अपनी रक्षा कर सके। इसलिए क्षमा करना उत्तम है। क्रोध के समान कोई दूसरा शत्रु भी नहीं है, जो सर्वनाश कर दे। संतोष के समान कोई धन भी नहीं है, जो सुखो रख सके। तृष्णा के समान कोई दूसरी व्याधि भी नहीं हैं, जो सदा दुःख दे। लोभ के समान नीचे गिरानेवाली कोई शक्ति दूसरी नहीं है, जो रसातल को ले जावे। लोभ से ही मनुष्य का पतन होता है। मोह के समान दूसरा कोई बंधन नहीं है, जो मनुष्य को बाँध सके। इसी प्रकार राग-द्वेष के समान कोई झगड़ा भी नहीं है, जो दु ख का कारण बन सके।

इसलिए विद्वान् पुरुष को सतत् सावधानी के साथ उपर्युक्त दोषों से बचना चाहिए और निष्काम भाव से श्री राम नाम का जप करते रहना चाहिए। अभयरूपी अहिंसा का पालन जीवन पर्यन्त करना चाहिए। बस यही सनातन धर्म है। इसी के द्वारा जीवन का कल्याण हो सकता है, अन्यथा कोई दूसरा मार्ग नहीं है, जो प्राणियों के लिए सुख देने वाला हो। इतना कहकर सद्गुरुदेव मौन हो गए। उधर आगन्तुक संत महात्मा विदा लेकर अपने-अपने आश्रम को चले गए। इधर जिस दिन भण्डारा समाप्त हुआ उसी दिन जोरों की वर्षा हुई। वर्षा हो जाने से सभी लोग कहने लगे कि अब ऋषि का शाप दूर हो गया। यह सद्गुरु कबीर साहब की हम लोगों पर महान् दया का परिणाम है।

अकालग्रस्त लोगों ने बारह वर्षों के बाद वर्षा का दर्शन किये। सभी लोग आनन्द से नाचने गाने लगे। अनेक प्रकार से पूजा-पाठ करने लगे, तत्पश्चात् अपने-अपने व्यवसाय में लग गए। खेती-बारी का काम शुरू हो गया। इस प्रकार राज्य की सारा जनता ने सुख चैन की साँस ली। अनिश्चितता का विनाश हुआ। सभी लोग खुशहाल हो गए। यह चर्चा सारे अकाल पीड़ित क्षेत्र में फैल गई कि सद्गुरु कबीर साहब के आने से लोग अकाल मुक्त हो गए। प्रतिदिन आस-पास के जनपदों से लोग सद्गुरु कबीर साहब के दर्शन के लिए आने लगे और उनका दर्शन करके अपने जीवन को कृतकृत्य करने लगे। इधर बिजुली खाँ नवाब तालुकेदार भी प्रतिक्षण गुरुदेव के चरणों का दास बना रहा। कथा-कीर्त्तन होने लगा। आगन्तुक लोग जीवन को सार्थक बनाने हेतु प्रतिदिन आते रहे।

मगहर ग्राम गमन-प्रसंग

गुरुदेव ने नवाब से कहा अब यहाँ से उस पार चलो, जो तट मगहर ग्राम के अंतर्गत पड़ता है, क्योंकि यहाँ जो कार्य करना था वह पूरा हो गया। अब वहाँ जो कार्य करना है उसे भी करना चाहिए। अतः साहब का आदेश पाते ही बिजुली खाँ ने उस पार नदी के तट पर अनेक पर्णशालाएँ बनवा दीं। पर्णशालाओं के बन जाने पर संत मण्डली मगहर ग्राम के पूर्वी संभाग नदी के तट पर चली गई। वहाँ से अन्य क्षेत्रों में जाकर संत मण्डली उपदेश-वार्त्ता और जन जागरण करती रही। इधर जहाँ संतों का भण्डारा हुआ था वहाँ भी एक पर्णशाला बनवा दी गयी। वहाँ एक संत रहते थे। उस स्थान का नाम धूनी था, जिस नाम से यह स्थान आज प्रसिद्ध है। उसका संबंध काशी कबीरचौरा से है और वहीं से पुजारी रखा जाता है।

यह ऐतिहासिक स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इसी धूनी पर गोरख तलाई भी रही, जो आज नहीं है। जिसके मध्य से नेफा, लद्दाख मार्ग चला गया है। उसे खन-खोदकर नष्ट कर दिया गया है। आप लोगों को यह ज्ञात हो कि यह गोरख तलाई वही है जिस स्थान पर गोरखपुर से आए हुए गोरख गादी के नाथ जी ने पैर दबाकर जल के स्रोत को निकाला था जो तालाब जैसा बन गया था। इसलिए लोग उसको गोरख तलाई भी कहते रहे हैं, जिसका अस्तित्व आज नहीं है। यही नहीं धूनी आश्रम की दो तिहाई वाटिका भी नष्ट हो गई, जो धूनी आश्रम के अंतर्गत थी।

संत मंडली आस-पास के जनपदों के लोगों को प्रबुद्ध बनाती रही। सभी लोग सत्य धर्म का उपदेश सुनते रहे। संतों ने उक्त जनों को सत्य मार्ग पर अग्रसर कर दिया। सभी लोग राम नाम के पुजारी हो गए। संसार रूपी सागर पार करने के लिए सद्गुरु कबीर ने श्री राम भक्ति रूपी सेतु बाँध दिया, जो युग-युगान्तर तक लोगों के तरने के लिए चिरस्थायी हो गया। उस पर आरूढ़ होकर सहज ही में लोग भवसागर पार करते रहेंगे। इस प्रकार अपने कार्यों को पूरा करने के बाद सद्गुरु कबीर इधर निरन्तर मौन रहने लगे। संत मण्डली सदैव सद्गुरु के पास ही बैठी रहती थी तथा राम-ध्वनि करती रहती थी।

काशी नरेश वीरदेव सिंह जिनको मगहर यात्रा काल में गुरुदेव ने अपने साथ आने से लौटा दिया था। उक्त महाराज गुरुदेव कबीर के अभाव में अहर्निश व्याकुल रहा करते थे। महाराजा के मन में विश्वास हो गया कि अब गुरुदेव काशी वापस नहीं आयेंगे। अतएव उनके मन में यह विचार आया कि गुरुदेव का दर्शन कर आवें। महाराजाधिराज ने सेनापति को आदेश दिया कि चतुरंगिणी सेना को गोरखपुर चलने के लिए तैयार करो। महाराजा का आदेश पाते ही सेनापति ने सैन्य दल को सुसज्जित कर दिया। काशी से सेना सहित महाराजा वीरदेव सिंह मगहर (गोरखपुर) के लिए चल दिए। इस प्रकार अथक परिश्रम के बाद महाराजाधिराज चौथे दिन की शाम को वहाँ पहुँचकर संत मण्डली के साथ सद्‌गुरु का दर्शन किया। जैसे चकोर चन्द्रमा को पाकर शान्त हो जाता है वैसे ही महाराजा वीरदेव सिंह भी गुरुदेव के चरणों का दर्शन पाकर शान्त हो गए। इसके बाद वे गुरु की आज्ञा पाकर बैठ गए। सद्‌गुरु कबीर ने प्रिय शिष्य महाराज से कुशल समाचार पूछा। राजा ने कहा—प्रभो! आपके दर्शन के बाद कुशल है। आपके अभाव में कहाँ कुशल हो सकता है। राजा वीरदेव सिंह का आगमन सुनकर आबिदअली बिजुली खाँ बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने राजा के रहने आदि के लिए व्यवस्था करवा दी। बहुत सी छोलदारी आदि की व्यवस्था हो गई। सैन्य दल बनाने खाने लग गया। राजा भी अपनी रावटी में सुखपूर्वक रहने लगे।

राजा को सद्‌गुरु के दर्शन के लिए आया जानकर आबिदअली खाँ ने महाराजा की बड़ी प्रशंसा की और कहा—राजन्! आप धन्य हैं, क्योंकि गुरुदेव के श्री चरणों में आपका अटूट प्रेम है। आपका जीवन सफल है। अस्तु, परस्पर मिलन-जुलन से बड़ा आनंद हुआ और वे दोनों एक ही साथ गुरुदेव के यहाँ प्रतिदिन दर्शनार्थ जाने लगे। गुरुदेव का प्रवचन चल रहा था। सभी उपस्थित लोग साहब के प्रवचन को सुन रहे थे। सन्त लोग शान्तचित्त भाव से बैठे थे। कुछ ही देर के बाद साहब का प्रवचन समाप्त हुआ। गुरुदेव ने कहा—आपलोग मेरे कथनानुसार कार्य करना। जो मैं कहता हूँ उस पर ध्यान देना। आप लोग मेरे बतलाए हुए मार्ग को कायम रखना। श्री श्रुतिगोपालदास जी, श्री पद्म-नाभदास जी तथा श्री कमालदास जी आदि मेरे प्रधान शिष्य हैं। इस-लिये आपलोगों पर विशेष जिम्मेदारी है। आप लोग मेरे द्वारा चलाये

गये अभियान में शिथिलता नहीं आने देना। इसी प्रकार से साहव ने अपने अन्य शिष्यों एवं गुरु भाइयों से कहा कि तुम सब मिलकर मेरे को जीवित रखना।

साहव ने विशेष रूप से श्री श्रुतिगोपाल से कहा कि तुम मेरे शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ हो। तुम काशी स्थित कवीरचौरा प्रधान सेवाश्रम का संचालन अन्य अपने गुरुभाइयों के सहयोग से करते रहना क्योंकि वही धर्म प्रचार का केन्द्र है। अतः उस आश्रम में सेवा प्रचार कुटी को जीवित रखना। उसको उसी रूप में रखना, जो रूप मेरे जीवन में रहा है। तुम यह समझ लो कि वही मेरा हित है, वही मेरा बंधु है, जो कुमार्गियों को सुमार्ग पर लावेगा[1]। इसलिये यह कर्त्तव्य तुम्हारा है कि संत मण्डली का कार्य अबाध गति से चलता रहे। इसी प्रकार से साहव ने महाराजा वीरदेव सिंह से एवं आविद अली खाँ से भी कहा—देखो भाई, अब मेरा कार्यकाल पूरा हो गया है। अब मैं अपने अनन्त स्वरूप में विलीन हो जाऊँगा और विदेही होकर तुम लोगों की गतिविधियों पर ध्यान रखूँगा। अतः तुम लोग यह मत जानना कि मैं कहीं दूर चला गया हूँ[2] मैं सदा तुम लोगों एवं भक्तों के साथ रहूँगा। जो मेरे अनन्य भक्त एवं प्रेमी हैं, मैं सदा उनकी रखवाली करता हूँ और मैं उनके साथ सदा रहता हूँ।

अज्ञानी जीवों की भाँति मेरे अस्तित्व का अभाव नहीं होता है। मैं संज्ञा शून्य नहीं होता। मैं एक रस सदैव रहता हूँ। मैं अविनाशी, अजन्मा, अखेद हूँ। तुम लोग मुझे जगत् का कारण जानो। मैं ही सृष्टि का आदि और अंत हूँ। मेरा ही नाम राम[3] है जो परम नाम है। जब-जब आवश्यकता होती है तब-तब मैं अपनी माया से आवृत्त होकर संसार में आता हूँ और भूले हुए जीवों को सत्य मार्ग दिखलाता हूँ।

---

१. सोई हित बन्धु मोही भावै। जात कुमारग मारग लावै॥

—बीजक रमैनी।

२. लोग बोले दूर गये कबीर। ये मति कोई कोई जानेगा धीर॥

—बीजक शब्द।

३. राम कबीर एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा तो सोइ कहे, सद्गुरु मिला न ताहि॥

—साखी ग्रन्थ।

जब जैसी आवश्यकता पड़ती है तब तैसा ही रूप मैं धारण करता हूँ। मैं सर्वसमर्थ हूँ। मेरे ऊपर किसी की हुकूमत नहीं चलती। मैं जो सत्य समझता हूँ वही करता हूँ। मैं सभी स्थानों में व्याप्त हूँ। इसलिए तुम लोग मुझे दूर नहीं समझना, सदा अपने पास ही जानना। देखो, मेरे दो रूप हैं। एक वह है, जो माया और अविद्या से परे है, जिसको लोग निर्गुण कहते हैं। मेरा दूसरा रूप वह है, जो समय-समय पर आकर इस जगत् का कार्य करता है तथा जो अविद्या के अधीन है, जिसको लोक में जीव नाम से पुकारा जाता है, उसी के उद्धार के लिए मैं अनेक रूपों में होकर, अनेक देशों में आता हूँ और पुनः लोगों को मार्ग प्रदर्शित कर चला जाता हूँ। जब-जब लोग मेरे उपदेश को भूल जाते हैं तब-तब आकर मैं उसकी स्मृति लोगों को दिलाता हूँ।

सद्गुरु का परमधाम महाप्रयाण-प्रसंग

इस प्रकार से अपने परम स्वरूप की व्याख्या करने के बाद साहब ने कहा—वीरदेव सिंह अब तुम जल्द से जल्द बत्तीस भार फूल मँगाओ[1]। इस कार्य में तुम देर न करो। गुरुदेव की आज्ञा पाते ही महाराजा वीरदेव सिंह ने मालियों के द्वारा फूल मँगाया, तत्पश्चात् सद्गुरुदेव ने कहा—राजन् इस फूल के ढेर को मेरी पर्णकुटी में मेरे आसन पर बिछा दो और मैं उसी पर विश्राम करूँगा। तुम लोग बाहर से उस पर्णकुटी का द्वार बंद कर देना। गुरुदेव की इस बात को सुनकर संत-मण्डली रोने लगी एवं सभी लोग व्याकुल हो गए। यहाँ तक कि महाराजा वीरदेव सिंह बेहोश होकर गिर पड़े। उनके मुख से शब्द नहीं निकल रहा था। राजा को बेहोश जानकर गुरुदेव ने अंतिम क्षण में राजा का स्पर्श किया। सद्गुरुदेव के स्पर्श करते ही राजा सचेत हो गया। साहब ने कहा—राजन्! जीवन भर तुम मेरे साथ रहे, परन्तु

---

१. बोझ बत्तिस का फूल मँगाया। तले उपरैं सैंन कराया ॥
सब सतन मिलिया नाचैं गावै। ताल पखावज संख बजावै ॥
अमर भयो छुटियो न शरीरू। भयो सदेही दास कबीरू ॥
भगतन माँझ अचंभौ भैया। फूल देखि अपने घर गैया ॥
एक सुने सुनि नाज न खाँही। एक लोक बहुतो पछिताहीं ॥
कबीर बिना कासी अँधियारा। ज्यों चंदा बिन दीशै तारा ॥
—अनन्त परचई (अमुद्रित ग्रंथ, काशी नागरीप्रचारिणी सभा)

अभी भी तुम मोह से निवृत्त नहीं हुए। तुम्हें मोह नहीं करना चाहिए, क्योंकि मोहमयी संसार दुःखदायी है। अतः राजा स्वस्थ होकर पुष्पों के ढेर को पर्णकुटिया में ले जाकर साहब के आसन पर बिछा दिया।

साहब की अन्तिम दशा जानकर श्री श्रुतिगोपाल साहब एवं श्री पद्मनाभ साहब आदि प्रधान शिष्य वहाँ से रोते हुए साहब की ओट में चले गए और कुछ शिष्य लोग सद्गुरु के चरणों को पकड़ कर रोने लगे। इस प्रकार अपार भीड़ लग गई। सभी लोग साहब की इस दशा को देखकर अचेत हो गए। सभी को व्याकुल देखकर सद्गुरु कबीर स्वामी ने सभी को समझाया और संतोष दिलाया। अन्त मे रविदास जी से उन्होंने कहा—तुम इन सभी को सँभालो। मुझे देरी हो रही है। अन्त में श्री कमाल साहब एवं श्री श्रुतिगोपाल साहब को सद्गुरु ने बुलाया और उन्हें अपनी छाती से लगाकर कहा-तुम लोग चिन्ता मत करना। मैं सदा तुम लोगों के साथ रहूँगा और तुम लोगों की जो इच्छा होगी वह पूरी हो जाएगी। शान्त चित्त रहो, मेरी बातों पर ध्यान रखना। अब मैं पर्णकुटी में जा रहा हूँ। तुम लोग कुटी का द्वार तब तक नहीं खोलना जब तक राम ध्वनि होती रहे। जब उक्त शब्द बन्द हो जाय तब द्वार पट को खोल देना।

उक्त बातों को कहकर सद्गुरुदेव ने उस पर्णकुटी में प्रवेश किया[1] बाहर से कुटी का द्वार बन्द कर दिया गया। पहले यह शब्द हुआ कि असत्य का त्याग करो। जगत् असत्य है। सत्य को ग्रहण करो। आत्मा राम सत्य है, उनका भजन करो। इसके बाद केवल राम-राम सत्य है। पुनः सत्य-सत्य होकर शब्द बन्द हो गया। तब वहाँ उपस्थित लोगों को यह विश्वास हो गया कि अब गुरुदेव अपने धाम को चले गए। शब्द बंद होते ही आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। अप्सराओं एवं गन्धर्वों के गीत सुनाई देने लगे तथा अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। ऐसा मालूम पड़ता था कि सम्पूर्ण आकाश विमानों से भर गया हो। रंग बिरंग के विमान दिखलाई दे रहे थे। लगभग एक घण्टा तक गगन पथ अवरुद्ध रहा। तब तक एक हंसाकार विमान लोगों को उड़ते हुए

---

१. संवत पन्द्रह से पछहतर, किया मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन॥
—कबीर पंथ के दोहे

दिखाई दिया, जिस पर सद्गुरुदेव अनेक सूर्य के प्रकाश से युक्त होकर बैठे दिखाई दिए। उक्त विमान लोगों के देखते ही देखते अंतरिक्ष में प्रवेश कर गया, जो सूर्य लोक आदि को लाँघते हुए अपने दिव्य-लोक, सत्य-लोक में चला गया।[1]

इधर पृथ्वी के सारे प्राणी शोकाकुल हो गये। वायु का चलना बन्द हो गया। पेड़-पौधे अपनी पत्तियों को नीचे करके खड़े हो गए। पशु-पक्षीगण अश्रु की धारा बहाने लगे। पृथ्वी पर पीलापन छा गया। सभी को सारा संसार शून्य-सा दिखाई देने लगा। आकाश लाल हो गया। दिशायें घूमने लगीं, पंच महाभूत बिलखने लगे, धरती काँपने लगी। संत-मंडली अथाह शोक-समुद्र में निमग्न हो गई। कुछ देर के बाद सन्त रविदास जी आँसू पोछते हुए बोले—भाई श्रुतिगोपाल उठो! अपने को सँभालो। राजा वीरदेव सिह आप भी होस में आओ। अब शोक करने से काम नहीं चलेगा। आप दोनों जाकर द्वार पट को खोलो। शव का अन्तिम संस्कार करना चाहिए। सद्गुरु के सत्य लोक गमन की बात को सुनकर आस-पास के लोग रोते-चिल्लाते हुए हजारों की संख्या में एकत्र हो गए। सभी लोग अपने-अपने स्थानों पर खड़े थे। कोई किसी से कुछ भी नहीं कह पा रहा था।

हिन्दू-मुसलमानों का शव प्राप्ति के लिए लड़ाई

वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध श्री रविदास जी की आज्ञा पाने पर श्री श्रुति-गोपाल साहब एवं महाराजा वीरदेव सिंह पर्णकुटी के द्वार को खोलने के लिए ज्यों ही चले त्यों ही नवाव विजुली खाँ ने कहा—राजन्! सर्व-प्रथम साहब के शव संस्कार पर विचार कर लीजिए। उसको जलाया जाय या जमीन में गाड़ दिया जाय। मेरा तो विचार यह है कि उस शव को मैं अपनी रीति से जमीन में गाड़ दूँ, क्योंकि कबीर साहब मुसलमान थे। अन्त में मेरे क्षेत्र में आकर उन्होंने अपनी शरीर का त्याग किया है। इसलिए मेरा अधिकार है कि मैं उनका संस्कार इस्लामी विधि से करूँ। इस प्रकार आविद अली खाँ की बात को सुनकर वीरदेव सिंह ने कहा—नवाब साहब आपका विचार ठीक नहीं है, क्योंकि सद्गुरु को

---

१. निर्गुन की गति देखी भाई। देही सहित कबीर सिधाई॥
—रविदास जी की वाणी से।

मानने वाले अधिक हिन्दू हैं। दूसरी बात यह है कि स्वामी रामानन्द आर्य संत थे और सद्गुरु कबीर उन्हीं के शिष्य थे, तो वे भी आर्य ही हुए। तीसरी बात यह है कि सद्गुरु कबीर जन्मजात मुसलमान नहीं थे। केवल मुसलमान दम्पति द्वारा पालित थे और मेरे गुरु थे। इस-लिए मैं उनका दाह संस्कार करूँगा। इस प्रकार नवाब और राजा के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर होता रहा। अन्त में दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने हो गईं एवं दोनों पक्ष के सेनाओं को आदेश हो गया कि जो विजयी होगा वही शव पाने का भागी होगा। आविद अली खाँ की सेना की संख्या कम थी। इधर महाराजा वीरदेव सिंह की सेना की संख्या अधिक थी, इसलिए नवाब आविद अली खाँ ने विचार किया कि दिल्लीपति सिकन्दर के यहाँ संदेशवाहक भेजा जाय, परन्तु आविद अली खाँ का एक पुत्र औसत अली था, जो बहुत बुद्धिमान था। उसने आविद अली से कहा—पिता जी जब तक दूत दिल्ली जाएगा तब तक वीरदेव सिंह आपसे लड़ाई करके शव को छीन लेगा। इसलिए शव के लिए लड़कर मर जाना ठीक है। औसत अली की उक्त बातें आविद अली के मन में जम गईं। उसने कहा कि ठीक है, लड़कर मर जाओ। यदि हमारी जीत होगी, तो शव प्राप्त करूँगा। यदि हार हुई, तो बहिस्त में जाऊँगा।

दोनों ओर से तलवारें खिंच गईं। भुशुण्डियाँ एवं शतघ्नियाँ सुस-ज्जित कर दी गईं। दोनों दल की सेनाएँ युद्ध के लिए आमने-सामने खड़ी हो गईं। अस्त्र-शस्त्र अब दोनों तरफ छूटने ही वाले थे। इसी बीच में आकाशवाणी हुई कि पहले पट खोलकर देखो की शव है कि नहीं[1]? व्यर्थ

---

१. उहाँ बलबीरा, तजे शरीरा, काटन पीरा भव भारी।
वीरसिंह देवराजा, सुनि बल गाजा, सब दल, साजा सम्भारी॥
वह मर्द पठाना, सुनि बलवाना, लाय कमाना, कर डारी।
सन्मुख नियराना, छुटे न बाना, भय घमसाना, रण भारी॥
तब गुरु ज्ञानी, अन्तरयामी, अधरे बानी, उच्चारी।
तुम खोलो पर्दा, है नहिं मुर्दा, युध मिथ्या तुम, कर डारी॥
सुनि के वह बानी, अचरज मानी, देखि निसानी शिर मारी।
रोवे परबीना, मति के हीना, हमहुँ न चीन्हा कर्तारी॥
—रत्नाबाई कृत स्तोत्र गु० म०

की लड़ाई तुम लोग न करो। उक्त आकाशवाणी की बात को सुनकर सभी को आश्चर्य हुआ कि हमलोग बिना सोचे-समझे कार्य करना चाहते थे। जो सदैव हमारे बीच में रहे, उस प्रभु को हम लोग समझ नहीं पाये। सभी लोग सिर पर हाथ रखकर पश्चाताप करने लगे। कुछ देर के बाद श्री श्रुतिगोपाल साहब ने वयोवृद्ध रविदास जी, राजा वीरदेव सिंह तथा बिजुली खाँ पठान को लेकर पर्णकुटी का द्वार पट खोला, तो शव के स्थान पर केवल पुष्प का आसन और एक चादर उस पर मिली। उस स्थान पर शव का कहीं ठीक पता नहीं लगा। शव को न देखकर उपस्थित-समाज तथा संत मंडली आश्चर्य में पड़ गई। वहाँ उपस्थित लोगों ने कहा कि प्रभु मेरे नहीं हैं। वे अन्तर्ध्यान हो गये हैं। इनमें से कुछ लोग शव को न देखकर रोने विलखने लगे और संत जन सद्गुरु के गुणानुवाद का स्मरण करके नाचने-गाने लगे।

अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, जिसमें मृदंग, भेरी, शंख, वीणा और मजीरा आदि बाजे थे। उसके द्वारा मातमी एवं शोक ध्वनि निकल रही थी। राजा वीरदेव सिंह एवं बिजुली खाँ अन्न-द्रव्य दीन-दुखियों को लुटा रहे थे। संत मण्डली जोरों से रामनाम की ध्वनि लगा रही थी। कुछ लोग शव को न देखकर अनेक प्रकार की चर्चा करते थे। कोई कहता था कि सद्गुरु सदेह अपने धाम को चले गये। कोई कहता था कि गुरुदेव अन्तर्ध्यान होकर कहीं अन्यत्र चले गये, क्यों कई बार संत मंडली में से गायब हो जाते थे। उक्त बातों को कहकर लोग आश्चर्य में पड़ गये। किसी को कुछ फुरणा नहीं हो रही थी।

अधिकांश लोगों ने जब देखा कि सद्गुरु नहीं हैं, उनके स्थान पर केवल फूल है, तो वे लोग अपने-अपने घर को चले गये। उनके द्वारा जो लोग मार्ग में सुनते थे कि सद्गुरु कबीर परम धाम को सदेह चले गये, तो वे लोग शोकाकुल हो जाते थे और दो-चार दिन वे लोग अन्न-जल नहीं ग्रहण किये। श्री अनन्तदास जी 'कबीर परचई' नामक अपनी रचना में इसकी चर्चा करते हुए कहते हैं कि गुरुदेव कबीर के बिना काशी एवं सारा संसार अन्धकार में पड़ गया। सूर्यास्त हो जाने पर जैसे कमल की पंखुरियों की दशा हो जाती हैं, उसी प्रकार से सद्गुरु कबीर के अस्त होने पर जगती-तल का हाल हो गया। अनन्तदास जी आगे कहते हैं कि जैसे चन्द्रमा के बिना ताराओं की शोभा नहीं होती उसी प्रकार

सद्‌गुरु कबीर के बिना काशी एवं जगत् शून्य के समान हो गया। जैसे बिना दुल्हा के बारात फीकी लगती है उसी प्रकार से कबीर साहब के बिना काशी एवं दुनियाँ फीकी हो गई इत्यादि बातें श्री अनन्तदास जी महाराज ने अपनी 'कबीर परचई' ग्रंथ में लिखी हैं, जो अमुद्रित रूप में काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है।

आप लोगों को विदित हो कि जब शव नहीं मिला, तो महाराजा वीरदेव सिंह बघेल, आविद अली नवाब एवं संत मण्डली विचार करने लगी कि अब क्या करना चाहिए ? शव तो है नहीं, केवल पुष्प और चादर है, अब क्या होगा ? अन्त में वयोवृद्ध श्री रविदास जी एवं श्री श्रुतिगोपाल साहब पर लोगों ने इसके निर्णय का भार सौंप दिया। दोनों महापुरुषों ने एकान्त में विचार किया कि चादर आविद अली को दे देना चाहिए तथा फूल को राजा वीरदेव सिंह बघेल को। अस्तु, श्री श्रुतिगोपाल साहब ने ऐसा ही किया, परिणामस्वरूप उक्त बँटवारे से दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि जिस चादर को गुरुदेव ओढ़ते थे वह चादर श्री आविद अली को प्राप्त हुई और जिस फूल पर सद्‌गुरु लेटे हुए थे उस फूल को हिन्दू राजा वीरदेव सिंह पाये।

दूसरी बात यह है कि सद्‌गुरु फूल पर ही प्रकट हुए थे, ऐसा सुना जाता है। इसलिए इस बँटवारे में किसी को घाटा नहीं हुआ। चादर को श्री नवाब आविद अली ने कब्र दे दिया जिस पर एक सुन्दर रौजा बना हुआ है, कबीर रौंजे के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरी ओर काशी नरेश महाराजा वीरदेव सिंह बघेल ने अपने प्राप्त फूल का दाह संस्कार करके उसी स्थान पर समाधि दे दी। मुस्लिम वाले समाधि के पूर्वी संभाग में सटे हुए एक ही प्रांगण में बँटवारा करके महाराजा ने समाधि दी है, जिस पर एक भव्य सुरम्य मंदिर बना हुआ है और वह कबीर हिन्दू मन्दिर के नाम से विख्यात है। अतः अपनी धर्म प्रणाली के अनुसार शव का अन्तिम संस्कार करके दोनों ओर से दोनों स्थानों पर एक मन्दिर और एक रोजा बनवा दिया गया है। वहाँ पर अपनी ओर से कब्र पर एक मुस्लिम पुजारी को नवाब बिजुली खाँ एवं दूसरी ओर अपने मन्दिर पर महाराजा वीरदेव सिंह बघेल ने एक पुजारी सन्त को रख दिया। पुजारीयों को दोनों ओर से जागीरें प्राप्त थीं।

अतः आज तक अपनी-अपनी धर्मरीति के अनुसार दोनों वर्गों में पूजा-पाठ होता चला आ रहा है। बाद में बाँसी नरेश एवं लखनऊ के नवाब की तरफ से पाँच-पाँच सौ बीघे भूमि एवं एक-एक गाँव चिराग बत्ती के लिए प्राप्त हुए थे। वर्त्तमान समय में अब वे गाँव नहीं हैं। दोनों ओर की जमीन अभी भी मौजूद है। बिजुली खाँ का मुजावर, जो रहा वह तो मर गया। इस समय मुसलिम वाले कब्र पर एक डफाली मुसलमान मुजावर का कार्य करता है, जिसने वहाँ की अधिकांश जमीनों को बेच-कर खा गया और अब ठीक से पूजा भी नहीं होती है। अब उस पर कोई निश्चित पुजारी भी नहीं रहता है। जहाँ-तहाँ लोहबान जला देता है। मंदिर की भी बड़ी दुर्दशा है। यद्यपि वर्त्तमान में उत्तर-प्रदेश सरकार की ओर से माली चौकीदार रखे गए हैं, जो फूल-पत्ती का कार्य करते हैं। पानी आदि की व्यवस्था अच्छी है, परन्तु मुसलिम मकबरा की आरती आदि ठीक से नहीं चल रही है। इधर हिन्दू मंदिर में दिन-प्रतिदिन उन्नति हो रही है। जो वहाँ जाता है उसको एक समय भोजन आदि की व्यवस्था कर दी गई है।

अपनी-अपनी कार्यविधि करने के बाद महाराजा वीरदेव सिंह बघेल ने वहीं पर रहकर सतरहवें दिन एक भण्डारा साहब के निर्वाण उपलक्ष्य में किया। उस भण्डारे में दीन-दुःखियों को भोजन कराया गया। उसी प्रकार आबिद अली खाँ भी निर्वाण के तीसरे दिन एवं चालीसवें दिन एक फकीर भोज किया। उसमें भी बहुत से गरीबों ने खाना खाया। इसके बाद उन गरीबों को वस्त्र आदि भी दिये गये।

कबीर साहब की निर्वाण तिथि माघ सुदी एकादशी विक्रमी सं० १५७५ के दिन थी, जो बहुत खोज करने के बाद प्राप्त हुई है। भण्डारा की तिथि फाल्गुन वदी द्वादशी वि० सं० १५७५ को पड़ी थी, बाद में वही निर्वाण तिथि माघ सुदी एकादशी को भण्डारा होना चाहिये था। कुछ बाद में उक्त तिथि किसी अज्ञात कारण वश छूट गई थी। सद्गुरु का निर्वाण माघ सुदी एकादशी को हुआ था। अतः वह तिथि स्मरणरूप में होनी थी, किन्तु अज्ञात कारणों से अन्य लोग अगहन सुदी एकादशी आज तक मनाते चले आ रहे हैं। परन्तु आचार्य महंत श्री अमृत साहब की राय हुई है कि अब पुनः पूर्व रीति के अनुसार भण्डारा निश्चित तिथि को होना चाहिए। कुछ पुराने लोगों का कहना है कि एक बार उक्त तिथि को लेकर किन्ही कारणों से परस्पर विवाद हो गया

था जिसके लिये अंग्रेज सरकार ने भण्डारा की उक्त तिथि में हेर-फेर करवा दिया था।

अतः किसी न किसी रूप में आज तक भण्डारा का आयोजन प्रतिवर्ष होता चला आ रहा है, जिसको काशी कबीरचौरा के आचार्य श्री महंत करते चले आ रहे हैं। प्रति वर्ष उन्हीं की अध्यक्षता में भण्डारा का कार्य संपादित होता चला आ रहा है। मगहर के एक दिन पहले उस धूनी पर भण्डारा उसी उपलक्ष्य में होता है। वहाँ पर एक पुजारी आचार्य गादी से रखा जाता है। जिसका भोजन-छाजन स्थान बलुआ गोरखपुर से मिलता है। दोनों जगह (मगहर एवं धूनी) की देख-रेख काशी कबीरचौरा के आचार्यश्री करते हैं। वर्त्तमान में काशी के आचार्य श्री के तरफ से एक सुरम्य विद्यालय भी मगहर में चलाया जा रहा है। उस विद्यालय का नाम है 'संत कबीर आचार्य रामविलास इण्टर कालेज है, जिसमें अच्छी पढ़ाई होती है। उस विद्यालय के बनवाने में सबसे अधिक परिश्रम मेरे जेष्ठ गुरु भाई श्री इन्द्रदास जी साहब ने किया है। यदि उनका सहयोग नहीं हुआ होता, तो शायद विद्यालय न बन पाता। अतः उस महापुरुष का नाम इस पंथीय इतिहास की एक कड़ी में है। इसीलिए उस महापुरुष की समाधि भी विद्यालय के प्रांगण में ही सम्पन्न हुई है और उसी पर उनकी संगमर्मर की मनोरमा मूर्ति भी लगा दी गई है।

उधर बिजुली खाँ के कहे जाने वाले पुजारी लोग केवल अपना पेट पालते चले आ रहे हैं। ऐसो-आराम में ही उनका जीवन बीत रहा है उनकी तरफ से कोई जन हित कार्य नहीं हो रहा है और भ्रामक प्रचार भी वे लोग करते आ रहे हैं।

श्री कमाल साहब की समाधि अहमदाबाद में साबरमती नदी के तट पर आज भी विद्यमान है, जिसको वहाँ के लोग कहते हैं कि कबीर साहब के शिष्य श्री कमाल साहब की यही समाधि है। उसके विरोध में मगहर के कबीर रौजे के डफाली खानदान कहता है कि श्री कमाल साहब, जो कबीर साहब के शिष्य थे, उनको समाधि यहीं पर है, जो एक नकली मजार बनवाकर उस पर एक छोटी सी कोठरी भी बनवा दिया है और वह कबीर मुसलिम मंदिर से सटाकर बनवाया गया है। आगन्तुक दर्शनार्थियों को भ्रम में डालते हैं और वे लोग हिन्दू-धर्म की

निन्दा करते हैं। कहते हैं कि वह नकली मंदिर है। केवल अपने पुजाने के चक्कर में रहते हैं, जो नहीं करना चाहिए। सत्य ही बोलना श्रेष्ठ होता है। मुझे आशा है कि वे लोग आगे चलकर सुधरेंगे।

शव संस्कार के बाद संत मंडली के साथ वीरदेव सिंह का काशी आगमन

साहब के निर्वाण के सतरहवें दिन संत भण्डारा के पश्चात् महाराजा वीरदेव सिंह कुछ फूल लेकर मगहर से संत मण्डली के साथ प्रस्थान कर दिए। उनको सम्मान के साथ नवाब आविद अली खाँ ने बहुत दूर तक पहुँचाया। इस प्रकार पाँच दिन चलने के बाद काशी धर्म प्रचार कबीर कुटी कबीर चबूतरे पर महाराजा संत मंडली के साथ आ गए। आश्रम के आस-पास के लोग एवं नगर वासी लोग संत मंडली का आगमन सुनकर चारों ओर से दौड़ पड़े। आश्रम पर पहुँचकर अपने गुरुदेव को न देखकर नागरिकों ने उन लोगों से पूछा कि प्रभु कहाँ हैं? नागरिकों के इस प्रश्न का उत्तर कोई नहीं दे रहा है। नगर के मुख्य-मुख्य लोगों के बार-बार पूछने पर जब कोई कुछ नहीं बोल रहा है, तो नागरिकों के मन में शंका हुई। अंत में लोगों के बहुत पूछने पर श्री रविदास जी महाराज आँखों से आँसू बहाते हुए बोले—भाई! प्रभु तो अपने परम धाम को चले गए। रविदास जी की उक्त बात को सुनते ही काशी के उपस्थित लोग अचेत होकर धराशायी हो गए। उक्त समाचार विद्युत की भाँति नगर में फैल गया, जो जहाँ सुनता था वह वहीं अचेत होकर गिर पड़ता था। पुनः होश आते ही लोग आश्रम पर आते थे जहाँ पर लाखों की भीड़ एकत्र हो गई थी। समस्त काशी वासी करुण-क्रन्दन करने लगे। सभी के मुख से यही सुना जाता था—हाय! हाय! हम अनाथ हो गए। आज मेरा नाथ नहीं है इत्यादि बातें कहकर लोग शोक सागर में डूब गये। कई दिन तक काशी में किसी के घर अग्नि नहीं जली और लोग भूखे रह गए।

काशी का शोकाकुल समाज

इस प्रकार सभी की दयनीय दशा को देखकर श्री रविदास जी महाराज नगर के लोगों को समझाने लगे। अभी श्री रविदास जी लोगों को समझा ही रहे थे कि तब तक पंचगंगाघाट गुरुद्वारे में उक्त समाचार सुनते ही वहाँ के संत रोते हुए धर्म प्रचार कबीर कुटी पर आ गए। वहाँ सद्गुरु को न देखकर पूर्वोक्त गुरुद्वारे के सभी सन्त अचेत

होकर गिर पड़े। आँखों में आँसू भरे हुए उन लोगों ने कहा कि आज हमारा पथप्रदर्शक सूर्य अस्त हो गया और चिरकालीन रात्रि आ गई। अब हम लोगों की कौन रक्षा करेगा। हाय! हम बिना आश्रय के हो गए। चलो अब हम सब भी शरीर में पत्थर बाँधकर गङ्गा में कूदकर प्राण त्याग दें। उपर्युक्त बातों को कहकर लोग गङ्गा जी की ओर चल पड़े। कोई किसी का कहना नहीं मान रहा था।

संत मण्डली सभी को मरने के लिए उद्यत देख घबड़ा गई। पुनः श्री रविदास जी, श्री पद्मनाभदास जी, एवं श्री सेन जी महाराज आदि संतों ने आश्रम के संतों को तथा काशी के नागरिकों को आगे जाकर समझाने बुझाने लगे। संतों ने कहा भाई! इस संसार का यही नियम है। जो इसमें आता है वह अवश्य चला जाता है। इससे चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। अंत में संतों ने सभी को समझा बुझाकर शांत किया। इस प्रकार श्री रविदास जी के समझाने बुझाने पर सभी लोग शान्त हो गए। इसके बाद लोग उनसे मगहर की बीती हुई बातों को पूछने लगे। श्री रविदास जी ने वहाँ की सारी घटनाओं को विस्तार से सभी लोगों को कह सुनाया। अतः मगहर की बात सुनकर सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए और सभी लोग वर्ष पर्यन्त शोकाकुल रहे। उस वर्ष भर किसी को काशी अच्छी नहीं लगी। सभी लोग गुरुदेव के शोक में विक्षुब्ध रहे।

महाराजा वीरदेव सिंह ने सद्गुरु के निर्वाण का समाचार विश्व में अपने दूतों के द्वारा प्रेषित कर दिया, जिसको सुनकर सद्गुरु के सभी नेमी-प्रेमी, भक्त-शिष्य, राजा-महाराजा एवं जन साधारण सभी ने शोक मनाया। इधर जिस पुष्प को महाराज मगहर से लाए थे, उन पुष्पों की समाधि कबीर चबूतरे के प्रांगण में श्री महाराजा वीरदेव सिंह ने श्रुतिगोपाल साहब एवं श्री रविदास जी की सहमति से दे दी। इसके बाद वहाँ पर एक विशालकाय मंदिर वि० सं० १५७८ में बनवा दिया, जिसका जीर्णोद्धार मेरे सत्यलोकीय गुरुदेव आचार्य रामविलास साहब ने वि० सं० १९८९ में कराया था। अतः उक्त मंदिर में कबीर साहब का बाल्यावस्था का चित्र है ओर वह आज भी विद्यमान है। जहाँ पर देश-विदेश के श्रद्धालु लोग दर्शनार्थ आते-जाते रहते हैं, जो आज कबीर मठ के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरा मंदिर वह है, जो बीजक मंदिर के

नाम से प्रसिद्ध है। इसको भी आचार्य श्री रामविलास साहब ने इसवीं सन् १९५९ में जीर्णोद्धार कराया था जिसपर बीजक के कुछ पद लिखे गये हैं। अन्दर कबीर साहब का वृद्धावस्था का एक चित्र रखा गया है और सद्गुरु कबीर का एक चित्र, गोरखनाथ का त्रिशूल, स्वामी रामानन्द जी की माला और बीजक की कई पुरानी हस्तलिखित प्रतियाँ रखी हुई हैं। सबसे पुराना सद्गुरु कबीर साहब का चरणपादुका एवं एक काष्ठ पात्र भी सुरक्षित रखा हुआ है. जिसका दर्शन करने के लिए देश-देशान्तर के लोग आते हैं।

इस मंदिर के दक्षिण भाग में सद्गुरु की पालित भूमि मातृ-गृह भी विद्यमान है. जो नीरू टोला के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ पर नीरू-नीमा की समाधि बनी हुई है। इस प्रकार आश्रम के तीन संभाग हैं। उन तीनों संभागों में एक-एक अति प्राचीन कूप हैं। जिनके जल से संत लोग एवं अतिथि लोग स्नान आदि करते हैं।

साहब के परम धाम यात्रा का समाचार सुनकर देश-विदेश के सभी शिष्य एवं वैष्णव समुदाय और नेमी-प्रेमी जन आए, जो काशी के सतरहो भण्डारा तक रहे। आपको विदित हो कि काशी में जो फूल मगहर से लाकर गाड़े गए थे अर्थात् जिसकी समाधि आश्रम के प्रांगण में दी गई थी उस दिन के सतरहवें दिन पुनः सतरही भण्डारा का आयोजन काशी नरेश एवं जनता की ओर से किया गया। जिसमें दीन-दुखियों को अन्न-वस्त्र बाँटे गए। इसी प्रकार से काशी के समृद्धशाली नागरिक भी सतरही के दिन अलग-अलग भण्डारा का आयोजन किये, जो अपनी श्रद्धा के अनुसार दान दक्षिणा देकर दीन-दुखियों को विदा किये।

इस प्रकार सद्गुरु के नाम पर महीनों दिन काशी के लोग दीन-दुःखियों को खिलाते रहे। साहब के सत्य लोक चले जाने पर लोग उपवास रहा करते थे, जिनको संत मण्डली कथा-कीर्तन सुनाकर प्रसन्न रखती थी। कुछ दिन के बाद लोगों में पूर्ण शान्ति आ गई। सभी लोग अपने-अपने घर के कार्य में लग गए।

पं० श्री श्रुतिगोपाल साहब का आचार्य पद पर आसीन होना

सद्गुरुदेव के अभाव में संत मण्डली बिना अगुआ के हो गई। अब यह आवश्यक हो गया कि किसको संत मण्डली का अगुआ बनाया जाय, क्योंकि बिना अगुआ के संत मण्डली चल नहीं सकती। परन्तु अब

किसको अगुआ बनाया जाय, यह कार्य कठिन था। अतएव संत मण्डली ने अगुआ के चयन का कार्य भार श्रीमान् महाराज वीरदेव सिंह बघेल, एवं श्री बांधव नरेश महाराजा राम सिंह को तथा संतों में सर्वश्री रविदास जी, सेन जी और पद्मनाभदास जी को सौंपा गया और यह कहा गया कि जो पाँचों पंच निर्णय करेंगे वही सबको मान्य होगा।

अस्तु, पाँचों पंच एकान्त में विचार-विमर्श करने लगे। अंत में यह निश्चय हुआ कि सबसे वयोवृद्ध श्री रविदास जी हैं, जब तक जीवित रहें संत मण्डली के नेता बने रहें, परन्तु इस निर्णय को श्री रविदास जी ने अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा भाई मैं वृद्ध हो चुका हूँ इसलिए मुझ से यह कार्य नहीं होगा। मेरे गुरु समान बड़े गुरु भाई अब नहीं रहे। मैं भी अब उन्हीं का अनुसरण करूँगा। अब मैं इस लोक में अधिक दिन नहीं रहूँगा। अतः जो बात मैं आप लोगों से कहता हूँ ध्यान से सुनिए और कीजिये। काशी नरेश ने कहा—महाराज मैं तो आपको गुरुदेव के समान ही समझता हूँ। इसलिए जो आप कहेंगे वही मान्य होगा। राजा की बात को सुनकर श्री रविदास जी ने कहा–राजन्! मगहर में जो गुरुदेव ने कहा था वह आपके ध्यान में नहीं है। उन्होंने श्री श्रुतिगोपालदास जी को कहा था कि तुम पण्डित अर्थात् बुद्धिमान हो। इसलिए सेवा प्रचार कुटी को प्रचार का केन्द्र बनाना और वहीं से सेवा प्रचार का कार्य आरंभ करना। अतः सद्गुरु की आज्ञा भी है और सभी संतों में वही योग्य भी हैं। वे संत मण्डली को सुसंगठित रखेंगे। इसलिए उनको ही संत-मण्डली का नेतृत्व करने वाला बनाया जाय। रविदास जी की बात सभी पंचों ने मान ली और संत मण्डली में जाकर अपने निर्णय को सुना दिये। पंचों के इस निर्णय को सुनकर सभी संत ताली बजाने लगे और उठकर सभी ने उनको माला पहनायी। परन्तु श्री श्रुतिगोपाल साहब ने कहा–मैं इसके योग्य नहीं हूँ। इस कार्य भार को श्री पद्मनाभदास जी को सौंपा जाय, क्योंकि ये मुझसे पहले के शिष्य हैं और अवस्था में भी मुझसे बड़े हैं। इसलिए संतों का नेतृत्व करने वाला उन्हीं को बनाया जाय अथवा छोटे गुरु भाई भगवानदास जी एवं जागूदास जी हैं, उनमें से किसी को नेतृत्व करने वाला बना दिया जाय, मुझे अगुआ बनना स्वीकार नहीं है। अतः श्री श्रुतिगोपाल साहब के अस्वीकारोक्ति से पाँचों पंचों सहित संत-मंडली निराश हो गई। इसी संदर्भ में श्रीमान् पद्मनाभ साहब ने कहा कि नहीं, आप ही को अगुआ

पद पर रहना होगा। इसका कारण यह है कि मैं थोड़े ही दिन के अतिथि रह गया हूँ। इसलिए नेतृत्व करने का कार्य मेरे से नहीं होगा।

परन्तु श्री श्रुतिगोपाल साहब ने उनकी एक न सुनी। तब पद्मनाभ साहब ने एक उक्ति विचारी। पद्मनाभ साहब बोले आप मेरे को गुरु के समान मानते हैं न! उन्होंने कहा हाँ। तब श्री पद्मनाभ साहब ने कहा– आप गुरु आज्ञा भी मानते हैं। उन्होंने पुनः कहा हाँ। पद्मनाभदास ने कहा कि मैं आपका बड़ा गुरु भाई हूँ। इसलिए आपका गुरु भी हूँ। आप मेरी बात को मानें तभी आप गुरु भक्त होंगे, अन्यथा इस मर्यादा हनन का दोष आप पर लगेगा।

अतः श्री पद्मनाभ स्वामी की बात सुनकर श्री श्रुतिगोपाल साहब मौन हो गये, क्योंकि युक्ति-युक्त होने से कुछ उत्तर नहीं दे सके। इसके बाद संत-मण्डली ने कहा–मौन ही स्वीकार का लक्षण है। ऐसा कहते हुए सभी संतों ने उनको अपना अगुआ मानकर माला चन्दन चढ़ाया। सर्वप्रथम राजा श्री वीरदेव सिंह ने उनके पैर को धोकर चरणामृत का पान किया, तत्पश्चात् सभी संतों ने अगुआ की दृष्टि से व्यवहार का पालन किया।

इस प्रकार सभी क्रिया विधि के बाद श्री श्रुतिगोपाल साहब ने उच्चासन से उतरकर सर्वप्रथम अपने चाचा गुरुओं एवं श्रेष्ठ गुरुभाइयों का चरणस्पर्श करके साष्टांग दण्डवत किया। सभी ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उसी दिन से सेवा प्रचार कुटी का कार्य आरंभ हो गया। संतमंडली पुनः देश-विदेशों में घूम-घूमकर सत्य धर्म का प्रचार-प्रसार करने लगी, जो आज तक अबाध गति से किसी न किसी रूप में चला आ रहा है। जिसका मुख्यालय आज भी काशी कबीरचौरा आचार्य गादी है और वह पूर्ण रूप से कार्य रत है। आशा है कि यह गादी उक्त अपने कर्त्तव्य को आगे भी चालू रखेगी, जिससे गुरुदेव का बताया हुआ मार्ग अवरुद्ध नहीं होने पाये। सेवा कार्य के लिए सभी कबीर-पंथियों को चाहिए कि एक जुट होकर गुरुदेव की आज्ञा का पालन करें, क्योंकि उनकी आज्ञा का पालन ही उनकी सेवा है। आइए हम सभी, सब भेद भावों को भुलाकर गुरुदेव की सेवा में एवं प्रचार कार्य में लग जायें। तभी हम लोगों पर गुरुदेव का आत्मा प्रसन्न रहेगा।

गुरुदेव की आज्ञा का पालन तब से आजतक काशी मूलगादी करती आ रही है। जिसमें निम्नलिखित आचार्य हुए हैं, जो सदा सत्कार्य करते आये हैं।

सर्वप्रथम सद्गुरु कबीर साहब, द्वितीय श्री श्रुतिगोपाल साहब, तृतीय श्री ज्ञान साहब, चतुर्थ श्री श्याम साहब हुए और पाँचवे में आचार्य श्री लाल साहब हैं, जिन्होंने कबीर पंथ की अत्यधिक श्री वृद्धि की है। उन्हीं के प्रचार कार्य के परिणाम स्वरूप केवल तिरहुत मण्डल में तीन सौ साठ झोपड़े काशी कबीर चौरा के हैं, जिनका मुख्य केन्द्र सतमलपुर स्थान है। उसके महंत श्री रामावतार साहब है। उक्त स्थान समस्तीपुर जनपद में पड़ता है। छठवें श्री हरिसुख साहब हुए, जिन्होंने कबीर मठ का अच्छा विस्तार किया था। सातवें श्री शीतलदास जी साहब हुए, जो परम सिद्ध पुरुष थे, जिन्होंने सदैव धर्मप्रचार में अपना समय बिताया। आठवें श्री सुखदास जी साहब हुए हैं, जो परम ज्ञानी थे। नवे आचार्य श्री गुरु हुलास साहब जी थे, जो पूर्ण योगी थे, जिन्होंने आरा, पटना, छपरा आदि जनपदों में अनेक मठ स्थापित कराये। उनकी सिद्धि की चर्चा आज भी जन साधारण में व्याप्त है और वे घूमते हुए वर्तमान भोजपुर जनपद में गए, जिसके अंतर्गत आयर नाम की एक बस्ती है, जो आरा नगर से पश्चिम दक्षिण कोने पर बारह मील की दूरी पर स्थित है। वहीं पर आप श्री की समाधि है। कहा जाता है कि उक्त गाँव के मठ में आप रुके हुए थे। जब आपका समय सत्यलोक जाने का हो गया था, तो आपने गाँव के निवासियों को बुलाया और कहा कि अब मैं सत्य लोक जाऊँगा। उक्त बात को सुन करके आपके आस-पास के राजपूत शिष्य आ गए, जिनसे आपने कहा कि तुम लोग समाधि खोदो मैं उसमें जीवित बैठूंगा। तत्पश्चात् उस मठ के पास का एक शाक्वद्वीपी ब्राह्मण, जो आपका शिष्य था, वह आया और उसने कहा कि गुरुदेव अभी इकतालिस दिन दक्षिणायन है। आप इस पितृयान में कैसे शरीर का त्याग करेंगे। अतः आप इकतालिस दिन वहीं पर समाधि लगाये बैठे रह गए तदनन्तर आपने वहीं पर जीवित समाधि ली। आपका वहाँ इतना प्रभाव था कि आस-पास के पच्चीसों गाँव के हिन्दू और मुसलमान सभी आपके शिष्य हो गए थे। वहाँ के लोग आपको भगवान शंकर की भाँति पूजन करते हैं। आपका एक मंदिर

वहाँ पर बना हुआ है, जिसको हमारे बड़े गुरुभाई श्री राम सागरदास जी साहब ने बनवाया है। वहाँ पर प्रतिदिन पूजा-पाठ होता है।

श्री माधव साहब दशवें आचार्य पद पर हुए हैं, जो भगवान माधव के समान बड़े-बड़े दुर्वृत्तियों को सुधार कर वैष्णव बनाए थे। ग्यारहवें आचार्य श्री कोकिल साहब हुए हैं, जिनको संसार अच्छी प्रकार से जानता है और वे परोपकारी संत थे। बारहवें आचार्य श्री रामदास जी साहब हुए हैं, जो अहर्निश स्वरूप में लीन रहते थे। तेरहवें आचार्य श्री महादास साहब हुए हैं, जो ज्ञान वृद्ध कहे जाते थे। चौदहवें में श्री हरिदास जी साहब हुए थे, जो परम संत सुने जाते हैं। पन्द्रहवें आचार्य श्री शरणदास जी साहब हुए हैं, जो प्रकाण्ड विद्वान् थे, जिनके शिष्य श्री राम रहस्य साहब जैसे दार्शनिक व्यक्ति हुए हैं, जो गया नगर में रहते थे जिनका बनवाया हुआ स्थान आज भी गया टेकारी रोड में विद्यमान है। श्री शरण साहब ने देश-देशान्तरों में सत्यधर्म का खूब प्रचार किया। सोलहवें आचार्य श्री पूरण साहब हुए हैं, जो सदा योग, ध्यान में ही डूबे रहते थे। सतरहवें आचार्य श्री निर्मलदास जी साहब थे, जो सदैव एकान्त सेवी थे, जिनसे प्रभावित होकर बड़े-बड़े लोग आपके शिष्य हो गये थे। अठारहवें आचार्य श्री मान् सिद्ध शिरोमणि श्री रंगीदास जी साहब हुए हैं, जिनकी ख्याति सुदुर देशों में फैली हुई है।

आपने उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और बिहार आदि प्रान्तों में जाकर अनेक मठों की स्थापना की। आप बड़े प्रभावशाली थे। आप जो कहते थे वही होता था। आप प्रायः भारत के पूरे क्षेत्रों में भ्रमण करते रहे। रीवाँ नरेश एवं काशी नरेश आप से बहुत प्रभावित रहे। उन्नीसवें में श्रीमान् गुरु प्रसाद साहब हुए हैं, जो बड़े शक्तिशाली पुरुष थे, जिन्होंने मठ की विशेष गरीबी को दूर कर दिया था। आपके अथक परिश्रम से ही बलुआ मठों की खेतियाँ सुधर पाई थीं। बीसवें में श्रीमान् प्रेम साहब हुए हैं, जो प्रेम के स्वरूप ही रहे। इक्कीसवें में श्रीमान् अनन्त सन्त सेवी परम गुरुदेव आचार्य श्री रामविलासदासजी साहब हुए हैं, जो महान् बुद्धि के थे, जिन्होंने कबीरचौरा स्थान का कायाकल्प ही कर दिया। आपके ही द्वारा स्थानीय आय का सुधार हुआ है। आप गरीबों से बड़ा प्रेम रखते थे। आप जीवन पर्यन्त सत्कार्य करते रहे। आपने दो मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया और बहुत से भवनों का निर्माण भी

कराया। आपकी कीर्ति महान् है। बाइसवें आचार्य श्रीमान् पूज्य अमृतदास जी साहब हैं, जो भीष्म की भाँति अहर्निश सत्कार्य में लगे रहते थे। आपकी सादगी और मृदु स्वभाव से पन्थीय लोग अत्यधिक प्रभावित होते रहे। 'कस्मिन् रञ्जयति मनः' यह सूक्ति आप में पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। वर्तमान् में २३वें आचार्य श्री गंगाशरणदास साहब हैं।

१-सर्वश्री सद्गुरु कबीर साहब

२-आचार्य श्रुतिगोपालसाहब	१३-आचार्य महादास साहब
३-आचार्य ज्ञान साहब	१४-आचार्य हरिदास साहब
४-आचार्य श्याम साहब	१५-आचार्य शरणदास साहब
५-आचार्य लाल साहब	१६-आचार्य पूरण साहब
६-आचार्य हरिसुख साहब	१७-आचार्य निर्मलदास साहब
७-आचार्य शीतल साहब	१८-आचार्य रंगीदास साहब
८-आचार्य सुखदास साहब	१९-आचार्य गुरुप्रसाद साहब
९-आचार्य हुलास साहब	२०-आचार्य प्रेम साहब
१०-आचार्य माधव साहब	२१-आचार्य रामविलास साहब
११-आचार्य कोकिल साहब	२२-आचार्य अमृतदास साहब
१२-आचार्य श्रीराम साहब	२३-आचार्य गंगाशरणदास

इस प्रकार आज तक सभी आचार्य अपने-अपने समय में मनसा, वाचा, कर्मणा से सेवा करते आ रहे हैं।

॥ इति श्री ॥

परिशिष्ट (क)

धर्मदास-प्रसंग

सद्गुरु कबीर स्वामी के बाद की कुछ अन्य शक्तियाँ

सद्गुरु कबीर पंथ के बाद के संतों का परिचय

सद्गुरु कबीर के बाद सर्वप्रथम इस पंथ में दरिया साहब हुए, जिनका प्रादुर्भाव वि० सं० १६९१ में शाहाबाद मण्डल के अन्तर्गत धरकंधा नामक ग्राम में हुआ था। यह स्थान विहार प्रदेश में पड़ता है। आपका जन्म दरजी मुसलमान कुल में हुआ था। आप बड़े प्रभावशाली एवं सिद्ध पुरुष थे। आप के नाम से कबीर पंथ में एक प्रतिष्ठित शाखा चली आ रही है, जो दरिया साहब की शाखा कही जाती है। आपके उपदेश वही हैं, जो आपके पूर्व पुरुष सद्गुरु कबीर स्वामी के थे। उसी ज्ञान को आपने कई ग्रंथों के रूप में लिपिबद्ध कर दिया था। आपका परलोक गमन वि० सं० १८३७ में हुआ।

दरिया साहब के समकालीन इस कबीर-पंथ में श्रीमान् धर्मदास जी साहब हुए हैं, जो मध्यप्रदेश के अन्तर्गत रीवाँ-जनपद बाँधवगढ़ में वि० सं० १७०० के अंत में तथा वि० सं० १८०० के आदि में कशौधन नामक वैश्य कुल में उत्पन्न हुए थे। ये बड़े दानी एवं शूर वीर भक्त थे। आपने अपने सारे धन को दीन-दुःखियों को लुटा दिया था। आपके द्वारा इस कबीर पंथ का बहुत बड़ा विस्तार हुआ है। पंथ के कुछ विद्वानों का कहना है कि आप सद्गुरु कबीर के बत्तीस वर्ष के बाद कबीर पंथ के किसी सिद्धि सम्पन्न संत से प्रभावित होकर कबीर पंथ को स्वीकार किया था, अर्थात् आपने वि० सं० १६०७ में कबीर-पंथ को ग्रहण किया था। जो भी हो, ये किंवदन्तियाँ कहाँ तक सत्य हैं, मैं नहीं कह सकता।

कुछ अन्य पंथियों का कहना है कि सद्गुरु कबीर ने स्वयं आप को वि० सं० १७७५ में मथुरा में सूक्ष्म रूप से स्वप्न में दर्शन दिया था। अतः श्री दरिया साहब के कथनानुसार उक्त तिथि पूर्णरूपेण सत्य है। उसी तिथि को मैं भी मानता हूँ। कुछ और लोगों का मत है कि उन्हें वि० सं० १७७५ में मथुरा पुरी में एक कबीर पंथी साधु मिला, जो मुसलमान कुल में पैदा हुआ था। उसका नाम वाला पीर कबीर था। उसी संत ने आपको दर्शन दिया था और उसी को बाद में लोगों ने कबीर साहब मान लिया, जो पूर्णरूपेण गलत है।

जो भी हो आप बड़े हृदय के उदार थे। आपने अपनी कोई दूसरी अलग शाखा नहीं चलाई थी। आपके अनुयायी अपने को कबीर पंथी ही मानते हैं, जो भारत तथा बाहर, विदेशों में भी विराजमान हैं। इधर कुछ आपके शाखावाले कबीरपंथ से अलग होने के लिए कटिवद्ध हैं और वे अपने को "वंशपंथी" या "धर्मदासीय" कहना चाहते हैं तथा आपके उपदेशों को भूलते जा रहें हैं और "मूलगादी कबीरचौरा" काशी से पृथक् होने लगे हैं। वे अपना अस्तित्व पृथक् स्थापित रखना चाहते हैं और यह कहना प्रारम्भ कर चुके हैं कि काशी में कोई सद्‌गुरु कबीर का शिष्य साधु नहीं था और न ही यह स्थान मूलगादी है, इत्यादि प्रकार की परिकल्पना करना आरंभ कर दिए हैं।

सद्‌गुरु कबीर चरितम् के पृ० ४०५ से ४०६ देखने योग्य हैं। इसी प्रकार के और भी कितनी बातें मनगढ़न्त ग्रंथ में हैं जो काशी की निन्दा करते हैं। उनके अवलोकन से लगता है कि उक्त प्रकार के सभी लेख राग-द्वेष के कारण लिखे गए हैं, क्योंकि उक्त वाक्यों को किसी भी प्रमाण के द्वारा प्रमाणित नहीं किया गया है। केवल लिख देने मात्र से ही बातें सत्य नहीं होतीं।

काशी कबीरचौरा कब से है, यह सभी को ज्ञात है। महाराजा अवसानगंज वाराणसी के यहाँ कुछ कागज पत्र कबीरचौरा से संबंधित रखे हुए हैं। उन कागजों में लिखा है कि स्थान की जमीन मेरी तरफ से दी गई है, जो देखने योग्य है। उन कागजों में सन्—संवत् सब लिखा है। दूसरी बात यह है कि काशी का बच्चा-बच्चा भी कहता है कि यही सद्‌गुरु कबीर का आदि स्थान है, जो आज भी विद्यमान है। प्रमाण के लिए शिलालेख मौजूद है जिस पर लिखा है कि "महाराजा वीरदेव सिंह ने श्री श्रुतिगोपाल जी साहब की आज्ञा से वि० सं० १५७८ में समाधिमंदिर बनवाया है।" उस पर लागत आदि सब लिखा है।

कबीरचौरा की ऐतिहासिकता को नष्ट करने का प्रयत्न 'वंशपंथी' कर रहे हैं न कि श्री धर्मदास जी। अतएव इसमें श्री धर्मदास जी साहब का क्या दोष है? आप तो महापुरुष थे। आप हम कबीरपंथियों के लिए स्तुत्य हैं। परन्तु आपकी शाखा में कुछ ऐसे लोग लोभ-मोह के वशीभूत प्राणी हैं, जो आपश्री को भी कलंकित कर रहें हैं। जैसे आज के ऋषि संतान ऋषियों को गाली दिलवाते हैं। आपके नाम पर आपके अनुयायी असत्य के पीछे पड़ते जा रहें हैं। मैं उनको पकड़ना चाहता हूँ, परन्तु वे अपनी अनभिज्ञता के कारण हमसे दूर होते जा रहें हैं और घर में ही फूट का बीजवपन कर रहे हैं।

कहाँ तो आपश्री ने 'दासातन' का मार्ग अपनाया था और कहाँ आपके अनुयायी गुरु बनने के लिए व्याकुल होते जा रहे हैं। श्री धर्मदास जी तो कहा करते थे कि—'सुत-नारी से नाता तोड़े' वहीं पर ये लोग 'सुत नारी से नाता जोड़े' को चरितार्थ कर रहें हैं। अतः श्री धर्मदास जी से मेरी यही प्रार्थना है कि यदि आपकी आत्मा का अस्तित्व कही पर हो, तो आप अपने अनुयायियों को एक बार अवश्य सुधारने की कोशिश करें।

आपके कुछ अनुयायी यह कहते हैं कि धर्मदास श्री सद्गुरु कबीर के सम-सामयिक थे अर्थात् वि० सं० १४५५ में, जो प्रकट होकर वि० सं० १५७५ में अन्तर्धान हो गए। उन्हीं से आपका दर्शन हुआ था। यह बात कहने वालों की महान् भूल है और उन्हें इतिहास का परिज्ञान ही नही है और न ही पंथ के पुराने लेखों की ही जानकारी है। यदि उन्हें यह जानकारी होती, तो निम्नोक्त प्रमाणों की क्यों उपेक्षा करके असत्य लिखते कि मथुरा या द्वारिका में कबीर साहब से उनका दर्शन हुआ था। प्रथम प्रमाण श्री दरिया साहब का लीजिए। दरिया योग दर्शन ज्ञान दीपकान्तर्गत, पृ० सं० २४१ में श्री धर्मदास जी के प्रसंग में श्री दरिया साहब आगे चलकर कहेंगे। श्री धर्मदास जी स्वयं अपने मुख से कहते हैं।

साहेब कबीर प्रभु मिले विदेही, झीना दरस दिखाइया।

विदेह का अर्थ ही होता है कि स्थूल शरीर उस समय कबीर साहब की नहीं थी। क्योंकि झीना शब्द आया है। झीना का अर्थ होता है सूक्ष्म, अर्थात् कबीर साहब के मानव शरीर का धरमदास जी दर्शन नहीं कर पाये थे क्योंकि नीचे यह भी लिखा है कि—

"जुलाहा कि तब अवधि सिरानी। मथुरा देहधरी तिन आनी॥"

(अनुराग सागर उत्तरी भारत की सन्त परम्परा से उद्धृत)

तात्पर्य यह है कि जब श्री धरमदास जी जन्म लिए और सचेत हुए तब तक कबीर साहब जुलाहा वाली शरीर से जा चुके थे, अर्थात् उस समय तक कबीर साहब अन्तर्धान हो चुके थे। आधी पंक्ति में लिखा है कि—"मथुरा देंह धरी तिन आनी।" अर्थात् पुनः कबीर साहब मानव शरीर धारण करके मथुरा में श्रीधरमदास जी से मिले जो सम्भव नहीं हो सकता। वैज्ञानिक दृष्टि से मृत मनुष्य के जीने की कहीं कोई बात देखी नहीं गई है। बात वही हो सकती है कि कोई कबीर पंथी साधु श्री धरमदास जी को मिला हो जिसको

उन्होंने कबीर साहब मान लिया हो। 'ग्रंथ अमर सुख निधान' का भी प्रमाण नीचे दिया जाता है :—

"जिन्द रूप जब धरा शरीरा, धरम दास मिलि गए कबीरा।"
(उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृष्ठ संख्या ८६६ से उद्धृत)

अब जिन्द रूप पर भी विचार करना चाहिए क्योंकि जिन्द रूप धारण करने की बात कबीर साहब के लिए कही गई है। जिसका अर्थ परम्परागत त्यागी, फकीर, वैराग वाला भूत-प्रेत, मुसलमानी वैताल इत्यादि होता है। उक्त अनुराग सागर की पंक्ति का ही अर्थ इसका भी है। सूक्ष्म वैताली स्वरूप मिलने की बात शरीर धारण करके कही गई है। इससे विदित होता है कि धरम दास जी और कबीर साहब का मिलन प्रत्यक्ष नहीं है। यदि प्रत्यक्ष होता तो बांधवगढ़ में क्यों न जाकर दर्शन दिये होते। दूसरी ओर दरिया साहब कहते हैं कि काशी से दो सौ वर्ष शरीर छोड़ने के बाद तब धरम दास से कबीर साहब मिले अर्थात् कबीर साहब के शरीर छोड़ने के बाद चौपाई के अनुसार कबीर साहब का कोई अनुयायी दो सौ वर्ष बाद धरम दासजी के यहाँ गया होगा जिसको वे कबीर साहब मानकर सेवा पूजा किये होंगे क्योंकि—**दो ए सौ वर्ष बीति जब गएऊ। धरम दास कीहाँ जिन्दा अएऊ॥** से ही सिद्ध हो जाता है कि विक्रम सम्वत् की सत्रहवीं शताब्दी में धरम दास जी हुए हैं, जो कबीर साहब से बहुत काल का अन्तर हो जाता है। इसी प्रकार से सुश्री परमभक्ता रत्नाबाई भी कहती है—

मगहर तजि बासा कियो प्रकासा, जहाँ धर्मदासा व्रतधारी।
उनको शिष्य कीन्हा सब सुख दीन्हा, दुःख हरि लीन्हा यममारी॥

गुरु महात्म्य ज्ञान पृष्ठ संख्या ३३ वाराणसी से प्रकाशित एवं कबीरोपासना पद्धति में भी उक्त पद संग्रहित है। इसी प्रकार से श्री धर्मदास जी की शब्दावली 'वाणी', वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ संख्या ५६ पर उल्लिखित है—**साहेब कबीर गुरु मिलें विदेही, झीना दरस दिखाइया।**

सभी अवतरणों का यही आशय मिलता है कि जीवित अवस्था में सद्गुरु कबीर श्री धरमदास जी से मिल नहीं पाये थे क्योंकि श्री गरीबदास जी का यही कहना है कि—

धरि जिन्दे का रूप सैल वृन्दावन कीनी।
तहाँ मिलै धर्मदास करत है बहुत अधीनी॥

ग्रंथ साहिब, पृष्ठ सं० २१९ एवं २२२ के अतिरिक्त और भी जनश्रुति है—

जब भयो धर्म दास जी, तब नहिं रह्यो कबीर ।
बहुत काल के बाद में आये धरे सरीर ॥
प्रथमें मथुरा में गए, पुनि बाँधव गढ़ जाय ।
धर्मदास को भेंटेऊ, जिन्द कबीर बनाय ॥

इसी प्रकार से कबीर मन्सूर का अनुवाद प्रथम भाग, पृष्ठ सं० १३७ में लिखा कि मगहर में गुप्त होने पर ही मथुरा में धरमदास जी को कबीर साहब मिले । "उनका शरीर यदि अयोनिज न होता तो शरीर छुटने के बाद धरमदास जी को कबीर साहब कैसे मिल सकते" इत्यादि । सद्‌गुरु कबीर चरितम् के प्रस्तावना में पृष्ठ संख्या ३३ पंक्ति २९–३० देखने योग्य है फिर भी धरमदासजी की कुछ विचारणीय पद है जो नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

दुखित तुम बिन, रटत निसि दिन, प्रगट दर्शन दीजिए ।
बिनती सुनु साँइयाँ, बलि जाँव विलंब न कीजिए ॥
विविध विधि तन होत व्याकुल, बिन दरश जिव ना रहै ।
तप्त तन में उठत ज्वाला, कठिन दुख अब को सहै ॥
गुन औगुन अपराध क्षमा करो, अगुन कछु न विचारिये ॥१॥
पतित पावन राखु लज्जा, हमते पतित उबारिये ॥
बज्र भयो तन रह्यो न जायो, रैनिको सपनो भयो ॥
अंजुली जल घटत छिन छिन, जन्म तो ऐसे गयो ॥२॥
आय मिलो अविनाशि दुल्हा, निशदिन करो खवासिया ।
करौं सेवा बन्दगी, औ प्राणवारों वारिया ॥
धर्मदास जन करत विनती, साहब कबीर गुरु मानिये ।
नयन भरि भरि दरश दीजै, निमिष नेह न तोड़िये ॥३॥

—शब्दावली ।

धरमदास जी साहब स्वतः कहते हैं कि "आपके बिना मैं निश दिन दर्शन के लिए व्याकुल रहता हूँ । आप मेरी प्रार्थना को सुनें । मैं सब कुछ आपको न्योछावर करता हूँ । आपके बिना अनेक प्रकार से मेरा शरीर व्याकुल हो रहा है । बिना आपके दर्शन का मेरा जीना कठिन है । मेरे तन में अग्नि की ज्वाला लग गई है । मैं तप्त हो रहा हूँ उस कठिन दुःख को कौन सह सकता है । गुण और दुर्गुणरूपी जो हमारा अपराध है उसको आप क्षमा करें, मेरे दुर्गुण पर आप ध्यान न दें । आप पतितोद्धारक हैं आप मेरी लाज

को राख लीजिए। मेरे से भी पतित का आपने उद्धार किया है। मैं तो चाहता था कि यह शरीर छूट जाय परन्तु यह वज्र के समान हो गया है। रात-दिन स्वप्न आपका देखता हूँ पर आप मिलते नहीं। जिस प्रकार से अंजुल का जल क्षण-क्षण घटते जाता है इसी प्रकार से मेरा भी जन्म पल-पल में समाप्त हो रहा है। अब आप आकर मुझसे मिलें निश दिन आपकी सेवा करूँगा। आपकी बन्दगी करूँगा, तन-मन-धन सब समर्पण कर दूँगा" इत्यादि प्रकार से श्री धरमदास जी कबीर साहब से विनय करते हैं परन्तु कबीर साहब अभी तक प्रकट होकर दर्शन नहीं दिये। पाठकों को ज्ञात रहे कि ऐसे पद तभी लिखे जाते हैं जब उस इष्ट से भेंट न हुई हो। उपर्युक्त बातों पर भी विचार करना है।

अब मोहिं दरशन दीजे कबीर।
तुम्हरे दरश से पाप कटत है, निरमल होत शरीर॥
त्रिविध ताप भोगत चौरासी, अति जिव भयो अधीर।
अब तो कृपासिन्धु दुख मेटो, यम से फ़ागदचीर॥
भवसागर में नैया अटकी, वशर्पार विषय समीर।
डूबत आय उबारो प्रभुजी, खेय लगावो तीर॥
कोई ध्यावत गौरीशंकर, कोइ सिया रघुबीर।
मेरे तो एक तुमहीं धनी हो, क्यों न हरो ? यह पीर॥
धर्मदास बिनवे कर जोरी, प्रभु तुम गुण गंभीर।
मैं अति हीन दीन शठ पामर क्षमा करो तकसीर॥

—कबीर संगीत रत्नमाला : रागिनी भैरवी, पृ० सं० १२ पद सं० १२–१३।

सतगुरु हो ! मोहिं उतारो भवपार।
तुम बिन और सुनै को ? मेरी, आरतनाद पुकार॥
'अब मोहिं दरसन दीजै'

'मेरी आर्तनाद की जो पुकार' है उसको आप श्रवण कीजिए' भला ये पद जब बनाये गये होंगे, तब धरमदास जी क्या कबीर साहब को सशरीर देखे होंगे। जब कि उस समय तक कबीर साहब का अस्तित्व ही संसार में नहीं रहा होगा। यदि कहीं उनका अस्तित्व रहा होता तो यह पद न लिखकर धरमदास जी स्वयं जाकर दर्शन कर आते। इन पदों के उल्लेख से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि कबीर साहब के बहुत बाद में धरमदास जी हुए हैं। धर्मदासजी के कार्यकाल में तथा कबीर साहब के कार्यकाल में बहुत का ज्यादा अन्तर रहा होगा। इन सब पदों पर शायद विद्वतवर पण्डित परशुराम चतुर्वेदी जी का

ध्यान नहीं गया होगा नहीं तो अवश्य इन पदों पर वे विचार करते। कारण कि जो पद उनको मिले हैं उन पदों पर स्वयं विचार किये हो। ये सब पद बहुत खोज के बाद मुझे उपलब्ध हुए हैं। तभी तो उनकी पक्तियों को उद्धृत करके श्री धरमदास जी साहब के बारे में विचार किया गया है और सुविज्ञ पाठकों को जानकारी कराने में मुझे बड़ा हर्ष का अनुभव हो रहा है क्योंकि धरमदास जी को लेकर कबीर पंथ में बहुत बड़ा बवेला उठ खड़ा हुआ है। कारण यह कि जो शाखा श्री धरमदास जी में आस्था रखती है वह शाखा आज तक लोगों को भ्रम में डाल ही रही है परन्तु उसी शाखा के मान ग्रन्थों में बहुत सी पंक्तियाँ ऐसी मिली हैं जो कबीर साहब एवं धरमदास को समकालीन नहीं होने देती हैं। इसलिए विचारकों की दृष्टि में सन्देह होना स्वाभाविक है और भी अनेक बातें ऐसी मिलती है जो विरोधाभास को उत्पन्न करती हैं। कुछ ऐसी तिथियाँ पंथिय ग्रंथों में मिलती है जो धरमदास जी और कबीर साहब में बहुत दूरी की धूरी उत्पन्न करती है। कुछ नीचे दी जा रही है जिनसे विद्वान् लोग स्वयं विचार करेंगे। पंथीय ग्रन्थों में धरमदास जी साहब का जन्मकाल विक्रम सम्वत् १५१९ में माना है—"**सम्बत् पन्द्रह सौ उन्नीसा, कार्तिक शुक्ल पक्ष दिन तीसा**"—(ग्रन्थ सुक्रित ध्यान पृष्ठ सं० ४ संकलन कर्त्ता महन्त श्री पंचमदास जी मऊ सहानिया जिला छतरपुर), दूसरी तिथि धरमदास जी की विक्रम सम्वत् १४५२ में लिखी गयी है—"**सम्वत् चौदह सौं बावन खानी, जनम धरेऊ धरमन तुम जानी**"—(धरमदास जनमावली वड़ी हस्तलिखित कापी विक्रम सम्वत् १८५४ तथा प्रतिलिपि काल १८८२ श्री गृन्धमुनि नाम साहब रायपुर की नीजी पुस्तकालय से।)

इसी प्रकार से महात्मा ब्रह्मलीनदास जी अपनी पुस्तकसद्गुरु श्री कबीर-चरितम् पृष्ठ सं० २६८ पर भी लिखते हैं कि विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में धरमदास जी जन्मे थे—

पञ्चदश शताब्दान्ते समृद्ध द्रव्यवानसौ।
तृतीय आयुषो भागे निवृत्तो गृह कर्मतः॥

इसी प्रकार से श्री धरमदास का देहावसान भी लिखा है कि वे विक्रम सम्वत् १५२० में चल बसे। दूसरी तिथि धरमदास जी के देहावसान का १५६९ में लिखा हैं। एक और जगह यह लिखा है कि धरमदास की दीक्षा विक्रम सम्वत् १५२० में हुई थी, फिर लिखा है कि धरमदास ने विक्रम सम्वत् १५२१ में कबीर वाणियों का संकलन किया था। अन्यत्र लिखा है कि धरमदास जी की दीक्षा

विक्रम सम्वत् १५४० में हुई थी। अब बताइए धरमदास जी की जन्म तिथि व निर्वाण तिथि कौन-सी सही मानी जाय। यदि धरमदासजी का देहावसान १५२० मान लिया जाय तो १५६९ का क्या होगा, क्योंकि धरमदास की दीक्षा १५२० में दिखाई गई है। और फिर १५४० में उनको दीक्षित बताया गया, इसलिए इन सारी बातों पर विचार करने से कबीर साहब से उनका मेल-जोल नहीं खा रहा है। क्योंकि धरमदास जी सम्बन्धी तिथियाँ और कबीर साहब सम्बन्धित तिथियाँ किसी प्रकार से समसामयिक बनने देने में बहुत बड़ी बाधक हैं। इसलिए कबीर साहब का मिलन बिल्कुल असम्भव है। धरमदास साहब के समाज में बहुत ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें अनेक तिथियाँ धरमदास जी के बारे में उल्लिखित हैं। जैसे—ग्रंथ ज्ञानप्रकाश पृ० सं० ३३ सम्पादक जुगलानन्द बिहारी, ग्रन्थ सुकृत ध्यान पृ० सं० ४ सम्पादक महन्त पंचमदास मउ सहानिया, ग्रन्थ धरमदास जन्मावली बड़ी श्री कबीर चरितम् ब्रह्मलीन मुनि निर्मित पृ० सं० २६८, श्री सद्गुरु कबीर महामहिमा संग्रहक व लेखक मुकुन्दानन्द शर्मा हरदी, जिला बिलासपुर, समाधि टीका हस्तलिखित सत्कबीर महापुराण पृ० सं० ३७२ से ४०६ लेखक सुकृतदास, बरारी ग्रन्थज्ञान स्थित बोध पृ० सं० १४५ सम्पादक जुगलानन्द बिहारी। इस प्रकार के अनेक ग्रन्थ हैं जिनकी सूची यहाँ दी नहीं जा सकती परन्तु इन ग्रंथों के अवलोकन से यही सिद्ध होता है कि श्री धरमदास जी साहब पूर्णरूपेण कबीर साहब से बहुत बाद में हुए हैं।

उपरोक्त तिथियों के अनुसार उनका अवसान काल कबीर साहब के पहले हो चुका था। कहीं पर अवसान काल विक्रम सम्वत् १५२० और कहीं दूसरी तिथि १५६९ दिखाई गई है तथा कबीर वाणी के संग्रह का काल सं० १५२१ वि० दिखाया गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि कबीर साहब की वाणियों का संग्रह धरमदास जी ने न करके किसी दूसरे ने किया और सबसे बड़ा दुःसाहसिक लेख कबीर महापुराण वाले का जो कबीर पंथ के इतिहास से बहुत अनभिज्ञ है। किंवदन्ती के अनुसार धरमदास जी के जगन्नाथ जी में समाधी लेना और श्रुतिगोपाल साहब की समाधी आदि का जो लेख मिलता है वह बिलकुल अप्रासांगिक है और इस प्रकार बहुत-सी भ्रांतिपूर्ण तिथियाँ धर्मदासीय शाखा में विद्यमान है। अब जब धरमदास जी १५२० में ही चल बसे थे तब मगहर के बाद कबीर साहब किस धरमदास से मिले थे। क्योंकि कबीर साहब के शरीर परित्याग के ५५ बरस पहले ही धरमदास जी जा चुके थे, जब जा चुके थे तो कबीर साहब मगहर के बाद किसको शिक्षा

दिया यह विचारणीय विषय है और इसके चलते सारे वे अवतरण और सब के सब लेख अप्रमाणिक हो जाते हैं जो कबीर और धरमदास के सम्वाद के रूप में प्रस्तुत किए गये हैं। यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि कबीर पंथ में बहुत बड़ा उलट फेर हुआ है और बनावटी समाज अपने को असल बनने के लिए कोई कोर कसर नहीं छोड़ रखा और जो विचारधारा कबीर साहब ने समाज को दिया था और समाज उससे रंगा था। उस विचारधारा का बहुत बड़ा बहिष्कार किया गया और अनेक प्रकार के विचार कबीर समाज में समाविष्ट किये गये जिसका परिणाम कबीर पंथ के लिए बड़ा भयावह हुआ और आज तक कबीर पंथ में विघटन होता जा रहा है। संसार में विघटन कुछ न कुछ सभी धर्मों में हुआ है लेकिन इस छोटे से कबीर पंथ में सबसे ज्यादा बिखराव और उलटफेर किया गया है। मूल पन्थ से लोग हटकर तमाम गद्दियाँ स्थापित किये और मूल पन्थ के शिक्षा-दीक्षा से नई-नई दीक्षाओं का सर्जन होने लगा। परिणाम यह हुआ कि एक कबीर पन्थी दूसरे को नीचा दिखलाने को पूरी कोशिश में जुट गया। प्रतिस्पर्धा में कबीर साहब की प्रकट स्थली में दूसरे प्रकट स्थल सिद्ध करने की अहर्निश चेष्टा हो रही है अर्थात् एक की मान्यता उलटने की होड़ लग गयी है। अनुराग सागर नामक ग्रन्थ में मूल कबीर पन्थ की बारह शाखाओं को खूब गाली-गल्लम दिया गया है और यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि वर्तमान में जितने भी कबीर पन्थ के मूल स्थान हैं उन सब स्थानों पर बांधोगढ़ व कुदुरमाल से पुजारी के रूप में सब शाखाओं पर भेजे गये हैं। यहाँ तक कि श्रुतिगोपाल साहब को धरमदास जी का खवास भी लिखा गया है। इसी प्रकार से भगवान् गोस्वामी को जाति का अहीर और चोर लिखा गया है। अर्थात् मूलपन्थ की बारहों शाखाओं को बहुत से गाली-गलौज, ऊँच-नीच दिखाया गया है और अपने स्वयं कबीर बनने की चेष्टा की गई है। कृत्रिम लोग जो मार्ग अपनाया उससे विघटन होते ही जा रहा है और अब उनके पन्थ में भी विघटन बढ़ते जा रहा है। यों कहिए सागर ग्रन्थ निन्दा के ग्रंथ ही हैं और कबीर साहब की ऐतिहासिकता पूर्णरूपेण समाप्त हो गई, क्योंकि इतिहासज्ञों की दृष्टि में कबीर साहब १४५६ में प्रकट होते हैं। परन्तु सागर और बोधग्रन्थों में कबीर साहब को विष्णु के समय में दिखाया गया है, गरुण जी को चेला बनाना, हनुमान जी को चेला बनाना, रावण को मन्त्र फूंकना इत्यादि बातें कबीर साहब के इतिहास को न मानना और उन्हें ऐतिहासिक पुरुष न मानने की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। सागरों का और गुरुबोध ग्रन्थों का निर्माण हिन्दू पुराणों की स्पर्धा में किए गये हैं परन्तु मजे की बात यह है कि पुरुषों में जितने अवतरण हैं और लगभग जितने ऋषि हैं। ये सब

ऋग्वेद के ऋषि और अवतरण हैं। इसलिए पुराणों को सदा अप्रमाणिक नहीं कहा जा सकता। प्रायः पुराण वेद सम्मत माने जाते हैं जहाँ तक मुझे वेद की जानकारी है वे सब ऋषि ही पुराण के ऋषि हैं और पुराण की कथाएँ भी वेद से जुड़ी हुई है। परन्तु सागर ग्रंथ, बोधग्रंथ और कबीर मन्सूर क्या वेद स्वरूप कबीर बीजक, कबीर साखी, कबीर ग्रंथावली, गुरुग्रन्थ साहब के अन्तर्गत आए पद कबीर साहब के पदों से क्या कोई सम्बन्ध है ? यदि सम्बन्ध नहीं है तो यह कहना पड़ेगा कि सागर ग्रंथ और बोध ग्रन्थ तथा कबीर मन्सूर पूर्णरूपेण कल्पना प्रसूत हैं। ऐसी कल्पना जो कहीं मिलेगी नहीं इन आधारहीन ग्रन्थों से कबीर साहब की शिक्षा का कितना बड़ा नुकसान हुआ है जो कहा नहीं जा सकता। इसलिए संसार के मनुष्यों को यदि कबीर साहब को जानना है, तो उनकी मूल वाणियों का ही अवलोकन करें।

"कबीर चौरा मूलगादी"

मूलगादी कबीर चौरा मठ, सी० २३।५ वाराणसी, कबीर चौरा प्रखण्ड में विद्यमान है। सरकारी लेखों से प्रमाणित हो चुका है कि, यह कबीर चौरा प्रखण्ड सर्वप्रथम नरहरपुरा ग्राम में पड़ता था। आज भी जमीन के कुछ भाग की मालगुजारी (देय-कर) नरहरपुरा के नाम से ही आता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सद्गुरु कबीर साहब नरहरपुरा ग्राम, जनपद-वाराणसी के निवासी थे। इसकी साक्षी तमाम सरकारी कागज पत्तरों से भरी पड़ी है। क्योंकि तत्कालीन साहित्यकार अनन्त दास जी विक्रम सम्वत् १६४५ में उल्लेख करते हैं कि—

"काशी बसे जुलाहा एक, हरि भक्तन के पकड़ी टेक।"

इससे सिद्ध हुआ कि कबीर साहब काशी के ही निवासी थे। दूसरी एक पंक्ति उनके काशी निवास की पुष्टि करती है जो बीजक में उल्लिखित है—

"तजलौं मैं काशी मति भइ भोरी, प्राणनाथ कहुँ का गति मोरी।"

कबीर साहब पहुँचे हुए महात्मा थे। परन्तु मगहर परिगमन पर काशी छोड़ने का क्षोभ उन्हें अवश्य था। इसी प्रकार से पण्डित परशुराम चतुर्वेदी जी, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी, डॉ० केदारनाथ द्विवेदी जी आदि भारत के हिन्दी लेखक और अंग्रेजी लेखक विदेशी लोग भी यह प्रमाणित पाये कि कबीर साहब काशी के ही निवासी थे। अब विचार यह करना है कि काशी में निवास किया तो किस स्थान पर किया ? कबीर चौरा मठ नीरु-टोला जहाँ पर उनकी अनेक स्मृतियाँ विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त पूरे काशी में कहीं उनके रहने

का पता नहीं है। लहरतारा में केवल घण्टा दो घण्टा वे रहे होंगे, पश्चात् वर्तमान नोरु-टीला कबीर मठ उनकी मूलभूमि है। और इस वाराणसी नगर के साक्ष्य के आधार पर जन-जन से पूछा जाय तो यही बताएँगे कि कबीर साहब का मूल स्थान और उनका निवास वर्तमान कबीर चौरा मठ ही था। कबीर चौरा की अधिक भूमि महराजा अवसान सिंह के द्वारा प्राप्त हुई थी जिनके अनुलेख विद्यमान हैं और यहाँ कि जो परम्परा है वह तेइसवीं वर्तमान है। इस मठ के कबीर साहब से लेकर बाइस गुरु गुजर चुके, तेइसवें में आचार्य गंगाशरण दास वर्तमान हैं। और प्रायः देश-विदेश के विद्वान् और देश के नेतृत्व वर्ग इसी मठ में आकर दर्शन-पर्सन करते हैं। प्रथम कबीर साहब से स्थापित गद्दी होने के कारण इसको मूलगादी या आदि कबीर मठ कहते हैं। सारे प्रमाणों के रहते हुए भी कतिपय लेखक, कतिपय अनुसंधाता भ्रम के शिकार हो जाते हैं। अभी-अभी एक पुस्तक हिन्दू मठ नामक छपकर सामने आई है, जिसके अनुसंधान कर्त्ता डॉ० त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी हैं। आपका काम तो बड़ा सराहनीय (प्रशंसनीय) है, परन्तु इतना बड़ा महत्त्वपूर्ण मठ जो देश-विदेश में प्रख्यात है। उस मठ को आप शीर्षक के द्वारा इंगित भी नहीं किया, प्रत्युत कबीर कीर्ति मंदिर मठ काशी को ऐतिहासिक मठ मानकर उसके बीच-बीच में कबीर चौरा मठ का उल्लेख किया, जो नकारात्मक रूप में हुआ है। मुझे आप जैसे विद्वानों से यह आशा नहीं थी कि कबीर चौरा मठ वाराणसी का अस्तित्व ही समाप्त कर देंगे। कबीर कीर्ति मंदिर सड़क पर होने के कारण लोग वहीं पहुँचते हैं, और इसी प्रकार प्रथम कबीर कीर्ति मंदिर को देखकर वहाँ के प्रबंधक से जानकारी लेकर आपने जो लिखा ऐतिहासिक नहीं था। जिसको अभी लगभग ३० वर्ष बने हुए हो उस मंदिर को तो आप सारा इतिहास और 'धर्मदासीय' शाखा के बारे में लिखते-लिखते कुदुरमाल से जामनगर तक पहुँच गये। मुझे किन्हीं मंदिरों से कोई भेद-भाव नहीं है। सभी मंदिर हमारे ही हैं, परन्तु जिसका जो स्थान है वही स्थान देना चाहिए। परपितामह का त्यागकर नापत (नाती) की प्रसंशा करना बड़ी लेखनी का काम नहीं है। आपको विदित हो कि सद्गुरु कबीर मंदिर के इतिहास के लिए एक ही शिला लेख महान् प्रमाण है जो सद्गुरु कबीर मंदिर के प्रांगण में लगा हुआ है और नीचे जीर्णोद्धार का शिला भी लगा हुआ है। जिन सज्जनों को देखना हो देख सकते हैं। दुर्भाग्यवश कबीर पंथ के अन्तःकलह ने इतना उठा-पटक किया है उतनी कलह और उठा-पटक दूसरे सम्प्रदायों में नहीं है। इस कबीर पंथ में एक इकाई न होने के कारण सब बैंगन की तरह अलग-अलग हो गये हैं। बाहर में तो खरबूजे और नारंगी के तरह सब एक दिखते हैं। परन्तु इनके अन्तः में अनेक कलियाँ हैं,

अनेक वटवारे हैं। सवकी अपनी-अपनी मान्यता है। दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि पचासों विद्वान लिख चुके हैं कि 'धर्मदासीय' शाखा बहुत वाद की हुई है। परशुराम चतुर्वेदी जी ने इस पर अधिक शंका किया है कि अभी 'धर्मदासीय' शाखा के तेरहवीं आचार्य गत हो चुके हैं। अव आचार्य गद्दी की शृंखला भंजित हो गई है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने सभी कबीर पंथी शाखा की गुरु प्रणाली का अपने ग्रंथ में उल्लेख किया है। उनके लेखन काल तक कबीर चौरा की प्रणाली इक्कीस चल रही थी। इसी प्रकार से उन्होंने विद्दुपुर, धनौती आदि की गुरु प्रणाली लिखी है। आचार्य द्विवेदी ने अन्य आधारों के रहते हुए कुछ धरम दास के पदों को आधार बनाया और यह निष्कर्ष निकाला कि 'धर्मदासीय' शाखा के आचार्य धरमदास जी कबीर साहब से बहुत वाद में हुए हैं। एक गुरु का काल २५ वर्ष मानकर उन्होंने सारा हिसाव लगाया है। उनकी गणना के अनुसार धर्मदास जी कबीर साहब के बहुत पश्चात् हुए हैं। कबीर साहब के धरमदास मौखिक शिष्य न होकर उनके सूर्त शिष्य कहे जा सकते हैं। क्योंकि इसमें इनके पहले जो धरमदास जी के पद दिये गये हैं ? उनसे ही विदित हो जाता है कि वे कबीर साहब के दर्शन नहीं कर पाये थे। इसी प्रकार से रामरतन भटनागर, केदारनाथ द्विवेदी, पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी भी कबीर के समसामयिक धरमदास जी को नहीं मानते हैं। परन्तु जो धरम दास जी के पंथ में साहित्य बने वे उन साहित्यों पर कबीर साहब का नाम लिखवाये। उन साहित्यों में पूरे कबीर पंथ को जो मूलगादी कबीर मठ वाराणसी के थे, अर्थात् जो 'धर्मदासीय' शाखा के नहीं थे उनके प्रति बहुत आक्षेप-प्राक्षेप लिखे गये। उनके साहित्य में अन्य अनर्गलों को छोड़कर ये अनर्गल बहुत अधिक हैं। जो कबीर साहब के मौखिक शिष्यों को अपना दुश्मन बनाया और कबीर बोजक को भी नकार दिया, बोजक के बारे में तो यहाँ तक लिखा है—

"बीजक ज्ञान दूध जो थापे, जस गुलर कीडा घट व्यापे।"

इस प्रकार के अनेक अवतरण निन्दापरक लिखे गये हैं। सम्भव है कि सबका गुरु बनने का विचार हो जिसके परिणाम बड़े भयानक हुए। जो परस्पर में मेल-जोल होता है वह नहीं रह पाया क्योंकि 'धर्मदासीय' का बरावर कबीर के मौखिक शिष्यों पर अग्नेयास्त्र चलता रहा और आज भी वह क्रम चालू है। एक दूसरे को नीचा दिखलाना ही उन लोगों का प्रचार है। अभी देख लीजिए लहरतारा में एक मन्दिर निर्माण पर है और दूसरा जो मूल मंदिर है जो बहुत काल से विद्यमान है जिसमें कबार साहब की प्रतिमा रखी गई है

और संसार के सभी लोग स्वीकार चुके हैं कि कबीर साहब के प्रकट भूमि का मन्दिर जो काशी कबीर चौरा मठ वाराणसी से सम्बन्धित है और वहीं सब दर्शन करने भी जाते हैं। परन्तु 'धर्मदासीय' लोग नये मन्दिर को ही मूल मन्दिर कहना शुरू कर दिये हैं केवल इसलिए कि हम भी महत्त्व प्राप्त करें और बड़े जोर-शोर से देश में तथा विदेश में गाँव-गाँव में, नगर-नगर में चन्दा वसूलते फिरते हैं। और साथ ही कहते हैं कि जहाँ हम मन्दिर बनवा रहे हैं वही कबीर साहब की असली भूमि है। कितना बड़ा झूठ, कितनी असत्य-वादिता जो कबीर साहब झूठ के समान कोई पाप नहीं माना जो किसी ढोंग-धतूरे को नहीं माना आज वह सब धरमदासियों में हो रहा है। मेरा किसी मन्दिर से कोई विरोध नहीं है कबीर साहब सबके हैं सभी शाखा वाले वहाँ मन्दिर बना सकते हैं। परन्तु मूल मन्दिर को ठोकर न दें उसका इतिहास जनता के सामने गलत पेश न करें, क्योंकि काशी में, अयोध्या में, मथुरा में, विश्वनाथ मन्दिर, राम मन्दिर, कृष्ण मन्दिर जो विवादाग्रस्त हैं। संसार आज उन्हीं को महत्त्व दे रहा है। उक्त तीनों पुरियों में हजारों शिव मंदिर हैं, हजारों राममन्दिर हैं सहस्रों कृष्ण मन्दिर हैं परन्तु जो मूल मन्दिरों का महत्त्व है जो जन्मभूमि के मन्दिरों का महत्त्व है वह महत्त्व अन्य सहस्रों मन्दिरों का नहीं है। होता तो लोग लड़ाई नहीं करते। उसी प्रकार से जो महत्त्व सद्गुरु कबीर कर्मभूमि के मन्दिर का है, जो महत्त्व मगहर समाधि मन्दिर का है और जो महत्त्व लहरतारा पुराने मन्दिर का है, वह महत्त्व आज सैकड़ों मन्दिर उन-उन स्थलों पर बना दिए जायें तो उस प्रकार के महत्त्व कदापि प्रदान नहीं कर सकते।

सद्गुरु कबीर समाधि मंदिर काशी कबीरचौरा का अस्तित्त्व मिटाने का उपक्रम बहुत पहले से हो रहा है। यहाँ तक कि श्री ब्रह्मलीन मुनि कबीर चरितम् में काशी में कबीर मठ का और उसके आचार्य को पूर्णरूप से नकार दिया। इसी प्रकार से उनकी शाखा के बहुत से लेखक महोदय कबीर चौरा कबीर मठ, सी० २३/५ वाराणसी को नकारते आये हैं और आज भी वह क्रम चालू है। और आशा है कि चालू रहेगा, क्योंकि मानव महत्वाकांक्षा आकाश को भी छूना चाहती है। बड़ी मजेदार बात यह है कि एक कबीर पंथी दूसरे कबीर पंथो के शिष्य की गुरुप्रदत्त माला को तोड़कर अपनी माला पहनाता है। इस छोटे से उदाहरण को विद्वान लोग पूरा समझ लेंगे। पंथ में रहने के कारण बहुत संकोच करना पड़ रहा है। क्योंकि पंथ के बाहर के लोग सब जानते हैं। अब आइये अपने पूर्व विचार पर—

श्री सद्गुरु कबीर मंदिर कबीर चौरा मठ वाराणसी के काल का उल्लेख शिलालेख के अनुसार यह मंदिर राजा वीरदेव सिंह वघेल के द्वारा आचार्य श्री श्रुति गोपाल साहब की अध्यक्षता में विक्रम सम्वत् १५७८ में बनवाया, कुल लागत ३४८७ रुपया पांच आना दो पैसे लागत अंकित है। तात्पर्य यह है कि जितने भी अन्तःवाह्य के साक्ष्य हैं वे सब कबीर साहब का निवास काशी में ही बतलाया है और धरमदास जी की शाखा के पुस्तकों में भी कबीर साहब को काशी का होना बतलाया गया है। सद्गुरु महामहिमा में तो सारा सम्वाद कबीर साहब से कबीर चौरा वर्तमान मठ में ही हुआ है जिनको उक्त पुस्तक को देखना हो वह मेरे पास सुरक्षित है सबसे प्रबल कबीर साहब के लिए काशी की किंवदंतियाँ प्रत्येक काशीवासी के साथ चलती हैं। यही हमें मान्य है और हमारे पास इसके लिए बहुत से साक्ष्य हैं। अब आगे के प्रसंग को देखें जो मथुरा में घटना घटी है उसको नीचे की पंक्ति बतला रही हैं।

'स्वसंवेद में भी पृ० सं० ५४-६५-६६ में लिखा है—

कबुर में चादर पुष्प सो पाई, । ले दोनों द्वै भाग बनाई ॥
मुसलमान तेहि कबुर में धरेऊ । हिन्दू ले समाध सो करेऊ ॥
कबुर बीच ते गये लोपाई । मथुरा नग्र में पहूँचे जाई ॥
धर्मदासहिं बहु भाँति सिखाई । सहित देह पुनि गयो लोपाई ॥
मथुरा नग्र में बहुरि सिधाई । धर्मदास ढिग सतगुरु आई ॥

जनश्रुति से दोहा :—

दानव भूत कबीर ने, धर्मदास ढिग जाय ।
छल बल बहुत दिखाय के दीन्हा पन्थ चलाय ॥

कबीर शिष्यों में सन्त धर्मदास को प्रायः सर्वप्रमुख मानने की प्रवृत्ति पाई जाती है, परन्तु उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर इनके लिए उनका ठीक समसामयिक होना तक भी सिद्ध होता नहीं जान पड़ता। सन्त धर्मदास द्वारा स्थापित कहे जानेवाले कबीर-पंथ अथवा वस्तुतः उसको 'छत्तीसगढ़ी' शाखा की गुरु परम्परा वाली तालिका पर यदि विचार करते हैं और यहाँ पर भी इस पूर्ववत् प्रत्येक गुरु के गद्दीकाल तक का औसतन २५ वर्ष होना स्वीकार कर लेते हैं, तो इनका आविर्भाव काल वि० सं० १७वीं शताब्दी के द्वितीया या प्रथम चरण तक आता है। अतएव इस प्रकार देखने पर इनका कबीर साहब का गुरुमुख शिष्य होना सम्भव नहीं कहा जा सकता। परन्तु प्रसिद्ध है

तथा इस बात का समर्थन कबीर पन्थ के अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों द्वारा भी किया जा सकता है कि ये अपने प्रारम्भिक जीवन में जिस स्थान में बाँधोंगढ़ से मथुरा-वृन्दावन की ओर तीर्थ-यात्रा करने गये थे, इन्हें कबीर साहब के प्रथम दर्शन हुए थे और फिर दूसरी बार इन्होंने उन्हें काशी में भी देखा था। अन्त में फिर कबीर साहब ने इन्हें बांधोगढ़ जाकर भी कृतार्थ किया। इनका आतिथ्य ग्रहण करके उन्होंने इन्हें उपदेश भी दिए थे जिससे स्वभावतः हमारी ऐसी धारणा होने लगती है कि उन्होंने उन्हें जीते जागते शरीर धारण के रूप में देखा होगा तथा उनसे आशीर्वाद लिया होगा, परन्तु कबीर पन्थ के ही एकाध ग्रन्थों की पंक्तियों को पढ़ने पर हमें इस बात का तथ्यवत् स्वीकार करने में हिचक होती हैं। उदाहरण के लिये जब हम देखते हैं कि 'अमर सुख-निधान' कबीर साहब का इनसे जिन्द रूप में ही मिलना कहा था तथा स्वयं इनकी भी रचना में उनका इसके साथ विदेही बनकर मिलना और अपना 'झीना दरस' दिखाना ही बतलाया गया है, तो हमें इस बात में सन्देह करने का आधार मिलता है। हम कभी-कभी इस प्रकार का अनुमान तय करने लग जाते है कि सन्त धर्मदास और सन्त कबीर साहब का भी मिलना कदाचित् वैसा ही रहा हो जैसा सन्त गण और स्वयं कबीर साहब के सम्बन्ध में भी लिखा हुआ पाया जाता है। बिहार वाले सन्त दरिया साहब की 'ज्ञान-दीपक' से तो यहाँ तक भी स्पष्ट हो जाता है कि कबीर साहब ने दो सौ वर्ष अनन्तर स्वयं धर्मदास के रूप में पुनः जन्म ग्रहण किया था, कण्ठी तोड़कर फेंक दी थी तथा एक नवीन पन्थ की स्थापना भी की थी। (पृ० सं० २८२–८३, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, तृतीय संस्करण–१९७२)।

आदि उक्तियों से यह विदित होता है कि सद्गुरु के समसामयिक धर्मदास जी नहीं थे। श्री युगलानन्द बिहारी भारत पथिक कबीरपंथी 'कबीर चरित-बोध' में लिखते हैं कि—"जब कबीर साहब मगहर में गुप्त हुए तब पुनः मथुरा नगर में प्रकट हुए, वहाँ रत्ना को शिक्षा देकर फिर धर्मदासजी को बाँधवगढ़ में दर्शन देकर उपदेशादि दिया। (बोधसागर कबीर चरित बोध, पृ० सं० १८७६।)

तद्रूप ही सद्गुरु कबीर महा-महिमा में भी देखिए पृ० सं० १६६ तथा १६७ में भी वही बात लिखी है। मगहर से सत्य लोक जाने के बाद साहब रत्नाबाई एवं धर्मदास जी से मिले। वह मिलन मथुरा में हुआ था, इत्यादि। डॉ० गुलबदन बिहारी, मिर्जापुर ने अपनी पुस्तक 'सद्गुरु कबीर' प्रकरण, कबीर साहब का चारों युगों में आविर्भाव में पंचमुद्रानामक ग्रंथ का उद्धरण दिया है—

(दशवीं बार) मगहर में गुप्त होने के पश्चात् रत्नाबाई और धर्मदास साहब को मथुरा में मिले। पृ० सं० १७५, इत्यादि लेखों के द्वारा पुष्ट हो जाता है कि श्री धर्मदास जी साहब काशी वाले कबीर से दीक्षित नहीं थे और न ही उनसे भेंट ही हुई थी, क्योंकि शब्दावली में कई बार धर्मदास जी साहब स्तुति करते हैं कि साहब प्रकट होकर मुझे आप दर्शन दीजिए। बिना आपके प्रत्यक्ष दर्शन से मैं बहुत दुःखी हूँ। इसका तात्पर्य यह है कि श्री धर्मदास जी साहब यदि प्रकट दर्शन पाए होते तो उक्त प्रकार से नहीं कहते।

इस प्रकार सभी प्रकार से विचार-विमर्श करने पर यही निश्चय होता है कि श्री धर्मदास जी साहब ने मथुरा में किसी सन्त से सुना हो कि काशी के कबीर बहुत प्रभावशाली थे, जो परमेश्वर के अवतार थे। उक्त बात सुनकर उनके मन में सद्गुरु कबीर के प्रति श्रद्धा हो गई हो और उन्होंने अपना मानसिक गुरु सद्गुरु कबीर साहब को मान लिया हो अथवा उस समय के कोई प्रभावशाली संत रहा हो, जो सद्गुरु कबीर साहब को मानता हो और उन्हीं के दर्शन श्री धर्मदास जी ने किया हो जिसको सद्गुरु समझकर गुरु मान लिया हो या वही बालापीर कबीर, जो साहब का अनुयायी था, उसी ने जाकर उनको दर्शन दिया हो और उसको स्वयं कबीर मानकर स्तुति की गई हो।

बालापीर कबीर बहुत प्रभावशाली थे। यदि कहा जाय कि वही कबीर, जो काशी में प्रगट हुए थे, वही जाकर धर्मदास जी को मिले, तो यह कभी भी नहीं हो सकता, क्योंकि सद्गुरु कबीर का काल वि० सं० १५७५ तक ही रहा है। इधर धर्मदास जी साहब का आविर्भाव काल वि० सं० की सतरहवीं शताब्दी का अन्त है और अठारहवीं शताब्दी का आदि है और उनके कबीर पंथ स्वीकार करने का काल वि० सं० १७७५ है। यह उनके साम्प्रदायिक ग्रंथों में लिखा है कि तीन अवस्था व्यतीत होने पर सद्गुरु कबीर या जिन्द से मुलाकात हुई थी, ऐसी जनश्रुति है[1]।

किसी किसी के मत से धर्मदास जी का काल वि० सं० १६५० था जो भी हो अनेक तिथियों का होना संदेह को जन्म देता है।

सद्गुरु कबीर का अन्तिम समय और धर्मदास जी साहब के मिलन-समय का परिगणन करने पर ठीक श्री दरिया साहब के अनुसार दो सौ वर्षों का अन्तर होता है, जो सत्य है। यद्यपि श्री धर्मदास जी साहब को माननेवाले सज्जनों ने धर्मदास जी का प्रकट काल वि० सं० की पन्द्रहवीं शताब्दी का अन्त माना है, जो पूर्णरूपेण मनगढ़न्त है, क्योंकि इसमें न तो कोई पुष्ट प्रमाण है

---

१. तीन अवस्था बीति जब गयऊ। धरमदास कीहाँ दानव गयऊ॥

और न ही इसमें सत्यता ही है। इधर श्री दरिया साहब के अनुसार तथा अन्य लेखों के अनुसार श्री धर्मदास जी का वर्तमान समय अठारहवीं शताब्दी प्रमाणित होती है जिसको श्री दरिया साहब ने कबीर साहब के अन्तर्धान से दो सौ वर्ष बाद श्री धर्मदास जी का मिलन माना है। अर्थात् वि० सं० १७७५ में जिन्द रूप में कबीर साहब मिले थे या बालापीर मिले थे, जो समीचीन जान पड़ता है और उनके मतावलम्बियों का पन्द्रहवीं शताब्दी कहना गलत है।

इस प्रकार की शंका श्री परशुराम चतुर्वेदी एवं श्री केदारनाथ द्विवेदी जी ने भी की है। श्री केदारनाथ द्विवेदी ने अपने अन्वेषण में कुछ पंजों एवं चिट्ठी-पत्रियों का भी उल्लेख किया है। यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त पञ्जे एवं चिट्ठी अंकित काल में ही हों, क्योंकि अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए धर्मदासी सम्प्रदाय के लोग बहुत से जाली ग्रन्थ बनाकर उसमें सद्गुरु का नाम दे देते हैं। एक बार काशी में कबीर कीर्ति मन्दिर बनते समय 'वंशों' की एक समिति बैठी थी, जिसमें यह विचार हुआ कि कुछ ऐसे कागज पत्र प्रस्तुत किए जायँ जिससे यह सिद्ध किया जाय कि 'काशी कबीरचौरा मठ' कबीर-कीर्ति मंदिर ही हैं, क्योंकि ऐसा कागज-पत्रों से सिद्ध हो रहा है। परन्तु किसी कारणवश उक्त षडयंत्र सिद्ध नहीं हो सका। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि उक्त प्रकार की जब बातें होती ही हैं, तो उक्त समाज की कोई भी बात सत्य नहीं मानी जा सकती। इसीलिए मैंने द्विवेदी जी के लिखे पञ्जों आदि पर विश्वास कम किया है।

सत्योद्घाटन

वि० सं० की छठीं शताब्दी तक बौद्धधर्म पूरे एशिया महाद्वीप में मध्याह्न के सूर्य की भाँति तप रहा था। उसके समक्ष अन्य धर्म झुलस रहे थे। जिससे पराजित होकर वे धर्म अपने उद्गम स्थान की ओर मुड़ गए थे। अतः उसी बौद्ध धर्म से उत्पन्न एक धर्म सम्प्रदाय चल पड़ा था और उस धर्म का उपास्यदेव धर्मराय या यमराज थे, जिनसे भयभीत होकर निम्न-स्तर के लोग धर्मराय की पूजा करते थे।[1] उनका निवास स्थान उड़ीसा

---

१. (क) कुछ रमैनियाँ ऐसी हैं जिनमें 'धर्म' को पूज्य कहा गया है और साधना में उसे उच्चतम स्थान दिया गया है। कदाचित् इस तरह की सामग्री बंगाल से छत्तीसगढ़ तक किसी फैले हुए धर्म सम्प्रदाय की साधना से प्रभावित हो। कदाचित् ५०० ई० के लगभग दक्षिण बिहार से लेकर बंगाल तक की हीन जातियों में धर्मदेव की पूजा होने लगी थी।→

के जंगली क्षेत्रों से लेकर बंगाल, बिहार और मध्यप्रदेश आदि जंगली क्षेत्रों में था। वे लोग धर्म देवता की उपासना किया करते थे। यह क्रम लगभग वि० की अठारहवीं शताब्दी तक चलता रहा। इधर उत्तर से उसी समय कबीर पन्थ भी मृगराज की तरह दहाड़ते हुए वन-पहाड़ों को लाँघते हुए धर्म सम्प्रदाय का अस्तित्व मिटाते हुए दक्षिणी समुद्र तक जा पहुँचा।

इस प्रकार धर्म सम्प्रदाय वालों का प्रचार-प्रसार रुक गया। उनकी जनता कबीर पन्थ में मिलने लगी। इसे देखकर धर्म सम्प्रदाय के आचार्य को बहुत

→बौद्धों के त्रिधर्म (त्रिरत्न) बुद्ध, धर्म और संघ में से धर्म के अवशेष थे। जब मुसलमान इस देश में आए तो बौद्धों ने उन्हें धर्मदेव का ही अवतार माना। मध्ययुग में यह धर्म सम्प्रदाय पूर्णरूप से सशक्त था और उसमें शाक्तों और तांत्रिकों के गुह्य और रहस्यमय कर्मकाण्डों का समावेश बड़ी तीव्रता से हो रहा था। छत्तीसगढ़ के कबीर-पंथ के प्रवर्तक धर्मदास हैं। सम्भव है यह पहले किसी धर्म सम्प्रदाय में ही दीक्षित हों या वे उन कबीर पंथियों द्वारा कल्पित व्यक्ति हों, जो 'धर्म' सम्प्रदाय से कबीर पंथ में गृहीत हुए। इसमें सन्देह नहीं कि कबीर-पंथ की अनेक धार्मिक और कर्मकाण्डी प्रवृत्तियाँ 'धर्म' सम्प्रदाय की ही अवशिष्ट हैं। ("कबीर साहित्य की भूमिका", रामरतन भटनागर, पृ० सं० २४६, संस्करण–१९५०।)

(ख) संक्षेप में स्थिति यह है कि राढ़ भूमि, पूर्वी बिहार, झारखण्ड और उड़ीसा में एक ऐसे परम देवता की पूजा प्रचलित थी (और कहीं-कहीं अब भी है) जिसका नाम धर्म (धर्मराय) और निरंजन था और जिस पर बौद्ध मत का जबर्दस्त प्रभाव था। यह भी हो सकता है कि वह बौद्ध मत का आरंभ में प्रच्छन्न रूप रहा हो पर बाद में विस्तृत रूप बन गया हो। कबीर मत को इस पन्थ से निबटना पड़ा था। विशेष रूप से कबीर-पंथ की दक्षिणी शाखा (अर्थात् धर्मदासी सम्प्रदाय) को इस प्रबल प्रतिद्वन्द्वी मत को आत्मसात् करने का श्रेय प्राप्त है। इस सम्प्रदाय को माननेवालों पर अपना प्रभाव विस्तार करने के लिए कबीर मत में उनकी समूची जटिल सृष्टि प्रक्रिया और पौराणिक कथाएँ ले ली गई थीं। केवल इतना सुधार सर्वत्र कर लिया गया था कि निरंजन के प्रभाव से जगत् को मुक्त करने के लिए सत्य पुरुष ने बार-बार ज्ञानी जी को इस धरा-धाम पर भेजा था। ज्ञानी जी कबीर का नामान्तर है। (मध्यकालीन–धर्मसाधना, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० सं० ९०, चतुर्थ संस्करण–१९७०।)

क्षोभ हुआ। आप लोगों को ज्ञात हो कि धर्म सम्प्रदाय का आचार्य धर्म देवता का प्रतीक माना जाता था। जिसने कबीर पन्थ को स्वीकार करने के बाद भी अपना नाम धर्मदास रखा। वास्तव में धर्मदास नाम का कोई व्यक्ति नहीं था और न ही उसकी स्त्री का नाम आमिनी ही था। धर्म सम्प्रदाय वाले मुक्ति को ही आमिन कहते थे, जो अमृत या अमर के स्थान पर रखा गया था। इसी प्रकार नारायणदास एवं चूड़ामणि नामक पुत्र को भी कल्पित ही समझना चाहिए। अपने नेता का स्वर्गवास हो जाने पर जो लोग कबीर पंथ में समाविष्ट हो गये थे वे अपने को धर्मदासीय कहने लगे, जिसे वे आज तक कहते आ रहे हैं। यह निश्चित है कि लोगों का सम्बन्ध अपने पुराने घरों से अटूट रहता है। यह स्वाभाविक भी हैं। इसी से धर्मसंप्रदाय वाले अपने उपास्य देवता का नाम साथ में ही लेते आये, जो कबीर पंथ को स्वीकार करने पर भी नहीं छूट पाया, जैसे अरब वाले इस्लाम को स्वीकार करने पर भी अपने पूर्व उपास्य इष्ट चंद्रमा एवं तारा को साथ रखे हुए हैं। ज्ञात रहे कि धर्म-सम्प्रदाय वालों ने कबीर को पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं किया। केवल 'कबीर' नाम को ही ग्रहण किया, परन्तु कबीर साहब की शिक्षा से वे दूर ही रहे, क्योंकि उनका साहित्य भण्डार विपुल था। वे अपने साथ अपने साहित्य को भी लेते आये थे और कालान्तर में कबीर पंथ से साहित्यिक बातों को लेकर मतभेद भी हो गया। धर्मसंप्रदाय के लोग कबीर पंथ में आकर मिले थे। वे लोग अपने साहित्य का अपमान सह नही सके। उन्होंने पूर्णरूपेण कबीर साहित्य का परित्याग कर दिया। कबीर साहित्य का मूर्धन्य ग्रन्थ 'बीजक' है, उसकी वे लोग निन्दा करने लगे। यहाँ तक कि 'बीजक' को मानने बनाने वाले को वे लोग गूलर के कीटाणु तक कहने लगे[1] और उन्होंने अपनी पूर्व तांत्रिक पद्धति को अपना लिया क्योंकि धर्म-सम्प्रदाय एक तांत्रिक सम्प्रदाय था। आज भी उनके यहाँ बावन जंजीरा आदि मंत्रों का हिन्दी में अनुवाद चलता है जिसे पान आदि पर 'बीजमन्त्र' के रूप में लिखकर दिया जाता है।

इधर जब कुछ दिनों से कबीर साहित्य की खोज होने लगी और 'बीजक' एवं 'कबीर-ग्रन्थावली' को ही कबीर साहित्य का प्रामाणिक रूप दिया जाने लगा है तथा धर्म-सम्प्रदाय के प्रायः सभी कबीर नामधारी साहित्य को अप्रामाणिक सिद्ध कर दिया गया है तब से कबीर पंथी बनने के लिए धर्मदासी

---

१. बीजक ज्ञान दूत जो थापै।
उस गूलर कीड़ा घट व्यापै॥
—अनुराग सागर, पृ० १२७।

सम्प्रदाय के लोग हाय तोबा मचाने लगे हैं और 'बीजक' आदि पर टीका-टिप्पणी भी लिखने लगे हैं। अब आत्मरक्षार्थ कबीर ग्रन्थ को वे अनाप-शनाप भी कहने लगे हैं। विचारणीय विषय तो यह है कि अपने को कबीरपंथी कहते हुए वे कबीर पंथ से अलग रहते हैं। कबीरपंथी, 'बीजक' का पाठ करते हैं, तो वे लोग 'अनुराग सागर' का पाठ करते हैं। जब कबीरपंथी 'राम-नाम' जपते हैं, तो वे लोग 'सतनाम जपते हैं। तात्पर्य यह है कि कबीर पंथ से इन लोगों की बिल्कुल भिन्नता है। मजे की बात तो यह है कि कबीर साहब ने 'निरंजन' को पारब्रह्म का प्रतिरूप माना है और धर्म-सम्प्रदाय के लोग 'निरंजन' को कालदूत, धूर्त्त, पापी, सबको नष्ट करने वाला माना है। कबीर-ग्रंथावली[1] में एवं बीजक में कबीर साहब के वचन देखिए और अनुराग-सागर[2] में धर्म सम्प्रदाय के लोगों का वचन देखिए। आपको स्वयं ज्ञात हो जाएगा कि अपने साहित्य में कबीर साहब का नाम इसलिए लिखा है कि ताकि यह मालूम हो जाय कि कबीर साहब भी धर्म सम्प्रदाय के विचारों के समर्थक थे और धर्म-सम्प्रदाय के लोगों ने अपने सिद्धान्त की प्रत्येक बात सद्गुरु कबीर के मुख से कहलवाई है। यहाँ तक कि मैंने सारा भेद धर्म सम्प्रदाय के लोगों को ही दे दिया है। बिना इसके हाथ से पान-परवाना पाये कोई मुक्त नहीं हो सकता है।

उपर्युक्त बातों से ही पाठकों को स्वयमेव ज्ञात हो जायगा कि इसमें कितनी सत्यता है। पाठकों को चाहिए कि कबीर-साहित्य को धर्म सम्प्रदाय के साहित्य से मिलाकर देखें कि इनमें कितना अन्तर है। उनके साहित्य प्रायः संवाद के रूप में हैं। उनको देखने से यह ज्ञात हो जाएगा कि वे पूर्ण रूप से कल्पित हैं। एक बात पर और ध्यान देना होगा कि धर्मदास जी को बयालिस पीढ़ी वंश चलने का आशीर्वाद कबीर साहब से मिला था। यह बात बिल्कुल गलत सिद्ध हुई, क्योंकि जनश्रुति है कि तीसरी पीढ़ी के बाद वंश चलना बंद हो गया। उसके बाद वहाँ गोद लेने की प्रथा चली। पुनः सात पीढ़ी चलने के बाद वंश चलना बंद हो गया तब पुनः गोद लिया गया। इसी प्रकार से क्रम चलता रहा और आज वह पूर्णरूपेण समाप्त है। यदि कबीर साहब धर्मदास जी को मिले होते और उक्त वरदान दिए होते, तो उनका वचन टलता नहीं परन्तु 'अनुरग-सागर' आदि ग्रंथों का कथन बिलकुल अप्रामाणिक सिद्ध हुआ है।

इस प्रकार के लेखों का तात्पर्य यही है कि कबीर साहब के नाम पर 'धर्म सम्प्रदाय' को जीवित रखा जाय, क्योंकि अंदर-अंदर भावना कबीर-पंथ के

१. कहँ कबीर कोई बिरला जागै।
अंजन छाँड़ निरंजन लागै॥
अंजन अलप निरंजन सार।
इहै चीन्ह नर करहु विचार॥
अंजन उतपति वर्तन लोई।
बिना निरंजन मुक्ति न होई॥

—कबीर ग्रंथावली, पृ० सं० २०२, पद सं० ३३६-३७।

२. पाँचवें शब्द जब पुरुष उचारा।
काल निरंजन भव अवतारा॥

—अनुरागसागर, पृ० १६।

लच्छ जीव नित ग्रासन करहू।
सवा लच्छ नित प्रति बिस्तरहू॥

—अनुरागसागर, पृ० सं० २५।

प्रति प्रतिकूल है। यदि उन वंश वालों की भावना अच्छी होती तो वे कबीर-पंथ के मूल आचार्य को अपना दास नहीं बनाते या सद्गुरु कबीर के अन्य प्रमुख शिष्यों को चोर आदि नहीं कहते। आखिर गाली देने का कारण अवश्य होगा। चाहे जो भी हो। ज्ञात रहे कि कबीरपंथियों ने कभी कोई गाली-गल्लम वंशवालों को नहीं दिया। लेकिन आज विवश होकर उनकी चर्चा करनी पड़ रही है। मैं यही कहने के लिए बाध्य हो रहा हूँ कि वंशवाले कबीर पंथी नहीं हो सकते इसलिए कि उनके विचार कबीर पंथ से बिल्कुल भिन्न हैं। यही कहा जा सकता है कि वे धर्म सम्प्रदाय के घोर समर्थक हैं। ऐसा नहीं होता तो वे कबीर पंथ से अलग नहीं होते और उनके सभी ग्रंथों में लगभग कबीरपंथ के आचार्य के ऊपर आक्षेप नहीं होता। सबसे अधिक अनाप-शनाप लिखनेवाला 'अनुराग-सागर' का लेखक है। उसी का अनुयायी सद्गुरु कबीर चरितम् का लेखक है। उनकी बातों पर विचार किया जाय तो इस प्रकार की पाँच पुस्तकें निर्मित हो जाएँगी। इसलिए गंदी बातों का उल्लेख करना अनुचित जानकर छोड़ दिया गया है। वैसे तो आलोचना की सामग्री अनेक हैं, किन्तु हमें निंदनीय बातों पर ध्यान न देकर तथ्य का उद्घाटन मात्र करना है।

जो भी हो, धर्मदास कभी भी हुए हों या न हुए हों पर उनके उक्त नाम पर जो कुछ शिक्षाएँ हैं, जहाँ तक मानव कल्याणकारी हैं उनको मैं भी ग्रहण करता हूँ। अनर्गल बातों में मेरा विश्वास नहीं है। अतः धर्म सम्प्रदाय के कबीर पंथ में मिलने के आस ही पास श्री गरीब साहब हुए हैं। कहा जाता

है कि वि० सं० १७७४ में रोहतक जनपद के अन्तर्गत छुड़ानी नामक गाँव में जाट घराने में उनका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि आप जन्मसिद्ध योगी पुरुष थे। आपका प्रचार-प्रसार हरियाणा प्रान्त में अधिक है। आपकी वाणियों का एक वृहद्काय संग्रह हुआ है, जो ग्रंथ साहिब के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें त्याग वैराग्य की अनेक वातें भरी पड़ी हैं और वे सद्गुरु कबीर की वाणी के अनुवाद स्वरूप ही हैं, जिसमें अनेक उदाहरण दिये हुए हैं।

उपर्युक्त सन्तों की भाँति इस कबीर पंथ के समानान्तर में और भी कितने संत महात्मा हुए हैं। उदाहरणार्थ स्वामी दादूदयाल जी, श्री शिवनारायणदास जी एवं श्री पलटू साहब आदि का नाम लिया जा सकता है और भी कितने महात्मा हुए हैं जिनके विचार सद्गुरु कबीर से मिलते-जुलते हैं, जो मानव कल्याण के लिए सर्वश्रेष्ठ हैं।

श्री रामरहस्य साहब-प्रसंग

श्री रामरहस्य साहब प्रकाण्ड विद्वान्, मेधावी पुरुष एवं दर्शनशास्त्र के मर्मज्ञ हुए हैं, जिनकी वाणी पढ़ने से स्वयमेव परिज्ञात हो जाता है। आप ही एक ऐसे महापुरुष हैं जिनका जीवनचरित्र निर्विवाद है। जो पूर्ण खोज के बाद तथा आपके जन्मभूमि पर जाकर पूछ-ताछ किया गया एवं टेकारी महाराज के यहाँ से कागज-पत्रों से भी मिलाया गया। इधर काशी कबीरचौरा की परम्परा के अनुसार एवं कागज-पत्रों के द्वारा 'कबीर बाग' गया के प्रमाण पत्रों के द्वारा छान-बीन कर आपकी जीवनी पंडित प्रवर महाराज श्री राघव-दास जी साहब ने लिखा है तथा मैं भी श्री रामरहस्य साहब के जीवन चरित्र के बारे में अन्वेषण करता रहा। परन्तु पं० महाराज राघवदास जी के अनुसार ही तथ्य उपलब्ध हुए। इसलिए उनका जीवन-चरित्र अलग से न लिखकर पंडितवर श्री महराज साहब के लिखे हुए जीवन चरित्र को ही मैंने अनुमोदन कर दिया है। परन्तु श्रीराम स्वरूपदास जो साहब के कुछ स्थान से मतभेद हो जाने के कारण श्री रामरहस्य साहब के जीवन-चरित को विवादग्रस्त बनाने के लिए जी तोड़ प्रयास किया है। एक असत्य वस्तु को सिद्ध करने के लिए अपने अनेक लेखों द्वारा प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। रामस्वरूपदास जी ने जो किया है वह नहीं करना चाहिए था। पंचग्रंथी से लेकर प्रायः आपने अपने सभी सम्पादित ग्रंथों में श्री रामरहस्य साहब के जीवन-चरित्र का उल्लेख किया है। आपको यही सिद्ध करना है कि श्री रामरहस्य साहब श्री गुरुदयाल साहब के शिष्य थे, जो एक संन्यासी के रूप में विचरण करते रहे। पाठकों को विदित हो कि घर का कलह बड़ा भयदायी

होता है। रावण-विभीषण, बालि-सुग्रीव, कौरव-पाण्डव, कंस आदि परस्पर के कलह से ही नष्ट-भ्रष्ट हो गये। इसी प्रकार की कलह श्री रामस्वरूपदास जी साहब उत्पन्न कर रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि श्री पूरनदास जी साहब से लेकर नरोत्तमदास जीं साहब तक धर्मदासीय सम्प्रदाय से सम्बन्ध बना रहा। परन्तु श्री काशीदास जी साहब से धर्मदासीय सम्प्रदाय से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। श्री काशी साहब का झुकाव मूलगादी कबीरचौरा की ओर हो गया। परिणामस्वरूप दोनों स्थानों से सन्त आते-जाते रहे। श्री लाल साहब तक बहुत मधुर सम्बन्ध था। श्री लालदास जी साहब पं० श्री राघवदास जी साहब को बुरहानपुर का भावी महन्त बनाना चाहते थे, परन्तु महाराज श्री राघवदास जी त्यागी सन्त थे। उन्होंने महन्ती लेना अस्वीकार कर दिया। श्री राघवदास जी साहब ने लाल साहब को सलाह दी कि कम से कम ४० वर्ष की उम्र होने के बाद ही किसी को महन्त बनाया जाय। श्री लाल साहब के स्थान के ही साधु श्री निर्मलदास जी साहब थे, जिन्होंने बहुत महत्वपूर्ण ग्रंथ भी लिखा है जिस ग्रन्थ का नाम **"निर्मल ज्ञान प्रभाकर"** है। श्री महाराज राघवदास जी साहब ने सुयोग्य जानकर उन्हीं को महन्त बनाने की सलाह दी, परन्तु महन्ती की लिप्सा श्री रामस्वरूपदास जी को दबोचे हुए थी। उन्होंने किसी प्रकार से जान लिया कि निर्मलदास जी साहब महन्त होने वाले हैं। रामस्वरूपदास जी ने अपनी फुआ शान्ती देवी से कहा कि मैं पुनः अपने गुरुद्वारा काशी कबीरचौरा में जा रहा हूँ। श्री शान्ती देवी ने पुनः कबीरचौरा में आने का कारण पूछा। लजाते-शर्माते रामस्वरूपदास जी ने उपर्युक्त घटना कह सुनायी जिसको सुनकर शान्ती देवी बहुत क्षुब्ध हुई और जाकर श्री लाल साहब से उन्होंने उपर्युक्त सभी बातें कहीं। रामस्वरूपदास जी फुआ के सहित काशी आने के लिए तैयार हो गये। स्मरण रहे कि श्री लालसाहब, श्री राघव साहब और श्री रामस्वरूप साहब को ही अधिक मानते थे, क्योंकि श्री राघव साहब बुरहानपुर में रहकर वहाँ के साधुओं को 'बीजक' का अध्ययन कराते रहे, जिससे आकृष्ट होकर श्री राघव साहब को महन्त बनाना चाहते थे परन्तु श्री राघव साहब की इच्छा न देखकर उनके कहे हुए निर्मल साहब की ओर उनका झुकाव नहीं गया। इसका कारण था कि निर्मल साहब एक अक्खड़ साधु थे। इसलिए लाल साहब उनको नहीं चाहते थे। इधर श्री रामस्वरूपदास जी को असन्तुष्ट जानकर कि यह मेरे हाथ से निकलना चाहता है। यदि यह अपने गुरुद्वारे में चला जाएगा तो बेहाथ हो जाएगा और शान्ती देवी भी चाहती थी कि रामस्वरूप-

दास जी को ही महन्त वनाया जाय। सभी तथ्यों पर विचार-विमर्श करने के वाद लालसाहव ने सोचा कि एक मेधावी सुयोग्य लड़का हाथ से निकल जायेगा। इसलिए श्री महाराज साहव से विचार-विमर्श करके श्री रामस्वरूप दास जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। परन्तु रामस्वरूपदास जी साधुओं के द्वारा जान गए कि श्री राघवदास जी मेरे गुरुभाई होते हुए भी मुझे यहाँ का महन्त वनने देना नहीं चाहते थे। तभी से श्री राघवदास जी साहव से भीतर ही भीतर मतभेद रखने लगे। श्री महाराज राघव साहव को यह ज्ञात हो गया कि रामस्वरूपदास जी मेरे से असन्तुष्ट रहते हैं। वे वहाँ से कुछ दिनों के वाद गुजरात में अपने मंदिर पानी दरवाजा में। वही पर अनेक वर्ष रह कर पंच ग्रंथी, वीजक, कवीर परिचय आदि ग्रंथों पर टीका लिखी श्री महन्त मुक्ता दास जी साहव, महाराज राघव दास जी साहव को वड़ी सहायता सहयोग देते रहें जहाँ पर आज कल श्री महंत पं० रामेश्वरानन्द साहव विराजते हैं। जहाँ पर कुछ काल रहकर सद्गुरु को वाणियों का प्रचार कार्य करते रहे। इसके वाद वहाँ से काशी कवीरचौरा में आकर उन्होंने सद्गुरु कवीर प्राकट्य भूमि लहरतारा में 'बीजक विद्यालय' की स्थापना की जहाँ पूरे कवीर पंथ के लोग आकर कवीर साहित्य का अध्ययन करते रहे। वहुत दिनों तक श्री राघवदास जी साहव समाज की सेवा करते रहे। अन्त में पारखपद में लीन होकर पंचभौतिक शरीर को छोड़कर सत्यलोक चले गए। श्री महाराज राघवदास जी साहव ने जितने ग्रंथों पर टीका-टिप्पणी की थी, श्री रामस्वरूपदास जी प्रायः उनके विलकुल विपरीत टीका-टिप्पणी लिखी और प्रत्येक ग्रंथ में श्री महाराज राघवदास के प्रति अपशब्दों का प्रयोग भी किया, जिन्हें विज्ञ पाठकगण पढ़कर देख सकते हैं। यह कहा जा चुका है कि भाई का दुश्मन जव भाई हो जाता है, तो उसको मिटाने के लिये कुछ भी कोर कसर नहीं रखता है। सर्वप्रथम श्री रामरहस्य साहव का जीवन चरित्र श्री राघव साहव ने लिखा था, जो काशी कबीरचौरा के पन्द्रहवें आचार्य श्री शरण साहव के शिष्य थे, जो वुरहानपुर के प्रथम गुरु पूरन साहव के भी गुरु थे। अतः श्री रामस्वरूपदास जी साहव ने अपने बड़े गुरुभाई का लिखा हुआ रामरहस्य साहव का जीवन चरित्र न मानकर समाज में भ्रम का बीजारोपण किया है जिसका परिणाम भयानक भी हो सकता है। श्री रामरहस्य साहव का जीवन-चरित्र उल्टा-सीधा लिखकर अपने सभी ग्रंथों में प्रचार कर रहे हैं। हिन्दी के उद्भट विद्वान् श्री परशुराम चतुर्वेदी जी ने भी श्री रामस्वरूपदास जी के वहकावे में आकर दवी जवान से श्री गुरुदयाल साहव से सम्वन्ध जोड़ा है।

परन्तु एक वात को चतुर्वेदी जी ने स्पष्ट लिखा है कि पंचग्रंथी का निर्माण आचार्य श्री शरण साहव के परामर्श के वाद ही लिखा गया है। ज्ञात रहे कि यदि रामरहस्य साहव, गुरुदयाल साहव के शिष्य होते, तो आचार्य श्री शरण साहव से परामर्श करने की क्या जरूरत थी ? क्योंकि परामर्श गुरु से लेना ही उचित होता है। जो समाज में भी देखा गया है। इससे भी ज्ञात होता है कि श्रारामरहस्य साहव आचार्य श्री शरण साहव के शिष्य थे।

—उत्तर भारत को संतपरम्परा (परशुराम चतुर्वेदी, पृ० सं० ३०४)

इसी प्रकार रामस्वरूप साहब के पद-चिह्नों पर चलने वाले पारखी संत श्री अभिलाषदास जी ने भी अपनी पत्रिका सन् १९७४ की छपी पृ० सं० ४८—४९ पर मनमाने ढंग से रामरहस्य साहव के जीवन-चरित्र पर लीपा-पोती की है जिसका ऐतिहासिक खोजों से कोई सम्वन्ध नहीं है। जो कोई कोविद-अकोविद लिख दिया था, उसी को आँख मूँदकर शिरोधार्य कर लिया गया है। यदि उनको कुछ भी मालूम होता, तो यह नहीं लिखते कि रामरहस्य साहव के निवास गया 'कवोर वाग' पर काशी कवीरचौर का अधिकार वताया जाता है। पाठकों को ज्ञात रहे कि 'वताया जाता' शब्द सदिग्धता के अर्थ में है। ये महाशय कलकत्ता कई एक वार आए-गए होंगे पर यह कृपा नहीं कर सके कि गया उतरकर देखे कि 'कवीर वाग' किसके अधिकार में है। ऐसा न करके लालवुझक्कड़ की वात लोगों के सामने तोड़-मरोड़कर रक्खा गया है। इसका कारण यह है कि श्री रामस्वरूपदास जी साहव के विचारों में मेल रखना है, क्यों कि रामस्वरूपदास जी साहब जो गाँठ वाँध ली है वह छूटना वड़ा कठिन है और इधर स्वयं अभिलासदास जी लिखते हैं कि वीरापान का उल्लेख पंचग्रन्थी में यत्र-तत्र मिलता है, जो भक्तों को दिया जाता है। उक्त वीरापान काशो कवीरचौरा एवं वंश घर में दिया जाता है। इसलिए गुरुदयाल जी साहव से सम्वन्ध जोड़ने का कोई तुक नहीं बैठता है। अगर गलत ही लिखना था तो वंशघर के लिख दिए होते जो वीरापानादि से मेल खाता है।[1] फतुहा में न तो वीरापान दिया जाता है और न वीरापान का कहीं कोई उल्लेख ही है। इसलिए गुरुदयालदास साहब का शिष्य बताना श्री रामरहस्य साहव को कपोल-कल्पित, मनगढ़न्त भीतरी मतभेदों के कारण हो लिखा गया है जिसका अनुकरण भ्रमवश कुछ लोगों ने किया है, जो

१. वीरापान को लेकर वंश वाले लिख सकते थे कि श्री रामरहस्यदास जी वंशघर के साधु थे, परन्तु सच्ची बात को जानने के कारण उन लोगों ने श्री रामरहस्य साहव को अपने पक्ष में कहीं भी कोई लेख नही लिखा है।

समीचीन नहीं है। किसी महापुरुष के जीवन चरित्र को गलत दिखाना या किसी स्वार्थवश लिखना उचित नहीं है। श्री रामस्वरूपदास जी साहब का मतभेद तो श्री राघवदास जी साहब से था, इसमें रामरहस्य साहब का क्या अपराध था ? जिनके चरित्र को जानबूझकर बिगाड़ा गया है। इसका कहीं कोई प्रमाण नहीं है कि वे गुरुदयाल साहब के शिष्य थे। मजे की बात तो यह है कि जब राघव साहब ने ही रामरहस्य साहब का जीवन चरित्र लिखा तो उसका विरोध फतुहा वाले संतों को करना चाहिए था। परन्तु जहाँ तक मुझे जानकारी है कि फतुहा के किसी भी संत महापुरुषों ने श्री राघवदास कृत श्री रामरहस्य साहब का जीवन चरित्र का विरोध किया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता, लेकिन रामस्वरूपदास जी की दाल में नमक गलने लगी।

'ऊँट हेराया था किसी का खोजे कोई' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। विरोध में लिखना चाहिए था फतुहा वाले सन्तों को लेकिन **'नाचे भाँड़ कूद पड़े सियार''**।

इसमें रामस्वरूप दास जी साहब का क्या प्रयोजन है जिन्होंने जीवन-चरित्र को लिखकर इधर-उधर भ्रम फैला दिया है। भला फतुहा वाले संत क्यों ऐसा करते ? जब कि फतुहा से रामरहस्य साहब का कोई सम्बन्ध ही न रहा। फतुहा भी कबीरपंथ का एक प्रतिष्ठत स्थान है। वहाँ भी बड़े-बड़े मेधावी संत हुए हैं और अभी भी हैं। कदाचित् घूमते-घामते श्री रामरहस्य साहब वहाँ गये हों और वे वहाँ कुछ काल रहें भी हों। आज भी प्रत्येक स्थान के संत एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते हैं और पढ़ते-लिखते भी हैं। क्या वे सभी उनके शिष्य हो जाते हैं ? शिष्य तो उन्हीं के होते हैं, जो साधु संस्कार देते हैं। दूसरी बात टेकारी रोड स्थित 'कबीर बाग' फतुहा से काशी की अपेक्षा नजदीक है। आस-पास में फतुहा के कई एक स्थान भी हैं। जिनपर फतुहा के संत रहते हैं। विचारणीय तो यह है कि रामरहस्य साहब यदि फतुहा के संत होते तो उनके शरीरांत होने पर फतुहा के संत वहाँ क्यों नहीं आये क्योंकि काशी की अपेक्षा फतुहा वहाँ से नजदीक है। कारण था कि काशी वहाँ से बहुत दूर है। शायद उस समय यातायात का सुविधाजनक साधन भी नहीं था, जो यहाँ से संत चले गए होते और एक बात यह भी है कि श्री रामरहस्य साहब फतुहा के संत रहे होते तो उनके मरने के बाद पहले खबर फतुहा जाती। परन्तु ऐसा न हुआ। मरने के बाद खबर काशी आयी जहाँ से संतों ने वहाँ जाकर उनकी अन्त्येष्टि की और आज भी रामरहस्य साहब से लेकर वह स्थान काशी कबीरचौरा के अधीन है। जिन सज्जनों को देखना हो, तो वहाँ

के सरकारी कागज पत्र, वन्दोवस्त, सर्वे मुयँना करा के देख सकते हैं। यह भी संभव हो सकता है कि गुरुदयाल साहब का और श्रीरामरहस्य साहब का काल भी बहुत आगे-पीछे ठहरे। क्योंकि साल-संवत् ठीक से मिलता नहीं। इधर रामरहस्य साहब का साल-संवत् बिल्कुल निश्चित है। उधर गुरुदयाल साहब का काल संवत् अभी तक उपलब्ध नहीं है।

अतः मेरा निवेदन है कि पाठक वृन्द रामस्वरूपदास जी के वर्गलाने में न पड़ें, क्योंकि अपनी महन्ती के विरोध में श्री राघवदास जी साहब को प्रत्येक लेख की आलोचना और अपशब्दों का भी प्रयोग किया गया है, जिसका उल्लेख मैं नहीं करना चाहता। रामस्वरूपदास जी साहब से मेरा निवेदन है कि आप भी काशी कबीरचौरा के शिष्य होने के नाते पुराने मतभेदों को भुलाकर परस्पर मिल जुलकर कबीर साहित्य पर काम करें और अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करें। इसी प्रकार उनके सभी सहयोगियों एवं पारखियों के तीनों गुटों से निवेदन हैं कि जान बुझकर किसी सन्त के इतिहास को न बिगाड़ें, क्योंकि हम सब सद्गुरु कबीर से संबंधित, होने के कारण भाई-भाई हैं। कोई कार्य आपस में समझ बूझकर करें। परस्पर एक दूसरे के दिल को न दुःखायें। विज्ञ पाठक को विदित हो कि श्री रामरहस्य साहब के जीवन चरित्र निम्नलिखित हैं—

बिहार प्रान्त में टेकारी नामक एक देशी राज्य है। वहाँ के अन्तिम राजा श्री मित्रजीत सिंह नामक राज्य करते थे। राजा बड़े ही धर्मात्मा तथा न्यायी थे। सज्जनों, ब्राह्मणों का सर्वदा आदर सत्कार करते थे। यहाँ तक कि सर्वोच्च पदाधिकारी (राजमंत्री) ब्राह्मण कुल के ही रक्खे जाते थे। इनके काल में एक विद्वान्-प्रवीण पण्डित भगवान्देव द्विवेदी नामक ब्राह्मण मंत्री पद पर नियुक्त थे। इनको अब तक कोई सन्तान उत्पत्ति नहीं हुई थी। ऐश्वर्यशाली पद पर होते हुए भी इस चिन्ता से सदा चिन्तित रहा करते थे। सन्तान शून्य खिन्न हृदय युक्त आप सभी देवताओं की आराधना एवं सन्त महात्माओं की सेवा सत्कार आदि तन-मन से किया करते थे और यह मनोवांछा रखते थे कि लुप्त-पिण्डोदक क्रिया रूप दूषण का विघातक वंश विभूषण कोई सन्तान का जन्म हो। शुद्ध हृदय से की हुई सन्त-महात्माओं की सेवा अमोघ होती है। उनकी महिमा अकथनीय व बुद्धि से परे है। अतः इन लोगों की प्रार्थना पूर्ण स्वीकृत होकर पत्नी को गर्भ रहा और समयानुसार फसली सन् ११३५ में एक अद्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके जन्मकाल ही में दो शुभ शकुन हुए, उससे यह विदित होता था कि यह बालक अपनी विद्वत्ता की पताका देश में दिखलाएगा। अतएव पिता अमूल्य रत्न पाकर हर्ष में सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों को निमंत्रित कर

१९

आनन्द का समुद्र उमड़ाए और सर्वसाधारण सत्कार प्राप्त होने के हेतु प्रजा जय-जयकार करती हुई अपने-अपने गृह को लौट रही थी।

जब आपके नामकरण तथा यज्ञोपवीत आदि का समय आया तो छोटा सा सार शब्द "रामरज द्विवेदी" नाम रखा गया। बाल्यावस्था में संस्कृत का अध्ययन अपनी प्रिय मा के द्वारा किया। जब कुछ और बड़े हुए तो पिता श्री ने गया की राजकीय संस्कृत पाठशाला में प्रवेश करा दिया। वहाँ पर आप सभी विद्यार्थियों में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। थोड़े ही वर्षों में वहाँ की उच्च श्रेणी की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सुयोग्य विद्वान् की योग्यता प्राप्त की।

अभी तक आपका व्याह नहीं हुआ था। इसी कारण से ऐसी कीर्ति को प्राप्त हुए। आसपास से बहुतेरे ब्राह्मण इस कोशिस में थे कि किस प्रकार अपनी कन्या का पाणिग्रहण इस लड़के के साथ कराऊँ। प्रतिदिन एक न एक अतिथि आते ही रहते थे। पण्डित जी इसी भीड़ से परेशान थे। लेकिन जो कर्म में लिखा रहता है वही होता है। कष्ट की बात है कि एकाएक अकस्मात् दो ही चार दिन में आपके पिता इन्हें त्यागकर स्वर्गलोक सिधार गए। ऐसे समय में इन्हें पिता का विछोह इतना दुःखदायी हुआ कि आपने सदा के लिए प्रण कर लिया कि जिस विवाह की चर्चा ने मेरे पूज्य पिता श्री का अन्त किया है, सो उस माया जाल में जान-बूझ के फँसने पर प्रवीण होते हुए भी मेरी कौन सी दशा होगी ? और दुर्लभ मानव जीवन प्राप्त होने का क्या विशेष लाभ ? इत्यादि। इसी प्रकार अनेक तर्क-वितर्क करते रहे, तदनन्तर निरन्तर जड़ अनात्म पदार्थ माया प्रपंचों से चैतन्यात्म को पृथक् निर्णय करते हुए जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य आश्रम ही का अवलम्बन करने की प्रतिज्ञा कर ली और सारा जीवन ब्रह्मचर्य ही में व्यतीत किया।

अब इनका हृदय सांसारिक व्यवहारों से हटने लगा। सन्त महात्माओं से शास्त्रार्थ और ज्ञानचर्या में ही अपना समय व्यतीत करते थे। केवल माता का भार था सो पिता की कमाई हुई सम्पत्ति उसके निर्वाहार्थ पुष्कल थी ही। लेकिन माता की इच्छा थी कि पुत्र को गृहस्थाश्रम में प्रवीण करावें। इसमें श्री महाराजा टेकारी राजा को पुत्र की कल्पना व संकल्प का परिचय दिया और प्रार्थना किया कि यदि आप चाहें तो पुत्र को राज्यद्वार में फंसा कर इसके दृढ़ संकल्प को दूर कर सकते हैं। महाराजा ने इन्हें अपना राज्यमन्त्री का भार सौंपा, परन्तु जिसकी जो धुन लग जाती है उससे उसका चित्त विचलित करना आसान नहीं होता। राज्यमन्त्री पद पर नियुक्त करने के

पश्चात् बहुत कोशिश किया गया कि गृहस्थाश्रम में आप पदार्पण करें लेकिन यह अटल नैष्ठिक[1] ब्रह्मचारी अपनी बात पर सुदृढ़ अचल रहे।

उसी साल में काशी कबीरचौरा के १५वें आचार्य श्री शरण साहिब अपनी सन्तमण्डली के साथ 'हँसुआ-नेवादा' ग्राम में पहुँचे। यह ग्राम जि० गया में कबीरपंथी सेवकों से बसा है। यहाँ पर हर साल उक्त आचार्य साहिब उपदेशार्थ भ्रमण करते हुए पधारते और भूले हुए भक्तों को सत्यमार्ग पर चलने की शिक्षा-दीक्षा देते रहे। इसका आगमन सुनकर पंडितजी आपके पास आए और उन्होंने अपना पूर्ण परिचय दिया।

पूज्यपाद आचार्य साहिब का दर्शन व प्रिय वाणियों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि राज्यकार्य से त्यागपत्र देखकर घर आकर उन्होंने माता जी से कहा कि मैं काशी जा रहा हूँ तथा कुछ दिनों से पश्चात् फिर आपके चरणों का दर्शन करूँगा। इतनी बात कहते हुए आप फिर उसी ग्राम में आये जहाँ आचार्य साहिब विराजमान थे। पर दैव-संयोग से उनसे भेंट नहीं हुई, अब सब मनोरथ पर पानी फिर गया।

साहस कर आपने विचार किया कि ग्राम-ग्राम भ्रमण करते हुए काशी जी चलूँ और उन महात्माओं की मंडली में कुछ दिन रहकर सच्चे मार्ग का अनुभव करूँ। इस प्रकार के निश्चय कर भ्रमण करते हुए जब काशी जी पहुँचे, तो अनेकानेक पंडितों से भी भेंट हुई, लेकिन इनका दिल कहीं न लगा। अन्त में स्थान कबीरचौरा में पहुँच गये।

श्री आचार्य साहिब के दर्शन कर नेत्रों को सुफल किया। दो चार दिन रहने पर इच्छा प्रकट की कि मुझे भी अपने पास रखिए अर्थात् अपनी लौकिक विधि अनुसार मुझे शिक्षा-दीक्षा देकर अपनी सेवा में नियुक्त कीजिए। श्री गुरु महाराज ने बहुत कुछ समझाया लेकिन वे अपनी बात पर अटल रहे। साल भर गुरु सेवा करके गुरु के मन को भी मुग्ध कर लिया और वह भी हार कर सविध दीक्षामन्त्र दिये। इस बीच आपने 'बीजक' ग्रंथ का पठन व मनन गुरु मुख से सुन-सुनकर पूर्वरूपेण कर लिए थे। आप संस्कृत के पण्डित तो थे ही, लेकिन कबीर साहिब का "बीजक" उस विद्या से भी विलक्षण है। इसका अर्थ केवल अनुभवी संत लोग ही जानते हैं, सर्वसाधारण के लिए अगम्य है।

---

१. एक प्रकार के ब्रह्मचारी, जो बाल्यावस्था में ही यावज्जीवन ब्रह्मचर्य रहने को प्रतिज्ञा करते हैं। निष्ठा-सम्पन्न। सत्य-धर्म विषे दृढ़ विश्वाशी, ब्रह्मचारी, अपनी बात पर सुदृढ़ अचल रहे।

इस सद्ग्रंथ (पुस्तक) के अर्थों का खूब मनन किया। प्रायः सभी शिष्यों में आपही श्रेष्ठ समझे गए।

काशी जी आने के बाद से उन्होंने अपनी माता की सुधि नही ली। माता पुत्र के वियोगजन्य शोक में व्याकुल थी। उसकी दशा का उल्लेख नहीं हो सकता। विज्ञ पाठक वृन्द स्वयं समझ सकते हैं। अन्त में वह भी पता लगाते-काशी जी में आ गयी और स्थान पर पहुँचकर "रामरज द्विवेदी" नाम से संतों से पूछने लगी। परन्तु किसी ने भी उसका परिचय नही दिया। श्री आचार्य साहिब को ज्ञात हुआ कि अमुक व्यक्ति को उसकी वृद्ध माता ढूंढ़ रही है। अतः श्री सद्गुरु साहिब ने उसे ठहराकर ढाढस दिया फिर 'राम रहस्यदास' साधु को बुलाकर माता व पुत्र का मिलाप कराया। इस दृश्य को मेरी लेखनी नहीं लिख सकती। जब माता की इच्छा पूर्ण हो गयी तो उसने गुरु साहिब से निवेदन किया कि एक बार जन्मभूमि पर चलने के लिए आप उन्हें आज्ञा दे दीजिए ताकि मेरी अन्तिम इच्छा पूर्ण हो। गुरुसाहिब ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर माता के साथ जन्म भूमि पर जाने के लिए अनुमति दे दी।

जन्मभूमि पर इनकी इतनी कीर्ति बढ़ी कि सभी लोग दर्शनार्थ तथा सत्य स्वरूप का ज्ञान सीखने के लिए आनें लगे। अन्त में टेकारी नरेश ने इनकी कीर्ति श्रवण कर इनका विधिपूर्वक स्वागत किया और इन्हें गया शहर के एक बाग में गुफा बनवाकर विशेष आग्रहपूर्वक कहा कि आप इसी के अन्दर विराजिए और देश के निवासियों को अपने उपदेश से शिक्षित कीजिए।

रमणीक स्थान देखकर आपने कुछ काल योगाभ्यास किया। उससे भी कुछ शान्ति नहीं हुई, तो फिर बीजक का ही निरन्तर पठन-पाठन आरंभ किया और उसकी टीका, दोहा-चौपाई में करना आरम्भ किया। जब वह सम्पूर्ण पुस्तक तैयार हो गई, तो उसका भी नामकरण करने के लिए नियत तिथि निश्चय कर उन्होंने काशी जी से श्री आचार्य गुरु महाराज को जमात सहित आमन्त्रित किया। तथा आपने नेमी-प्रेमी सेवक-सतियों को उक्त अवसर पर आने का समाचार दिया। एक वृहद् भण्डारा व सद्गुरु साहिब का सत्कार युत धूप-दीप नैवेद्य से आरती करके उक्त टीका रूप ग्रंथ को गुरु महाराज की सेवा में समर्पण किया और उसका नामकरण करने के लिए उनसे प्रार्थना की। गुरु महाराज उस पुस्तक का आद्योपान्त अवलोकन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसमें सभी वेद-शास्त्र और पुराणों का सार आ गया है, ऐसा समझकर पुनः पंचतत्व जड़ और छठाँ चैतन्य जीव की परस्पर ग्रन्थी किस तरह पड़ी और किस प्रकार

इस ग्रंथी को निरुवार कर मुमुक्षुजन ग्रंथी से विमुक्त हो निज निर्भय पारख स्वरूप में निश्चल रहें, इसका पूर्ण विवरण सहित स्पष्टीकरण पंचकोश, समष्टि-सार, मानुषविचार, गुरुबोध और टकसार इन पाँचों प्रकरण में निरीक्षण करके अन्वर्थक यह पंचग्रन्थी शुभ नाम रक्खा। उसी समय से इसका प्रचार कबीर पंथियों में बड़े जोरों से हुआ। फिर तो सम्प्रति सभी हिन्दी प्रेमियों अज्ञान जन्य ग्रंथी से मुक्त होने के निमित्त सहर्ष उक्त ग्रन्थ को अपना रहे हैं। यों तो प्रत्येक मुमुक्षुओं के लिए यह पंचग्रंथी ग्रन्थ अति प्रिय है ही।

जब उक्त स्थान से आचार्य साहब चलने लगे तो रामरहस्यदास जी ने बाग को गुरु साहिब की सेवा में अर्पण किया और कहा कि यह आपके अधीन है, इसका भी अभी कुछ विशेष नाम नहीं रखा गया है। अतः कृपया इसको भी विशेष नाम से पृथक् कीजिए। तदनुसार आचार्य जी ने उस बाग का नाम "कबीर बाग" रखा और उनसे कहा कि इसी स्थान पर रहकर संत महात्माओं की सेवा सत्संग करना, हमारी सेवा व मुमुक्षुओं का मोक्षार्थ निर्णय, निर्पक्ष सारशब्द सत्योपदेश करना, मेरा अंतिम उपदेश है। यद्यपि वे जिज्ञासुओं को सत्योपदेश देने के निमित्त प्रत्येक प्रान्त में पर्यटन किया करते थे, तथापि पूज्य-पाद सद्गुरु की आज्ञा को स्मरण कर पुनः पुनः उक्त 'कबीर बाग' व तत्स्थानीय जन समाजों को सदा सनाथ किया ही करते थे एवं सन्त समागम, सद्विचार करते हुए जब आपकी अवस्था लगभग ८० वर्ष की हुई तब शरीरस्थ तत्वप्रकृति, इन्द्रियों के परिणाम बदलने पर आपको पूर्ण अनुभव होने लगा, अर्थात् इस विन-श्वर शरीर विनाश के प्रथम ही आप सचेत होकर सदा के लिए निज निश्चल चैतन्य पारख स्वरूप में स्थित हो गए। आपका पंचग्रन्थी रूप पंच रत्न तो सत्य-न्यायी समाजों के मुमुक्षुओं के हृदय में सदोदित प्रकाश किया ही करता है व किया करेगा, परन्तु आपके देहावसान से जो कबीर पंथियों की अति क्षति हुई है उसकी पूर्ति न आज पर्यन्त हुई न आगे होने की आशा ही की जा सकती है।

श्री पूज्यपाद रामरहस्य साहिब की जन्म तिथि फसली सन् ११३५ विक्रम सं० १७८२। विद्याध्ययन समय फसली सन् ११४५, वि०सं० १७९२। अध्ययन समाप्ति समय फसली सन् ११५९, वि० सं० १८०६। वैराग्य समय फसली सन् ११६५, वि० सं० १८१२। गया का बाग मिलना फसली सन् ११७१ वि० सं० १८१८। विदेह स्वरूप स्थिति समय फसली सन् १२०९ वि० सं० १८६६। इस समय फसली सन् १३४१ तथा वि० सं० १९८८ है। इसी हिसाब से तिथि का निर्णय समझना चाहिए।

परिशिष्ट (ख)

ऐतिहासिक विवरण

काशी कबीरचौरा मूलगादी से धर्म सम्प्रदाय का सम्बन्ध

यह पहले कहा जा चुका है कि धर्म सम्प्रदाय दक्षिण मध्य भारत में खूब पनपा हुआ था, जिसका प्रचार उड़ीसा से बिहार तक जंगली क्षेत्रों में पाया जाता रहा है और जो बौद्ध धर्म से निकला हुआ एक सम्प्रदाय था। इस सम्बन्ध में पहिले कहा जा चुका है।

काशी कबीरचौरा के आठवें गुरु श्री सुखदास साहब अपनी सन्त मण्डली के साथ प्रचार करते हुए दक्षिण की तरफ बढ़ रहे थे, जो प्रत्येक ग्राम एवं नगरों में होते हुए तथा वन एवं पहाड़ों को लाँघते हुए मध्य भारत के उस संभाग में पहुँचे जहाँ पर धर्म सम्प्रदाय का आचार्य रहता था। उक्त स्थान का नाम बाँधवगढ़ था। उसके आचार्य का असली नाम जुड़ावनदास था, परन्तु धर्म सम्प्रदाय का उपासक होने से धर्मदास कहलाता था। अतः उक्त क्षेत्र के आसपास हजारों की संख्या में धर्म सम्प्रदाय के लोग निवास करते थे जहाँ पर अपने सैकड़ों शिष्यों के साथ श्री सुखदास साहब सद्गुरु कबीर के असली उपदेशों को सुना रहे थे, जिससे प्रभावित होकर उक्त संभाग के प्रत्येक धर्म सम्प्रदायिओं ने श्री आचार्य सुखदास साहब का शिष्यत्व एवं कबीर पंथ में समाविष्ठ होते देखकर धर्म सम्प्रदाय के अगुआ श्री धर्मदास जी ने भी कबीर पंथ को स्वीकार कर लिया। जिससे वहाँ पर एक कबीर गादी भी स्थापित हो गई, जो काशी कबीरचौरा की धर्म संप्रदायी शाखा कहलायी। स्मरण रहे कि धर्म सम्प्रदाय के नेता पहले से ही गृहस्थ होते थे। उनके सत्यलोक होने के बाद उनके पुत्रों को अथवा सगे सम्बन्धियों को उक्त पद पर आसीन कर दिया जाता था। आसीन करने के लिए काशी कबीरचौरा मूलगादी से वीरापान, नारियल और चन्दन, अच्छत आदि मांगलिक सामग्री लेकर कबीरचौरा का मनोनीत कार्यवाहक जाता था और वही वहाँ के महंत को कण्ठी बाँधकर टीका लगाता था। वीरापान कबीर साहब की प्रसादी के रूप में उसको खाने के लिये दिया जाता था। नियुक्त महन्त साल में एक बार आकर नीरू टीला, कबीरचौरा, लहरतारा, मगहर का दर्शन करता था। यह क्रम सतरहवीं गादी के आचार्य निर्मल साहब तक चलता रहा। अठारहवीं गादी से कुछ मतभेद होने के कारण आपस का आना-जाना विच्छेद हो गया और तब से आज तक

पूर्व कथित व्यवहार नहीं हो रहा है। वैसे तो एक दूसरे जगह के सन्त आते-जाते रहते हैं।

सम्बन्ध विच्छेद होने की एक ऐसी कथा है, जो लिखने में धर्मसम्प्रदाय के लिए अच्छा नहीं होगा। मैं ऐसी कथाओं को लिखकर किसी का दिल दुःखाना नहीं चाहता, क्योंकि वह कथा अश्लीलता लिए हुए है। इस सम्बन्ध में जिन सज्जनों को जानकारी प्राप्त करनी हो, वे जिला गोंडा में एक स्थान है जिसका नाम है 'लक्ष्मी नगर ग्राण्ट अमवांकुटी', जो स्थान पहले वंशधर का था। परन्तु इस समय काशी कबीरचौरा में मिल गया है, जिसके महन्त थे—श्री रामदास जी साहब। आपकी अवस्था उस समय लगभग ९० वर्ष की हो रही थी। काशी और धर्म सम्प्रदाय का विच्छेद जिन कारणों से हुआ है, वे भलीभाँति जानते थे। उनसे जाकर पूछ सकते थे। वैसे मेरा अहर्निश प्रयत्न है कि धर्म सम्प्रदाय वाले पूर्व की भाँति सम्बन्ध स्थापित यदि करना चाहेंगे, तो मैं भी हाथ पीछे नहीं रखूँगा। आजकल वहाँ के श्री महन्त गृन्ध मुनि नाम के संयोगी सन्त हैं और बुद्धिमान भी हैं। उनको चाहिए कि कबीर पंथ की रीति के अनुसार काशी कबीरचौरा से सम्बन्ध कायम करें, ताकि सम्प्रदाय का कार्य अवाधगति से चलता रहे। पहले जो भी रहे हों, उसका मोह छोड़ देना ही होगा। कारण कि भारत में अधिकांश हिन्दू ही मुसलमान हुए हैं, परन्तु आज उनका हिन्दू धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसी प्रकार से श्री धर्म-सम्प्रदाय वालों को भी चाहिए कि पुराने धर्म को, जिसमें उनके पूर्वज दीक्षित थे, उसका मोह त्याग कर पूर्णरूप से सद्गुरु कबीर की छत्रछाया में आ जायँ। मेरा यही अन्तिम निवेदन है। यह बात मैं कोई कपोल-कल्पित नहीं लिख रहा हूँ। इस बात को सच्चाई के साथ धर्म सम्प्रदाय वाले भी कह सकते हैं और तथ्य को जानते भी हैं। मेरे लिखने का कोई दूसरा कारण नहीं है, बल्कि केवल सम्बन्ध सुधारना मात्र ही है। आशा है कि मेरे सुझाव को सहर्ष स्वीकार किया जायगा।

श्री पूरणदास जी प्रसंग

धर्मदासीय शाखा अन्तर्गत जिसकी एक शाखा बुरहानपुर में विद्यमान है, जो नागझीरी निर्णय मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इसके आदि महंत श्री पूरणदास जी साहब थे। वे बड़े प्रभावशाली एवं मेधावी पुरुष थे, जिनके नाम से वंशधर में एक पारखी नाम की शाखा चली आ रही है। श्री पूरन साहब के जन्म स्थान के बारे में बड़ा विवाद है। कुछ लोग उनको खान-देशीय क्षत्रिय बतलाते हैं और कितने लोगों का कहना है कि पूरन साहब

बिहार के छपरा नामक जनपद के निवासी थे, जिनको किसी गोपकुल में उत्पन्न होना कहा जाता है। कुछ लोग उपर्युक्त दोनों स्थानों का विरोध करते हुए श्री पूरण साहब का जन्म राजपूताना के अन्तर्गत जोधपुर नामक नगर में जैन सम्प्रदाय में वि० सम्वत् १८२८ में हुआ बतलाते हैं और उनके पिता का नाम अनिलकुमार जैन एवं माता का नाम श्रीमती प्रभा जैन बताते हैं। यह भी बताते हैं कि उनको शरदकुमार नामक एक सन्तान थी। वह बहुत बड़ा प्रतिभाशाली था। उसकी अभिरुचि बाल्यकाल से धर्म में अधिक रहती थी। उसने विद्याध्ययन काल से ही जैन दर्शन एवं जैनागमों का गहरा अध्ययन किया, परन्तु जैन धर्म में उसकी कोई निश्चित धारणा नहीं हुई। श्री शरदकुमार बहुत काल तक जैन दिगम्बरों से एवं श्वेताम्बरों से अनेक प्रश्न करते रहे, परन्तु अनुकूल समाधान न पाकर यत्र-तत्र अनेक सम्प्रदायों में विचरण करते रहे फिर भी उन्हें खास सन्तोषजनक समाधान उपलब्ध नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा जोधपुर में फतेहसागर नामक कबीर मठ में गए, वह स्थान काशी कबीरचौरा मूलगादी की शाखा है। अतः वहाँ के तत्कालीन श्री महन्त साहब ने शरदकुमार जी से कहा कि आप यहाँ से सीधे काशी कबीरचौरा कबीर साहब के स्थान पर चले जायँ वहीं पर आपके संशय का निवारण हो जाएगा। उक्त श्री महंत जी के आदेशानुसार देशाटन करते हुए काशी-कबीरचौरा मठ में शरदकुमार जी पहुँच गए। उस समय वहाँ पर काशी कबीरचौरा मठ में आचार्य श्री शरण साहब विराजमान थे, जिनके दर्शन से शरदकुमार जी का बहुत-सा संदेह जाता रहा। श्री शरदकुमार जी आचार्य श्री शरण साहब से कई एक वर्ष तक 'बीजक' का अध्ययन करते रहे। अन्त में श्री शरदकुमार जी ने आचार्य साहब से निवेदन किया कि मुझे साधु बना दिया जाय। शरदकुमार जी की उत्कट अभिलाषा जानकर आचार्य शरण साहब ने उनका साधु संस्कार कर दिया और उनका नाम बदलकर श्री पूरणदास रखा। स्मरण रहे कि आचार्य शरण साहब के एक और शिष्य थे, जिनका नाम बड़ा पूरणदास था। वे बड़े उद्‌भट विद्वान थे। श्री शरण साहब ने उनको सुयोग्य जानकर आचार्य पद पर आसीन कर दिया। इधर छोटे पूरणदास जी साहब बड़े गुरुभाई के महंत होने से सन्तुष्ट नहीं हुए। अन्त में दोनों गुरुभाइयों में मतभेद हो गया। श्री छोटेपूरण साहब भ्रमण करते हुए धनवतीमठ बिहार चले गए। जहाँ पर बहुत काल तक सत्संग-वार्ता करते रहे और वहाँ के वर्त्तमान महन्त जी से भी कुछ काल के बाद मतभेद हो गया। मतभेद का कारण यह था और जिसके विषय में पहले कहा जा चुका है कि वे जैन धर्म में उत्पन्न हुए थे, जिस धर्म में

जीववाद की ही मान्यता थी। अपने पूर्व धर्म के संस्कारगत दोष के कारण ही जीववाद की घोषणा कबीर पन्थी होने पर भी करते रहे। जिससे रुष्ट होकर धनवती मठ के श्री महन्त जी नाराज रहने लगे। श्री महन्त जी को असन्तुष्ट जानकर श्री पूरण साहब धनवती मठ के एक संत को लेकर फतुहा मठ (बिहार) चले गए। वहाँ पर कुछ काल तक रहने के बाद अनुकूलता न देखकर घूमते-घामते छत्तीसगढ़ कवर्धा पहुँच गए। वहाँ पर भी वे बहुत समय तक रहे। कवर्धा में एक साधु श्री सुखलालदास जी साहब थे, जो बड़े प्रतिभाशाली सन्त थे। उनकी ख्याति धर्मदासियों में खूब थी। श्री पूरणदास जी साहब ने उनसे प्रभावित होकर पुनः उनका भी शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और उनके साथ बहुत समय तक कवर्धा में निवास करते रहे। आप लोगों को ज्ञात रहे कि धर्मदासी समाज ईश्वरवादी सम्प्रदाय है, जिनके शिष्यों को श्री पूरणदास जी साहब जैन धर्मानुसार 'बीजक' के अर्थ करके सुनने लगे, जहाँ बीजक की मान्यता न थी। इनके प्रभाव से वहाँ के बहुत से लोग आने लगे। पूरण साहब की चातुर्यपूर्ण कार्यवाही से कवर्धा के महन्त श्री पाक साहब अवगत हो गए। फलस्वरूप उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ विचार-विमर्श किया। उसमें पूरणदास जी साहब को भी बुलाया गया। बहुत से सहयोगियों से साक्षी-प्रमाण लिया गया जिसमें पूरण साहब दोषी पाए गए। परिणाम स्वरूप चौबीस घण्टे का कठोर कारावास की सजा दी गयी। बिना अन्न-जल के एक कोठरी में वे बन्द कर दिए गए। उक्त सजा सुनकर पूरण साहब के द्वितीय गुरु श्री सुखलाल साहब ने कवर्धा के वर्त्तमान सयोगी महन्त से अनुनय-विनय करके उनको कारावास से मुक्त कराया और क्षमा-याचना करायी। इसके बाद श्री पूरण साहब अपने को अपमानित जानकर वहाँ से चल दिए और ताप्ती नदी के किनारे नागझीरा नामक एक स्थान बनवाकर रहने लगे। वह बुरहानपुर जि० नीवाड, मध्य-प्रदेश में अवस्थित है, वहीं पर रहकर श्री पूरण साहब ने वि० सं० १८९० के आस-पास बीजक पर एक टीका लिखी एवं अन्य कई एक ग्रन्थ लिखे, जो पूर्णरूपेण जैनदर्शन से प्रभावित हैं। उनमें ईश्वर, वेद की कठोरतम खबर ली गयी है। उसका प्रचार-प्रसार पूरण साहब से लेकर आज के वर्त्तमान महन्त तक होता चला आ रहा है।

श्रीमान् वैराग्यनिष्ठ बहुश्रुत श्री काशीदास जी साहब हुए हैं। जो पारख सिद्धान्त के दूसरे जन्मदाता कहे जा सकते हैं, जिनके जीवन के बारे में भी बड़ा विवाद है। कुछ लोगों का कहना है कि महाराष्ट्र के कोकमदेशीय ब्राह्मण थे और विद्याध्ययन के बाद कहीं पर टिकट मास्टरी भी करते थे, परन्तु कुछ

लोग इनका खण्डन करते हुए उनका जन्म स्थान गुजरात प्रदेश में कही सूरत के आस-पास बतलाते हैं, जिनके पिता का नाम मनोहर भाई देसाई कहा जाता है। माता का नाम लक्ष्मीवाई बताया जाता है, जिन्होंने अपने पुत्र का नाम गणेशदत्त देसाई रखा। गणेशदत्त पढ़ लिखकर कहीं पर क्लर्क का काम करते थे। ये बडे मेधावी पुरुष थे। जो सदा सरकारी सेवा बड़ी सच्चाई के साथ करते थे। जनश्रुति है कि किसी रामसनेही सम्प्रदाय के साधु से गुरु-दीक्षा ले ली थी। उत्कट वैराग्य होने पर घर-द्वार भी त्याग दिया था। परिणाम स्वरूप त्यागी वनकर रामसनेही सम्प्रदाय में भ्रमण करते रहे, परन्तु राम-सनेहियों में आत्म सन्तुष्टि नहीं हुई। अन्ततोगत्वा भ्रमण करते हुए वे मध्य-प्रदेश पहुँचे। जहाँ पर अनेक संयोगी कवीर पंथियों से सम्पर्क हुआ। उस संयोगियों में से एक मनमोहनदास नाम का संयोगी था, जो एक ही समय भोजन करता था, जिसकी निष्ठा सद्गुरु कवीर में वहुत थी। अतः उस संयोगी साधु से काशीदास साहव वहुत प्रभावित हुए और उनकी सेवा करने लगे, परन्तु संयोगियों के अनेक कपोल-कल्पित ग्रन्थों को पढ़कर श्री काशी दास साहव को आत्म बोध नहीं हुआ। अन्त में किसी घूमने वाले साधु से नागझीरी स्थान वुरहानपुर का पता चला। वहाँ से देशाटन करते हुए श्री काशी साहव बुरहानपुर पहुँचे। काशी साहव का पहले का नाम गणेशदास देसाई था, जो वाद में काशी साहव के नाम से प्रख्यात हुए। उस समय नागझीरी स्थान, वुरहानपुर के महन्त श्री नरोत्तमदास जी साहव थे। वे बड़े अच्छे महात्मा थे, जो पूरण साहव की तरह त्यागवृत्ति से रहते थे। श्री काशी साहव ने उससे विधिवत् 'बीजक' का अध्ययन किया तथा पंचग्रन्थी आदि ग्रन्थ गुरुमुख से पढ़े थे। कुछ काल के वाद श्री नरोत्तम साहव का देहावसान हो गया। गद्दी खाली देखकर स्थान के वृद्ध सन्तों ने काशी साहव को गद्दी पर बैठाकर महन्त वना दिया। कुल मिलाकर गद्दी पर लगभग पाँच-सात वर्ष काशी साहव शोभायमान रहे। अपने कुशाग्र बुद्धि के कारण उन्होंने स्थान की वड़ी उन्नति की एवं छोटे-बड़े कई एक ग्रन्थ भी लिखे। अन्त में आत्मशांति की पूरी जिज्ञासा के लिए गद्दी छोड़कर वहाँ से चल दिए, जो भ्रमण करते हुए आगरा संभाग में आए। सुना जाता है कि किसी आर्य समाजी से उनका संघर्ष हो गया था जिसने छल से विष का प्रयोग कर उन्हें मार डाला। उनकी समाधि यमुना नदी के तट पर आस-पास के कबीरपंथी भक्तों ने दे दी। इस प्रकार जो कुछ सुनने और समझने में आया उसके अनुसार उक्त महापुरुष की जीवनी संक्षिप्त में अंकित कर दी गयी है। इसके वाद सुना जाता है कि

नागझीरी के महन्त श्री लालदास जी साहब हुए हैं, जो बहुत बड़े पारखी सन्त थे, परन्तु उनके जीवन चरित्र के बारे में कुछ न मालूम होने से उनके बारे में कुछ नहीं लिखा गया।

इसी क्रम में महन्त श्री रामस्वरूपदास जी साहब का संक्षिप्त परिचय दे देना अनावश्यक नहीं होगा। आप पारख मंडल के प्रतिष्ठा प्राप्त महात्मा हैं। जिनका जन्म उत्तरी नेपाल काठमाण्डू शहर के उस पार बौद्ध-धर्म में दीक्षित एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बौद्ध-धर्म से ऊबकर अपनी फुआ श्री शान्ती देवी के साथ भ्रमण करते हुए सर्व प्रथम काशी कबीरचौरा की शाखा ग्राम मझगाँवा, जि० गोरखपुर में अवस्थित है, वहाँ पर शान्ती देवी के साथ रामस्वरूपदास जी उस स्थान पर आए। उस समय उक्त स्थान के महन्त श्री ज्योतिदास जी साहब थे, जिनसे श्री शान्ती देती ने साधु बनने की इच्छा व्यक्त की। श्री ज्योतिदास जी साहब साधु बनाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की और उन्होंने काशी कबीरचौरा मठ में चलने के लिए संकेत किया। वे श्री रामस्वरूपदास जी को उनके फूआ शान्ती देवी को साथ लेकर काशी कबीरचौरा कबीर मठ में आए। उन्होंने आचार्य श्री रामविलासदास जी साहब से उन लोगों का परिचय कराया और श्री महन्त ज्योतिदास जी ने कहा कि ये लोग आश्रम में रहना चाहते हैं और साधु भो बनना चाहते हैं। श्री ज्योतिदास जी की बात सुनकर गुरुदेव ने कहा कि इन लोगों को नीरू टीला पर पहले आसन लगवा दीजिए। इसके बाद बातचीत होगी। अतः श्री ज्योति-साहब ने वैसा ही किया। वे लोग वहाँ रहने लगे। दो-चार दिन के बाद गुरुदेव ने श्री ज्योतिदास जी को बुलवाकर कहा कि लड़के को तो साधु बना दूँगा, परन्तु श्री शान्ती देवी एक नव-युवती स्त्री है उन्हें साधु बनाना तो दूर रहा, उनको यहाँ पर रहने की अनुमति भी नहीं मिल सकेगी, क्योंकि यहाँ की परम्परा निहंग साधुओं की है। यहाँ पर विना अभिभावक के स्त्रियों का एक दिन भी रहना मुश्किल है। गुरुदेव की बात सुनकर श्री ज्योतिदास जी उदास हो गए। स्मरण रहे कि श्री ज्योतिदास जी भी नेपाल के ही मूल निवासी थे, जो यहाँ आकर शिष्य बन गए थे। गुरुदेव की इच्छा शान्ती देवी को साधु बनाने की न देखकर ज्योतिदास जी ने कहा कि दो-चार महीने नीरू टीला पर इनको रहने दिया जाय। बाद में रामस्वरूप के साधु बन जाने पर श्री शान्ती देवी को किसी बहाने यहाँ से हटा दिया जाएगा। अस्तु, दो महीने के बाद रामस्वरूपदास जी को साधु संस्कार दे दिया गया और संस्कृत पाठशाला में पढ़ने के लिए भर्त्ती करा दिया गया। अबाधगति से उनकी

पढ़ाई चलने लगी। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होने पर श्री शान्ती देवी ने कहा कि मुझे भी लँगोटी दे दी जाय। श्री गुरुदेव ने कहा कि यहाँ पर स्त्रियों को साधु नहीं बनाया जाता है। इस पर शान्ती देवी बड़ी दुःखी हुई। अन्त में उन्होंने कहा कि तब मैं यहाँ पर अपने भतीजे को कैसे रहने दूँगी। हम जहाँ रहेंगे वहाँ दोनों एक साथ रहेंगे। शान्ती देवी को उदास देखकर गुरुदेव ने बहुत समझाया और कहा कि मैं आपके लिए दूसरे स्थान पर व्यवस्था कर देता हूँ जहाँ पर स्त्रियों को भी साधु बनाने की परम्परा है। शान्ती देवी ने कहा कि वह स्थान कहाँ है? आचार्य साहब ने कहा—यहाँ से दूर है। वह स्थान कुदरमाल कवर्धा का एक झोपड़ा है, जो ताप्ती नदी के किनारे नागझीरी नाम से प्रसिद्ध है। वह नगर बुरहानपुर जि० निमाड़, मध्य प्रदेश में पड़ता है। गुरुदेव की उक्त बात सुनकर श्री शान्ती देवी बहुत प्रसन्न हुई और एक दिन गुरुदेव से आज्ञा लेकर श्री रामस्वरूपदास जी को साथ लेकर बुरहानपुर चली गई। उस समय वहाँ के महन्त श्री लालदास जी साहब थे। श्री शान्ती देवी ने अपना परिचय देकर रहने के लिए निवेदन किया। श्रीलालदास जी साहब ने उनके निवेदन को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद शान्ती देवी वहाँ रहने लगीं। कुछ दिन के बाद शिष्या भी हो गयी, जो वैरागिनी के रूप में रहा करती थीं। शान्ती देवी को वहाँ पहुँचाकर श्रीरामस्वरूपदास जी पुनः काशी चले आये और पुनः अपने पठन-पाठन में तल्लीन हो गए। कुछ दिनों के बाद उन्होंने प्रथमा की परीक्षा दी और उसमें वे उत्तीर्ण भी हो गए। कई एक साल बीतने पर उन्हें अपनी फूआ के दर्शन करने की इच्छा हुई और वे बुरहानपुर चले गए। उसीं समय से श्री महन्त लालदास की सेवा में रहने लगे। पढ़े-लिखे तो वे कम ही थे, परन्तु श्री आचार्य रामविलास दास जी साहब ने उनको 'बोजक' का पूरा अध्ययन करा दिया था जिससे प्रभावित होकर श्री महन्त लालदास जी साहब ने महन्ती का लोभ दिखाकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। बाद में श्री रामस्वरूपदास जी ने पारख सिद्धान्त का अच्छा अध्ययन किया और कई एक ग्रन्थों पर टीका-टिप्पणी भी लिखो, परन्तु उस टीका-टिप्पणियों में अपने वास्तविक गुरु श्री आचार्य रामविलासदास जी साहब के नाम तक का कहीं उल्लेख नहीं किया। नामोल्लेख करने से उनके लिए परम श्रेयस्कर होता। ऐसा न करके वे कृतघ्नता के दोष से मुक्त नहीं हुए। उल्टे अपने बड़े गुरुभाई महाराज राघवदास जी पर बड़ा कड़ा आक्षेप किया है, जो नहीं करना चाहिए, क्योंकि दोनो एक ही गुरु के चेले थे। श्री महंत लालदास जी साहब के तो असली चेले वे हैं नहीं, वे केवल महंती पद

पर होने से उनके चेले कहलाए, जो बात आज तक लोक में प्रसिद्ध है। श्रीरामस्वरूप साहब बड़े सौम्यमूर्ति हैं, जो सदा प्रचार-प्रसार का कार्य करते हैं, परन्तु नवीन पारखियों में भर्ती होने से उनके विचार में परिवर्त्तन अवश्य हुआ है जो यह स्वाभाविक है। दो संस्कृतियों के आदान-प्रदान से एक तीसरी विचारधारा मानव मस्तिष्क में प्रवेश कर जाती है। इसलिए हमारे बड़े गुरुभाई श्री रामस्वरूपदास जी साहब का कोई दोष नहीं है। दोष तो उस समाज का है, जिन लोगों ने उनको वर्गलाकर अपने पंथ में ले लिया। वे लोग भी तो ऐसी संस्कृति से निकले हुए थे, जिसमें अनेक मनगढ़न्त मान्यताएँ थीं, जिससे ऊबकर उक्त पारखी मत का प्रादुर्भाव हुआ था, जो एक अवैदिक अनीश्वरवादी के रूप में सामने आया। ये लोग केवल अपने को ही कबीर पंथी मानते हैं। सद्‌गुरु कबीर ईश्वरवादी थे जबकि ये लोग अनीश्वरवादी हैं। सद्‌गुरु कबीर ने पाँच तत्वों का उल्लेख किया है जबकि आधुनिक पारखी चार ही तत्व मानते हैं। यह पूर्व जैन संस्कारित थे कारण जैनियों का अनुगमन मात्र ही है और एक जैन परिवार में उत्पन्न व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज है।

इस प्रकार से इनकी सारी मान्यताएँ सद्‌गुरु कबीर की मान्यता से बिल्कुल विपरीत है। पारखी लोग विशेषकर मोटी-मोटी बातों का खण्डन करते हैं, सूक्ष्मता की ओर उनका ध्यान नहीं जाता है। इसका कारण यह है कि ये पढ़े लिखे कम होते हैं और जो पढ़े-लिखे भी होते हैं वे भी पारखियों के घेरे से बाहर नहीं जा पाते हैं। इसका भी कारण यही है कि उनकी इच्छा गुरु बनने की होती है। गुरु तो वे तभी बन सकते हैं जब कि अशिक्षित पारखियों के मत को माने, यदि पारखियों के मत को नहीं मानते हैं, तो उनको कोई नहीं मान सकता, क्योंकि उनका संस्कार बिगड़ चुका है। वे न तो पूरे पारखी ही होते हैं और न ही पूरे आस्तिक। इसलिए मध्यमता को कोई पूछता नहीं है फिर वे दोनों तरफ रहने की कोशिश करते हैं। अन्त में पुजाने के लिए पारखी बन जाते हैं और नास्तिकता का प्रचार करने में लग जाते हैं। पारखियों का निवास विशेषकर अनभिज्ञ समाज में ही होता है और उन्हीं को प्रभावित रखते हैं। ये लोग बड़े ग्राम्यचतुर होते हैं। उनका उपदेश दो प्रकार का होता है। आस्तिकों के सामने तो राम-रमैया की बातें करते हैं और सब में रमा हुआ राम को बतलाते हैं। अपने समाज में जीव से परे कोई सत्ता नहीं मानते। उनकी बातें अनर्गल बहुत होती हैं, इसलिए इनका सामंजस्य किसी से नहीं बैठता है। जहाँ पारखी रहेंगे उसी स्थान पर ये जाएंगे। पढ़ने के लिए इन्हें अन्य आश्रमों में भी जाना पड़ता है। जहाँ जाने पर शिखासूत्र भी

रख लेते हैं और उनके साथ स्तुति आदि भी करते हैं, परन्तु ये लोग शिक्षक को गुरु नहीं मानते। ये लोग तो गुरु उसी को मानते हैं, जो उनकी कमर में कोपीन बाँध देता है। चाहे वह कैसा भी हो, परन्तु इनका गुरु वही होता है। कितने पारखी तो अपने गुरु को कबीर साहब से भी अधिक मानते हैं, चाहे वह अँगूठा छाप ही क्यों न हों? ये लोग मुक्तात्मा का अस्तित्व नहीं मानते, परन्तु कबीर साहब की स्तुति करते हैं, जो इनके मत के विरुद्ध है। क्योंकि जब मरी हुई आत्मा का अस्तित्व ही नहीं है, तो उनकी स्तुति कौन सुनेगा? यदि पारखियों की मरी आत्मा है और उनकी स्तुति सुनती है, तो आस्तिकों के भी मरे हुए देवगण या राम, कृष्ण अथवा खुदा, ब्रह्म, परमात्मा अपने भक्तों की स्तुति सुनते होंगे। ऐसी दशा में पारखी भी पूरे नास्तिक नहीं हुए। वे भी ईश्वरवादी ही ठहरते हैं पर उनको इतना ज्ञान नहीं है कि हम क्या कहते हैं।

उक्त प्रकार के ही इनके सब कथन हैं। उनकी जितनी भी अच्छी बातें हैं वे सब शास्त्रों की ही हैं। इनमें ऋषियों जैसी कल्पना शक्ति नहीं है, जो नई बातों की कल्पना कर सकें। इतना अवश्य है कि ये लोग साधु वेश में रहते हैं और ऊपर से कर्मकाण्डी भी होते हैं, परन्तु भीतर में कुछ दूसरा ही भाव रखते हैं। ये लोग अच्छी चीजों को खाने का बड़ा जोर करते हैं। घी-दूध बहुत खाते हैं। दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को हेय दृष्टि से देखते हैं। उन लोगों का उतना सम्मान नहीं करते जितना अपने सम्प्रदाय के लोगों का। ये लोग जाति-पाँति के बड़े कट्टर होते हैं। दूसरी जाति के संतों को अपनी पंक्ति में नहीं बैठाते। उनको अलग बैठाकर भोजन खिलाते हैं। कहीं-कहीं तो दान दक्षिणा के लिए भी लड़ाई कर देते हैं। अपने सेवकों को शिक्षित कर देते हैं कि दूसरे सम्प्रदाय के लोग आवें तो उनको भोजन आदि नही देना और उनको अपने यहाँ रखना भी नहीं। यदि रखना हो तो उसकी शिक्षा नहीं सुनना, क्योंकि वह ईश्वर की कल्पना करता है। इसलिए तुम्हें भी भ्रम में डाल देगा और तुम लोग पारखी सन्तों को छोड़कर अन्य को नहीं मानना।

इन पारखियों का आजकल अशिक्षित जनसमूह में जमघट देखा जाता है। ये प्रबुद्ध समाज से दूर ही रहते हैं। इसका कारण यह है कि प्रबुद्ध समाज के सामने अनेक आत्मकल्याण सद्पक्ष होते हैं। जैसे—ईश्वर का अस्तित्व, ब्रह्मज्ञान की प्रवणता, जीव की सच्ची स्थिति, उपासना के अंग-प्रत्यंग सभी का वास्तविक अस्तित्व और चरम लक्ष्य का विचार प्रभृति।

अब इस पर आवश्यक विचार यह है कि पूर्वोक्त विषय पर सद्गुरु कबीर की क्या मान्यता और क्या विचार हैं? सद्गुरु कबीर साहित्य से यह निश्चय

होता है कि वे ईश्वरवादी थे। उन्होंने उसका निरूपण विभिन्न दृष्टिकोणों से किया है। जैसे—बीजक ग्रन्थ में—

"अवधू कुदरत की गति न्यारी।
रंक निवाज करै वै राजा। भूपति करै भिखारी॥"

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे ईश्वर को प्राथमिकता देते थे। हाँ हिन्दू और मुसलमानों के लिए एक ही जगदीश्वर हैं। यह सम्बन्ध द्रष्टव्य है—

"भाई रे दुइ जगदीस कहाँ ते आया।
अल्लह राम करीमा केसव। हरि हजरत नाम धराया॥"

परन्तु पारखी लोग उक्त विषय को समझने की कोशिश नहीं करते। सद्गुरु के रहस्य को न समझकर अनाप-सनाप कहते और लिखते है। उनमें से अधिकांश प्रत्यक्षवादी हैं। इसीलिए ईश्वर उनकी समझ में नहीं आता, क्योंकि वह प्रत्यक्ष इनको दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः वे कहा करते हैं कि ईश्वर कुछ नहीं हैं, फिर हम यह कह सकते हैं कि प्रत्यक्षवाद पर ही आप अपनी बुद्धि लगा दिए हैं, तो अपनी और भी दुर्दशा होगी। जैसे—प्रत्यक्ष में आपके आँख के अग्रवर्त्ती भाग से ऊपर गोलक भाग में या पलक में कज्जल लगने पर उसको आप प्रत्यक्ष नहीं कर पाते, तो क्या वे गलत हैं?

इसी प्रकार इन पारखियों से पूछा जाय कि आपके लिए प्रत्यक्षवाद ही सब कुछ है, तो आपके पिता श्री का निश्चय कैसे होगा? क्योंकि आप अपनी उत्पत्ति के अवसर पर पिता का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाते हैं। यदि आप यह कहते हैं कि माता निर्दिष्ट या समाज निर्दिष्ट व्यक्ति ही मेरा पिता होगा तब सद्गुरु निर्दिष्ट ईश्वर आपको स्वीकार क्यों नहीं होता?

संसार के प्रत्येक बुद्धिवादियों ने सद्गुरु कबीर को ईश्वरवादी स्वीकार किया है। अपने अन्वेषण कार्य में सभी ने उनको ईश्वरवादी ही कहा है। जिसका अस्तित्व भारतीय जनता मुक्तकण्ठ से स्वीकार करती है। अतः पारखी सज्जनों को चाहिए कि ईश्वर की सत्ता स्वीकार करें। ईश्वर में वह शक्ति है कि राई से पर्वत और पर्वत से राई कर दे। इस सम्बन्ध में सद्गुरु कबीर की घोषणा सुनें—

"साहब से सब होत है, बन्दे ते कछु नाहि।
राई ते पर्वत करे, पर्वत राई माँहि॥"

यह है सद्गुरु का ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास और उत्कृष्ट अनुराग और भी उन्होंने कहा है—

"बहु बंधन से बाँधिया, एक विचारा जीव।
की बल छूटै आपने, की रे छुड़ावे पीव॥"

अनेक बन्धनों से जीव बँधकर दुःख भाजन बन रहा है। बन्धन से ईश्वर मुक्ति दिला सकता है या उसके पारमार्थिक स्वरूप के परिज्ञान से ही जीव बन्धन रहित होकर मुक्त हो सकता है। अपनी जानकारी भी सर्वोत्कृष्ट है। इस बात को श्रुति भगवती भी कहती हैं—**"आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः"**। अपनी आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन और चिन्तन भी सर्वोत्कृष्ट है। श्रुति और सद्‌गुरु के सिद्धान्त में किसी भी प्रकार का भेद नहीं है।

परस्परं भावयन्तः

इनकी ईश्वर में निष्ठा-श्रद्धा-प्रेम नहीं है, तो ईश्वर की भी कृपा इन पारखियों पर नहीं है और भी सर्वत्र अभेद दर्शन है। यह है सद्‌गुरु कबीर की मूलानुभोति, परन्तु इस रहस्य से विपरीत दिशा में आज पारखी समाज भागते जा रहा है, यह एक विचित्र बात है। इस रहस्य से अवगत पारखी समाज आत्मा को मालिन्यमय वना रहा है। इसमें इनकी अशांति का प्रधान कारण ईश्वर को नहीं मानना ही है, क्योंकि यदि ये पारखी ईश्वरवादी होते, तो इनकी अन्तरात्मा अवश्य ही प्रफुल्लित होती और प्रसन्नता की नींद से सोते। ठीक ही किसी उत्कृष्ट कवि की सूक्ति इन पारखी समाज में चरितार्थ होती है—**"ईश्वरानुग्रहत्यु परमाद्वैत भावना महाभय परित्राणा....।"** परमात्मा की कृपा से ही मनुष्य की प्रकृति उत्कृष्ट तत्व में होती है। उत्कृष्ट तत्वानुयायी समस्त भय से परित्राण पाकर भवभय से मुक्त हो जाता है। इसी रहस्य को सद्‌गुरु कहते हैं—**"जो मोहि जाना ताहि मैं जाना। लोक-वेद का कहा न माना॥"** अतः ईश्वर की दिव्यानुभूति से सद्‌गुरु कबीर की वाणियाँ झंकृत हो रही हैं। पारखी लोग प्रत्यक्षवादी होने के कारण ईश्वर से दूर रहते हैं। ईश्वर के अस्तित्व के आश्रयण में अनुमान-प्रमाग सर्वस्व माना जा सकता है। वैशेषिक दार्शनिक ने ईश्वर की सिद्धि में अनेक युक्ति प्रमाण उपस्थित किए गये हैं, जो ग्राह्य और स्तुत्य है। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि विपरीत बुद्धि के कारण ही राग-द्वेष की लहर में निमग्न ये पारखी हो रहे हैं। इनकी दयनीय दशा अत्यन्त शोचनीय है और ठीक ही किसी कवि की सूक्ति को पारखी समूह अलंकृत कर रहा है—**"कुंआँ में जहाँ भाँग पड़ी है"**। ये लोग सद्‌गुरु निर्दिष्ट 'वीजक' ग्रंथ, साखी ग्रंथ प्रभृति का यदि खुले अन्तःकरण से स्वाध्याय करें, तो इनकी आन्तरिक मलिनता दूर हो जाएगी, किन्तु ये लोग प्रायः अनार्ष ग्रन्थ का स्वाध्याय करते हैं। अतः बुद्धि वैकल्य होना स्वाभाविक ही है। वे ग्रंथ यदि पाठकों को देखना हो तो देखें—**'तिमिर भास्कर सद्ग्रंथ'**। इसके लेखक हैं स्वनामधन्य श्री प्रेम साहव, जिन्होंने ईश्वर के

सम्बन्ध में अनेक अनर्गल बातें कही हैं। इनकी समझ में ईश्वर का अस्तित्व नहीं आया है, क्योंकि ये प्रत्यक्षवादी हैं। इनका ही अन्धानुकरण करने वाले इनके बाद और भी लोग उसी परम्परा में देखे जाते हैं। अनुमान-प्रमाणगम्य ईश्वर होता है। यदि अनुमान को स्वीकार नहीं किया जाय तो जीव की स्थिति ख पुष्पवत् अलीक होगा। पूर्वोक्त लेखक ने स्थूलमति होने के कारण चार तत्वों पर ही जोर दिया हैं। इसका कारण यह है कि सूक्ष्म तत्व आकाश उनकी समझ के बाहर है। इसीलिए ईश्वर को समझना उनकी बुद्धि से परे है। लेखक तो लिखता है कि किसी प्रमाण से ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता। उसमें वेद, पुराण का भी उल्लेख किया गया है, परन्तु दुःख की बात तो यह है कि वेद, पुराण की बात का ज्ञान तो इनको नहीं है और असत्य ही वेद पुराण की बातें कहते हैं। सच पूछिए तो इन पारखियों को वेद, पुराण की पुस्तकों का दर्शन भी नहीं होता है। तब वे वेद की आंतरिक बातों को कैसे जान सकते हैं ? सद्गुरु कबीर ने ठीक ही कहा है—

"वेद कितेब कहो किन झूठा झूठा जो न विचारे ॥"

सद्गुरु की दृष्टि में वेद कितेब का ज्ञान झूठा नहीं है। उस ज्ञान का जो विचार नहीं करता वह झूठा है। यों तो स्वनामधन्य प्रेमदास जी की पुस्तक में अनेक दोष हैं। लोकोक्ति में ठीक ही कहा गया है—

"विच्छू का मंत्र न जाने, साँप के बिल में हाथ डाले"।

लेखक को हिन्दी-पद-रचना का परिज्ञान नहीं है और संस्कृत पद की ओर कदम बढ़ाया और हालत वही हुई जैसे कोई सागर में डूबता हुआ अपने हाथ पैर को पीटता है। ये लोग अपने को सच्चाई का ठीकेदार समझते हैं, परन्तु सत्यता से बहुत दूर हैं। देखिए सत्यता के लिए **"तिमिर भास्कर"** पृष्ठ ४, श्लोक संख्या २०, २१, २२ जिसमें कर्त्ता स्वयं लेखक बन बैठा है, जबकि उपर्युक्त श्लोकों के रचयिता स्वामी हनुमानदास जी साहब षट्शास्त्री हैं। सर्वप्रथम उन्होंने शिशु बोधिनी बीजक के टीका के मंगल में ये श्लोक लिखे हैं। यह हालत है पारखियों की और उल्टे यह कहते हैं कि वेद, पुराण और शास्त्र फन्दा है, पर इनके कुवाच्य ग्रंथ अच्छे हैं। बीसवें श्लोक में स्वामी जी ने लिखा है वहाँ पर प्रेमदास **"ज्ञानपरख पयोधि"** जोड़-जाड़कर पारख पद सिद्ध करने की कुचेष्टा की है।

इसी प्रकार अन्य पारखियों में भी दोष पाये जाते हैं। किसी भी महापुरुष की अक्षुण्ण कीर्ति में जानकारी तभी संभव हो सकती है जब उसके साहित्य का प्रगाढ़ सुचिन्तन हो। उसके साहित्य सर्जन के जितने उसके द्वारा

सम्प्रयुक्त शब्द हों, उनका बारीकी से परिशीलन हो। सद्गुरु कबीर के सच्चे साहित्य प्रयुक्त शब्द प्रयोग को देखकर प्रत्येक बुद्धिवादी फूले नहीं समाता है। उनके विभिन्न पक्षों का अवलोकन मनःशान्ति प्रपंच विदारण और मोक्ष-प्रदायी हैं। मोक्ष का परिज्ञान आत्म ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान, ईश्वर के साथ जीव का अभेद ज्ञान ही प्रधान कारण है। श्रुति स्मृति का चरम सिद्धांत सद्गुरु ने अपने साहित्य में समाविष्ट किया है। उन पावन विचार शृंखला को देखकर पारखियों की बुद्धि स्खलित हो जाती है। जैसे—ईश्वर के नाम, ब्रह्म के नाम सुनकर इन पारखियों के वैकल्य दोनों नैसर्गिक धर्म हैं। उसके समीप पहुँचना पारखियों से कैसे हो सकता है ? इस प्रसंग के अन्तर्गत किसी कवि की अर्द्धाली मुझे स्मरण हो रही है—**"एहि सर आवत कठिनाई"**। आत्मा, परमात्मा, पर ब्रह्म की चर्चा में पुण्यशाली व्यक्ति ही पहुँच पाता है। उसकी चर्चा न कर उलटे पारखी लोग उसकी निन्दाकर अपने को अशान्तमयबनाते हैं—**"अशान्तस्य कुतः सुखम्"** अशान्त प्राणी को सुख का अनुभव होना अत्यन्त असंभव है। इस पारखियों की दृष्टि में ईश्वर और ईश्वर का मानने वाला दोनों अपराधी हैं। उसकी उपासना से दुर्दशा होती है। तब तो इन पारखियों की सेवा से भी दुर्दशा होगी क्योंकि—**"जो रहे करवा सो निकरे टोटी"** इनके मन-मन्दिर में निन्दा की बातें कूट-कूट कर भरी है। संसार के जितने महापुरुष हैं—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, शुकदेव, नारद, विष्णु, शंकर जी प्रभृति इनकी वे लोग अहर्निश निन्दा करते हैं। यदि ये सब काल के धोखे में पड़े तब तो ये खुलेआम कहा जा सकता कि जीववादी पारखी समाज भरपेट निन्दाकर विकराल काल के गाल में चर्वित हो रहे हैं। सद्गुरु कबीर द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से ये लोग दूर होते जा रहे हैं। सद्गुरु कबीर ने जहाँ ईश्वर राम का भजन-सेवा-चिंतन का विधान किया है वहीं पारखी समाज उसका घोर विरोध कर उपहास का पात्र बन रहा है—

आपा तजै हरि भजै, नख सिख तजै विकार।
सब जिव से निर्वैर रहे, साधु मता है सार॥
एक सब्द में सब कहा, सब ही अर्थ विचार।
भजिये निर्गुण राम, को तजिए विषय विकार॥
यह मन तो सीतल भया, जब उपजा ब्रह्म ज्ञान।
जिहि वैसन्दर जग जरे, सो पुनि उदक समान॥—"बीजक"।

सद्गुरु के ये सारोपदेश इन पारखियों के समझ में नहीं आता है और अनर्गल प्रलापकर मायामुख, ब्रह्ममुख की परिकल्पना अपनी विभ्रमित बुद्धि के कारण

करते हैं। सद्गुरु ने अपने सारोपदेश में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया है। जीव का उद्धार हरि (ईश्वर) के शरणागत से, अपनी कुप्रवृत्तियों के परिमार्जन से हो सकता है। यही संत मत है। परन्तु पारखी संत के वेश को धारण कर एक पारख की पूंछ लगाकर अनेक मुख व्यर्थ परिकल्पना कर अपना अमूल्य समय नष्ट कर रहे हैं। पर शांति सद्गुरु की दृष्टि में ब्रह्मज्ञान से ही संभव है। जीव के नाम को लेकर शोर मचाये और खानी, वाणी, काल, सन्धी, झाई प्रभृति व्यर्थ की कल्पना असंभावित है।

संसार के साहित्य मनीषियों का सिद्ध सैध्यान्तिक शब्दों की प्रवृत्ति के चार ही आधार हैं—द्रव्य, गुण, क्रिया और जाति।

"चतुर्धा प्रवृत्ति—शब्दानां गुण क्रिया द्रव्य जातिश्च—महाभाष्य"।

इसके आधार पर थोड़ा विचार हम करना चाहते हैं। सद्गुरु कबीर ने भी संसार के उपक्रम में पाँच तत्वों का विशद वर्णन अपने बीजक में किया है—

"पाँच तत्व का पुतरा, मानुख धरिया नाँव।
एक कला के बीछुरे, विकल होत सब ठाँव॥"

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि सद्गुरु कबीर पाँच तत्वों पर मनुष्य का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। जब कि वर्त्तमान के और कुछ प्राचीन पारखी चार तत्व के ही पीछे चिपके हुए हैं और ये कहते हैं कि आकाश कोई तत्व नहीं है उसमें कोई गुण नहीं है। इन पारखियों की बुद्धि पर हँसी आती है। ये आकाश में गुण नहीं देखते हैं। तर्कशास्त्र की कसौटी पर आकाश में शब्द गुण है—**"शब्द गुणकमाकाशम्"** अतः सद्गुरु के पाँच तत्वों का विश्लेषण समस्त दृष्टि से ठीक है। ये लोग कबीर साहब के बतलाए हुए मार्गों से दूर रहते हैं और अपना अलग डफली बजाकर राग अलापते हैं। इसी प्रकार सद्गुरु के बताए हुए अनेक पक्ष हैं, जिसका परिज्ञान पारखी समाज को होना कठिन है, क्योंकि सद्गुरु ने अपनी वाणी में वेद-शास्त्र-पुराण और स्मृति का सारभूत तत्व रखा है। वे तत्व वेद शास्त्रज्ञ मनीषियों के द्वारा ही समझा जा सकता है। वर्तमान पारखी समाज उनको खानी-बानी कहकर उपेक्षा कर रहा है। शास्त्रज्ञ को चार आँखें होती हैं तब सूक्ष्म बातों का विश्लेषण करता है तथा सद्गुरु के रहस्य को समझता है। **सर्वस्य लोचनं शास्त्रंयस्य नास्त्यन्धे एव सः** किंतु इस रहस्यमयी बानी को जाल समझकर पारखी समाज ने इस शास्त्रोक्ति को चरितार्थ किया है और आगे करते जा रहे हैं।

इस कमी को दूर करने का प्रयास वर्त्तमान बुरहानपुर के आचार्य ने बीहड़ नेपाल के अरण्य से निकलकर प्राथमिक जीवन में किया था, जो कुछ काल तक

काशी कबीरचौरा में रहकर संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ किया था। परन्तु हृदय खानी-वानी के चक्कर में पड़ कर बुरहानपुर के महात्माओं से संपर्क होने के कारण विदग्ध हो चुका था। अतः संस्कृत क्षेत्र में सफल नहीं हो सके और 'पुनर्मूषको भव' होकर अपनी परम्परा के ग्रन्थ पढ़ने लगे। क्या यह ढोंग और गुरुडमता नहीं है ? संसार में जितने भी सम्प्रदाय चल रहे हैं, उनके अन्दर अधिक ढोंग है। यदि इस ढोंग का परित्याग किया जाय, तो सम्प्रदाय नहीं चल सकता है। तव पारखी अपना सम्प्रदाय चलाकर अवश्य ही ढोंग और पाखण्ड के भागी हैं।

वे कहा करते हैं कि चित्र मिथ्या होता है, परन्तु मैं इनसे स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूँ कि भारतीय संसार की जो मुद्रा छपती है वे भी तो झूठे हैं और उसे सत्ताईस पर्तों में बाँधते हैं तथा अपने जीव से भी अधिक जोगाते हैं। कहीं भी भोज भंडारा होता है, यदि ये सरकारी मुद्रा और धोती नहीं दी जाती, तो रात को नींद ही नहीं आती तव क्या इनका ज्ञान सच्चा है ? विचार कर देखें तो इनके कथन सही मुद्रा के प्रति अलीक है। वहुत से पारखी चित्र का विरोध करते हैं और अपना चित्र खिचवाकर अपने भक्त शिष्यों में प्रचार करते हैं। तब वह क्या ढोंग-पाखंड नहीं है, तो यह और क्या हो सकता है ?

सद्गुरु कबीर ने जीव को भी व्यापक बताया है, परन्तु पारखी लोग **'कानी गाय की अलग बथान'** की राग अलापते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो शब्द कितना व्यापक हैं। आज घर बैठे समस्त देशों का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। यह वैज्ञानिक यंत्र का आविष्कार हैं। हमारे वेद शास्त्रों में जीव आत्मा को व्यापक बतलाया गया है—**"आकाशवत्सर्वगतश्च-नित्य:"**।

सद्गुरु कबीर भी व्यापक मानते हैं—

जीवरूप एक अन्तर वासा। अंतर जोति कीन्ह परगासा॥ –रमैनी।

समस्त जीव का पारमार्थिक स्वरूप है। वह स्वजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य है। उसमें किसी प्रकार भेद नहीं हैं। इतना ही नहीं सद्गुरु ने और भी लिखा है—**"सब घट मेरा साईंया सुनी सेज न कोय।**

सब घट में वह साई रमता कटुक वचन मत बोल रे।"

अंतरात्मा या जीवात्मा को सद्गुरु व्यापक मानते हुए उसका अस्तित्व प्रत्येक घट में स्वीकार करते हैं। परंतु दुःख की वात है कि वर्त्तमान पारखी समाज अपनी दुर्भावना के कारण सद्गुरु को भी एकांगी—एकदेशीय सिद्ध करने का प्रयास अहर्निश कर रहे हैं, किंतु इन पारखियों के ज्ञान स्वयं धराशायी होते जा रहे हैं। क्योंकि असत्य पक्ष कब तक ठहर सकता है। भारतीय परम्परा ने

व्यापक दृष्टिकोण अपना एकत्व समन्वय की भावना सर्वत्र देखा है और आगे देखने जा रही है, परन्तु पारखी समाज प्रेम के स्थान पर घृणा का वातावरण पैदा करने में सचेष्ट है। जिस ईश्वरवाद के आधार पर सद्गुरु में जन-जीवन को सुख-शांति की दिशा प्रदान की उसी स्थान पर वर्त्तमान बालबुद्धि पारखी ईश्वर के प्रति घृणा, ब्रह्म के प्रति विद्वेष पैदा करना अपना धर्म मान रखें हैं। ये अपनी अंध परंपरा के कारण आत्मा शब्द से भी घृणा कर रहे हैं। जिस आत्मा शब्द का प्रयोग इनके मूर्धन्य लोगों ने किया है। आत्मा की परिभाषा व्यापक होने से **'अततीति आत्मा। अत सातत्य गमने'** गम् धातु से आत्मा शब्द सिद्ध होता है निरन्तर इसका सर्वत्र अस्तित्व है।

अतः उस आत्मा शब्द से पारखी समाज पलायित हो रहा है और जीव पक्ष को लेकर पारखपने का साहस कर रहा है **"जीवति प्राणान् धारयतीति जीव"** यह जीव की व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है। जीव और ईश्वर में किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। सद्गुरु कबीर ने हरि, कर्त्ता, खुदा, राम आदि शब्दों का अभिधान किया है। जीव और ईश्वर के अन्दर औपाधिक भेद है जब उपाधि का पर्दा दूर हो गया तब दोनों एक हो गए। हरि परमात्मा के उपकार को सद्गुरु ने रग-रग में स्वीकार किया है

"हरि कृपा तब जानिए, दे मानव अवतार।
हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कुछ देय।
बुद्धि बड़ी उपकार कर, जीवन का फल एह॥"

इन पदों से ईश्वर का अस्तित्व सद्गुरु ने उत्कृष्टता से स्वीकार किया है। जिसकी परिणति हम सर्वत्र देखते हैं। उसी के चिन्तन का सद्गुरु ने उपदेश दिया है जिससे मनुष्य की हड्डी भी सार्थक है। सद्गुरु ने परोपकार, द्रव्य को देना ही मनुष्य की विशेषता बतायी है। गरीबों का बुद्धि से उद्धार करना इतना ही जीवन की सफलता का कारण है। परन्तु इस दिव्य उपदेश का परित्याग करना पारखी समाज की अपनी अनोखी समझ है। 'भागवत' में एक पंक्ति आई है—**'साधव दीन वत्सला'**—साधु पुरुष बड़े दयालु होते हैं। वे सद्गुरु कबीर द्वारा निर्दिष्ट ईश्वर का उपदेश जन समूह को दे रहे हैं। जिसका आस्वादन कर भारतीय जनता कृतकृत्य हो रही है। यह सद्गुरु का आदर्श एक चमकता हुआ सूर्य है। उसके सामने पारखी समाज धूमिल होता जा रहा है और अपना अक्रोश ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा शब्दों के ऊपर निकाल रहा है तथा घृणा कर नाक भौंह सिकोड़ रहा है। परन्तु पारखियों! याद रखो कि भारतीय ईश्वरवाद अडिग हिमालय पर्वत है। वह तुम्हारे प्रलाप से

नहीं मिट सकता। भारतीय भूमि पर अनेक विधर्मी आए, परन्तु भारतीय ईश्वर के अस्तित्व को न मिटाकर अपने ही अस्तित्व में मिटकर विलीन हो गए। उसी प्रकार पारखी समाज भी भारतीय ईश्वर के विरोध में एक स्वल्प विधर्म का पाठ अदा करता है। परन्तु ईश्वर के अस्तित्व पर पारखी लोग वैसे ही सिद्ध होंगे जैसे महाकवि कालिदास ने लिखा है—

"न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य"

हवा रूई को उड़ाती है, वह शिला को कभी नहीं उड़ा सकती। इस प्रकार जैसे हवा का प्रयास शिला उड़ाने में व्यर्थ है, वैसे ही वर्तमान पारखियों के सद्गुरु के ईश्वर ब्रह्म और आत्मा के प्रति कुवाच्य व्यर्थ है।

—आचार्य गंगाशरण शास्त्री

कृतज्ञता-ज्ञापन

कबीर जीवन चरित्र का प्रथम संस्करण आज से १५ वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। लोकप्रियता के कारण इसकी सभी प्रतियाँ समाप्त हो गईं और दिनानुदिन पाठकों की ओर से माँग बढ़ती गई। माँग की आपूर्ति हेतु इसे पुनः प्रकाशित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। पुस्तक के प्रकाशन का भार मठ के व्यास मुनि दास, गोपाल दास तथा विद्यार्थी देवशरण दास ने अति निष्ठा और लगन के साथ उठाया। उनकी लगन और निष्ठा के फलस्वरूप यह संस्करण प्रकाशित हो सका है। आशा है भविष्य में भी उक्त तीनो विद्यार्थी गण अन्य प्रकाशनों को भी इसी निष्ठा एवं लगन के साथ प्रकाशित कराने में सहयोग प्रदान करेगें। प्रकाशन के कार्य में उक्त तीनों विद्यार्थी बिल्कुल अनुभवहीन थे, फिर भी उनकी लगन एवं निष्ठा से यह पुस्तक अतिशीघ्र प्रकाशित हो पायी है जिसके लिए उन्हें साधुवाद देता हूँ। पुस्तक की छपाई में कहीं-कहीं टाईप भन उठे रह गए हैं जो स्वाभाविक है। फिर भी छपाई से हमें सन्तोष है। मुद्रण कार्य में शिवम् प्रिन्टर्स के सर्वश्री शिवकुमार निगम एवं राजकुमार निगम ने जिस लगन और निष्ठा में तत्पर रहकर इसे शीघ्र प्रकाशित किया जिसके लिए उन्हें भी साधुवाद देता हूँ।

आचार्य गंगाशरण शास्त्री
श्री सद्गुरु कबीर मन्दिर
सी. २३/५, कबीर चौरा मठ, वाराणसी

"सद्‌गुरु कबीर साहब के जीवन-चरित्र विषयक बहुत से ग्रन्थ लिखे गये हैं। क्योंकि वे एक अलौकिक दिव्य स्वयंसिद्ध सत्पुरुष थे। वे संसार के अनन्त अज्ञबद्ध जीवों के उद्धार करने के लिए अवतरित हुए थे। उनके अनन्त गुण, कर्म तथा अलौकिक चमत्कारों के वर्णन करने के लिए यदि अनन्त ब्रह्मा को आयु भी मिल जाय तो भी इति नहीं होने वाला है। फिर भी महात्मा पुरुष स्वान्तः सुखाय वर्णन करते ही रहते हैं।

हाँ तो, जो उस महान् आत्मा का गुणगान करता है वह स्वाभाविक महामानव हो जाता है। उन्हीं महामानवों में हमारे अधिकारी श्रीमान् गंगाशरण साहब भी हैं जिन्होंने "कबीर जीवन चरित्र" नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है। जिसमें सद्‌गुरु कबीर का जीवन-चरित्र बड़े ही मनोरंजक तथा वैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है। मैंने पहले ही उल्लेख किया है कि सद्‌गुरु कबीर साहब के विषय में जो कुछ भी कहा जाय वह अत्यल्प ही है। फिर भी मनुष्य प्रयासशील होता है। उसका प्रयास जारी ही रहता है। अतः माननीय अधिकारी साहब का भी प्रयास स्तुत्य है। क्योंकि अनेक वर्षों के अन्वेषण के फलस्वरूप ही ऐसा हो सका है।"

दि० ११-८-७६ रामनन्दन दास



सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥

छंदबद्ध—'सद्‌गुरु कबीर सिद्धांत दर्शन' (ले० गंगाशरण जी शास्त्री) के पढ़ने के बाद 'कबीर जीवन चरित्र' को पढ़ने से लगता है कि यह पुस्तक उसका गद्यानुवाद है, किन्तु ऐसी बात है नहीं। दोनों पुस्तकों का अपनी-अपनी जगह पर अलग-अलग महत्त्व है।

'कबीर जीवन चरित्र' में नई सामग्री का सकलन और तथ्यों का सविस्तर वर्णन होने से इसकी विशेषता बढ़ जाती है। इसके साथ ही परिशिष्ट मे भी अनेक सामग्री सकलित हैं जिससे इसकी उपादेयता और बढ़ जाती है। इसके अनंतर पुस्तक का प्रस्तावना अंश अनुसन्धानपूर्ण समीक्षा है जिससे अनेक तथ्य तो उपस्थित होते ही हैं, साथ ही साथ अनेक मूर्धन्य लेखकों के मतों का खंडन-मडन भी हो जाता है। हाँ, कहीं-कहीं कटु-तिक्त बातों का उत्तर उसी रूप में देते हुए लेखक ने साधु भाषा का साथ नहीं छोड़ा है। अत्यन्त कटु-सत्य का उद्घाटन करने पर भी लेखक की साधुता एवं सरलता पग-पग पर झलकती है।

'कबीर जीवन चरित्र' में एक ओर जहाँ कबीर साहब के जीवन की झलकियाँ प्राप्त होती हैं, तो दूसरी ओर संत कबीर एवं कबीर पंथ के प्रति लेखक की अपार श्रद्धा-भक्ति से संपुटित वैष्णव धर्म एव 'राम नाम' महिमा का पग-पग पर गुणगान। और इस गुणगान से पुस्तक की पूरी की पूरी पंक्तियाँ जगमगा उठी हैं। संभव है इस 'राम नाम' की महिमा के वर्णन से बहुतों को चौंकना पड़े या इसके साथ ही ठंढे दिल से सोचने के लिए विवश भी होना पड़े कि 'कबीर' और 'राम' को एक करके लेखक ने वास्तव में अपने को 'रामनाममय' बना दिया है। जो हो, पुस्तक आपके सम्मुख है।

अस्तु, सुधी ग्रंथकार ने अपने शोध का जो फल प्रस्तुत किया है वह स्वागतार्ह और प्रशंसनीय है। हमारा विश्वास है कि यह महत्वपूर्ण ग्रंथ न केवल कबीर पन्थ एवं कबीर साहित्य के अध्येताओं के लिए उपयोगी होगा, वरन् हिन्दी के जिज्ञासुओं तथा प्रबुद्ध पाठकों के लिए भी चिन्तन-मनन को प्रेरणा देने वाला सिद्ध होगा। ग्रंथ का सम्मान होगा, ऐसी मेरी निश्चित धारणा है।

शिवशंकर मिश्र

अश्विन कृष्ण ८, २०३३ वि० जमिरा (आरा), भोजपुर

अभिमत

कबीर जीवनचरित्र

श्री गंगाशरणदास जी ने अत्यंत श्रम और साधनापूर्वक 'कबीर जीवन चरित्र' ग्रंथ की रचना की है। इसमें ऐसी अनेक तथ्य की बातें दी गयी हैं जिससे हमारी जानकारी बढ़ी है। किंवदंतियों और चमत्कारों का आकलन-संकलन भी व्यापक रूप से किया गया है। नाना मत-मतांतरों की भी चर्चा, खंडन व मंडन भी किया गया है। इस ग्रंथ के द्वारा कबीर-साहित्य के जिज्ञासुओं, साधकों, संतों व भक्तों को ऐसी सामग्री दी गयी है कि उनकी ज्ञानसंपदा में वृद्धि होगी। कबीरमठ काशी की गौरवशाली परंपरा में यह प्रकाशन अपनी प्रभा के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है।

मेरा विश्वास है कि ज्ञान की उपासना करनेवाले इस ग्रंथ का समुचित उपयोग या प्रयोग कर कबीर और उनके साहित्य के संबंध में तत्त्वचिंतन की नयी प्रेरणा ग्रहण करेंगे।

सुधाकर पाण्डेय
संसद सदस्य
प्रधानमंत्री,
नागरी प्रचारिणी सभा,
वाराणसी



कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र

कबीरचौरा मठ, वाराणसी

दूरभाष ६३४१९